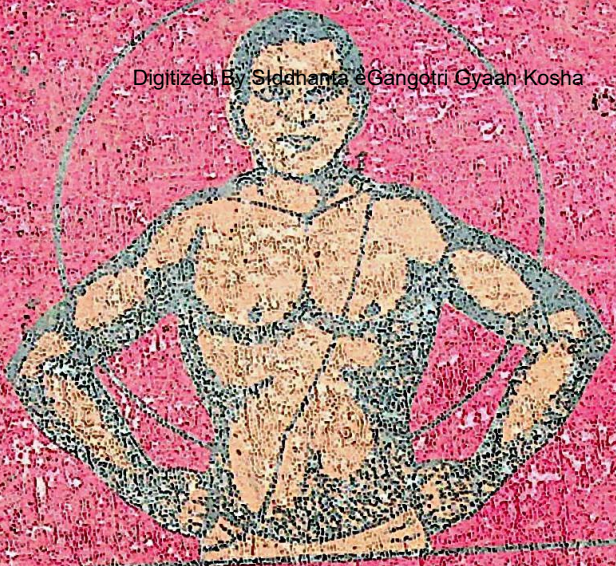
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



ब्रह्मचर्य के साधन

भाग १-११

२० रु.

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

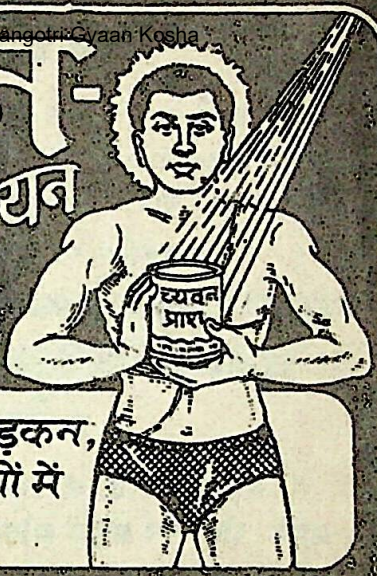
Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च्यवन-प्राश रसायन

(अष्टवर्गयुक्त)



रीर की दुर्बलता. दिल की धड़कन,
रानी खाँसी. दमा और क्षय रोगों में
विशेष लाभदायक।

ता:-आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला
पो. गुरुकुल झज्जर, जि रोहतक (हरयाणा)



CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ओ३म्) भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥
(यजुर्वेद अ० ३४ म० ३४-३८)

इन मन्त्रों का अर्थ विचारपूर्वक जप करने से अधिक लाभ होता है। इनका अर्थ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि के गृहाश्रम प्रकरण में देख लेवें। बहुत प्राचीन काल से अथवा यों कहिये आदि सृष्टि से प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठने का विधान है। बाल्मीकि रामायण इसमें प्रमाण है—

एकयामावशिष्टायां रात्र्यां प्रतिबुध्य सः।
अलङ्कारविधिं कृत्स्नं कारयामास वेश्मनः ॥५॥

(बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड षष्ठ सर्ग)

(राम और सीता) जब पहर रात शेष रही तब वे उठे और नौकर चाकरों को सारे भवन को साफ कर सजाने की आज्ञा दी ॥५॥

रात्री के पश्चिमयाम वा चौथे पहर का नाम ब्राह्ममुहूर्त्त है। शास्त्रकारों ने इसी समय को अमृतवेला वा देववेला भी कहा है। यह ब्रह्म का अर्थात् "देवंदेवत्रा" देवों के देव महादेव जिसका मुख्य और निज नाम 'ओ३म्' है, के स्मरण करने का सर्वश्रेष्ठ समय है। देव विद्वान् लोग इस मुहूर्त्त में ब्रह्म की भक्ति व भजन में रत रहते हैं और उस समय प्रेममय प्रभु अपने सच्चे श्रद्धालु भक्तों पर आनन्द अमृत की वर्षा करते हैं। सभी मनुष्य पर्याप्त समय सुषुप्ति अर्थात् गहरी निद्रा में सब सांसारिक वासनाओं से सर्वथा दूर रहते हैं। चित्त की सब वृत्तियां उस समय निरुद्ध अवस्था में रहती हैं। इसी कारण हमारा आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होने से सर्वथा शान्त होता है। प्रकृति भी सर्वथा शान्त होती है। अथवा यों कहिये उस समय सर्वत्र सुन्दरता,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौम्यता, प्रसन्नता और शांति का साम्राज्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवपूजा अर्थात् ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि शुभ कार्यों के लिए ही ईश्वर ने इस उत्तम समय की रचना की है। इस समय स्वभाव से ही पापी से पापी मनुष्य का भी ईशभक्ति आदि शुभ कार्यों में मन लगता है। असुरों में भी इस समय आसुरी वृत्ति का लोप हो जाता है। राक्षसों में भी देवता बनने की प्रवृत्ति जागृत हो उठती है। इसीलिए पशु पक्षी आदि सभी प्राणी स्वभाव से प्रातः ही उठ जाते हैं। नवजात बालक भी स्वयमेव प्रातः उठकर हमें यह शिक्षा देता है कि प्रभु का यह पवित्र समय प्रमाद में पड़कर सोने का नहीं है। हम यह भी नहीं देखते कि पक्षीगण पेड़ों की शाखाओं पर अपने पंख फैलाकर प्रतिदिन अपने प्रियतम प्रभु के प्रेम में गद्‌गद् होकर कितने मधुर स्वर से गीत गाते हैं। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि रात-दिन के चौवीस घण्टे में केवल एक बार आने वाला यह प्रातःकाल का सर्वोत्तम समय ब्रह्मवन्दना के लिए ही आता है। देव (विद्वान्) लोग एकाग्रचित्त हो इस समय प्रभु के आनन्द अमृत का पान करते हैं। इस भाव को एक कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार कहा है—

"भोर भयो पक्षीगण बोले, उठो जन प्रभु गुण गाओ रे।
लखो प्रभात प्रकृति की शोभा, बार बार हर्षाओ रे॥"

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनम् ॥

प्रातःकाल की सन्ध्या जब तक नक्षत्र आकाश में रहें विधि-पूर्वक करे, और जब तक सूर्य का दर्शन न हो गायत्री का अभ्यास (जप) करता रहे। "**पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः**" (सूर्य उदय से पूर्व ईश्वर का ध्यान करना चाहिए) महाभाष्य २।३।६९। का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"न लोकाव्यय०" सूत्र पर आया वाक्य भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। सभी शास्त्रों में ऋषि-महर्षि लोगों का यही एक मत है कि ब्राह्ममुहूर्त्त से बढ़कर ईश्वरभक्ति के लिए अन्य पवित्र समय नहीं है। इसलिए मनु महाराज भी लिखते हैं—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥

(मनु० अ० २२ श्लोक १०१)

अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या को गायत्री का जप करता हुआ सूर्य दर्शन होने तक स्थित होकर और सायंकाल की संध्या को नक्षत्र दर्शन ठीक ठीक होने तक बैठकर करे।

इसलिए प्राचीन काल में सभी भारतवासी इस पवित्र ब्राह्म-मुहूर्त्त में ईश्वरचिन्तन, ब्रह्मार्चना, योगाभ्यास ही करते थे। इस अमृतवेला का सदुपयोग करने के कारण ही प्राचीन ऋषि महर्षि गण अमरपद (मोक्ष) की प्राप्ति करते थे। इसीलिए आज तक उनके यश और कीर्ति के गीत गाये जाते हैं। जो प्रतिदिन बहुत प्रातः उठकर श्रद्धापूर्वक ईश्वर को ध्यायेगा वह देवमार्ग का पथिक बनकर मोक्षपद को पायेगा। क्योंकि ब्राह्ममुहूर्त्त का समय इतना अच्छा होता है कि इस समय यम नियमों की स्वयं सिद्धि होती है। परस्पर का व्यवहार न होने से हिंसा करने या असत्य बोलने का अवसर ही नहीं आता। स्वभाव से अहिंसा और सत्य का प्रसार होता है। चोर भी अपनी चोरी से निवृत्त होकर इससे पूर्व ही अपने स्थान पर चले जाते हैं। कामी पुरुष भी रात्री में बहुत देर से सोने के कारण इस समय आलस्य प्रमाद में पड़े सोते व मक्खी मच्छर मारते रहते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि यम नियमों का स्वयं वातावरण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने से यह योगाभ्यास, ईश्वरभक्ति का सर्वोत्तम समय है। किसी कवि ने ठीक कहा है—

अमृत वेला जाग, पवित्र, होकर आसन ले जमा।
ईश्वर के गुण धारण करके, समीप दिन दिन होता जा॥
प्रीति प्राणाधार की अपना रङ्ग जमायेगी॥
भक्ति कर भगवान् की, काम तेरे जो आयेगी।
पाप भरी जो आत्मा निश दिन धुलती जायेगी॥

इसी प्रकार इसी भाव को एक अन्य कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है—

भगवान् भजन करने को जो प्रातः समय उठ जाता है।
आनन्द की वर्षा होती है दुनियां में वो सुख पाता है॥

राष्ट्रपिता गान्धी जी का जो प्यारा भजन है, उसमें भी इसी प्रकार के भाव भरे हैं—

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है।
टुक नींद से अंखिया खोल जरा, और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है॥ उठ जाग०

हमारे प्राचीन पुरुष प्रातःकाल उठने के महत्त्व को पूर्णतया समझते थे और सभी ब्राह्ममुहूर्त में उठने के पूरे अभ्यासी थे। वे मनु जी के आदेशानुसार इस समय में शौच, दन्तधावन, स्नान, व्यायाम और वायुसेवन आदि नित्य कर्मों के द्वारा शरीर को इतना सुन्दर, सुदृढ़ और स्वस्थ बना लेते थे कि काया के क्लेश अर्थात् शारीरिक रोग और उनके कारण स्वयं समूल नष्ट हो जाते थे। आयुभर रोग उनको छूते तक न थे। इसके अतिरिक्त वेदों के तत्त्वों के अध्ययन, प्राणायाम, योगाभ्यास और ईश्वरचिन्तन के द्वारा मानसिक और आत्मिक काम क्रोध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आदि शत्रुओं को भस्मसात् कर डालते थे। आज हम अपने ऋषि महर्षियों के मार्ग को छोड़कर सर्वथा उलटे चल रहे हैं। हमारे सब दुःखों का यही कारण है। यह जानते हुए भी कि जो लोग सोये पड़े रहते हैं वे आलसी, रोगी, अल्पायु, हठी, दरोद्री, दुराचारी, विषयी तथा अनेक दुर्गुणों के भण्डार होते हैं। उनके स्वास्थ्य और सदाचार का तो दिवाला ही निकल जाता है। प्रातःकाल का यह पवित्र संमय जिस का वायु अत्यन्त शुद्ध और संजीवनी शक्ति से भरा हुआ होता है, हम उससे कुछ भी लाभ न उठाकर खटिया से पड़े-पड़े यों ही खो देते हैं और अपने पुरुषाओं को लजाते हैं। क्योंकि प्रातःकाल उठनेवाले स्त्री-पुरुष पूर्ण स्वस्थ भाग्यवान् और बुद्धिमान् होते हैं। जैसे अंग्रेजी में भी कहावत है:—

"Early to bed and early to rise makes a man healthy wealthy and wise."

किन्तु आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे बाबू और स्कूल, कालिज के विद्यार्थी इससे सर्वथा विपरीत करते हैं। देर से सोना और देर से उठना अपना धर्म समझते हैं। रात्रि को देर तक व्यर्थ की गप्प-शप्प मारते और सिनेमा, नाच आदि देखते रहते हैं और परीक्षा के दिनों में पढ़ने के लिए देर तक जागते रहते हैं और फिर सूर्योदय के बहुत पीछे तक सोये पड़े रहते हैं। क्योंकि देर से सोनेवाला और देर से उठनेवाला मनुष्य कभी भी बुद्धिमान्, स्वस्थ, ब्रह्मचारी और भाग्यवान् नहीं हो सकता। वेद भगवान् ने कितना अच्छा कहा है :—

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे ॥ अ.७-१३-२

जो सूर्य उदय के पश्चात् अथवा दिन में सोता है उस सोने वाले के तेज को उदय होता हुआ सूर्य हर लेता है, जैसे अपने शत्रुओं के तेज को एक तेजस्वी पुरुष ले लेता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेज वा वर्चस् उस शक्ति वा गुण का नाम है जिसके कारण मनुष्य सब प्रकार की उन्नति करता है। तेज तत्त्व का स्वभाव ही आगे बढ़ना है। हम थोड़े से आलस्य के कारण केवल प्रातः काल न उठकर उन्नति के मूलतत्त्व को खोकर सर्वथा तेजहीन हो रहे हैं। कितने दुःख और मूर्खता की बात है कि प्रातःकाल का समय दिन का मूल वा बाल्यावस्था है। जैसे बाल्यकाल में अच्छे वा बुरे जैसे भी संस्कार डाल दिये जाते हैं उनका प्रभाव मरण पर्यन्त रहता है। संस्कारों की छाप अटल और अमिट है जो प्रातःकाल की अमूल्य अमृत-वेला को नष्ट कर देता है उस का सम्पूर्ण दिन ही नष्ट हो जाता है। जैसे प्रातःकाल बीतेगा वैसे ही सम्पूर्ण दिन की गति होगी। अंग्रेजी भाषा की लोकोक्ति भी है:—

"Well begun is half done,"

प्रातःकाल का पिछड़ा हुआ मनुष्य सायंकाल तक पिछड़ा ही रहता है। उसकी दिनचर्या सब बिगड़ जाती है। उसका कोई काम समय पर नहीं होता। वह अपने सुधार के लिए प्रतिदिन आने वाले एक नये शुभ अवसर को खो देता है। प्रातःकाल उठने के लिए हमें वेद मंत्र कैसी आश्चर्ययुक्त चेतावनी देता है—

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात्, अपप्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥

(ऋग्० १।११३। १६॥)

शब्दार्थः—हे मनुष्यो! (उदीर्ध्वम्) उठो जागो (नः) हमारे लिए (जीवः) जीवन (असुः) प्राणशक्ति (आगात्) आगया है, उदय होगया है। (तमः) अन्धकार (अप प्रागात्) हट गया है, भाग गया है (ज्योतिः) उषा की ज्योति (आ एति) आ रही है (सूर्याय) सूर्य के (पन्थां) मार्ग को (यातवे) चलने पहुँचने के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए (आरैक्) खोल दिया है (यत्र) जहां जीवनशक्तियां (आयुः प्रतिरन्तः) जीवन को बढ़ाती हैं उस अवस्था में हम (आ अगन्म) पहुँच गये हैं।

भावार्थ—मनुष्य के लिए प्रातःकाल उषा की ज्योति उठने के लिए अन्तिम चेतावनी है वह मनुष्य को सावधान करती है हे मनुष्य ! उठ यह जीवनशक्ति के संचय का समय है। प्राणायाम के द्वारा प्राणों का उदय (संचार) इसी समय किया जाता है। इस समय का भागता हुआ अंधकार हमें अन्दर के अन्धकार को मिटाने के लिये सचेत कर रहा है। यह प्रभात का प्रकाश सूर्य के आने की सूचना दे रहा है और हमें बार बार कह रहा है, ऐ मनुष्य ! उठ यह सोने का समय नहीं है। इस समय का जो सोना है अपने सर्वस्व का खोना है। यही तो समय है जागनेवाले मनुष्य के अन्दर उषा का प्रकाश और उदय होते हुए सूर्य की शक्तियां नव प्राण का संचार करके दोव्य-ज्योति का उदय करती हैं और सोने वाले व्यक्ति के आरोग्य स्वास्थ्य, बल, बुद्धि, तेज को हर के निर्बल, दरिद्र, निर्बुद्धि और अल्पायु बनाती हैं। "ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी" ब्राह्ममुहूर्त्त में सोना सब पुण्यों अर्थात् शुभ कार्यों का क्षय (नाश) करनेवाला होता है।

ऐतरेय ब्राह्मण में एक प्रश्न आया है—

"किम् पुण्यम् ? ब्रह्मचर्यम्।" अर्थात् संसार में सब पुण्यों का पुण्य ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के प्रेमी की यदि आप परीक्षा करना चाहें तो आप प्रातःकाल जाकर देखें वह चार बजे से पीछे कभी सोता हुआ न मिलेगा। प्रातःकाकाल चार बजे के पीछे सोने वाला मनुष्य कभी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। क्योंकि स्वप्नदोषादि रोग इस समय सोते रहने से जो मल-मूत्र से मलाशय और मूत्राशय भरे हुए होते हैं उनका वीर्यकोष पर दबाव पड़ता है और उसी से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वीर्य नष्ट हो जाता है और गन्दे स्वप्न भी चार बजे के पीछे ही आते हैं, जो स्वप्नदोष का कारण बनते हैं। किन्तु प्रातःकाल चार बजे से पूर्व मनुष्य तभी उठ सकता है जब सायंकाल १० बजे से पूर्व सो जाये। इसलिए ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचर्य प्रेमियों को १० बजे से पूर्व सोने का और चार बजे से पूर्व उठने का अभ्यास डालना चाहिए।

प्राचीन काल में इस पवित्र देश में जितने भी पूज्य ऋषि महर्षि हुए हैं वे सभी प्रातःकाल उठनेवाले ही थे, इसमें तो किसको सन्देह हो सकता है। किन्तु आधुनिककाल में भी संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, जिस किसी ने देश, जाति, धर्म के लिए कोई भी सेवा का बड़ा कार्य किया है वे सब ही प्रातःकाल उठने के अभ्यासी थे। महर्षि दयानन्द सदैव बहुत प्रातः उठते थे। महात्मा गान्धी जी को प्रातःकाल उठने का अभ्यास था। नेपोलियन आदि महापुरुष जो पाश्चात्य देशों में हुए हैं वे भी सब प्रातःकाल उठने के अभ्यासी थे। प्रातः उठनेवाले महापुरुषों के नाम की सूची कुछ वर्ष पूर्व आङ्गल भाषा की प्रसिद्ध पत्रिका Modern Review में छपी थी।

प्रातः उठने की बात छोटी-सी दिखाई देती है, किन्तु इसका महत्त्व और फल बड़ा भारी है इसका अभ्यास पर्याप्त परिश्रम के पीछे पक्का होता है। सदैव निरन्तर नियम से प्रातः उठनेवाले व्यक्ति बहुत थोड़ी संख्या में पाये जाते हैं। किन्तु महापुरुष बनने वाले ऐसे ही व्यक्ति होते हैं। जैसे वृक्ष और भवन (मकान) की जड़ और नींव भूमि में छुपी रहती हैं, साधारणतया देखनेवाले को इसका कोई महत्त्व नहीं प्रतीत होता, किन्तु मूल के अभाव में वृक्ष और नींव (बुनियाद) के बिना भवन टिक नहीं सकते। इसी प्रकार प्रातः उठने का गुण छोटा-सा दिखाई देता है किन्तु

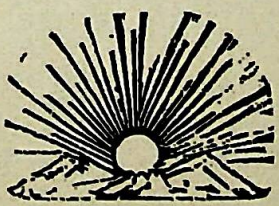
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह अपने धारण करनेवाले के जीवन को उच्च, पवित्र और महान् बना देता है। इतने पर ऐसे भारी लाभप्रद गुण को कोई धारण न करे तो उससे बढ़कर अभागा और कौन हो सकता है। इस महत्त्व को प्रकट करनेवाली महर्षि दयानन्द जी के जीवन की एक घटना आती है। घटना इस प्रकार है—

एक दिन एक पादरी और एक मिशनरी महिला महाराज से मिलने आये। उनसे महाराज ने कहा कि धन की अधिकता जाति की अवनति का कारण हुआ करती है जैसा कि वह आर्य जाति के अधःपतन का कारण हुई और उदाहरण रूप से कहा कि इसी कारण से अंग्रेजों की दिनचर्या बिगड़ती जाती है। पहले हम जब सूर्योदय से पूर्व भ्रमण करने जाया करते थे तो बहुत से अंग्रेज स्त्री पुरुषों को वायुसेवन करते देखते थे, परन्तु अब वह बहुत दिन गए उठते हैं। इसलिए अब इनका राज्य नहीं रहेगा।

प्रातःकाल न उठनेवाला मनुष्य स्वास्थ्य, आयु, बल, ब्रह्मचर्य, राज-काज सब कुछ खो बैठता है। अतः प्रत्येक ब्रह्मचर्य प्रेमी तथा उन्नति चाहनेवाले स्त्री-पुरुष को प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में ही उठना चाहिए।



CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ब्रह्मचर्य के साधन

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

[द्वितीय भाग]

(चक्षुःस्नान, उषःपान और शौच आदि)

१—चक्षुःस्नान

प्रातःकाल उठकर ईश्वरचिन्तन के पश्चात् चक्षुःस्नान करना चाहिए। जिसका विधि निम्न प्रकार से है:—

शुद्ध जल जो ताजा और वस्त्र से छना हुआ हो, लेकर इस से मुख को इतना भरलो कि उसमें और जल न आ सके अर्थात् पूरा भरलो। इस जल को मुख में ही रखना है साथ ही दूसरे शुद्ध जल से दोनों आंखों में बार-बार छींटे दो जिससे रात्रि में शयन समय जो मल अथवा उष्णता आंखों में आजाती है वह सर्वथा दूर हो जाये। इस प्रकार इस क्रिया से अन्दर और बाहर दोनों ओर से चक्षु इन्द्रिय को ठंडक पहुँचती है। निरर्थक मल और उष्णता दूर होकर दृष्टि बढ़ती है। इस क्रिया को प्रतिदिन करना चाहिए।

यह क्रिया आंखों की ज्योति के लिए अत्यन्त लाभदायक है। इसको प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करने से नेत्रों के सब रोग दूर होकर वृद्धावस्था तक आंखों की ज्योति बनी रहती है।

२—उषःपान

इसके पश्चात् उषःपान करें। प्रातःकाल ४ बजे के पश्चात् जो जल शौच (मल,मूत्र त्याग) से पूर्व पिया जाता है उसे उषःपान कहते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उषःपान से पूर्व भली भांति कुल्ली करके मुख नासिका आदि को साफ करना आवश्यक है। पहले दांतों को अगुली से भली भांति रगड़ कर दो तीन बार कुल्ला करें। फिर अंगूठे या उंगली से रगड़ कर जीभ का तथा गले में नीचे ऊपर तथा दायें बायें लगा हुआ कफ आदि मल भली-भांति साफ कर डालें। नासिका के दोनों छिद्रों को भी जल से शुद्ध करलें। यदि नासिका और मुख को भली भांति शुद्ध किये बिना उष-पान (जलपान) किया जायेगा तो रात्रि में शयन काल में हमारे उदर से जो मल मुख के द्वारा बाहर निकलने के लिए आता है वह जल के साथ पुनः पेट में पहुँच कर गड़बड़ी करेगा।

उषःपान के प्रकार

उषःपान दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम नासिका द्वारा, दूसरा मुख के द्वारा। लाभ दोनों से ही होता है। पहले मुख द्वारा ही जल पीने का अभ्यास करना चाहिए। शनैः शनैः नासिका के द्वारा भी जल पीने का अभ्यास कर सकते हैं। किन्तु यदि नासिका से पीना हो तो बांयीं नासिका से धीरे-धीरे थोड़ा जल अन्दर जाने दें। इस जल को मुंह से थूक दें। इस प्रकार नासिका को शुद्ध करके नासिका से जल पीना चाहिए।

नासिका द्वारा जल पीने की विधि इस प्रकार है—

गिलास में या किसी जलपात्र में जिसके किनारे पतले हों जल भर सुविधा पूर्वक बैठकर गिलास का किनारा बायें नथुने (नाक) से लगाकर धीरे-धीरे जल अन्दर जाने दें। कण्ठ से घूंट खींचता जाये जल स्वयं ही भीतर जाने लगेगा। जलको श्वास की सहायता से न खीचें। बलपूर्वक यह क्रिया करने से जल का ठसका लग सकता है। आरम्भ में कुछ कष्ट होता है, किसी के तो आंखों में आंसू भी आ जाते हैं। कुछ झनझनाहट सी उत्पन्न होती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वा थोड़ा-सा प्रतिश्याय (जुकाम) भी प्रतीत होता है। किन्तु इससे घबराना नहीं चाहिए। पहिले दिन एक या दो तोला जल पीयें, फिर धीरे-धीरे बढ़ाते जावें। भावप्रकाश में २४ (चौबीस) तोले जल पीना लिखा है किन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार न्यून वा अधिक कर सकता है। किसी-किसी को वायु के कारण डकारें बहुत आती हैं। क्योंकि जल के साथ पेट में वायु भी जाती है। इससे घबराना नहीं चाहिए। दाईं नासिका से जल पीने से हानि कोई नहीं होती। बायें नथुने का चन्द्रस्वर होने से शीतलता और शांति रहती है। किसी को नासिका से जल पीने से कष्ट होता है तो मुख से ही पीता रहे।

जल पीकर मूत्रत्याग (लघुशंका) करें। यह सदैव ध्यान रखें कि प्रत्येक अवस्था में मल मूत्र त्याग से पूर्व ही उषःपान करना आवश्यक है। जल मीठा और शुद्ध होना चाहिए। कूयें का ताजा जल सदैव अच्छा रहता है। उष्णकाल में सायंकाल का रखा हुआ पर्युषित (बासी) शुद्ध जल भी अच्छा रहता है। बहुत ठण्डा और गरम पानी हानि करता है जिनको मलबन्ध (कब्ज) रहता हो वे सायंकाल तांबे के पात्र में जल रख दें और प्रातः उसका पान करें।

उषःपान के लाभ

उषःपान के अनेक लाभ आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखे हैं। धन्वन्तरि संहिता में लिखा है—

सवितुः समुदयकाले प्रसृतिः सलिलस्य पिबेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम् ॥

जो मनुष्य सूर्योदय से कुछ पहले आठ अञ्जलि जल पीता है रोग और बुढ़ापा उसके पास नहीं आते। वह सदैव स्वस्थ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और युवा रहता है। उसकी आयु सौ वर्ष से भी अधिक होती है। भावप्रकाश में लिखा है—

अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकोष्ठमेदोविकाराः ।
मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः ॥
ये चान्ये वातपित्तक्षतजकृता व्याधयः सन्ति जन्तोः ।
तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥

बवासीर, सूजन, संग्रहणी ज्वर, पेट के अन्य रोग, बुढ़ापा, कुष्ठ, मेदरोग अर्थात् बहुत मोटा होना, पेशाब का रुकना, रक्त-पित्त, आंख, कान, नासिका, सिर, कमर, गले इत्यादि के सब शूल (पीड़ा), तथा वात, पित्त, कफ और व्रण (फोड़े) इत्यादि होने वाले अन्य सभी रोग उषःपान से दूर होते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर लिखा है—

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्रयमात्रया ।
व्यङ्गवलिपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथहरम् ।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिसञ्जनम् ॥

नासिका द्वारा प्रतिदिन शुद्ध जल की तीन घूंट वा अञ्जलि प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में पीनी चाहियें। क्योंकि इससे विकलाङ्ग, झुर्रियां पड़ना, बुढ़ापा, बालों का सफेद होना, पीनस नाक का सड़ना वा नासिका में कीड़े पडना आदि नासिका रोग, प्रतिश्याय (जुकाम) स्वर का बिगड़ना, विरसता, कास व खांसी सूजनादि रोग नष्ट हो जाते हैं और बुढ़ापा दूर होकर पुनः युवावस्था प्राप्त होती है। आयु की वृद्धि अर्थात् दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। चक्षु सम्बन्धी सब रोग दूर होते हैं और नेत्रज्योति, इस प्रकार जल-नेति करने से, खूब बढ़ती है। अतः ब्रह्मचर्य तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्येक स्वस्थ स्त्री वा पुरुष को प्रतिदिन मुख वा नासिका द्वारा उषःपान का अमृत पान करके अमूल्य लाभ उठाना चाहिये।

३—शौच

जल पीकर पहले लघुशंका (मूत्र त्याग) करें। तत्पश्चात् खुले जंगल में जाकर मल त्याग (शौच) करें। शौच के लिए ग्राम से जितना भी दूर जाओ उतना ही अच्छा है।

इसमें मनु जी महाराज का प्रमाण है—

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम्।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत्॥

(मनु० अध्याय ४ श्लोक १५१।)

मल-मूत्र का त्याग, पैर धोना वा जूठन का फेंकना आदि कार्य घर वा निवास स्थान से दूर ही करें।

मनु जी की आज्ञा के अनुसार प्रातःकाल उत्तर की ओर और सायंकाल दक्षिण की ओर मुख करके शौच के लिये बैठें। जैसा कि आगे लिखा है। मुख तथा दांतों को बन्द रखें। बायें पैर पर दबाव रखकर बैठना अच्छा है। इससे शौच खुलकर आता है। शौच के समय बल लगाना वा कांखना बहुत ही हानिकारक है। बल लगाने से वीर्य नष्ट हो जाता है। जो मल (टट्टी) स्वयं आ जावे वही ठीक है।

मल मूत्र रोकने से हानियां

मल-मूल के त्याग पर ब्रह्मचारी को पूरा ध्यान रखना चाहिये। सदैव सब कार्यों को छोड़कर उचित समय पर शौच जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कभी निश्चित समय पर शौच

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
जाने की इच्छा भी न प्रतीत हो तब भी शौच के लिए अवश्य जाना चाहिये। भले ही मल विसर्जन (टट्टी) न भी हो, इस से मल की उष्णता कम हो जाती है और हानि नहीं करती। किन्तु जो लोग इस बाट में बैठे रहते हैं कि शौच जाने की इच्छा जब होगी तब जायेंगे, उनका स्वभाव बिगड़ जाता है। मल की उष्णता से नेत्रों की ज्योति घटने लगती है, बल-वीर्य भी क्षीण होने लगता हैं। अर्थात् ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। भूख नहीं लगती। भोजन में अरुचि हो जाती है। शिर में पीड़ा रहती है। इसी प्रकार और अन्य अनेक रोगों की उत्पत्ति होकर मनुष्य सदैव रोगी रहता है। महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुतसंहिता में लिखा है—

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।
तदंत्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम् ॥

(सुश्रुतसंहिता। चिकित्सास्थान। अध्याय २४ श्लोक)

प्रातः काल (उषःकाल) में मल-मूत्र के त्याग से आयु बढ़ती है और आंतों का गुड़गुड़ाना, पेट का फूलना और भारीपन आदि रोग दूर होते हैं। जो प्रातःकाल शौच न जाकर देर से मल-मूत्र का त्याग करते हैं उनके पेट में मल भीतर-भीतर सड़कर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और विषैला हो जाता है। गुदा में कतरनी (कैंची) से काटने के समान पीड़ा होने लगती है। अपानवायु बिगड़ कर उसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है। जिससे मल भी ऊपर को चढ़ने लगता है और वह फिर जठराग्नि में जाकर पचने लगता है। उससे सारे शरीर का रक्त दूषित हो जाता है। शौच भी खुलकर नहीं आता। पेट में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होकर भयंकर शूल (पीड़ाएँ) होने लगती हैं। कभी कभी तो मुख से भी मल निकलने लगता है। इसी प्रकार वायु के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए तो लिखा है कि "सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।" संसार में जितने भी रोग हैं उन सब की उत्पत्ति मल के कुपित होने से होती है। जिस मल के बाहर निकालने पर ऐसी भयंकर दुर्गन्ध आती है कि सब कोई उससे दूर भागता है। फिर वह अन्दर पड़ा हुआ क्या सुगन्ध देगा ? मल-मूत्र को रोकने वाला मनुष्य कैसे सुखी और स्वस्थ रह सकता है यह विचारने की बात है। इसलिए ब्रह्मचारी को किसी कार्य में फंसकर, मोह लज्जा वा भय के कारण जाड़े में शीत के डर से अथवा आलस्य से मल मूत्रादि के वेग को नहीं रोकना चाहिए। कितना भी आवश्यक कार्य क्यों न हो उस को छोड़कर तुरन्त ही मल मूत्र का त्याग करना चाहिए। इस कार्य को सबसे आवश्यक समझें।

जो ब्रह्मचारी उपर्युक्त बातों का ध्यान न रखकर मल मूत्र के त्याग में आलस्य और प्रमाद करेगा तो वह अपने ब्रह्मचर्य को खो बैठेगा। क्योंकि मल-मूत्र की उष्णता से सारे शरीर में उष्णता और विष फैल जाता है। इन्द्रियां क्षुब्ध और चंचल हो उठती हैं। इन्द्रियों में अस्वाभाविक क्षुब्धता और उत्तेजना के कारण मनुष्य रोगी और कामी बन जाता है। जिस से वीर्य दूषित होकर अनर्थों और रोगों का मुख देखना पड़ता है। ठीक समय पर मल मूत्र के त्याग और शौच के साफ हो जाने से दिन प्रतिदिन स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता, तेज, पराक्रम, स्मृति, बुद्धि आदि सद्गुणों की वृद्धि होती है और वीर्य अत्यन्त शुद्ध और विकार रहित हो जाता है जिस से ब्रह्मचर्य में कोई बाधा नहीं होती।

पहले लिखा जा चुका है कि मल मूत्र की उष्णता से वीर्य का नाश हो जाता है। वीर्य नाश करना मानों अपने स्वास्थ्य पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
कुल्हाड़ा चलाना है। कहा भी है—

'धातुक्षयात् रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः।'

वीर्य नाश से रक्त आदि धातुएँ भी निर्बल, दूषित और नष्ट हो जाती हैं और "वीर्यं वै बलम्" वीर्य के अभाव में, जो बल का भण्डार है, जठराग्नि भी मन्द पड़कर अपना कार्य करना छोड़ देती है। क्योंकि वीर्य तथा रक्त आदि धातुओं के संचार (उष्णता से ही सारे शरीर के अवयवों में कार्य करने की शक्ति रहती है। इनके अभाव में सब कार्य बिगड़ जाता है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा (Current) के बन्द होने से सारा कारखाना बन्द हो जाता है, इसी प्रकार वीर्य के नाश से शरीर का सारा कार्य बन्द हो जाता है। पुनः जठराग्नि का मन्द पड़ना और आंतों का दुर्बल होना स्वाभाविक ही है और जब आंत और जठराग्नि अपना ठीक कार्य नहीं करती तो मलावरोध वा मलबद्धता (कब्ज) का रोग स्थिर रूप से हो जाता है और यही वीर्य नाश का मुख्य हेतु है; स्वप्नदोष, प्रमेह आदि भयंकर रोगों का जन्म-दाता है। जिनके पेट में मल पड़ा रहता है, स्वप्नदोष तो ऐसे ही लोगों के साथ मित्रता गांठता है। इसलिए मल, मूत्र, अपान-वायु आदि वेगों को रोकने से हानि ही है, लाभ कुछ नहीं।

मूत्र के वेग को रोकने से भी मूत्रेन्द्रिय और पेट में पीड़ा होने लगती है। मूत्र में जलन, शिर में पीड़ा यहां तक कि वीर्यनाश भी होने लगता है। मूत्र के वेग को रोकने से मूत्र में पहली धातु रस जिसका रंग श्वेत होता है आने लगती है। रस से जो रक्त आदि अन्य धातुएँ बनती हैं उनका बनना बन्द हो जाता है। जब शरीर को हृष्ट-पुष्ट और धारण करनेवाली धातुएँ ही नहीं बनती तो शरीर का ह्रास (नाश) अवश्यम्भावी है। इसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्रकार रात्रि में सोते समय शीत वा आलस्य के कारण जो मूत्र के वेग को रोक लेता है, उसे मूत्र की उष्णता से स्वप्नदोष वा वीर्य नाश हो जाता है।

इसी प्रकार मल को रोकने से जिन रोगों की उत्पत्ति होती है लगभग वही रोग अपान-वायु के रोकने से भी उत्पन्न होते हैं। 'न वेगान् धारयेत्-धीमान् जातान् मूत्रपुरीषयोः।' [चरक० सूत्र स्थान अ० ७ श्लोक २] मल, मूत्र, अपान-वायु [पाद] छींक, डकार; जम्भाई आदि वेगों को किसी भी अवस्था में ब्रह्मचारी वा किसी भी मनुष्य को नहीं रोकना चाहिए। रोकने के लिए तो काम, क्रोध, लोभ. मोह, शोक, भय, चिन्ता, अहंकार आदि मन के वेग ही बहुत हैं। इनके रोकनें का यत्न करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने भी चरक शास्त्र में इसी प्रकार लिखा है—

लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत् ॥२७॥
देहप्रवृत्तिर्या काचिद्वर्तते परपीडया।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत् ॥२८॥
(चरक संहिता सू० अ० ७)

लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान, अहंकार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अतिराग और परधन में इच्छा आदि वेगों को रोकना चाहिए। और जो कोई भी शारीरिक वेग दूसरों को पीड़ा देने वाले हों, उनको भी रोकना चाहिए। क्योंकि इनके रोकने में ही लाभ है। मल, मूत्र आदि शारीरिक वेगों को रोकना महा-मूर्खता तथा ब्रह्मचर्य के लिए अत्यन्त घातक है। अतः ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्रातः और सायं दोनों समय नियत समय पर मल-मूत्र का त्याग करना ब्रह्मचारी का ही नहीं,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपितु सबका परम कर्त्तव्य है। शौच न आये तब भी दोनों समय जाना चाहिए। यदि किसी समय शौच न भी आये तो बहुत चिन्ता न करनी चाहिए और बल लगाकर (किञ्छ-किञ्छ कर) मल निकालने का यत्न नहीं करना चाहिए। यह ढंग अच्छा नहीं है। इससे निर्बल धातु (वीर्य) उष्णता पाकर मूत्रेन्द्रिय के द्वारा निकल पड़ता है। जिससे आँते निर्बल हो शौच साफ होने के स्थान पर उल्टी मलबद्धता (कब्ज) और अधिक हो जाती है।

यदि शौच न आये तो

यदि शौच खुलकर नहीं आता और स्थाई मलबद्ध (कब्ज) का रोग रहता है तो जल पीकर शौच जाने से पूर्व पेट के पश्चिमोत्तान आसन, मयूर आसन आदि आसन तथा अन्य हल्के व्यायाम करें। पेट को खूब हिलायें तदनन्तर शौच जायें। मार्ग में जाते समय मन में यह दृढ़ निश्चय करें कि मुझे शीघ्र शौच आ रहा है और यदि मैं तीव्र गति से नहीं चला तो मार्ग में ही मल निकल कर वस्त्र खराब हो जायेंगे। मल त्याग के लिए बैठ जाने पर भी इसी प्रकार का ध्यान करें कि सब मल गुदाद्वार के द्वारा बाहर निकल रहा है। ऐसा करने से मलबद्ध नहीं होगा। ऐसे दृढ़ निश्चय और ध्यान का हमारे शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसे हंसी समझकर टाल न दें यथार्थ में हम शरीर के स्वामी न बनकर दास बने हुये हैं। इसलिए अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

मलद्वार की शुद्धि

शौच जाते समय पर्याप्त बड़ा जलपात्र शुद्ध जल का भरा हुआ अवश्य ही साथ ले जावें। पर्याप्त जल से भरे जल-पात्र के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिना जाना महामूर्खता है। जो लोग जल-पात्र साथ नहीं ले जाते वे इतस्ततः पड़े हुए गन्दे जल से मलद्वार को शुद्ध करते हैं जिससे बवासीर आदि अनेक रोग हो जाते हैं। कोई-कोई ऐसे पक्के बाबू जी होते हैं जो जल से धोने का कष्ट ही नहीं करते। कागज़ या कपड़े से पोंछकर फेंक देते हैं जोकि अत्यन्त हानिकारक है। शौच वा मल-त्याग करने के पश्चात् जल से गुदाद्वार को धोने की रीति सारे भारतवर्ष में प्रचलित है किन्तु बहुत थोड़े लोग हैं जो यथार्थ में मलद्वार की शुद्धि करना जानते हैं। प्रायः शौच के समय अधिक से अधिक एक सेर जल का प्रयोग करते हैं कोई-कोई तो एक पाव जल से ही कार्य चला लेते हैं। कितने आश्चर्य की बात है ! कि एक पाव पानी से पायु (गुदाद्वार) की कैसे शुद्धि हो सकती है, जब कि किसी विशेष अवस्था में एक घड़े से भी काम नहीं चलता। वैसे तो यह साधारण सा कार्य लगता है, किन्तु बहुत थोड़े व्यक्ति हैं जो मलद्वार की यथार्थ शुद्धि के ढंग वा प्रकार को जानते हैं।

इसलिए यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"बुद्धिमान् बना फिरता है, हग कर (शौच के) हाथ भी धोने नहीं आते"। जब किसी की मूर्खता सिद्ध करनी हो तो इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

पाठक ! क्षमा करें। जो अधिक पढ़े लिखे हैं वे इस विषय में अधिक मूर्ख हैं। यदि इस मूर्खता के साक्षात् दर्शन करना चाहो तो शहर के सभी परिवारों तथा कालिजों के छात्रावासों में प्रतिदिन हो सकते हैं। शहर में एक गृहस्थ का परिवार सारा का सारा एक गन्दे तामलोट (जिसे न कभी धोते हैं, न मिट्टी से माँजते हैं) से वर्षों कार्य चलाता रहता है। इसी तरह कालिजों के छात्र इस धोने-माँजने के कष्ट से बचने के लिए शीशे की

CC-0, Panihi Kanya Mana Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बोतल का प्रयोग करते हैं। किन्तु इस प्रकार की छोटी-छोटी भूलों से उन्हें और भी अधिक कष्ट सहने पड़ते हैं। प्रमाद वा अज्ञान ही इसका कारण है।

लोग यह नहीं जानते कि गुदा मल के निकलने का मार्ग है इसके रहने का स्थान नहीं। साधारण लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं कि शौच के बाद गुदा के अन्दर मल रह जाता है, जो गुदा को थोड़े से जल से केवल बाहर से धोने से दूर नहीं हो सकता और यही मल गुदा के अन्दर पड़ा रह कर सड़ता रहता है। इसी प्रकार बहुत समय तक प्रमाद वा अज्ञान से शुद्धि न होने के कारण अर्श (बवासीर) नासूर और भगन्दर जैसे भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिन में आज संसार फंसा हुआ है।
इसलिए महर्षि पतञ्जलि ने चरक में लिखा है—

मेध्यं पवित्रमायुष्यमलक्ष्मी–कलिनाशनम् ।

पादयोर्मलमार्गाणां शौचाधानमभीक्ष्णशः ।।

(चरक संहिता सूत्रस्थान । अध्याय ५ । श्लोक ९५)

पाद (पैर) मल मर्गों (नाक, कान, गुदा, उपस्थेन्द्रिय आदि) को प्रतिदिन बारम्बार मलरहित वा शुद्ध करने से, धोने से, बुद्धि, पवित्रता तथा आयु की वृद्धि होती है। दरिद्रता, पाप तथा रोगों का नाश होता है।

जब कि भारत में पाश्चात्य सभ्यता ने पग नहीं फैलाये थे उस समय तक चरक के इस श्लोक की महिमा का लोगों को भलीभांति ज्ञान था। उस समय काला मैन (मनुष्य) जमीन पर हगने वाला, मिट्टी से हाथ मांजनेवाला प्राचीन, सभ्यता का भक्त, कोट, बूट, पतलून आदि अप्राकृतिक वस्तुओं से भले ही अपरिचित था, किन्तु स्वास्थ्य और चरित्ररूपी धन का धनी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा बल वा शक्ति का भण्डार था। आज भी जो मनुष्य प्राचीन ढंग का प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, सौभाग्य से पाश्चात्य सभ्यता का भूत जिनके सिर पर सवार नहीं है, वे अब भी इस श्लोक के महत्व को भली भांति समझते और इसके अनुसार श्रद्धापूर्वक आचरण करके पूर्ण लाभ उठाते हैं। मल-मूत्र के मार्गों की शुद्धि की इतनी ही आवश्यकता है कि जितनी भोजन के पश्चात् मुख और दांतों की तथा आंख, नाक, कान आदि शरीर के अन्य अंगों की शुद्धि की आवश्यकता है। क्योंकि ये भी तो शरीर के आवश्यक अंग हैं। जिस प्रकार मुख, नासिका आदि के गन्दा रहने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मल-मूत्र के मार्गों की यथार्थ शुद्धि के अभाव में अनेक भयंकर रोगों का जन्म होता है। इसलिए महर्षि चरक की आज्ञानुसार शौच के पश्चात् गुदाद्वार की अन्दर और बाहर से भली भांति जल आदि से शुद्धि करना अनिवार्य है।

शुद्धि का प्रकार

गुदा के अन्दर वाम (उलटे) हस्त की अंगूठे के साथ वाली अंगुली प्रविष्ट करके गुदा के अन्दर अंगुली को चारों ओर घुमा कर जो मल गुदा के अन्दर भित्तियों (गुदा चक्रों) में लग रहा हो दांयें हाथ से जल डाल-डाल कर भली भाँति शुद्ध कर डालें। तत्पश्चात् मिट्टी लगाकर अनेक बार जल से धोयें। पुनः अपने स्थान पर जाकर मिट्टी लगा लगाकर दोनों हाथों को तथा पीछे जल पात्र को मिट्टी तथा जल से इतना मांजना वा धोना चाहिए कि मल-मूत्र की किंचित्मात्र भी दुर्गन्ध शेष न रहे। इस प्रकार मल द्वार की शुद्धि के अनेक लाभ हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मल द्वार की शुद्धि के लाभ

उपर्युक्त क्रिया को हठयोगी प्रतिदिन करते हैं। उनकी परिभाषा में इसका नाम "गणेश क्रिया" है। इसको प्रतिदिन करने से मलबद्धता (कब्ज) कभी नहीं होती अर्थात् मलविसर्जन की क्रिया ठीक होती रहती है। जिनको मलबद्धता (कब्ज) रहती है उनको भी शौच खुलकर आने लगता है। शरीर और मन दोनों निर्मल होकर चित्त प्रसन्न और शान्त रहता है। मस्तिष्क की ओर गन्दे परमाणु नहीं जाने पाते। इसलिए मस्तिष्क ठंडा और मन एकाग्र रहता है। आलस्य नाम को भी नहीं रहता। सदैव स्फूर्ति और उत्साह बना रहता है। गुदा द्वार की शुद्धि से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि इससे वीर्य में शीतलता आती है। क्योंकि वीर्य-वाहक नाड़ियां गुदा द्वार से ही होकर बाहर आती हैं। इसलिये ब्रह्मचर्य रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है और मूत्राशय (मसाना) तथा बवासीर, भगन्दर आदि गुदा के रोग कोसों दूर रहते हैं।

शुद्धि के विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं—

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत्।
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि॥

(मनु० अध्याय ५ श्लोक १३४)

मल-मूत्र के त्याग और शरीर के बारहों मलों की शुद्धि के लिए उतनी मृत्तिका (मिट्टी) और जल लेवे जितने से दुर्गन्धादि मिट सके।

बारह मल ये हैं—

वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविड्घ्राणकर्णविट्।
श्लेष्माश्रु दूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥

(मनु० अध्याय ५ श्लोक १३५-१३६॥)

वसा (चर्बी), वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नाक का मैल, कान का मैल, कफ, आंसू, आंख का मैल और पसीना—ये मनुष्यों के बाहर मल हैं। शुद्धि को चाहने वाला मनुष्य मूत्र की जगह एक बार, गुदा में तीन बार, बांये हाथ में दश बार तथा दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगावे।

मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि

महर्षि चरक की आज्ञानुसार सभी मल मार्गों की शुद्धि करनी आवश्यक है। शौच के समय ही मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि भी प्रतिदिन करनी चाहिये। इसमें प्रमाद न करें। जल स्वयं स्वाभाविक रूप से मैल को शुद्ध करने वाली वस्तु है। मूत्रेन्द्रिय के आन्तरिक भाग को तो मूत्र ही, जल के ही कुछ परिवर्तित रूप में प्रतिदिन आता हुआ साफ करता है और स्वयं भी बाहर आ जाता है। किन्तु मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग को त्वचा ढके रहती है। इसके नीचे एक प्रकार की सफेद वस्तु, जो मैल है, पैदा होती रहती है और त्वचा के नीचे इधर-उधर जम जाती है। यदि इसे उतार के शुद्ध न किया जाये तो यह वस्तु भीतर एकत्रित होकर खुजली पैदा करती है और इसे स्वाभाविक रूप से बालक खुजाने लगता है और यहीं से दोष उत्पन्न होता है। यह क्रिया अनेक भयंकर दोषों व सर्वनाश का कारण बनती है। इसलिए शौच के समय अथवा मूत्र त्याग के समय मूत्रेन्द्रिय के सिरे की त्वचा (चर्म) पीछे हटाकर इस गन्दे मैल को प्रतिदिन जल से सर्वथा धो डालें। इसे कभी एकत्रित न होने दें। मूत्रेन्द्रिय के धोते समय ब्रह्मचारी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कभी अधिक घर्षण न करे क्योंकि रगड़ने से इन्द्रिय में उत्तेजना उत्पन्न होकर वीर्यनाश की सम्भावना रहती है।

मूत्रेन्द्रिय-स्नान

मूत्रेन्द्रिय के सिरे के भीतरी भाग में जो छिद्र होता है जिसमें से पेशाब निकलता है, ठीक इसी छिद्र के ऊपर शीतल जल की बहुत पतली धार प्रतिदिन अनेक बार डालनी चाहिये दो-तीन मिनट तक इस धार को निरन्तर डालने से अत्यधिक लाभ होता है। मूत्रेन्द्रिय में सब शिरायें (नसें) इकट्ठी हो जाती हैं, अथवा यों समझना चाहिये कि शरीर के सब ज्ञान तन्तुओं का केन्द्र वा मूल है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ों को जल देने से सारा वृक्ष हरा-भरा रहता है और उसको शक्ति मिलती है उसी प्रकार शीतल जल की धारा से मूत्रेन्द्रिय के ठण्डा होने से सम्पूर्ण शरीर में शीतलता आ जाती है और एक विशेष शान्ति मिलती है। इसके विपरीत दुष्टविचार वा कुचेष्टा के कारण यदि मूत्रेन्द्रिय में उत्तेजना वा उष्णता आ जाती है तो सारे शरीर में उष्णता वा अग्नि उत्पन्न हो जाती है जो वीर्य नाश का कारण बनती है। इसलिये मूत्रेन्द्रिय को जब-जब मूत्र त्याग करें, शीतल जल से धो डालें। इस प्रकार दिन में अनेक बार मूत्रेन्द्रिय स्नान करने से अत्यन्त लाभ होगा।

ऋषियों ने इसीलिए मूत्रत्याग करते समय जलपात्र साथ ले जाना लिखा है। इस नियम में वीर्य रक्षा का बड़ा भारी रहस्य भरा है। इन्द्रिय स्नान के समय शीतल जल की धार डालने के पश्चात् समस्त मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोषों को भली-भांति शीतल जल से शुद्ध और शीतल कर देना चाहिए। शौच तथा मूत्रेन्द्रिय स्नान के लिये कभी (गरम) जल का कदापि भूल कर भी प्रयोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं करना चाहिए। मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि और स्नान से स्वप्नदोष, प्रमेह (शौच के समय या मूत्र त्याग के समय वीर्य का आना) आदि रोगों से पिण्ड छूट जाता है। इनके होने की सम्भावना ही नहीं होती। कितने ही स्वप्नदोष के रोगी केवल इसी क्रिया से स्वस्थ होते देखे गये हैं। पचास प्रतिशत लाभ प्रायः सभी रोगियों को हो जाता है। इस छोटी सी क्रिया से मूत्रेन्द्रिय की व्यर्थ की उत्तेजना समाप्त होकर वीर्य में स्तम्भन शक्ति और गाढापन आता है, मन की चञ्चलता मिटती है। जलती हुई कामाग्नि भी शान्त हो जाती है। कामरिपु पुंछ दबाकर भाग जाता है। किन्तु एक बात का सदैव ध्यान रक्खें कि बिना किसी कारण के मूत्रेन्द्रिय का स्पर्श कभी भूल कर भी न करें। मूत्रेन्द्रिय शुद्धि अथवा मूत्रत्याग के समय जब कभी इसको छूएँ उसी समय ओ३म् का जाप आरम्भ कर दें।

भाव पवित्र और ऊंचे रक्खें। मूत्रेन्द्रिय काली नाग के समान है ओ३म् का जाप (पवित्र विचारों सहित) नागदमन बूंटी है। अतः जब भी आवश्यकतावश मूत्रेन्द्रिय को स्पर्श करना पड़े तो उसी समय ओ३म् का जाप भी साथ-साथ आरम्भ करदें। इसे व्यर्थ में स्पर्श करना मृत्यु को बुलाना है, यह सदैव याद रखें। इसे व्यर्थ में स्पर्श वा मर्दन करना विनाश का ही कारण बनता है। इसी लिए तो महर्षि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है "उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करे"। प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द जी महाराज ने यह वाक्य लिख कर हमें कितना सावधान किया है। आज मूत्रेन्द्रिय रूपी विषैले नाग को व्यर्थ छेड़कर संसार की कितनी हानि वा विनाश हुआ है इसका विचार मात्र आते ही रोना आता है। अतः मूत्रेन्द्रिय

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
की शुद्धि वा स्नान तथा मल मूत्र त्याग के समय आवश्यकता पड़ने पर ही मूत्रेन्द्रिय को स्पर्श करें किन्तु उस समय भी शुद्ध विचार और पवित्र भावना रखें नहीं तो लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है। मूत्रेन्द्रिय स्नान वा इसकी शुद्धि ब्रह्मचारी ही नहीं किन्तु प्रत्येक ब्रह्मचर्य प्रेमी व्यक्ति को प्रतिदिन करनी चाहिए। मूत्रेन्द्रिय के बाह्य भाग को मिट्टी लगाकर जल से प्रतिदिन शुद्ध करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन करने से अनेक प्रकार के वीर्य सम्बन्धी रोगों से ब्रह्मचारी बचा रहता हैं। अतः इसको व्यर्थ साधारण समझकर टालना नहीं चाहिए किन्तु अपनी दिनचर्या का इसे अङ्ग समझ कर प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करना चाहिए।

साबुन का प्रयोग

जल और मृत्तिका शुद्धि के लिए सर्वोत्तम हैं किन्तु आज का संसार निराला है, वह अपने ही ढंग से चलता है। इसीलिए अंग्रेजी फैशन के लोग प्रायः शौच के पश्चात् हाथ शुद्ध करने के लिए साबुन का प्रयोग करते हैं। साबुन के प्रयोग से साधारण सी शुद्धि तो हो जाती है। किन्तु इससे रूक्षता खूब बढ़ती है और धन भी अधिक व्यय होता है। साबुन का प्रयोग करने वाले भली भांति जानते हैं कि साबुन के साथ धोने वा स्नान के पश्चात् हाथ आदि शरीर के अंग कितने रूक्ष हो जाते हैं और जो शुद्धि मिट्टी मलकर हाथ धोने से होती है वह साबुन से कभी नहीं हो सकती। क्योंकि मिट्टी का स्वाभाविक गुण गंध है। इसलिए जितनी दुर्गन्ध को दूर करने की शक्ति मिट्टी में है उतनी अन्य किसी पदार्थ में नहीं और जिस प्रकार बिना संकोच के हम अधिक मिट्टी का उदारता से प्रयोग कर सकते हैं, साबुन का उस प्रकार प्रयोग करने में चाहे कोई कितना ही धनाढ्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्यों न हो, संकोच ही करता है क्योंकि इसमें धन का अधिक व्यय है। दुर्भाग्य से हमारे देश में जितना साबुन का प्रयोग बढ़ता जा रहा है उतनी ही त्वचा (चर्म) रोगों की वृद्धि हो रही है। लाहौरसोर, लोकलसोर, मुगलीफोड़ा, चम्बल आदि विचित्र रोग जिनका कभी नाम भी सुनने में नहीं आता था, आज वे इस साबुन की कृपा से नगरों में ही नहीं छोटे-छोटे ग्रामों में भी पहुंच गये हैं और विशेषकर दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, अमृतसर आदि बड़े-बड़े नगरों में जहाँ झूठी जैन्टिलमैनी ने खूब पग फैला रक्खे हैं और लोगों के सिर पर फैशन का भूत बुरी तरह चढ़ा है। जहां लोग सारे दिन यों ही निष्कारण साबुन का प्रयोग करते रहते हैं वहाँ पामा (खुजली) दद्रु (दाद) चम्बल, लोकलसोर आदि चर्म रोगों का राज्य है। अंग्रेजी ढंग के साबुनों में प्रायः पशुओं की मेद (चर्बी) भी पड़ती है, जो चर्म रोग ग्रस्त पशुओं की भी होती है। और सोडा कास्टिक जिससे साबुन बनता है; यह अत्यन्त तीक्ष्ण होता है और जो त्वचा के लिए अत्यन्त हानिकारक है। यहाँ तक कि शरीर के चर्म को जला ही डालता है। इसलिए स्वास्थ्यप्रिय मनुष्य को फैशन के कारण स्नान तथा हाथ आदि के धोने में साबुन के प्रयोग की मूर्खता नहीं करनी चाहिए। इसमें हानि ही हानि है लाभ कोई नहीं। शरीर शुद्धि बिना साबुन के भी भली भांति किस प्रकार हो सकती है इसके लिए पुस्तक का स्नान सम्बन्धी भाग पढ़ें।

शौच सम्बन्धी आवश्यक बातें

मल-मूत्र के त्याग के विषय में मनु जी का आदेश—

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे।
न फालकाष्ठे न जले न चित्या न च पर्वते ॥४५॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥४६॥
(मनु० अ० ४)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मार्ग, राख, गोशाला वा गोचर भूमि में मूत्र त्याग (पेशाब) न करें। हल से जुते हुए खेत में, जल में, चिता में, ऊँचे टीलों, पुरानी (टूटी फूटी) यज्ञशाला वा मन्दिर में, बम्बी आदि कीड़ों के बिलों में कदापि मल-मूत्र त्याग न करे।

मुनिवर चाणक्य अपने कौटिलीय अर्थशास्त्र में लिखते हैं—'नाप्सु मूत्रं कुर्यात्' (सूत्र ४०६) अर्थात् जल में मूत्र न करें।

आजकल के लोग ऋषियों की इस पवित्र शिक्षा पर ध्यान नहीं देते और निर्लज्ज होकर ऊँचे टीलों और मार्गों पर ही मल मूत्र त्याग करते देखे जाते हैं। न ही इन्हें यज्ञशाला मन्दिरादि पवित्र धार्मिक स्थानों में श्रद्धा है। गोशाला वा गोचर भूमि में मल त्याग न करने के महत्व को तो ये समझ ही क्या सकते हैं। ऐसे लोगों की ही कृपा से तो गाय आदि पवित्र पशु भी मल भक्षण करने लगे हैं। कीड़े मकोड़े आदि क्षुद्र प्राणियों के बिलों वा बम्बी पर भय के कारण भले ही मल-मूत्र त्याग न करें, वैसे संकोच कोई नहीं। उपर्युक्त वर्जित स्थानों पर मल मूत्र त्याग करने से पवित्र धार्मिक स्थानों की पवित्रता नष्ट होती है। गायों का चारा, अन्न, जल आदि दूषित होकर स्वास्थ्य को बिगाड़ने का कारण बनते हैं और जलवायु दूषित होकर अन्य सभी प्राणियों को हानि पहुँचती है। बम्बी और बिल आदि पर मल-मूत्र त्याग की मूर्खता करने से सर्पादि विषैले जन्तुओं से काटे हुए मूर्खों के दर्शन मैंने किये हैं। अतः ऐसे वर्जित स्थानों पर मल-मूत्र त्याग करने से हानि के अतिरिक्त लाभ कोई नहीं होता। कितने अनपढ़ ही नहीं, पढ़े-लिखे बाबू भी निर्लज्ज हो जाते हैं। जान-बूझकर ऊँचे ऊँचे स्थानों पर, हर समय चलने वाले मार्गों के ऊपर वा अत्यन्त समीप नीचा सिर करके मल त्याग के लिए बैठ जाते हैं और 'नीचे को गर्दन झुकाई सिर से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊँची खाई' इस लोकोक्ति को पूर्ण करने का धृष्टता करते हुए किंचित् भी लज्जित नहीं होते। जब मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है तो वर्जित स्थानों पर मल मूत्र त्याग की तो साधारण सी बात है वह न जाने क्या-क्या कुकृत्य कर डालता है। मुझे भली भांति स्मरण है ऐसा ही कोई नीच मनुष्य यज्ञ वेदी पर मल त्याग करके अपना मुँह काला कर गया था। इसी प्रकार मल मूत्र त्याग के विषय में मनु जी महाराज अन्य आदेश देते हैं—

न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्।

(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ४७-४८)

जिनमें जीव रहते हों ऐसे गड्ढों में, चलते-चलते तथा खड़े-खड़े नदी आदि जलाशय के तट पर और पर्वत की चोटी पर मल मूत्र न त्यागे। वायु, अग्नि, विप्र (विद्वान् वा मेधावी पुरुष), सूर्य, जल और गौ को देखता हुआ मल मूत्र का त्याग कदापि न करे।

जिन गड्ढों में जीव रहते हैं उन में मल मूत्र त्याग करने से जहां उन प्राणियों को हानि और कष्ट होता है वहां ऐसा करने वाला स्वयं भी हानि उठा सकता है जैसा मैं पहले लिख चुका हूं।

खड़े खड़े या चलते हुए मल मूत्र त्याग करना सभ्यता और स्वास्थ्य के विरुद्ध है और इस प्रकार करने से मल मूत्र का त्याग भलीभान्ति होता भी नहीं। किन्तु ऋषियों की शिक्षा के विरुद्ध चलने का स्वभाव आजकल के अंग्रेजी पढे बाबुओं का है ही। इसी प्रकार नदी के तीर और पर्वत के शिखर पर मल मूत्र का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्याग करने से पवित्र जल और दिव्य जड़ी बूटियां दूषित होकर आरोग्य प्रदान करने के स्थान पर हानिकर सिद्ध होती हैं। उपकार के स्थान पर हानि करना मनुष्य का धर्म नहीं।

अग्नि, वायु, जल, और सूर्य को देखते हुए मल मूत्र त्याग करने से सीप आदि अनेक चरम रोगों के होने से मनुष्य कष्ट पाता है।

विप्र विद्वान् मेधावी पुरुष और गोमाता आदि जिनको मनुष्य अपना पूज्य समझता है उनकी ओर देखते हुए मल मूत्र त्याग करने से जो श्रद्धा और आदर की भावना उनके प्रति है वह नहीं रहती, इस से मनुष्य निर्लज्ज होकर और भी अनेक प्रकार के कुकृत्य करने लगता है। भय और लज्जा के कारण भी मनुष्य बहुत से पापों से बचा रहता है अतः उपर्युक्त वर्जित स्थानों पर मल मूत्र त्याग कदापि नहीं करना चाहिए। ऐसा जो करते हैं वे मनुष्य नहीं, उन्हें पशुओं का बड़ा भाई समझना चाहिए।

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना ।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥
(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ४९)

लकड़ी, मिट्टी तथा तृण (झाड़ी वृक्षादि) की आड़ में बैठकर वस्त्र से गुप्त अङ्गों को ढक कर तथा मस्तक वा सिर को बाँधकर प्रतिदिन नियम से मौन होकर मल मूत्र का त्याग करना चाहिए।

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा ॥
(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिन में उत्तर को ओर मुख करके, रात्रि में दक्षिण की ओर, और सायं प्रातः भी दिन के समान (उत्तर की ओर) मुख करके मल मूत्र का त्याग करें।

मनु जी महाराज ने किस प्रकार, किसी स्थान पर किसी वस्तु के पीछे छिप कर वा आड़ लेकर मल मूत्र का त्याग करना चाहिए यह भी स्पष्ट कर दिया है। प्रातः, सायं, दिन और रात में किस दिशा में मुख करना चाहिए यह भी स्पष्टतया लिख दिया है। इस विषय में कोई कोई यह लिखते हैं कि जिधर की वायु चलती है उधर मुख करना चाहिए।

विशेष अवस्थाओं में मल मूत्र त्याग करने के विषय में मनु जी महाराज निम्नलिखित विधान करते हैं—

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥

(मनु० अ० ४ श्लोक ५१)

भित्ति वा मेघ की छाया में, रात्रि, आंधी तथा मेघादि द्वारा हुए विशेष अन्धकार में शारीरिक क्लेश अथवा किसी प्रकार की आपत्ति आ जाने का भय हो, ऐसी अवस्थाओं में द्विज रात वा दिन के समय में दिशा का ज्ञान न होने पर चाहे जिधर को मुख करके मल-मूत्र त्यागे।

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥

(मनु० अ० ४ श्लोक ५२)

अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, द्विज, गौ और वायु के सम्मुख मूत्र त्यागने वाले पुरुष की निर्मल बुद्धि मलीन और नष्ट हो जाती है। इस विषय में पहले भी लिख चुका हूं कि मनु जी महाराज

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की इस आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने से मनुष्य को अनेक रोग हो जाते हैं। रोगी मनुष्य की बुद्धि तो बिगड़नी ही हुई, जो बुद्धि ही नहीं रही तो इससे बढ़कर और क्या हानि होगी ?

"बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्"

बुद्धि का बल- सबसे बड़ा बल है। इसे खोकर मनुष्य के पास रह ही क्या जाता है ? अतः मनु जी महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥

(मनु० अ० ४ श्लोक ५६)

विष्ठा (मल), थूक, खकार, कुल्ला वा मल मूत्र युक्त वस्तु, रक्त (खून) और विष वा विषैले पदार्थ भी जल में न डाले।

जल जसे पवित्र पदार्थ में जिस के लिए "जलं वै जीवनम्" जल प्राणिमात्र के जीवन का आधार है, यह कहा है उस में मल मूत्र आदि गन्दे पदार्थ, इसी प्रकार रक्तादि अभक्ष्य और विषैले पदार्थ डालना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? जिस जल को भगवान् ने शिवतम रस कहकर जल की श्रेष्ठता और गुणों का बखान किया है उसमें उपर्युक्त दूषित पदार्थ डालकर उसे मलीन करना किसी विचारशील व्यक्ति की बुद्धि में कैसे आ सकता है ? जल तो परम औषध और माता के समान रक्षा करनेवाला अमृत है। इसके सदुपयोग से मनुष्य किस प्रकार कितना परम लाभ उठा सकता है ? इसे स्नान के प्रकरण में देखने की कृपा करें।

दूरादावस्थान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥

(मनु० अ० ४ श्लोक १५१)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मल मूत्र का त्याग, पैर धोना वा जूठन का फेंकना आदि कार्य घर वा निवास स्थान से दूर ही करे।

जो वस्तुएं गन्दी वा दुर्गन्धयुक्त हैं उनको निवास स्थान से दूर ही फेंकने में मनुष्य का हित है। यह तो सब ही जानते हैं कि दुर्गन्ध से रोग फैलते हैं और रोगों से मनुष्य के बल, बुद्धि, आयु, सुन्दरता आदि सभी श्रेष्ठ गुणों और शक्तियों का नाश और ह्रास होता है अतः जितना भी दूर इनको फेंका जाय वा त्याग किया जाये उतना ही हितकर है। हमारे प्राचीन पुरुष इसीलिए निवास स्थान से एक दो मील दूर जाकर शौच वा मल का त्याग किया करते थे। इसलिए वे स्वास्थ्य, बल, शक्ति आदि में सब प्रकार से हमारी अपेक्षा अत्यधिक उन्नत थे। हमें भी अपने ऋषियों की उपर्युक्त आज्ञाओं का श्रद्धा से पालन करना चाहिए। मल-मूत्र के त्याग सम्बन्धी उपर्युक्त नियम ब्रह्मचारी क्या सभी स्वास्थ्य प्रेमी सज्जनों के लिए एक समान हैं। हमारे परम पावन ऋषि और महर्षियों की आज्ञा श्रेष्ठ और महान् है, उसी के अनुसार चलने में हमारा कल्याण है। हम क्षुद्र बुद्धि मनुष्यों का क्या अनुभव और क्या ज्ञान है। किसी भी विषय में देखें हमारे प्राचीन पुरुषाओं ने कितनी खोज और अनुभव किया है।

प्रिय पाठक गण ! आओ आओ, अपने प्राचीन ऋषियों की शरण में आओ, उनके ज्ञान और अनुभव से अपरिमित लाभ उठाओ, और जन्म जन्मान्तर तक गद्‌गद् होकर उनके गुण गाओ।

ओ३म् शान्ति।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

[तृतीय भाग]

दन्त रक्षा

ब्रह्मचारी ही क्या प्रत्येक मनुष्य को प्रातःकाल उठ, चक्षु, स्नान, उषःपान एवं शौच (शरीर के अधोभाग की शुद्धि) के पश्चात् उपरि भाग को शुद्ध करना चाहिए। रात्रि में सोकर जब प्रातः मनुष्य उठता है, मुख के अन्दर जमा हुआ गन्दा मल मिलता है, जिससे मुख और दांतों में से दुर्गन्ध आने लगती है। दुर्गन्ध को दूर करना और दांतों की शुद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है। वेद भगवान् की इस विषय में सबके लिए आज्ञा है कि 'अशीर्णा दन्ताः (अथर्व० १९।६०।१) अर्थात् तुम्हारे दांत निर्मल हों। इस लिए हमारे ऋषियों ने प्रतिदिन दन्तधावन (दातौन) करने का नियम बनाया है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध और प्राचीन शास्त्र चरक में लिखा है —

आपोथितार्द्रं द्वौ कालौ कषायकटुतिक्तकम्।
भक्षयेत् दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन्॥
(चरक सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ६८)

प्रतिदिन दो समय कषैले, कटु तथा तिक्त रसप्रधान वृक्ष की (जिसके आग्रभाग को चबाकर कूंची (बुरुश) के समान कर लिया हो ऐसे दन्तपवन (दातौन) से दंतमांस (मसूड़ों) को अभिघात (चोट) से बचाते हुए दन्तधावन करें। इसीप्रकार महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत्।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन च ॥
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥

(चिकित्सा स्थान अध्याय २४ श्लोक ८।९

तेजबल आदि चूर्ण के साथ दातौन से दांतों को प्रतिदिन मलें दातौन के अग्रभाग को चबाकर कूंची बनायें और एक एक दांत पर दातौन की मृदु कूंची को रगड़ना चाहिए। यहां दातौन के साथ तेजबल आदि मञ्जन का प्रयोग भी लिखा है जो दांतों के लिए अत्यन्त हितकर है। मनु जी महाराज ने भी प्रातःकाल दातौन करने का विधान किया है—

"दन्तधावनं पूर्वाह्ण एव कुर्वीत" (अ० ४ श्लोक १५२)

दन्तधावन प्रातःकाल (प्रथम प्रहर में) ही करे।

दातौन करने के लाभ

निहन्ति गन्धवैरस्यं जिह्वादन्तास्यजं मलम्।
निष्कृष्य रुचिमाधत्ते सद्यो दन्तविशोधनम् ॥

(चरक सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ६६)

प्रतिदिन दन्तशोधन (दातौन) करने से जिह्वा, दांत और मुख के अन्दर का मैल निकल जाता है दुर्गन्ध तथा विरसता (मुख का खराब स्वाद होना) नष्ट होते हैं और रुचि बढ़ती है। उपर्युक्त गुण दातौन से तत्काल ही प्राप्त हो जाते हैं।

सुश्रुत में दातौन के गुण इस प्रकार दर्शाये हैं—

तद्दौर्गन्ध्योपवेहौ तु श्लेष्माणं चापकर्षति।
वैशद्यमग्न्यभिरुचिं सौमनस्यं करोति च ॥

(चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ९।१०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

दातौन मुख की दुर्गन्ध और दूषित कफ को बाहर निकला देती है। मल आदि की विशदता (चिकनाई) को दूर करती तथा अन्न में रुचि और मन में प्रसन्नता उत्पन्न करती है।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मुख और दांतों की शुद्धि के विज्ञान पर प्राचीन ऋषियों ने बड़ी भारी खोज की है और प्रतिदिन दातौन करने पर बल दिया है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि मुख शरीर का वह अवयव है जिसके द्वारा हमारे पेट में जो भोजन पहुँचता है और इसमें दांत आदि अवयव भी वे ही रखे गये हैं जो भोजन को उदर तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। दाँत भोजन को चबाकर पचाने योग्य बनाते हैं। दांतों को भोजन चबाते समय जीभ भोजन को उलटने पलटने में सहायता देती है और इसका स्वाद भी बताती है। बोलना, शब्द करना आदि भी मुख का कार्य है। जिस प्रकार शरीर में मुख एक आवश्यक अंग है उसी प्रकार मुख में दांत भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। दांतों के द्वारा आयु का ज्ञान होता है। इन से स्वास्थ्य की अवस्था भी जानी जा सकती है। जब तक दात हैं तब तक ही भोजन का स्वाद आता है पीछे तो पेट ही भरना होता है। दांतों से ही मुख की सुन्दरता है। दांतों के होने से मुख (चेहरा) भरा हुआ प्रतीत होता है। दांतों के अभाव में मुख पिचक जाता है और गाल अन्दर को धंस जाते हैं। मनुष्य की आकृति बिगड़ कर कुरूप हो जाती है। शब्दों का उच्चारण शुद्ध और स्पष्ट नहीं होता। दांतों के नाम भी पृथक् पृथक् हैं जैसे दाढें, कीलें और दांत। हमारे दाँत मुख के जिस भाग में गड़े हुए होते हैं उसे मसूड़ा कहते हैं। दांत दो बार निकलते हैं, एक तो बाल्यकाल के दूध के दांत जो आठ दस वर्ष की आयु में ही गिर जाते हैं पुनः नये अन्न के दांत उत्पन्न होते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, जो सावधानी रखने पर अन्त तक कार्य देते हैं। जो व्यक्ति सौ वर्ष से अधिक आयु भोगते हैं उनके तीसरी बार भी दाँत उगते देखे गये हैं किन्तु यह दांत निर्बल और बहुत छोटे होते हैं।

दांतों और स्वास्थ्य का बड़ा भारी सम्बन्ध है। दांतों के स्वस्थ रहने से शरीर भी स्वस्थ रहता है और दांतों के बिगड़ने से स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है। दांतों का आरोग्य आयु और दृढ़ता उनकी शुद्धि पर निर्भर है। कुछ लोग तो इनको शुद्ध करने का कष्ट भी नहीं करते। जो थोड़े बहुत कुछ करते भी हैं उनमें से अधिकांश को दांतों को शुद्ध करने का यथार्थ ज्ञान ही नहीं होता। कुछ तो अंगुली से घिसकर ही शुद्धि समझ बैठते हैं। कुछ लोग कोयला, ईंट का खोरा मिट्टी, रेत, राख को घिसकर ही इनसे दातौन करते हैं। कोई कोई तो तम्बाकू चिलम का गुल आदि निकृष्ट पदार्थों का प्रयोग करके अपने दांतों का सर्वनाश कर डालते हैं। अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबू तो टूथपाउडर और बुरुश से दांतों को माँजते हैं और दांतों को मांज मांज कर खराब कर डालते हैं। इसी प्रकार कितने ही भोले लोग सुपारी की राख बदामों के छिलके की राख और बाजारी मंजनों से अपने दांतों की जड़ काट लेते हैं और लाभ के स्थान पर हानि ही उठाते हैं। बहुत थोड़े ही ऐसे विचारशील व्यक्ति हैं जो अपने प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र की आज्ञा पर ऋषियों के आदेशानुसार विधिपूर्वक वृक्ष शाखा की अच्छी मृदु (कोमल) कूंची बनाकर प्रतिदिन दातौन करते हैं। कहां तक अपने शास्त्रों और ऋषियों के गुण गाये उन्होंने प्रत्येक जीवनोपयोगी विषय को कितना खोलकर स्पष्ट कर दिया है मानो गागर में सागर भर दिया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दातौन का परिमाण

दातौन कितनी मोटी तथा लम्बा होनी चाहिये। इस विषय में महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम्।
कनिष्ठिका परीणाहमृज्वग्रन्थितमव्रणम्।
अयुग्मग्रन्थि यच्चापि मृद्वग्रं शस्तभूमिजम्।

(चिकित्सास्थान २४ अध्याय ४-५ श्लोक)

अर्थात् दातौन १२ अंगुल लम्बी और कनिष्ठिका (सबसे छोटी अंगुली) के समान मोटी और सरल (सीधी) होनी चाहिए। वह ग्रन्थित (गुथी हुई) गाँठगठीली और टेढ़ी मेढ़ी न हो। उसमें कोई व्रण (छिद्र) न हो अर्थात् किसी प्रकार का कीड़ा आदि न लगा हो और विकाररहित हो। जहां दो शाखायें हों ऐसी गांठ वाली न होनी चाहिये। दातौन का अगला भाग मृदु होना चाहिए (जिसकी अच्छी कूंची बन सके) और जिस वृक्ष की दातौन हो वह श्रेष्ठ शुद्ध भूमि में उत्पन्न हुआ होना चाहिये। इच्छा हुई, जिस किसी वृक्ष की दातौन तोड़ी और करने लगे। ऐसा करने से किसी विषवृक्ष वा हानिकर वृक्ष की भूल से दातौन की जा सकती है।

इसलिए दातौन का एक स्थान पर "विज्ञातवृक्षम्" ऐसा विशेषण दिया है अर्थात् जिस वृक्ष की दातौन अपनी प्रकृति के अनुकूल और लाभदायक हो, उसकी दातौन करनी चाहिये। अज्ञात वृक्ष की दातौन कभी न करें। आयुर्वेद के ग्रन्थों में अनेक वृक्षों की दातौन का विधान है। चरक में लिखा है—

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभासनाः।
शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवंविधा द्रुमाः।

(सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ७०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् करञ्ज, कनेर, आक, मालती, अर्जुन तथा असन (विजयसार) आदि वृक्ष तथा इनके समान गुण वाले अन्य वृक्षों की भी दातौन करनी चाहिए। इसी प्रकार महर्षि धन्वन्तरि भी सुश्रुत में लिखते हैं—

निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा।
मधुको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥
(चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ६)

कड़वे वृक्षों में नीम, कषैले वृक्षों में खैर, मधुरों में महुआ और कटु (चर्परे रसवाले) वृक्षों में करञ्ज की दातौन श्रेष्ठ होती है। एक अन्य स्थान पर लिखा है—

अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम्।
प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् ॥
भक्षयेकद्दन्तधावनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥॥

आक, बड़, खैर, करञ्ज और अर्जुन आदि उसी प्रकार कषाय, कटु और तिक्त रसवाले अन्य वृक्षों की दातौन ले और उसके अग्रभाग को चबाकर ऐसी मृदु कूंची बनाले कि उससे दांतों को घिसते समय मसूड़ों को रगड़ न पहुंचे। इसी प्रकार कई ग्रन्थों में इरिमेद, अपामार्ग, कदम्ब, आम्र, वेणुपृष्ठ (बांस), बिल्व और उदुम्बर आदि वृक्षों की दातौन करने का भी विधान है।

एक स्मृति में तो यहां तक लिख दिया है—

"सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः"

अर्थात् सब कांटेदार वृक्षों और दूधवाले वृक्षों का प्रयोग यश और पुण्य प्रदान करता है अर्थात् इनकी दातौन भी लाभदायक है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दातौन किस वृक्ष की हो ?

हमारे सम्मुख यह समस्या है कि इतने वृक्षों में से किन-किन वृक्षों की दातौन करें ? प्रभु ने तो सभी वृक्ष हमारे लाभ के लिए बनाये हैं। किन्तु इनसे लाभ वा हानि उठाना हमारी बुद्धि अथवा इनके उचित अनुचित प्रयोग पर निर्भर है। दातौन सदैव अपनी प्रकृति के अनुकूल किसी योग्य वैद्य से सम्मति लेकर करनी चाहिये इन वृक्षों में से जिस वृक्ष की दातौन करने की वैद्य आपको सम्मति दे, वही करें। ऐसे ही बिना विचारे इनमें से आंख मीच कर दातौन करना आरम्भ न कर दें जिससे लाभ के स्थान पर हानि हो जाये। पाठकों के लाभ की दृष्टि से इस विषय को और स्पष्ट किया जाता है। चार प्रकार के रसवाले वृक्षों की दातौन करने का विधान सभी ने किया है। जैसे सुश्रुत में "कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः" इत्यादि लिखा है। ये चार प्रकार के रसवाले वृक्ष हैं इनमें से किसी भी एक रसवाले वृक्ष की दातौन प्रातः उठकर करनी चाहिये। इनमें जो जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें हम पहले लिख चुके हैं। जैसे कड़ुवे वृक्षों में नीम की दातौन सर्वश्रेष्ठ होती है। नीम एक ऐसा प्रसिद्ध वृक्ष है जिससे प्रायः साधारण लोग भी परिचित हैं। इसके विषय में विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं।

१—नीम की दातौन

निघण्टु में नीम के विषय में लिखा है:- नीम कड़वा, शीतल, सूजन और वायु का शमन करता है। नेत्रों के लिये हितकारी, कृमि पित्त और विषनाशक है। अत्यन्त रक्तशोधक है। इसी प्रकार के अनेक गुण और भी लिखे हैं। इसी लिए नीम की दातौन भी मसूड़ों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
वा दां के सब रोगों के लिये लाभदायक है। कृमियों को दूर करने-वाली है। यूनानी इलाज की पुस्तक (इलाजुलगुरबा) में लिखा है—"जो मनुष्य नीम की दातौन करता है, उसे कोई रोग नहीं होता और न उसके दांतों में पीड़ा होती है"। रक्त के सभी दोषों को दूर करके सर्वथा शुद्ध कर देती है। ज्वर के रोगियों के लिये हितकारक है। भोजन में रुचि उत्पन्न करती है। व्रण (फोड़े फुन्सियों) से सुरक्षित रखती है। गर्मी से बचाती है और कुपित कफ का शमन करती है। वमन आने को रोकती है। प्रमेह आदि वीर्य के रोगों के लिये लाभप्रद है। नेत्रज्योति को बढ़ाती और रक्षा करती है। रक्त दोष के रोगियों के लिये प्रतिदिन नीम की दातौन का प्रयोग बहुत अच्छा है और सामान्य लोगों के लिये वसन्त ऋतु में अर्थात् फाल्गुन वा चैत्र के दिनों में नीम की दातौन बहुत अच्छी रहती है। इससे रक्त सम्बन्धी विकार नहीं होते।

महानीम (बकायन) की दातौन के भी लगभग वे ही लाभ होते हैं जो नीम की दातौन के वर्णित किये हैं।

२—खदिर की दातौन

कषैले वृक्षों में खदिर (खैर) की दातौन श्रेष्ठ मानी है। खदिर का संस्कृत में एक नाम दन्तधावन भी है। भावप्रकाश निघण्टु में खदिर शीतल, दांतों को हितकारी, कड़ुवा, कषैला और खुजली, खांसी, अरुचि, मेद (चर्बी), कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण श्वेत कुष्ठ, सूजन आम, पित्त, रक्तविकार, पांडु रोग, कफ तथा कोढ़ को नष्ट करता है। इसलिये जिसको कोढ़ वा मेद (मुटापा) रोग हो और इसी प्रकार रक्तदोष के रोगी और चर्मरोगियों को खदिर वृक्ष की दातौन करनी चाहिये। खदिर की दातौन मुख के छालों और मसूड़ों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को पीप को दूर करती है। कफ प्रकृतिवाले मोटे (फूले हुये) मनुष्य के लिए भी खैर की दातौन लाभदायक है। किन्तु इसका वृक्ष सब स्थानों पर नहीं होता इसलिये सर्व साधारण इससे लाभ नहीं उठा सकते।

३—बबूल की दातौन

कषाय रसवाले वृक्षों में बबूल (कीकर) का वृक्ष भारतवर्ष के सभी भागों में पाया जाता है। इसकी दातौन प्रायः सभी लोग करते हैं। बबूर भी इसी का नाम है। इसके गुणों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह एक ऐसा वृक्ष है कि जिसकी दातौन बिना भेदभाव के प्रत्येक मनुष्य कर सकता है क्योंकि यह सभी के लिए हितकारक है। भावप्रकाश निघण्टु में लिखा है—

"बब्बूलः कफनुद् ग्राही कुष्ठकृमिविषापहः"।

अर्थात् बबूल (कीकर) ग्राही और कफ, कोढ़, कृमि तथा विषनाशक है। निघण्टुरत्नाकर में लिखा है—

बबूल कड़वा, कषैला, मीठा, चिकना, ठण्डा, तीक्ष्ण, ग्राही, आमातिसार और रक्तातिसार को बन्द करने, कफ, कास, उष्णता, दाह, वायु और प्रमेह को दूर करनेवाला है। अर्श के लिए भी हितकर है। बबूल सर्वत्र प्राप्य है और सभी प्रकृतिवालों के अनुकूल पड़ता है। दातौन में जो गुण होने चाहिएं वे सभी इस में हैं। इसलिए इसकी दातौन का प्रचार भारतवर्ष में प्रचीनकाल से चला आता है। आज भी भारत में शिक्षित वा अशिक्षित और सभी मतों के अनुयायी इसकी दातौन का प्रयोग करते हैं। यथार्थ में कीकर की दातौन में सारे ही गुण कूट-कूट कर भरे हैं। दांतों के लिए हितकारी, तिक्त, कषाय, मधुर और कटुक प्रायः चारों ही रस इसमें पाये जाते हैं। कीकर की दातौन जहां दांतों को अत्यन्त शुद्ध करती है वहां साथ ही इसका प्रयोग पाचनशक्ति को बढ़ाता है। रक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को शुद्ध करता है। मुख के अन्दर छाले नहीं पड़ते। कफ और कास को दूर करता है। प्रमेह को नष्ट करता है। मस्तिष्क वा नेत्रों को ठण्डक पहुंचाता है। मसूड़े और दांतों को कृमिरोगों से सुरक्षित रखता है। हमारे विचार में प्रत्येक मनुष्य को सदैव बबूल की ही दातौन करनी चाहिये।

४—महुवे की दातौन

मीठे वृक्षों में महुवे की दातौन श्रेष्ठ माना है। यह मुख को शुद्ध करती है और मुख के छाले, मसूड़ों की उष्णता, और सूजन को दूर करती है।

५—करञ्ज की दातौन

चर्परे (कटु) रस के वृक्षों में करञ्ज की दातौन श्रेष्ठ होती है। यह अर्श, रक्तदोष और कफ को नष्ट करती है। वर्षा ऋतु के पश्चात् जब विषमज्वर (मलेरिया) फैलता है, उन दिनों में करञ्ज की दातौन करने से मनुष्य विषमज्वर से बचा रहता है।

६—कचनार की दातौन

कचनार की दातौन कफ के रोग और कण्ठरोगियों के लिये विशेषकर कण्ठमाला के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

७—अर्जुन की दातौन

अर्जुन की दातौन हृदय रोगियों के लिये अत्यन्त लाभदायक है। यह मसूड़ों को शुद्ध करती और दांतों को सुदृढ़ बनाती है।

८—तेजबल की दातौन

यह एक प्रसिद्ध पर्वतीय वृक्ष है। इसकी दातौन बसन्त ऋतु में करनी चाहिये। इसका प्रयोग करने से कफ के रोग नहीं सताते। इसकी दातौन कास और श्वास के रोगियों को बड़ी लाभदायक है। यह मुख की दुर्गन्ध को दूर करती, पाचनशक्ति को बढ़ाती, अर्श और कण्ठ रोगनाशक है। और भी अनेक लाभ हैं किन्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सब स्थानों पर न मिलने से सब मनुष्य लाभ नहीं उठा सकते।

९—अर्क की दातौन

अर्क (आक) की दातौन बिना किसी वैद्य की सम्मति के स्वयं कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि अर्क विषैला होता है। इसकी दातौन बहुत वृद्ध, नशों में फंसे हुये मनुष्य तथा श्वास, कास आदि कफ के रोगियों के लिये लाभदायक है।

१०—पीपल की दातौन

पीपल का वृक्ष भारत के सभी भागों में पाया जाता है। यह मीठा, कषैला, शीतल, रूक्ष, भारी, रक्तदोष, जलन, उष्णता, कफ और फोड़े फुन्सियों को दूर करने वाला है। रंग को निखारता है। स्त्रीयोनि को शुद्ध करता है। शरीर का सूखना, राजयक्ष्मा (तपेदिक) और पित्तज्वरों के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

तृतीयक (एक दिन छोड़कर आने वाले) ज्वर में पीपल की दातौन खूब लाभ करती है। जिस दिन तृतीयक ज्वर आने का दिन हो, रोगी एक गज भर लम्बी दातौन लेकर निरन्तर चबाता रहे। ज्वर रुक जाता है। इसकी दातौन से दांत वा मसूड़े सुदृढ़ होते हैं। पुराने ज्वर और राजयक्ष्मा के रोगियों को पीपल की दातौन करनी चाहिये। पीपल की दातौन से मन शान्त और आयु की वृद्धि होती है, दांतों और दाढ़ों की पीड़ा सर्वथा दूर हो जाती है।

लाक्षादि तैल आयुर्वेद का प्रसिद्ध योग है जिसका शरीर पर मर्दन करने से तपेदिक के ज्वर की जलन रूक्षता और शरीर का सूखना, फुफ्फुस (फेफड़ों) की पीड़ा दूर करने में एक ही औषध है। इस तेल का मुख्य भाग पीपल वृक्ष की लाख ही है।

इसी प्रकार जो दांतों की पीड़ा रोगी को सोने भी न देती हो और किसी औषध से भी न जाती हो, वह लाक्षादि तैल के कुछ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
दिन कुल्ला करने से निश्चय से दूर हो जाती है। यह अनेक वैद्यों का अनुभव है।

११—वट वृक्ष की दातौन

वट (बड़) वृक्ष की दातौन के वही लाभ हैं जो पीपल की दातौन के हैं। किन्तु इसकी दातौन प्रमेह रोग के रोगियों के लिये अमृत के समान है। यदि प्रमेह के रोगी निरन्तर श्रद्धापूर्वक दीर्घ काल तक वट वृक्ष की दातौन करें तो उनको अत्यन्त लाभ होगा।

१२—मौलसरी की दातौन

मौलसरी को संस्कृत में वज्रदन्ती कहते हैं। वज्र संस्कृत में हीरे का नाम है। हीरे की सुदृढ़ता और कांति संसार में प्रसिद्ध है। मौलसरी की दातौन दांतों को हीरे के समान कान्तिवाला और सुदृढ़ बना देती है इसलिये इसका नाम वज्रदन्ती है। संस्कृत भाषा में यही विशेष गुण है कि नाम के अन्दर ही गुण निहित रहते हैं। इस प्रकार वज्रदन्ती भी "यथा नाम तथा गुण" वाली लोकोक्ति को पूरा करनेवाला वृक्ष है। दांतों का सम्भव है कोई ही रोग ऐसा हो जो मौलसरी की दातौन से नष्ट न हो सके। इसलिये सबसे अधिक लाभदायक दातौन मौलसरी की ही होती है किन्तु अत्यन्त दुःख की बात है कि इससे वृक्ष सर्वत्र नहीं मिलते। ऐसी अवस्था में बबूल की ही दातौन अथवा नीम आदि अन्य वृक्षों की दातौन करें। अथवा जो जहां अधिकता से मिलता हो और जिसकी चबाने से अच्छी कूंची बन जाये और वह स्वास्थ्य के लिये भी हानिप्रद न हो, ऐसे किसी वृक्ष की दातौन की जा सकती है।

दातौन करने की विधि

यह बात ध्यान रखने की है कि दातौन विधिपूर्वक न करने से चाहे दातौन मौलसरी आदि कितने ही अच्छे वृक्ष की हो यथार्थ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
लाभ नहीं होता। जितनी लम्बी और मोटी दातौन हमने लिखी है, उस प्रकार की दातौन लेकर दोनों ओर को दाढ़ों से शनैः शनैः कुचलकर कोमल कूंची बनालें। दातौन छिलके सहित करें उसका छिलका कभी न उतारें। कोई कोई मनुष्य पत्थर आदि से कूटकर कूंची बनाते हैं यह उचित नहीं। दातों से चबाकर कूंची बनाने से मुख तथा दांतों का व्यायाम होता है। दांतों की जड़ें, सुदृढ़ होकर ये वृद्ध अवस्था तक काम देते हैं। कूंची को शुद्ध करके समस्त दाढ़ और दांतों को अन्दर बाहर से धीरे धीरे भलीभांति प्रत्येक दांत को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे रगड़ रगड़ कर शुद्ध करें। इस प्रकार दांतों को खड़े और ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की ओर घिसने से शीघ्र शुद्ध होते हैं। "दन्तान् पूर्वमधो घर्षयेत्" से ज्ञात होता है कि पार्श्वों में दातौन नहीं फेरनी चाहिये। अर्थात् दक्षिण से वाम और वाम से दक्षिण को दातौन न करें। बीच बीच में दातौन को शुद्ध जल से धोते भी जायें। आदि से अन्त तक बिना धोये मैल की दातौन करने से हानि हो सकती है। यदि मुख में कोई रोगी दांत हो तो उसके मैल से अन्य दांत भी रोगी हो जाते हैं। इसलिये दातौन धोने के लिये जल सदैव साथ लेकर बैठें। बिना जल के दातौन कभी न करें।

मसूड़ों पर भी दातौन को रगड़ना चाहिए। किन्तु इस प्रकार रगड़े कि दातौन की रगड़ से मसूड़े फूट या छिल न जायें। दातौन करते समय जो मुख से राल थूक आदि मल निकले उसे नीचे गिराते जायें। जिससे वायु आदि का दूषित मल सब निकल जाये। दातौन करने का उद्देश्य मुख और दांतों की भलीभांति शुद्धि करना है। दातौन करते समय दातौन करने में ही ध्यान होना चाहिये। लोग दातौन करने में घण्टों लगा देते हैं। मुंह में दातौन डाली और इधर उधर घूमते रहे। साथ ही साथ गप्पें भी मारते रहे। इतस्ततः थूक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थूक कर स्थानों को गन्दा करने और रोग फैलाने का कारण बनते हैं। राल वा थूक एक अमूल्य वस्तु है,दातौन मुंह में डालकर यों ही थूकते रहना कितनी मूर्खता का कार्य है। यह थूक पेट में जाकर भोजन में मिलकर उसे कितना शीघ्र पचाने के योग्य बनाता है, यदि वे इस महत्वपूर्ण बात को जानते हों तो ऐसी भूल न करें। यदि विधिपूर्वक दस मिनट ध्यान देकर दातौन करलें तो पर्याप्त है क्योंकि भोजन के पीछे जल से अच्छी प्रकार कुल्ली करके दांतों को साफ करलें तो थोड़ी देर दातौन करने से कार्य चल जाता है। क्योंकि हमारे भोजन का जो थोड़ा बहुत अंश दांतों में उलझा हुआ रह जाता है, वही दांतों पर या उनकी सन्धियों में इक्कठा हो जाता है। कुल्ले और दातौन इसी मल को दूर करने के लिये किया जाता है। यदि यह कुल्ले और दातौन से शुद्ध न किया जाये तो दांतों की जड़ों और सन्धियों में पड़ा हुआ सड़ने लगता है। उनको मैला और रोगी कर देता है। ऐसे ही मनुष्य के मुख में से दुर्गन्ध आया करती है। मल और दुर्गन्ध के रहने के लिये दांतों की जड़ व सन्धियों के अतिरिक्त मुख में कोई और स्थान नहीं है। यह दुर्गन्ध स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचाती है। जिसके मुख से दुर्गन्ध आती हो समझलो कि इस के दांत ठीक नहीं हैं। जिनके दांत शुद्ध नहीं होते उनके दाँतों में से दूषित तत्व और दुर्गन्ध के कण भोजन करते समय थूक में मिलकर पेट में पहुँचेंगे और जो भोजन पचने के लिये पेट में पहुँच चुका है उसे भी दूषित कर डालेंगे। क्योंकि हमारे मुख के अन्दर गालों में थूक (लाला) उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियां हैं। उनसे सदैव थूक (रस) निकलता रहता है, जो मुख को तर रखता है। यह थूक ग्रन्थियों में से निकलकर दांतों में से होता हुआ भोजन के साथ पेट में जाता है और पाचनक्रिया में सहायक होता है। दांतों के शुद्ध न

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने से थूक के साथ दूषित मल जो एक प्रकार का विष है, पेट में पहुँचकर भोजन को दूषित वा विषाक्त कर डालता है, जिससे शरीर की रस, रक्त आदि सभी धातुयें दूषित होकर मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और "शरीरं व्याधिमन्दिरम्" शरीर रोगों का घर बन जाता है। ऋषियों के देश इस भारत की कितनी दुर्दशा है कि सौ में से एक व्यक्ति भी अपने दांतों की शुद्धि की ओर ठीक ध्यान नहीं देता। इसलिए जिधर भी देखो पीले पीले गन्दे मैले दांत वालों को देखकर जी घबराता है। ग्लानि व घृणा उत्पन्न होती है। किसी किसी के मुख में से तो असह्य दुर्गन्ध आती है।

दक्षिण भारत में मैंने स्वयं देखा है कि प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक तम्बाकू डाल-डाल कर बकरी के समान पान चबाते रहते हैं। वे भले मानुष एक साथ पांच पाँच सात सात पानों के बण्डल बलपूर्वक मुख में ठोंसते हैं और ऊपर से सिग्रेट बीड़ी की भी भरमार करते हैं उनके दांत इतने काले और मलीन होते हैं कि जिनको देखकर मनुष्य को वमन आजाये। उनके मुख की दुर्गन्ध का कहना ही क्या। उसका वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है। भला ऐसे लोगों का स्वास्थ्य क्या कभी स्वप्न में भी ठीक रह सकता है? आश्चर्य की बात तो यह है कि दक्षिण भारत ही क्या, मध्य भारत, मालवा और बङ्गाल की भी ऐसी ही दुर्दशा है। वहां पर कोई बिरला ही मनुष्य कभी भूलकर ही दातौन करता होगा। इसलिये इन प्रान्तों का स्वास्थ्य अन्य प्रान्तों की अपेक्षा गिरा हुआ है। मुनिवर चाणक्य की लोकोक्ति के अनुसार—

" - दन्तमलोपधारिणं···विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः।"
(चाणक्यनीति अ० १५ श्लोक ४)

जिसके दांतों का मैल है अर्थात् जिसके दांत शुद्ध नहीं उसको

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी प्रकार एक सज्जन मेरे मिलनेवाले थे। चिकित्सार्थ श्री वैद्य कर्मवीर जी के पास 'नरेला' आये। न जाने कितने वैद्यों और डाक्टरों के पास घूमघाम कर पर्याप्त धन खो चुके थे। उनकी पाचन-शक्ति सर्वथा बिगड़ चुकी थी। भूख लगती ही न थी। यकृत्(जिगर) के दूषित होने से रक्त आदि धातुयें भी न बनती थीं। प्रत्येक समय उदर और सिर में पीड़ा रहती थी। कास (खांसी) और हल्का-सा ज्वर भी हर समय बना रहता था। इसी प्रकार अनेक रोगों ने तथा दुर्बलता ने डेरा जमा रखा था। जीवन से निराश और अत्यन्त दुःखी थे। किसी भी औषध से लाभ न हुआ। बात यथार्थ में यह थी कि उनके दांत सर्वथा दूषित और रोगी थे। इस ओर किसी वैद्य का भी ध्यान नहीं गया। जब उनके दांतों की चिकित्सा की गई तब दांतों के रोगों के साथ ही सारे रोग, नौ-दो-ग्यारह हो गये और वह सज्जन सर्वथा स्वस्थ हो गया।

जादू की लकड़ी

प्रत्येक व्यक्ति को उपरोक्त उदाहरणों से शिक्षा लेनी चाहिये और प्रतिदिन नियम से दातौन करते हुए अपने दांतों को शुद्ध, पवित्र, स्वस्थ और सुदृढ़ बनाना चाहिए, क्योंकि दांतों का आरोग्य और सुदृढ़ता शुद्धि पर निर्भर है और शुद्धि करने के लिए दातौन ही जादू की लकड़ी है। इसलिए स्वस्थ और ब्रह्मचर्य प्रेमी व्यक्ति को दातौन करना अपनी दिनचर्या का आवश्यक अंग समझना चाहिये। क्योंकि अस्वस्थ मनुष्य ब्रह्मचर्यरक्षा में कभी सफल नहीं हो सकते।

दातौन और स्वास्थ्य का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है यह भली-भांति सिद्ध कर चुके हैं। हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि ब्रह्मचारी ही क्या सभी मनुष्यों का प्रतिदिन दातौन द्वारा दांतों की शुद्धि करना एक परमावश्यक कर्तव्य है। दांतों को स्वस्थ, शुद्ध और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित बातों का प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए।

आवश्यक बातें

(१) भोजन सदैव ताजा और ठण्डा करके खाओ। उष्ण (गर्म) भोजन के चबाने से दांतों की जड़ें निर्बल हो जाती हैं।

(२) इसी प्रकार बर्फ मिला हुआ ठण्डा पानी दातों की जड़ों को निर्बल करता है।

(३) गर्म वस्तु खा-पीकर ऊपर से ठण्डा वा बर्फ का पानी पीना समस्त दांतों के रोगों की उत्पत्ति का कारण है।

(४) सदैव कोमल, मीठे और चर्परे खाने वाले के दांतों में भी अनेक रोग हो जाते हैं। भुने हुए जौ, मक्का आदि चबैना खाते रहने से दांतों की शक्ति बनी रहती है, क्योंकि इससे दांतों का व्यायाम होता है।

(५) भोजन सदैव चबा-चबाकर खाना चाहिये। इससे भोजन भी शीघ्र पचता है और दांतों का व्यायाम होने से दांत स्वस्थ और सुदृढ़ रहते हैं। परमात्मा ने दांत इसी प्रयोजन के लिए तो दिये हैं। जो दांतों से काम नहीं लेते उनके दांत और आंख दोनों ही खराब हो जाते हैं और स्वास्थ्य बिगड़ने का मुख्य कारण यही है।

(६) जिनके दाँत लम्बे होते हैं, प्राय: उनके दांतों पर तथा दांतों की जड़ों में एक प्रकार का मैल (सफेद पपड़ी सी) जम जाया करती है। दो-चार मास में स्वयं दर्पण में देखकर चाकू की नोक से वा सूई आदि से धीरे-धीरे कुरेद कर मैल निकाल डालना चाहिए। अथवा यह कार्य किसी वैद्य, डाक्टर वा अपने योग्य मित्र द्वारा भी करवा सकते हैं।

(७) भोजन के उपरान्त जल से बार-बार कुल्ली करके मुख

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और दाँतों को शुद्ध कर देना चाहिए जिससे भोजन का अंश दांतों की जड़ों और सन्धियों में पड़ा रहकर दांतों के खराब होने का कारण न बने।

(८) भोजन के पीछे तत्काल ही, चढ़े हुए ज्वर में शीतपित्त (छपाकी) होने पर दातौन नहीं करनी चाहिए।

(९) खटाई, मिठाई एक साथ मिलाकर खाने अथवा अधिक खाने से भी दांत खराब हो जाते हैं।

(१०) दांतों को रोगी (दूषित) करने में मीठा, मीठे विष का कार्य करता है। मीठा अधिक खाने वालों के दांत सदैव दूषित और रोगी रहते हैं और शीघ्र ही टूट जाते हैं। ऐसे ही लोगों के दांतों में असह्य पीड़ा रहा करती है। जो उनको क्या उनके पड़ोसियों को भी सुख से नहीं सोने देती।

(११) चाय स्वास्थ्य तथा दांतों के लिए अत्यन्त हानिकारक है। चाय पीनेवाले इसे खूब गर्म-गर्म पीते हैं। कुछ लोग तो इतनी गर्म पीते हैं, यदि उसको कोई साधारण मनुष्य पीये तो उसका मुख जिह्वा, कलेजा आदि सब जल जायें। इसलिए प्रथम तो चाय ही हानिकारक और दूसरे इसे गर्म-गर्म पीना "करेला और नीम चढ़ा" वाली बात इससे सिद्ध होती है। यह दांतों का सर्वनाश कर डालती है।

चाय और मांस के सेवन के कारण प्रायः सभी योरुपियन लोगों से पायोरिया बड़ा प्रेम करता है। इसलिए उन्हें युवावस्था में ही दांतों से हाथ धोना पड़ता है और अप्राकृतिक (नकली) दांत ही उनके मुख की शोभा बढ़ाते हैं। चाय और मांस के भक्त भारतीयों की भी ऐसी ही दुर्दशा होती है।

(१२) इसी प्रकार तम्बाकू, बीड़ी, सिग्रेट आदि का सेवन भी दांतों के लिए अत्यन्त घातक है। तम्बाकू का खाना और पीना दोनों

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
से ही दांतों को हानि होती है। ब्रह्मचारी क्या सभी विचारशील मनुष्यों को इन विषैले पदार्थों से सदैव दूर रहना चाहिए।

आठ-दस दिन में एक बार दातौन की कूंची को किसी उत्तम मंजन में भर-भर कर दांतों को साफ करना चाहिए। दन्तमञ्जन न मिले तो हल्दी और नमक दोनों समभाग ले बारीक पीसकर इससे दांतों को शुद्ध करना चाहिए। तिल अथवा सरसों के तैल से दातौन को भरकर दांतों पर रगड़ने से दांत तथा उसकी जड़ शुद्ध और दृढ़ होती हैं। सरसों के तैल में सूक्ष्म (बारीक) पिसा हुआ सेंधानमक मिलाकर अंगुली से दांतों और दाढ़ों को भीतर और बाहर सब ओर लगाकर मलना चाहिये। फिर पीछे कुल्ला कर डालें। इससे दांत शुद्ध और दृढ़ होते हैं।

मंजन

कभी दातौन न मिलने पर किसी विशेष अवस्था में दांतों को शुद्ध करने के लिए कुछ लाभदायक योग पाठकों के लाभार्थ लिख देता हूं। इनका स्वस्थ अवस्था में भी दातौन के समान लाभ होता है।

१—मंजन का सरल योग—

इस मंजन का साधारण अवस्थाओं में दातौन के स्थान पर भी प्रयोग किया जा सकता है। यह सर्वत्र बिना किसी मूल्य के प्राप्त हो सकता है। योग बहुत ही अच्छा है। गौ के गोबर के उपलों की भस्म (राख) लेकर कपड़छान कर लें। यदि जंगली आरनों* की भस्म उपलब्ध हो तो क्या कहना है। वही मंजन है। इसको मंजन की आवश्यकता पड़ने पर दांतों और मसूड़ों पर मंजन की भांति मलकर शुद्ध जल से कुल्ला करें। "हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा दे" वाली बात इस मंजन पर घटती है। यह बिना पैसे का

---

*गायें बहुधा जंगल में चरने जाती हैं और वहीं गोबर कर देती हैं। यही गोबर जब पड़ा-२ सूख जाता है तो आरनों का नाम धारण करता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मंजन दांतों को इतना शुद्ध कान्तिमय (चमकीला) बना देता है कि जिसके आगे बहुत मूल्यवान् (महंगे) मंजन भी फीके पड़ जाते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इसके प्रयोग से दांतों के कृमि (कीड़े) दूर हो जाते हैं। दांत और मसूड़े सर्वप्रकार के मलों से शुद्ध और पवित्र होकर सदैव रोगों से सुरक्षित रहते हैं। दांतों की पीड़ा और रोगों के दूर करने में यह रामबाण है।

बड़ी-बड़ी रसायनशाला (फार्मेसी) और औषधालयों के स्वामी तथा बड़े-बड़े वैद्य भी इसका प्रयोग करते हैं। दांतों की पीड़ा दूर करने में यह जादू का असर करती है।

गुरुकुल रावल की एक घटना है। एक आर्य संन्यासी दांतों की पीड़ा के कारण अत्यन्त कष्ट में थे। उनको किसी प्रकार भी शान्ति न होती थी और कई दिन से सोये नहीं थे। मैं भी कार्यवश वहाँ गया हुआ था। इस घोर कष्ट के कारण उनके मुंह से जो शब्द निकल रहे थे उन्होंने मेरी निद्रा भंग कर दी। मैंने उस समय जैसी भस्म प्राप्त हुई उसका प्रयोग करा दिया। उसी समय वे शान्त होकर सो गये और उनका कष्ट दूर हो गया।

२—मंजन का द्वितीय योग—

इस मंजन का भी दातौन के स्थान पर प्रतिदिन प्रयोग कर सकते हैं। यह भी सरल, सस्ता और सुगम है। किसी भी लकड़ी का कोयला एक भाग, फिटकरी सफेद भुनी हुई आधा भाग, नमक सेंधा चौथा भाग अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) पीसकर वस्त्र से छान लें। यही मंजन है। समय पर उपयोग में लायें। यह दांतों को मोतियों के समान कान्तिमय बना देता है और सब रोगों से सुरक्षित रखता है।

३– मंजन का प्रसिद्ध योग—

मंजन का यह योग बहुत ही प्रसिद्ध और लाभदायक है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लगभग दांतों के सभी रोगों के लिए यह बहुत अच्छी औषध है। भारत के साधारण लोग भी इसे जानते हैं। किन्तु दुःख की बात है कि इसका प्रयोग नहीं करते। मैंने यह मञ्जन पर्याप्त मात्रा में बनाकर अनेक रोगियों पर इसका प्रयोग किया है। यह मञ्जन लगभग दांतों के सभी रोगों की अचूक औषध है। दांत और दाढ़ की पीड़ा इसके मलते ही भाग जाती है। मसूडों के भी सब दोष दूर होते हैं। दांत अत्यन्त शुद्ध, वज्र के समान सुदृढ़, रोगरहित और मोतियों के समान कान्तिमय हो जाते हैं। वह प्रसिद्ध योग यह है;-

त्रिफला त्रिकुटा तूतिया, पांचों लवण पतंग।
दांत वज्र सम होत हैं, माजूफल के संग॥

बड़ी हरड़ का छिलका, आंवले का छिलका, बहेड़े का छिलका ये सब शुष्क हों। सोंठ, पीपल बड़ा, काली मिर्च, नीला थोथा भुना हुआ, पांचों लवण (नमक), पतंग (लकड़ी) और माजू इन सब औषधियों को समतोल लेकर अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण करें और वस्त्र में छानकर सुरक्षित रखें। कोई-कोई इसमें शेलखड़ी भी मिलाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग करके लाभ उठायें तथा प्राचीन पुरुषों के गीत गायें*।

इरिमेद (दुर्गन्ध खदिर वा काली खैर जिसे रौंझ भी कहते हैं) को छाल ५ सेर कूटकर १६ सेर जल में डालकर अग्नि पर चढ़ायें। पात्र कली वाला हो। जब जल ४ सेर रह जाये, उतार मल छानकर उसमें तिलों का तेल दो सेर डाल दें और निम्नलिखित औषधियों को कूट छान कर लुगदी बनाकर उसी में डालकर मन्द-मन्द आग जलाते रहें।

---

*यह मंजन बना बनाया गुरुकुल झज्जर से भी मिलता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

औषधियाँ — काली खैर की छाल, लौंग, गेरू, अगर पद्माख, मंजीठ, लोध, मुलहटी, लाख, नागरमोथा, बड़ की छाल, दालचीनी, जायफल, कपूर, कंकोल, खैर की छाल, पतङ्ग, धाय के फूल, इलायची छोटी, नागकेशर, कायफल प्रत्येक एक-एक तोला। जब केवल तैल रह जाय, उतार कर तैल को निथार कर शीतल होने पर शीशियों में भर दें। [यह तैल गुरुकुल झज्जर से भी मिलता है।] यही आयुर्वेद का प्रसिद्ध योग इरिमेदादि तैल है। इस तैल का एक फाया दांतों की भयंकर पीड़ा को दूर कर देता है। प्रतिदिन इस तैल के प्रयोग से दांत हिलते नहीं और जिसके हिलते हों, उसके पुष्ट हो जाते हैं। दांतों से ठण्डी वस्तु चबाई न जावे; पानी भी लगे, ठण्डी वायु भी सहन न होती हो, दांतों से रक्त जाना (पायरिया) पीप आना, दांतों का भुरभुराना, दांतों से दुर्गन्ध आना, मसूड़ों की सूजन, दांतों को कीड़े (कृमि) लगना, इत्यादि दांतों और मसूड़ों के सभी रोगों की रामबाण औषध है। यह जिह्वा, तालू, होठ के रोगों को भी दूर करता है। इस तैल को अंगुली से दांत और मसूड़ों पर अन्दर बाहर मलना चाहिए। इसके प्रयोग से काले, पीले, मैले दांत भी शुद्ध चमकीले हो जाते हैं। दांतों के रोगों की अद्भुत औषध ऋषियों की कृपा से मिली है, प्रयोग करें और लाभ उठायें।

दांतों की शुद्धि पाचन क्रिया को ठीक रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि पाचन-शक्ति ठीक कार्य नहीं करती तो ब्रह्मचर्य पालन करना अथवा स्वस्थ रहना असम्भव है। अतः प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी को दांतों की शुद्धि और रक्षार्थ इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिये।

॥ इति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्राक्कथन

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जीवात्मा के अन्तःकरण हैं। ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां बाह्य करण हैं। ज्ञान और प्रयत्न जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं। इन दोनों के विकास के लिए उपर्युक्त दोनों प्रकार के करण प्रमुख साधन हैं। अतः यह आवश्यक है कि अन्तः और बाह्य करणों को ठीक अवस्था में रखा जावे। इन दोनों करणों का प्रयोग जीव अपने शरीर के आश्रय पर ही करता है। शरीर को सबल और सुदृढ रखने में प्राण पर अधिकार रखना परमावश्यक हैं। प्राणों के रहते ही जीव, शरीर और अन्तः तथा बाह्यकरणों से कार्य करने में समर्थ होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर और प्राणों को सुनियमों में रखना मानव का परम कर्तव्य है। इन्हीं नियमों में एक नियम व्यायाम है।

व्यायाम के अनेक भेद हैं। मनुष्य अपनी अवस्था, देश और काल भेद से यथारुचि व्यायाम की छाँट कर सकता है। स्वस्थ मानव के लिए सामान्य रूप से व्यायाम एक समान ही लाभदायक है। हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने लोक कल्याण के लिए व्यायाम का बड़ा वैज्ञानिक क्रियात्मक विवेचन किया है। प्राचीन व्यायाम पद्धति के स्वीकार करने पर शरीर और प्राण बलिष्ठ होते हैं जिनके कारण मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

जहां हमने भारतीय संस्कृति के अन्य अंगों को छोड़कर पाश्चात्य विदेशी सरणि को ग्रहण किया, उसी भांति स्वदेशी व्यायाम रीति को त्यागकर विदेशी खेलों की ओर झुक गये। देशी और विदेशी व्यायाम में प्रत्यक्ष भेद यह है कि देशी व्यायाम को एक अकेला व्यक्ति भी कर सकता है, व्यय कुछ नहीं, शारीरिक लाभ के साथ साथ मानसिक और आत्मिक उन्नति भी होती हैं। थोड़े स्थान में कहीं भी देशी व्यायाम किया जा सकता है। देशी सामाजिक व्यायाम में भी सब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैयक्तिक गुण हैं। परन्तु विदेशी व्यायाम सब खर्चीले हैं। अकेला व्यक्ति उनसे कुछ लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। इनसे आत्मिक और मानसिक लाभ का तो नाम भी नहीं।

व्यायाम बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री और पुरुष सब के लिए जहां परम हितकर है, वहां युवकों के लिए तो प्राणप्रद ही है। आर्य जाति में फिर से व्यायाम पद्धति का प्रचलन होवे और हमारा राष्ट्र विश्व में अग्रणी बन सके—इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर यह व्यायाम सरणि जनता के सम्मुख प्रस्तुत की जारही है। इन कुछ पृष्ठों में व्यायाम का स्थूल रूप प्रकट किया जारहा है। इसमें यथारुचि और यथाशक्ति किसी भी व्यायाम का क्रियात्मक प्रयोग करके अपूर्व लाभ का प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

व्यायाम केवल मानसिक अथवा काल्पनिक विषय नहीं हैं। यह तो शत प्रतिशत क्रियारूप है। व्यायाम शब्द का स्थूल और सूक्ष्म अर्थ भी यही है। अतः प्रेमी पाठक महानुभावों से हम निवेदन करना चाहते हैं कि केवल ज्ञानवर्धन के लिये ही इन पंक्तियों को न पढ़ें अपितु पढ़कर इन पर स्वयं नियमित रूप से आचरण करें और करावें।

यह ध्यान रखने की बात है कि व्यायाम का अभ्यास निरन्तर चालू रखना चाहिये, तभी यथेष्ट लाभ हो सकता है। एक दो दिन या थोड़े अभ्यास से पूर्ण लाभ की आशा नहीं रखनी चाहिये। अभ्यास करते समय पहिले पहिले मन में अरुचि और शरीर में शिथिलता होने पर भूलकर भी इसका त्याग न करें। कुछ दिन के अभ्यास से ही रुचि होने लगेगी तथा शरीर में बल और ओज की उत्पत्ति एवं वृद्धि स्पष्ट प्रतीत होने लगेगी। अच्छा अभ्यास होने पर व्यायाम को छोड़ने में क्लेश अनुभव होने लगेगा। कुछ व्यायाम तो इनमें ऐसे हैं चाहे जहां बैठे करें और लाभ उठायें।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे युवक और युवतियां व्यायाम मार्ग पर चलते हुए ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बनकर अपना कल्याण और राष्ट्र का मान बढ़ायेंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

[चतुर्थ भाग]

व्यायाम सन्देश

विषय प्रवेश

शौच दन्तधावन और मुख आदि अङ्गों की शुद्धि के पश्चात् और स्नान से पूर्व प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति विशेषतः ब्रह्मचारी को नियमित शारीरिक व्यायाम करना चाहिये। साधारणतया-चाहे स्त्री हो वा पुरुष, जो भी भोजन करता है, उसे व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता होती है, जितनी भोजन की। इसका कारण स्पष्ट है, शरीर में व्यायामरूपी अग्नि न देने से भोजन ठीक नहीं पचता और वह शरीर का अङ्ग न बनकर उलटा हानि ही करता है। क्योंकि जिन खाद्य पदार्थों से रक्त आदि धातुओं का निर्माण होकर बल और शक्ति का सञ्चय होता है, उनके ठीक न पचने से वे सड़ने लगते हैं और शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न करके जहां अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं वहां मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के दुष्ट विचारों को भी जन्म देते हैं, जिससे मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट होकर स्मरणशक्ति भी मन्द हो जाती है और उसे अपने कर्तव्य-कर्म का ज्ञान नहीं रहता। परिणामस्वरूप वह दुःखदायी विषयभोगों में फंस जाता है और यह विषय-वासना की अग्नि मनुष्य के स्वास्थ्य, शक्ति, सुन्दरता, स्फूर्ति और साहस आदि सद्गुणों को जलाकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भस्मसात् कर डालती है। यहाँ तक कि मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु युवावस्था भी इसी की भेंट चढ़ जाती है। दुःखदायी बुढ़ापा आ घेरता है। मनुष्य का शरीर आलस्य, निर्बलता और रोगों का घर बन जाता है। जिससे लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं।

स्वास्थ्य का महत्त्व

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।" मनुष्य के जीवन को सफल बनाने वाला "पुरुषार्थ चतुष्टय" अर्थात्-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार वा मूल साधन आरोग्य ही है। क्योंकि रोगी मनुष्य सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिये न तो कृषि आदि व्यवसाय (धन्धे ही कर सकता है और न सन्ध्या, ईश्वरोपासना, ब्रह्मचर्य-पालन आदि धर्म-कर्म जो मोक्षप्राप्ति के साधन हैं उनके अनुष्ठान में समर्थ होता है। इसलिये संसार में सर्वोत्तम और सर्वप्रिय वस्तु स्वास्थ्य ही है। सांसारिक धनैश्वर्य तथा भोगविलास के सब साधनों के विद्यमान होने पर भी रोगी उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकता, उलटा उनको देख-देख कर दुःखी ही होता है। रोगी मल-मूत्र त्याग आदि आवश्यक कार्यों को भी दूसरे मनुष्यों की सहायता के बिना नहीं कर सकता। उसे प्रतिक्षण दूसरों का सहारा चाहिये और इस हर समय की पराधीनता के कारण रोगी का जीवन शुष्क, नीरस और अत्यन्त दुःखमय हो जाता है। रोगी होना ही साक्षात् नरक के दर्शन करना है। क्योंकि "सर्वं परवशं दुःखम्" "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

स्वर्ग और नरक कहीं अन्यत्र नहीं हैं। स्वस्थ मनुष्य के लिये यह संसार ही स्वर्ग समान है। रोगी मनुष्य चाहे कितना ही धनी-मानी हो वह सर्वथा पराधीन होने से अत्यन्त दीन और दुःखी रहता है। वह एक दरिद्र, भिखारी से भी गया-बीता है। क्योंकि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसे अपनी भूलों के कारण घोर नरक (दुःख) भोगना पड़ता है। बात तो यथार्थ में यही है—चाहे मनुष्य दरिद्र ही क्यों न हो, यदि वह पूर्ण स्वस्थ है तो वह धन के अभाव में भी धनवान् है। क्योंकि स्वास्थ्य-धन से बढ़कर कोई धन नहीं है। स्वस्थ मनुष्य ही स्वर्ग (सब सुखों) का उपभोग करता है। इसलिये हमारे पुरुषा ऋषि-महर्षियों ने सांसारिक सुख-अभ्युदय और पारलौकिक सुख-निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति का साधन आरोग्य वा स्वास्थ्य को ही माना है। इसलिये स्वास्थ्य ही हमारा सर्वस्व है और इसकी रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

स्वास्थ्य की रक्षा बिना व्यायाम के असम्भव है।

परमपिता परमात्मा ने हमें रोगी और दुःखी होने के लिये नहीं बनाया, हम तो दुःखों और रोगों को स्वयं बुलाते हैं और पुनः रोते और पछताते हैं। हमने स्वास्थ्य के मूलाधार व्यायाम को जब से छोड़ा तभी से हमारी वह भयंकर दुर्गति हुई है, जिसको लिखते हुए भी लज्जा आती है। आज क्या बालक, क्या युवा, सभी रोगी हैं। क्यों कि हम ऋषियों की प्यारी शिक्षा ब्रह्मचर्य और इसके मुख्य साधन व्यायाम को छोड़ बैठे और इनके स्थान पर विषयी, भोगविलासप्रिय और कामवासना के क्रीतकिंकर बन चुके हैं। आज के युवक और युवतियां व्यायाम से प्रेम नहीं करते। इन्हें अखाड़े और व्यायामशाला में जाना रुचिकर नहीं। इन्हें तो सिनेमा, थियेटर और नाचघर प्यारे हैं। नगरों में, सिनेमा घरों के आगे भारी भीड़ लगी रहती है और अखाड़े खाली पड़े रहते हैं। क्या हुआ एकाध सौभाग्यशाली व्यक्ति—उधर मुख करता है। इतने पर भी स्वास्थ्य और बल की आशा करते हैं। हमारे युवक अखाड़ों में जाकर करें भी क्या ? क्यों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि इन्हें तो दण्ड, बैठक और कुश्ती से इसलिये घृणा है कि कहीं इनके कोमल शरीर को अखाड़े की धूल वा मिट्टी न लग जाये और इनके सुन्दर वस्त्र वा शरीर ही न बिगड़ जायें। ऐसे ही व्यायामभीरु नपुंसकों (हीजड़ों) से यह देश भरा पड़ा है।

भोले युवकों को इतना भी ज्ञान नहीं कि यदि एक मशीन को वर्ष भर न चलाया जाये तो उसकी दशा कितनी बिगड़ जाती है। उसे पुनः चालू करने के लिये नई मशीन के मूल्य से भी कहीं अधिक धनव्यय कर देना पड़ता है, इसी प्रकार हमारा शरीर भी व्यायाम वा कार्य न करने से सर्वथा निर्बल, विकृत और रोगों का घर बन जाता है। पुनः यत्न करने पर भी ठीक होने को नहीं आता। सब जानते हैं कि तालाब का पानी स्थिर होने से ही सड़ता है और नदी झरनों का जल चलने के कारण ही निर्मल और कांच के सदृश चमकता है। इसी प्रकार व्यायाम न करने से भी रक्त का सञ्चार भलीभांति नहीं होता। इसलिये अनेक प्रकार के मल शरीर में रुकने वा एकत्रित होने से रक्त मलीन और गन्दा होकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। व्यायाम से रक्त का संचार और शुद्धि होती है। सब अंगों में बल, स्फूर्ति और शक्ति आती है। व्यायाम लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति और बल को उत्पन्न करता है, सब अङ्ग प्रत्यङ्गों को पूर्ण और पुष्ट करता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिये सबसे बढ़कर पुष्टिदायक और स्वास्थ्यप्रद है। उचित व्यायाम से प्रायः सभी रोग रुक जाते हैं। आज तक संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ, जिसने बिना व्यायाम के परमारोग्य और स्वास्थ्य की प्राप्ति की हो। व्यायाम का अभाव वा आलस्य ही रोगों का स्रोत है। पूर्ण सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन व्यायाम ही है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यायाम से लाभ

जैसा कि मैं पहले ही कह आया हूं स्वास्थ्य प्राप्ति का मुख्य साधन व्यायाम ही है। अब मैं इसकी पुष्टि में ऋषियों महर्षियों एवं अन्य अनुभवी व्यायाम आचार्यों का मत देता हूं। परम वैद्य महर्षि धन्वन्तरि का मत—

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा ।। १ ।।
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीना सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ।। २ ।।
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३९-४०)

अर्थ—व्यायाम से शरीर बढ़ता है, शरीर की कान्ति वा सुन्दरता बढ़ती है, शरीर के सब अङ्ग सुडौल होते हैं, पांचनशक्ति बढ़ती है, आलस्य दूर भागता है, शरीर दृढ़ और हल्का होकर स्फूर्ति आती है, तथा तीनों दोषों की मृजा (शुद्धि) होती है।

श्रम (थकावट), क्लम (दुःख), प्यास, शीत (जाड़ा), उष्णता (गर्मी) आदि सहने की शक्ति व्यायाम से ही आती है और परम आरोग्य अर्थात् आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति भी व्यायाम से ही होती है।

महर्षि पतञ्जलि जी चरक संहिता में इसी विषय में लिखते हैं—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ,।
(चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय ७ श्लोक ३१)

व्यायाम से शरीर में लघुता (स्फूर्ति, हलकापन, फुर्तीलापन), कार्य करने की शक्ति, स्थिरता, क्लेश तथा दुःखों का सहना, दोषों (कुपित-वात, पित्त, कफ) का नाश और (जठर) अग्नि की वृद्धि होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने इन श्लोकों में व्यायाम करने के लाभों का इतनी भली-भांति वर्णन किया है कि मानो गागर में सागर भर दिया है। जो भोजन हम प्रति-दिन करते हैं वह प्रथम हमारे पक्वाशय पेट में जाता है और वहां पेट की अग्नि जिसे जठराग्नि कहते हैं खाये हुये भोजन को पकाती है। भोजन पचने पर आमाशय से ही शेष अंगों को पहुंचता है तथा सारे शरीर को शक्ति और आरोग्य प्रदान करता है। जिसकी जठराग्नि ठीक कार्य करती है उसका खाया हुआ पौष्टिक भोजन व्यर्थ नहीं जाता और उसका पचकर रस बन जाता है। पौष्टिक सारभाग को तीव्र जठराग्नि मल भाग में नहीं जाने देती। जिसकी पाचनशक्ति वा जठराग्नि अच्छी तथा तीव्र होती है उसको भोजन अधिक मात्रा में शीघ्र पचकर रस आदि धातुयें बनती रहती हैं और ये रस, रक्त, —वीर्य आदि सात धातुएँ शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाती और धारण करती हैं। इसलिए इनको धातु कहते हैं और धातुओं ही से शरीर का निर्माण, वृद्धि वा उपचय होता है और इनकी घटती वा ह्रास से ही शरीर का नाश होता है। इसलिए महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज ने 'आषोडशादवृद्धिः' सोलह वर्ष से पच्चीस वर्ष की आयु तक वृद्धि अवस्था मानी है। इस आयु में वीर्यादि सभी धातुओं की वृद्धि (बढ़ती) होती है। वृद्धि अवस्था में कई कारणों से जठराग्नि बड़ी तीव्र होती है। जो कुछ भी खाया-पीया जाता है वह शीघ्र पच, रसादि धातु बनकर शरीर का अंग बन जाता है और इसे दृढ़ और पुष्ट बनाता है। जिसकी जठराग्नि मन्द होती है वह वृद्धि अवस्था में भी निर्बल तथा युवावस्था में भी बूढ़ा ही रहता है।

सार यह है—हमारे उदर में एक प्रकार की उष्णता (अग्नि) है जो भोजन को पचाती, पौष्टिक भाग को ग्रहण करती और मल-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
भाग को बाहर निकालती है और रसादि धातुओं से मानुष शरीर का निर्माण वा वृद्धि करती है। इस उष्णता (गर्मी) की सबको आवश्यकता है और व्यायाम से सारे ही शरीर में उष्णता आ जाती है। वह नसनाड़ियों के द्वारा भोजन से रस को इस प्रकार खींचती रहती है जिस प्रकार जल को स्पञ्ज (जल शोषक) वा मसि (स्याही) को मसिशोषक (स्याही चूस)। यही उष्णता शरीर में रक्तादि धातुओं का निर्माण और संचार करती है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना (गर्मी) का संचार होता है, उसी प्रकार व्यायाम से सारे शरीर में रक्त उत्तेजित होकर नस-नाड़ियों के द्वारा अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ने लगता है, नस-नाड़ियां सब उत्तेजित तथा कार्यशील हो जाती हैं, सम्पूर्ण शरीर में रक्त सञ्चार भली-भांति होता है और यथायोग्य सब अंगों को शक्ति प्रदान करता है। विद्युत् बिना विद्युत्-धारा (current) के सर्वथा निस्सत्व वा शक्तिहीन है, उसी प्रकार रक्त-सञ्चारिणी सब नस-नाड़ियां रक्त-सञ्चार के बिना व्यर्थ हैं। रक्त-सञ्चार बिना रक्त बने कैसे ?

रक्त बनता है रस से और रस बनता है भोजन के पचाने से; भोजन पचता है उष्णता (पेट की गर्मी) से और उष्णता की जननी है व्यायाम। इस उष्णता से रस, रस से रक्तादि बनते हैं। यह रक्त नस-नाड़ियों के द्वारा नियम से सारे देह में परिभ्रमण करता हुआ शक्ति-सञ्चार करता है। व्यायाम से प्रदीप्त हुई जठराग्नि भोजन से पोषक द्रव्यों को ही ग्रहण नहीं करती अपितु इस में यह भी शक्ति है कि यह शरीर से विजातीय (व्यर्थ के) मल-मूत्रादि द्रव्यों को भी बाहर निकाल फेंकती और शरीर को शुद्ध-पवित्र बनाती है। जिस प्रकार मार्जनी (झाड़ू) घर में मार्जन (सफाई) का कार्य करती है, उसी प्रकार यह शरीर की गर्मी अनेक मार्गों द्वारा मल-मूत्रादि कूड़े-कर्कट को बाहर निकाल फेंकती है और यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उष्णता व्यायाम से शरीर में इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि यह स्थूल ले स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म चिपटे हुए मलों और दोषों को भी गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नेत्र, कर्ण, नासिका और रोमकूपादि (मसामों) के द्वारा मल, मूत्र, श्लेष्म, कफ, थूक, लार, पित्त और स्वेद (पसीना) आदि के रूप में शरीर से बाहर निकाल कर ही छोड़ती है। यहां तक कि व्यायाम करने से पसीने के द्वारा अनेक प्रकार के विष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

प्रो० राममूर्ति के जीवन की घटना

इस विषय में प्रो० राममूर्ति के जीवन की एक घटना दी जाती है और वह इस प्रकार है कि योरप में इन्हें नीचा दिखाने के लिए कुछ पापियों ने भोजन में धोखे से विष दे दिया। जब इन्हें पता चला तो इन्होंने एक साथ दस-पन्द्रह हजार दण्ड निकाल डाले। सब विष स्वेद (पसीने) के द्वारा बाहर निकल गया और वे बच गये।

व्यायाम करने वाले का शरीर अत्यन्त शुद्ध वा निर्मल और निर्दोष हो जाता है। मल-मूत्रादि ठीक रीति से निकल जाते हैं। कभी मल-बन्ध (कब्ज) नहीं होता। उसे यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि टट्टी आयेगी वा नहीं। शौच दोनों समय खुलकर आता है। आमाशय वा जठराग्नि को बल देनेवाला सबसे सस्ता और सर्वोत्तम योग (नुस्खा) व्यायाम ही है। व्यायाम करनेवाले को मन्दाग्नि का रोग कभी नहीं होता। वह जो भी पेट में डाल लेता है, सब कुछ शीघ्र ही पचकर शरीर का अंग बन जाता है। उसका खाया-पीया घी, दूध, आदि पौष्टिक भोजन उसके शरीर में ही लगता है, टट्टी में नहीं निकलता। अतः उसकी बल-शक्ति दिन प्रति-दिन बढ़ती ही चली जाती है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की वृद्धि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
यथायोग्य होती है। शरीर के अङ्गों को सुडौल, सघन, गठीला और सुन्दर बनाना व्यायाम का प्रथम कार्य है। यदि कोई मनुष्य केवल एक वर्ष निरन्तर नियम पूर्वक किसी भी व्यायाम को करले, तो उसका शरीर सुन्दर और सुदृढ़ बनने लगता है और जो सदैव श्रद्धापूर्वक दोनों समय यथाविधि व्यायाम करते हैं, उनका तो कहना ही क्या। उनके शरीर की सभी मांसपेशियां लोहे की भांति कड़ी और सुदृढ़ हो जाती हैं और सभी नस-नाड़ियां, सम्पूर्ण स्नायु मण्डल और शरीर का प्रत्येक अङ्ग वज्र वा इस्पात (फौलाद) के समान कठोर और सुदृढ़ हो जाता है। चौड़ी उभरी हुई छाती, लम्बी-सुडौल और गठी हुई भुजायें, कसी हुई पिण्डलियां, चढ़ी हुई जंघायें, विशाल मस्तक तथा चमचमाता हुआ रक्तवर्ण (लाल) मुखमण्डल उसके शरीर की शोभा को बढ़ाता है। यथाविधि व्यायाम करने से शरीर का प्रत्येक अङ्ग यथेच्छ वृद्धि को प्राप्त होकर अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़ और सघन बन जाता है। शरीर पर व्यर्थ का मांस वा भेद (चर्बी) चढ़कर उसे ढीला नहीं करने पाता, पेट शरीर से लगा रहता है, बढ़ने नहीं पाता।

व्यायाम की प्रशंसा में ऋषि-महर्षियों का मत

महर्षि धन्वन्तरि जी सुश्रुत में लिखते हैं—

न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो भयात्।

(चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ४१)

अर्थ—अधिक स्थूलता को दूर करने के लिए व्यायाम से बढ़कर और कोई औषधि नहीं है, व्यायामी से उसके शत्रु सर्वदा डरते रहते हैं और उसे दुःख नहीं देते।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति ।
स्थिरीभवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४२)

अर्थ—व्यायामी मनुष्य पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं करता। व्यायामी पुरुष का शरीर हाड़, मांस सब स्थिर होते हैं।

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर पर पसीना आजाता है और पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उबटन आदि से निर्मल करता है उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार सिंह से डरकर क्षुद्रमृग (निर्बल मृगादि जंगली पशु) पास नहीं फटकते।

इसी प्रकार का एक श्लोक व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ काशिका में भी आता है—

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगः ॥

(काशिका अध्याय ६ पाद १, सूत्र ६३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर में पसीना आजाता है और जो पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उबटन आदि से निर्मल करता है उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार गरुड़ से डरकर सर्प पास नहीं फटकता।

वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम् ।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् ॥
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४४-४५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ—जो मनुष्य युवावस्था (जवानी), सुन्दरता और वीरता आदि गुणों से रहित है उसको भी व्यायाम सुन्दर बनाता है। व्यायाम करनेवाला मनुष्य गरिष्ठ, जला हुआ अथवा कच्चा किसी भी प्रकार का खराब भोजन क्यों न हो, चाहे उसकी प्रकृति के भी विरुद्ध हो, सबको भली-भांति पचा लेता है और उसको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती।

व्यायाम करनेवाले मनुष्य को आप इस प्रकार कहते हुए कभी न सुनेंगे कि मुझे भोजन नहीं पचता वा मल साफ नहीं होता अथवा अपचन रहता है। यह दुर्गति तो व्यायाम न करनेवाले मनुष्यों की ही रहती है। उन्हें कभी शौच खुलकर नहीं आता। अपचन के कारण कभी खुलकर सच्ची भूख नहीं लगती। व्यायाम न करनेवाले लोगों का शरीर प्रायः रोगों का घर ही बना रहता है। उनके सारे जीवन की आय (कमाई) वैद्य, डाक्टरों की ही भेंट चढ़ती है। किन्तु उन्हें स्वास्थ्य और सच्चे सुख के दर्शन जीवन भर कभी भूलकर भी नहीं होते। स्वास्थ्य के बिना कैसा सुख और आनन्द; क्योंकि 'आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते।" आदर्श स्वास्थ्य अथवा परम आरोग्य जिसकी प्राप्ति व्यायाम से ही होती है। वही आनन्द और सौख्य का उद्गम है। व्यायाम करने वाले का शरीर केवल स्वस्थ ही नहीं, अपितु अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय भी होता है। व्यायाम से शरीर बड़ा कसा हुआ और सुता हुआ रहता है। उसमें शिथिलता और ढीलापन नाम मात्र भी नहीं रहता। व्यायाम से रंग रोगन निखर आता है, मुख पर क्या सारे शरीर पर लाली, अद्भुत कान्ति और तेज चमचमाता है, बुढापा उसके पास आता हुआ घबराता है, व्यायाम करनेवाले से शत्रु भी भय खाता है। रोग, बुढ़ापा और मोटापे की तो क्या बात, व्यायामी पुरुष मृत्यु को भी चार ठोकरें लगाता है, वह गुणों की खान और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसका शरीर सुन्दरता का प्रतीक (नमूना) बन जाता है। आहा ! यदि ऐसा युवक लङ्गोट बान्धकर खड़ा हो जाये तो दर्शकों की यही इच्छा रहती है कि इसके सुन्दर शरीर को देखते ही रहें। उसका आदर्श स्वास्थ्य और मनोहर मानुष देह की कमनीयकान्ति उनके मन की मोह लेती है। मोहे क्यों नहीं, जो पौष्टिक भोजन उसने खाया वह पूर्णतया पच गया और जो उसका सार (तत्व) वीर्य बना वह भी व्यायाम के द्वारा पचकर रक्त में मिल गया और शरीर का ही अंग बन गया।

"वीर्यं वै बलम्" वीर्य तो शक्ति और बल का भण्डार है। व्यायाम से इसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है और यह ओज के रूप में चमकने लगता है। वीर्य की अधोगति होती ही नहीं और वीर्य के नाश वा पतन की सम्भावना ही नहीं रहती। शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि होकर स्थिरता आ जाती है। इसलिए महापुरुषों ने व्यायाम को वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन माना है। व्यायामी पुरुष को जागृत वा स्वप्नावस्था में भी किसी प्रकार भी वीर्यनाश का भय नहीं रहता। फिर ऐसे वीर्यवान् मनुष्य का शरीर क्यों नहीं सुन्दर और सुडौल बने, क्यों नहीं उसके पवित्र और परिपुष्ट देह पर मनोहर कान्ति और सुन्दर छवि छाये।

व्यायाम और दुष्ट विचार

व्यायाम प्रेमी के विचार सदैव शुद्ध और पवित्र रहते हैं। वह कुसंग, कुत्सित और कामुकता के दुष्ट विचारों से सर्वथा दूर रहता है। यदि किसी को कुसंस्कार-वश बुरे विचार तंग ही करें और किसी प्रकार भी वश में न आयें तो उसी समय तेज दौड़ आरम्भ कर दे, अथवा कोई भी व्यायाम करने लग जावे. पुनः देखिए कि दुष्ट विचार कैसे पूंछ दबाकर भागते हैं। "आदर्श व्यायामी पुरुष

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
के सामने दुष्ट विचारों की दुष्टता नहीं चलती।"

कामवासना का वेग कितना भी प्रबल क्यों न हो तत्काल ही दब जायेगा। व्यायाम का स्वाद (चस्का) व्यभिचार की भावना को सर्वथा समूल नष्ट कर देता है। नीच से नीच मनुष्य यदि नियम-पूर्वक व्यायाम करने लग जाए तो वह स्वयं ही नीचता से घृणा करने लगता है। नियमित व्यायाम से आचारहीन व्यभिचारी भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बन जाता है। व्यायाम से मनोविकारों की अन्त्येष्टि हो जाती है। मनकी चञ्चलता नष्ट होकर वह वश में आ जाता है। मन सब इन्द्रियों का राजा है, जब मन ही शुद्ध, पवित्र होकर वश में आ जाता है, तो शरीर और इन्द्रियों के सब दोष दूर होकर वे स्वयं शांत और पवित्र हो जाती हैं। आत्मा को शम और दम की शक्तियां प्राप्त होती हैं, व्यायाम से अन्दर और बाहर की शुद्धि (मृजा) और सफाई हो जाती है। वह सर्वथा शुद्ध, पवित्र और देवता बन जाता है। ऐसी अवस्था में व्यायाम करने वाले के लिए वीर्य-रक्षा वा ब्रह्मचर्य पालन वामहस्त का कार्य हो जाता है। और ब्रह्मचर्य पालन में सफल होना मनुष्य के सौभाग्य का उदय होना है। क्योंकि योगिराज महर्षि पतञ्जलि के कथनानुसार "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः" ब्रह्मचर्य-पालन से अपूर्व बल और शक्ति प्राप्त होती है और निर्बलता, आलस्य, प्रमाद आदि दुर्गुण सब दूर भागते हैं।

ब्रह्मचर्य सब शक्तियों और सद्गुणों का भण्डार है, इसलिए ब्रह्मचारी जब ब्रह्मचर्य-पालन के मुख्य साधन व्यायाम को अपनाता है तब उससे जहां उसे ब्रह्मचर्य-पालन में पूर्ण सफलता मिलती है वहाँ उसके निरन्तर व्यायाम करते रहने से उसका परिश्रम करने का स्वभाव भी बन जाता है। वह कठिन से कठिन कार्य हंसते हंसते कर लेता है। उसमें कार्य करने की अदम्य शक्ति, अपूर्व

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्साह, और स्फूर्ति आ जाती है। व्यायाम से शरीर हल्का-फुलका और फुर्तीला हो जाता है। व्यायाम में यह एक विचित्रता है कि यह अधिक स्थूल (मोटे) मनुष्य को पतला और पतले को हृष्ट-पुष्ट (मोटा) बनाता है। व्यायाम निर्बलता का, जो मनुष्य को अधिक कामी और विलासी बनाती है, परम शत्रु है। निर्बलता उससे कोसों दूर भागती है। व्यायाम करनेवाला मनुष्य थकना वा थककर श्वास चढ़ना वा हांपना क्या होता है, यह जानता ही नहीं। वह पर्वत के समान स्थिर व दृढ़ रहता है। उसके लिए दुःख नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती। वह मृत्यु के साथ भी हास्य करता है। पुनः उसके लिए शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी), भूख-प्यास, सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-शोक, जय-पराजय और जीवन-मरण आदि परस्पर विरोधी द्वन्द्वों का सुखपूर्वक सहन करना साधारणसी बात हो जाती है।

उदाहरणरूप में आप अपने प्राचीन योद्धाओं-पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, वीर हनुमान्, ब्रह्मचारी भीष्म आदि तथा आधुनिक महापुरुष महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, धर्मवीर पं० लेखराम, ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल और कलयुगी भीम प्रो० रामूर्ति तथा ब्रह्मचारी प्रो० माणिकराव जी आदि व्यायामशील व्यक्तियों की जीवनियां पढ़कर देखें तो आपको पता चलेगा कि हमारे इन पुरुषाओं ने संसार में वे आश्चर्यजनक काम किए जिनको आज भी पढ़-पढ़कर पाठक रोमाञ्चित हो जाते हैं।

संसार के सभी महापुरुषों, विद्वानों, वैद्यों और डाक्टरों का यही एक मत है कि मनुष्य के शरीर को सुन्दर, सुदृढ़ बनाने और स्वस्थ रखने में व्यायाम से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। स्वास्थ्यप्राप्ति की सब औषधों से बढ़कर परमौषध व्यायाम ही है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो इस परमौषध का आश्रय छोड़कर वैद्य, डाक्टरों के पीछे फिरता है वह अपने धन, यौवन और स्वास्थ्य सबसे हाथ धो बैठता है।

महापुरुषों, प्रसिद्ध वैद्यों एवं डाक्टरों की सम्मतियां

पाठकों के लाभार्थ व्यायाम के पक्ष में कुछ महापुरुषों, वैद्य एवं डाक्टरों की सम्मतियां यहां दी जाती हैं।

महर्षि दयानन्द जो इस युग के आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित, आदर्श ब्रह्मचारी और आदर्श सुधारक थे और सदैव दण्ड, मुग्दर आदि का नित्य नियमित रूप से व्यायाम करके ही भोजन पाते थे, वे राजा की दिनचर्या के विषय में सत्यार्थप्रकाश में यों लिखते हैं—

"प्रातःकाल उठ, शौच, सन्ध्या, अग्निहोत्र कर, नाना प्रकार की व्यूह शिक्षा और कवायद करा, शस्त्र और अस्त्रों का कोष तथा वैद्यालय, धन के कोषों को देख नित्यप्रति व्यायामशाला में जा व्यायाम करके मध्याह्न समय भोजन के लिए अन्तःपुर अर्थात् पत्नी आदि के निवास स्थान में प्रवेश करे।" (सत्यार्थप्रकाश षष्ठ समुल्लास)

डाक्टर हालर साहब एक स्थान पर लिखते हैं—

वीर्य वह अमूल्य रत्न है जो बल का भण्डार है। वह रक्त में पुनः मिल जाता है और शरीर में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न करता है। व्यायामी पुरुष अपनी इस वीर्य की शक्ति की दूसरों की अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकता है।"

जर्मन का एक प्रोफेसर लिखता है—

"अच्छा हो वह युवक मर जाये जो व्यायाम से अपने शरीर की शक्तियों को पुष्ट नहीं बनाता।"

जर्मन देश को उठाने वाले हर हिलटर "मेरा संघर्ष" नाम की पुस्तक में लिखते हैं—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"अपनी शिक्षापद्धति में सर्वप्रथम स्थान ज्ञानोपार्जन अथवा अक्षर-अभ्यास को नहीं, व्यामाम शिक्षा तथा स्वस्थ शरीर-निर्माण को देना होगा। क्योंकि सर्वमान्य नियम यह है कि स्वस्थ और बलवान् आत्मा स्वस्थ और बलवान् शरीर में ही पाई जाती है।"

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी लिखते हैं—

"व्यायाम स्वास्थ्य के लिये उतना ही आवश्यक है जितना वायु, जल और भोजन। व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है। भोजन के समान व्यायाम भी शरीर तथा मस्तिष्क के लिए आवश्यक है। इसके बिना मस्तिष्क भी वैसे ही निर्बल पड़ जाता है जैसे कि शरीर। निर्बल मस्तिष्क एक प्रकार का रोग है। पुष्ट मस्तिष्क का पुष्ट शरीर में होना ही वास्तविक और सच्चा स्वास्थ्य है।

"एक पहलवान वास्तव में तब तक पहलवान नहीं कहा जा सकता है जब तक कि उसका मस्तिष्क भी उसके शरीर की भांति पुष्ट न हो।

"हम में से बहुत से व्यक्ति कठिन मानसिक परिश्रम करते हैं, परन्तु शारीरिक व्यायाम की ओर ध्यान नहीं देते। उनका शरीर मानसिक परिश्रम के कारण निर्बल पड़ जाता है और वे अनेक रोगों के आखेट(शिकार)बन जाते हैं। यहीं तक ही नहीं,बल्कि जब संसार उनसे कुछ उपयोगी कार्यों की आशा करता है तब वे असमय में ही इस संसार से उठ जाते हैं।"

"हम लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि शारीरिक व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है।"

"आदर्श व्यायाम वह है—जिससे शरीर एवं मस्तिष्क दोनों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
को लाभ पहुँचता हो। केवल ऐसा ही व्यायाम मनुष्य को स्वस्थ बना सकता है।"

डॉक्टर सिलवस्टर ग्राहम लिखते हैं—

"व्यायाम से सब अङ्गों में बल, स्फूर्ति आती है। सब अङ्गों में पूर्णता, लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति और बल उत्पन्न होता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिए सबसे बढ़कर पुष्टिदायक है।"

मिस्टर सैण्डो विलायत का प्रसिद्ध पहलवान —

अपने बाल्यकाल में रोगी था, उसे कोई अच्छे से अच्छा डॉक्टर भी स्वस्थ नहीं कर सका। अन्त में उसने परमौषध व्यायाम का सहारा लिया। इसी की कृपा से उसकी पहलवानी का संसार में डंका बजा और वह अपने इस वचनानुसार —

"सम्पूर्ण रोगों का इलाज व्यायाम द्वारा किया जा सकता है।" सभी रोगों की चिकित्सा अन्त तक व्यायाम के द्वारा ही करता रहा।

कलयुगी भीम राममूर्ति ने भी जो हाथी को अपनी छाती पर से उतारते थे, अपनी सारी शक्ति का स्रोत ब्रह्मचर्य और व्यायाम को ही बताया है। वह एक स्थान पर लिखते हैं कि "व्यायाम के बिना अधिक काल तक ब्रह्मचारी रहना असम्भव है।"

यूनान का प्रसिद्ध वैद्य अफलातून लिखता है—

"मल को इकट्ठा होने से रोकने के लिए व्यायाम से उत्तम कोई वस्तु नहीं है।"

भारत के प्रसिद्ध वैद्य पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा 'अमृतधारा' लिखते हैं—

"आर्यों के भीतर जब व्यायाम की प्रथा थी तब यहीं बड़े बड़े योद्धा हो चुके हैं। भीम जैसे मनुष्यों का होना भी यहीं सम्भव था,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो हाथी को उठाकर फेंक सकते थे ।"

वे दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

"व्यायाम से बहुत ही लाभ है। रुधिर बहुतसा तो हमारे अङ्गों के भीतर खर्च होता है और हमारे शरीर को दृढ़ करता है। जिसका वीर्य बनकर बाहर निकल जाता था वह शरीर के भीतर ही रहता है। और इससे बढ़कर यह भी लाभ है कि जो वीर्य बन जावे तो व्यायाम से पुनः शरीर के भीतर शोषण होकर शरीर और हड्डियों को दृढ़ करेगा। जिसका निकलने का अवसर नहीं वह व्यर्थ नहीं निकलेगा, वरन् व्यायाम के द्वारा शरीर का आहार बन जायेगा। अतः व्यायाम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए अपितु नित्य करना चाहिए।"

तिथि 2003 पुस्त०

पाश्चात्य देश और हम

सभी पश्चिमी देशों में व्यायाय का खूब प्रचार है। वहां सर्वत्र व्यायाम शिक्षा का अङ्ग बन चुका है। वहां के सुधारक व्यायाम के महत्व को भलीभांति समझ चुके हैं। इसलिए वहाँ कोई कठिनाई नहीं। वहां की जनता व्यायाम को अपना अंग बना चुकी है। इसलिए वहां के लोगों के स्वस्थ्य हम से कहीं अच्छे हैं। क्या कारण है कि इस अभागे भारत में युवक भी व्यायाम नहीं करते और इस जीवनपयोगी वस्तु वीर्य को अपने जीवन का अङ्ग नहीं बनाते ? इसका मुख्य कारण कुशिक्षा का प्रभाव अथवा शिक्षा का अभाव ही है। भारत में माता पिता बालक को उत्पन्न तो कर देते हैं किन्तु वे उसकी शारीरिक वा मानसिक उन्नति का कुछ ध्यान नहीं रखते जो कि उनका मुख्य कर्तव्य कर्म है। यदि वे अपने सम्मुख बालकों को नित्य प्रति व्यायाम करायें तथा अपने बालकों को बाल्यकाल में ही व्यायाम करने का अभ्यासी बनादें, साथ ही

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्हें व्यायाम का महत्व भी समझा दें तो वे बड़े होने पर व्यायाम कदापि नहीं छोड़ सकते। प्रथम तो बाल्यावस्था में व्यायाम का अभ्यास नहीं कराते, इसलिए युवावस्था में व्यायाम भार दिखाई देता है, बुढ़ापे की तो बात ही क्या कहनी ? उस समय तो उठना बैठना भी भारी हो जाता है। यथार्थ में सारा दोष तो हमारी शिक्षा प्रणाली का ही है। इसमें व्यायाम के लिए कोई स्थान नहीं। हमारे स्कूलों की शिक्षा इतनी व्यर्थ, अरोचक, निकृष्ट और अधूरी है कि इससे किसी प्रकार का भी लाभ नहीं। व्यायाम के नाम पर स्कूल, कालिजों में वालीबाल फुटबाल आदि अंग्रेजी ढंग के खेल खिलाये जाते हैं। उनमें इनेगिने थोड़े ही विद्धार्थी भाग लेते हैं वा ले सकते हैं। इन खेलों से भी विशेष लाभ नहीं, इन में समय और धन का ही नाश होता है। खेल-खेल ही होता है और व्यायाम-व्यायाम ही। क्या हुआ कोई एक-आध विद्यार्थी कभी भूलकर व्यायाम कर लेता हो, नहीं तो प्रायः अधिक विद्यार्थी और शिक्षक ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि व्यायाम करना अनपढ़ मूर्ख और नीच लोगों का कार्य है। इसीलिए विद्यार्थी तथा शिक्षित समाज के स्वास्थ्य की अत्यन्त दुर्दशा है। अजीर्णता वा कोष्टबद्धता का रोग प्रायः सबको रहता है। इसके अतिरिक्त वे अन्य अनेक प्रकार के रोग यथा प्रतिश्याय (जुकाम), खांसी, हृदय की धड़कन, छाती में पीड़ा, स्वप्नदोष, प्रमेह आदि से पीड़ित रहते हैं। सदैव इनके स्वास्थ्य में गड़बड़ ही रहती है। अपने विद्यार्थियों की दीन-हीन शारीरिक निर्बल अवस्था को देखकर रोना आता है। १६ और २० वर्ष की वृद्धि अवस्था में जिनके मुखमण्डल सदैव हीरे की भांति चमकने चाहियें थे, आज वे निस्तेज, बलहीन, मनमलिन, लुटे और मुंह पिटे से दिखाई देते हैं। पश्चिमी झूठी सभ्यता की लहर ने हमारे विद्यार्थी समाज को आलसी, शृङ्गार-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रिय, भोगी और रोगी बनाकर इनके स्वास्थ्य का सर्वथा सर्वनाश ही कर डाला है। क्योंकि आमाशय, पेट और फुफ्फुस (फेफड़े) के बिगड़ने से ही सब रोग होते हैं और इनके स्वस्थ रखने का एकमात्र उपाय व्यायाम है।

यदि ब्रह्मचारी प्रो० माणिकराव जी के समान, अन्य सुधारक भी व्यायाम का क्रियात्मक प्रचार करें तो देश के शीघ्र ही सुदिन आसकते हैं। महाराष्ट्र वा दक्षिण में जाकर देखें, श्रद्धेय प्रोफेसर जी की कृपा से प्रायः सभी नगरों में व्यायामशाला बन गई हैं। शिक्षित लोगों का झुकाव भी व्यायाम की ओर होने लगा है। उन्हीं के पुरुषार्थ से आज बड़ौदा में ४-५ लाख रु० की व्यायाम-शाला और शस्त्रागार बना हुआ है। इसी प्रकार सारे देश में व्यायाम के प्रचार की आवश्यकता है। सुधार तो तब हो जब हमारी सरकार ऐसा राज्य नियम ही बना दे जिससे सब को अनिवार्य रूप से व्यायाम करना ही पड़े। व्यायाम न करनेवालों को सरकार दण्ड दे और उन्हें सारा समाज घृणा की दृष्टि से देखे।

हमारी शिक्षण संस्थाओं में व्यायाम का समुचित प्रबन्ध हो। अन्य विषयों की भांति इसकी भी परीक्षा हो, इसमें उत्तीर्ण होने वाला ही उत्तीर्ण समझा जावे। देखें, पुनः व्यायाम का प्रचार तथा हमारे स्वास्थ्य का सुधार कैसे न हो। नगर-नगर, ग्राम-ग्राम और देशके प्रत्येक कोने में व्यायामशालायें वा अखाड़े चलाये जावें। स्वस्थ और बलिष्ठ व्यक्तियों को पारितोषिक और सम्मान दिये जाव। जो निर्बल और रोगी हों उन्हें विवाह करने और सन्तान उत्पन्न करने की अनुमति न दी जावे। केवल स्वस्थ और बलिष्ठ युवा स्त्री-पुरुष ही विवाह और सन्तानोत्पत्ति के अधिकारी हैं। जिन की संतान अधिक सुन्दर, स्वस्थ और बलवान् हो, उनको अनेक प्रकार के पारितोषिक वा मासिक वृत्तियां देकर सरकार प्रोत्साहन दे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
निर्बल, रोगी सन्तान पैदा करनेवाले को यथोचित दण्ड दे। तब कहीं इस पतित भारत का भाग्योदय हो सकता है, पुनः खोई हुई प्राचीन गौरव-गरिमा को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यायाम तथा शारीरिक श्रम से घृणा करके कभी भी कोई देश नहीं उठ सकता। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य तथा देश प्रेमी को प्रितदिन व्यायाम करने का व्रत लेना चाहिए।

व्यायाम का लक्षण

अब तक हम व्यायाम शब्द का प्रयोग करते आरहे हैं, प्रत्येक व्यक्ति इसका थोड़ा बहुत अर्थ जानता भी है, किन्तु इसका वास्तविक अर्थ क्या है यह जानना आवश्यक है। क्योंकि एक वस्तु का वास्तविक लक्षण जानकर ही हम उससे पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। चरक संहिता में इसके लक्षण इस प्रकार दिये हैं—

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥
(सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३०)

शरीर की जो चेष्टा बल बढ़ाने के लिए और स्थिरता (दृढ़ता) के लिए की जाती है, उस चेष्टा का नाम शारीरिक व्यायाम है। इस व्यायाम को मात्रापूर्वक नित्य प्रति सेवन करना चाहिए।

व्याख्या—शरीर को बलिष्ठ, कार्यक्षम, सुदृढ़, स्वस्थ, सुन्दर, स्थिर तथा चिरायु वाला बनाने के लिए जो भी शरीर के अङ्गप्रत्यङ्गों से प्रतिदिन नियमपूर्वक चेष्टायें, परिश्रम वा उपाय किये जाते हैं, उनको व्यायाम कहते हैं।

महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत में लिखा है—

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।
तत्कृत्वा तु सुखं देहं विमृदनीयात्समन्ततः॥
(चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३८)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसा कर्म वा क्रिया जिससे शरीर का परिश्रम होता है अथवा शरीर की वृद्धि वा विकास के लिए क्रियाविशेष वा प्रयत्न किया जाता है उसे व्यायाम कहते हैं। व्यायाम करने के पीछे शरीर को सुख देना चाहिए अर्थात् विश्राम देना चाहिए और भलीभांति शरीर के सब अंगों को अथवा मांस-पेशियों का धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिए। जिस से शरीर में जो श्रान्ति वा थकावट आती है वह दूर हो जावे और शरीर शीतल होकर अपनी पूर्व की अवस्था में आजावे। क्योंकि व्यायाम करने में मांस पेशियों (पुट्ठों) पर बल पड़ता है वे थककर टूट तक जाते हैं। मर्दन करने से उनकी थकावट दूर होकर पुनः ठीक हो जाते हैं।

आयामो विविधोऽङ्गाना व्यायाम इति कीर्तितः ॥ धनुर्वेद ॥

शरीर के विविध अङ्गों का आयाम अर्थात् फैलाव, विकास अथवा वृद्धि के लिए जो श्रम वा चेष्टा की जाती है उसे व्यायाम कहते हैं।

साधारण व्यायाम—करनेवाले लोग केवल इसी बात का ध्यान रखते हैं कि उनके भुजदंड और जङ्घायें तैय्यार हो जायें और वक्षःस्थल (छाती-सीना) निकल आये वा उभर आये और विशाल हो जाये। पुट्ठे तैय्यार करना वा डौले बनाना उनके व्यायाम का उद्देश्य होता है। इसलिए इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे दण्ड, बैठक आदि कठिन से कठिन व्यायाम करते हैं। उनकी इच्छा के अनुसार उनके पुट्ठे (Muscles:) भी तैय्यार हो जाते हैं। उनका शरीर सुन्दर और दर्शनीय हो जाता है। किन्तु उनका स्वास्थ्य इतना व्यायाम करने पर भी अच्छा नहीं बनता। इसलिए व्यायाम तो वही ठीक है कि जिसके करने से शरीर सुन्दर, सुडौल, सुदृढ़ और बलवान् भी हो और साथ ही स्वास्थ्य भी ठीक रहे और मस्तिष्क भी ठीक काम करता हो। उसमें

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आलस्य, तन्द्रा और तमोगुण की प्रधानता न हो। शरीर, मन आदि सदा उत्साह से भरे रहें।

व्यायाम मात्रानुसार ही करें

चरक शास्त्र में मात्रा के अनुसार व्यायाम करने पर बड़ा बल दिया है मात्रा से अधिक व्यायाम करने से अनेक हानियां हो जाती हैं। व्यायाम—अपनी शक्ति, बल के अनुसार तथा अपनी शारीरिक अवस्था को विचार कर करना चाहिए। व्यायाम उतना ही करना चाहिए जिससे शरीर अत्यधिक श्रान्त न होने पाये। अज्ञान के कारण वा सामूहिक स्पर्धा (हार-जीत) के रस्साकसी, दौड़, फुटबाल आदि खेलों में व्यायाम शक्ति से बाहर होने की संभावना सदैव रहती है। व्यक्तिगत विचारपूर्वक व्यायाम करने से व्यायाम के अधिक होने का भय नहीं रहता। कभी-कभी कोई व्यायाम की पुस्तक पढ़कर वा व्याख्यान सुनकर प्रथम ही दिन अधिक व्यायाम कर डालता है अथवा अपने से अत्यधिक बलवान् व्यक्ति से मल्लयुद्ध (कुश्ती) करने से अथवा किसी साथी के साथ अधिक व्यायाम करने की स्पर्धा (शर्त) में व्यायाम का अति योग (अत्यधिकता) कर डालता है। जिससे कभी-कभी बड़ी भयंकर हानियां हो जाती हैं।

व्यायाम की मात्रा के विषय में महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुंभिरात्महितैषिभिः।
बलस्यार्धेन कर्त्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा॥

(चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४६)

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों को प्रतिदिन सभी ऋतुओं में अपने बल से आधा व्यायाम करना चाहिये। अन्यथा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिक व्यायाम किया हुआ हानि करता है। यहां तक कि मृत्यु की भी सम्भावना रहती है।

अत्यधिक व्यायाम से हानियां

श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते॥
(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३२)

अति व्यायाम करने से शरीर बिना ही परिश्रम किये थका रहता है। उसमें पीड़ा होती है। मन और इन्द्रियों में ग्लानि सी रहती है। रस, रक्त आदि धातुओं का क्षय अर्थात् नाश होकर मनुष्य निर्बल हो जाता है। यहां तक कि क्षय (तपेदिक) भी हो जाता है। तृष्णारोग (अधिक प्यास लगना), रक्तपित्त (नाक, मुख वा अन्य किसी अङ्ग से) रक्त का बाहर निकलना, प्रतामक-श्वास (दमा), कास (खांसी), ज्वर और वमन (उलटी) आदि रोग हो जाते हैं। "अतिव्यायामतो रोगा मानवानां भवन्ति हि।" (चरकसंहिता)।

अर्थात्–अति व्यायाम करनेवाले मनुष्य अनेक रोगों में फंस जाते हैं। जो लोग "अधिकस्याधिकं फलम्" के अनुसार यह समझ कर कि अधिक व्यायाम से अधिक बल बढ़ता है मात्रा से अधिक व्यायाम कर डालते हैं, वे बड़ी भयङ्कर भूल करते हैं और इसीलिए अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। बिना विचारे अन्धाधुन्ध व्यायाम का परिणाम सदैव हानिकारक ही होता है। अधिक व्यायाम से शरीर दुर्बल, रोगी, भद्दा और कुरूप हो जाता है। बुद्धि और स्मरणशक्ति घट जाती है। मस्तिष्क को बड़ी हानि पहुंचती है। अनियमित और मात्रा से अधिक अच्छी से अच्छी वस्तु का भी उपयोग हानिकारक ही होता है। इसलिए "अति सर्वत्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्जयेत्" अति सर्वत्र वर्जित है। इस विषय में एक सच्ची घटना दी जाती है—

हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के समय में जब अखाड़ों में जाने और व्यायाम करने का प्रचार बढ़ा, तब अपने माता-पिता के उत्साहित करने पर एक युवक ने अखाड़े में जाना आरम्भ किया। थोड़े से दिनों में कई सौ दण्ड-बैठक निकालने लगा। थोड़ा-थोड़ा मल्ल युद्ध (कुश्ती) भी करने लगा। एक दिन अपने से द्विगुण शक्तिवाले युवक से मल्लयुद्ध किया। उसी दिन से उसकी छाती में साधारण सी पीड़ा होने लग गई। उसने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और पहले की भाँति अखाड़े में जाता रहा। पुष्टिकारक भोजन करने और नियमित व्यायाम करते रहने पर भी उसका शरीर निर्बल होने लगा। भोजन के पश्चात् दोपहर को शरीर उष्ण हो जाया करता और हाथ-पैरों के तलवे हर समय जलने लगे। खांसी भी हो गई। फिर भी अखाड़े में जाने का नियम नहीं छोड़ा। जब शरीर अत्यन्त निर्बल होगया और छाती की पीड़ा तथा खांसी बहुत तङ्ग करने लगी और ज्वर भी हर समय रहने लगा। पुनः वैद्य-डाक्टरों का द्वार खटखटाया। अनेक प्रकार की चिकित्सायें कीं, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मुख से हर समय रक्त निकलने लगा। ज्वर और छाती की पीड़ा के कारण न रात को नींद आती थी और न दिन में ही एक क्षण आराम से बीतता था। अन्त में यह होनहार युवक व्यायाम के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण अनेक प्रकार के कष्ट सहकर विकराल काल का ग्रास हो गया। आशा है कि इस दुर्घटना से मात्रा से अधिक व्यायाम करने वाले लोग शिक्षा ग्रहण करेंगे।

इसलिए महर्षि पतञ्जलि जी ने चरक शास्त्र में लिखा है—

व्यायामहास्यभाष्याध्वप्राग्यधर्मप्रजागरान्।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया॥

(सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३३)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यायाम, हास्य (हंसना), भाष्य (बोलना), मार्ग चलना, मैथुन तथा रात्रिजागरण का चाहे अभ्यास भी हो, बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि इनका अधिक मात्रा में सेवन न करे।

एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते।
गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति॥

(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३४)

इन्हें तथा इस प्रकार से अन्य कार्यों का जो अतिमात्रा में सेवन करता है वह शीघ्र ही रोग एवं मृत्यु का ग्रास होता है। जैसे सिंह हाथी को मारकर पुनः उसे खींचकर दूसरी जगह ले जाना चाहता है अर्थात् मात्रा से अधिक उसे खींचने में शक्ति लगाता है, तो उसका परिणाम यही होता है कि वह मर जाता है।

व्यायाम की मात्रा

अपने बल वा शक्ति से आधा व्यायाम करना चाहिये।

महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में बलार्ध के ये लक्षण लिखते हैं—

हृदिस्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद्बलार्धं विनिर्दिशेत्॥

(चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४७)

हृदय स्थान में ठहरा हुआ वायु जब व्यायाम करनेवाले मनुष्य के कण्ठ तक पहुंच जाये वा मुख में आने लगे अर्थात् फुफ्फुस (फेफड़े) के अन्तिम सिरे तक छोटे-छोटे कोष्ठकों में भी जब व्यायाम करते हुए श्वास-प्रश्वास होने लगे, उसे बलार्ध जानना चाहिये।

व्यायाम की अधिकता से बचने के लिए और उचित मात्रा जानने के लिए धन्वन्तरि जी ने बहुत उत्तम विधि बतलाई है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैसे तो एक मनुष्य दूसरे की अपेक्षा बहुत अधिक व्यायाम कर सकता है इसलिए सबका बलार्ध पृथक्-पृथक् है। अब भी सम्भव है कोई बलार्ध मात्रा को न समझ सके। अतः इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया जाता है।

व्यायाम करते समय मुख को बन्द रखना चाहिये और श्वास सदैव नासिका से ही लेना चाहिये। जब व्यायाम करते-करते श्वास चढ़ जायें और मुख खोलने के लिए विवश होना पड़े तो समझ लेना चाहिये कि पर्याप्त व्यायाम हो चुका। स्वस्थ की दशा में यह सर्वथा ठीक है, किन्तु नासा रोग या कफ रोग के कारण नासिका बन्द हो तो यह परीक्षा ठीक नहीं। तब दूसरी विधि का आश्रय लेना पड़ता है। महर्षि धन्वन्तरि जी ने दूसरी विधि भी लिखी है-

कक्षाललाटनासासु हस्तपादादिसन्धिषु ।
प्रस्वेदान्मुखशोषाच्च बलार्धं तद्विनिर्दिशेत् ॥
(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४७)

जब कक्षा (बगल), मस्तक, नासिका तथा हाथ-पैर आदि की सन्धियों (जोड़) में स्वेद (पसीना) आने लगे और मुख सूखने लगे तो बलार्ध समझकर व्यायाम बन्द कर देना चाहिए।

बलार्ध का एक आशय यह भी है—कि जिस मनुष्य में १०० दण्ड निकालने की शक्ति है, वह ५० दण्ड निकाले। इसे बलार्ध समझना चाहिए।

अधिक व्यायाम से बचने के लिए एक बात का सदैव ध्यान रखें, व्यायाम करते समय आपका मुख न बिगड़ने पावे। अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करने से मुख की आकृति बिगड़ जाती है। इसलिए अपने बल से अधिक व्यायाम करने से बचने का यह एक अच्छा ढंग है।

उपर्युक्त बातों को पढ़कर कोई सज्जन उलटी शिक्षा ग्रहण न

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करे और व्यायाम की मात्रा सर्वथा न घटा दे। जहां अधिक व्यायाम करने से हानि होती है वहाँ थोड़ा व्यायाम करने से कोई लाभ भी नहीं होता। जसे शहरों में लोग खेलने की क्लबें बनाते हैं, वहां जाकर बाबू लोग थोड़ी बहुत देर खेल आते हैं और इसी को व्यायाम समझते हैं। ऐसे व्यायामों से कोई लाभ नहीं होता। जिस प्रकार अधिक भोजन से हानि और रोग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार बहुत थोड़े भोजन से भी मनुष्य निर्बल हो जाता है और उसका शरीर कदापि हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। जिस प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ भोजन शरीर को स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है, इसी प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ व्यायाम भी हमारे शरीर को सुदृढ़, स्वस्थ और बलवान् बनाता है।

प्रारम्भ में ही अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। आरम्भ में थोड़ा व्यायाम करें, पुनः शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें जैसे—कोई व्यक्ति पहले दिन १० दण्ड करता है तो उसे अगले दिन एक दण्ड बढ़ा देना चाहिए, अथवा सप्ताह में १ दण्ड बढ़ाने के नियम से वह वर्ष भर में ६० और दो वर्ष में ११० दण्ड प्रतिदिन करने का अभ्यास कर सकता है। इसी प्रकार अपने बलाबल को विचार कर तथा भोजन के अनुसार ही व्यायाम को शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये। बहुत बार व्यायाम के नये प्रेमी नवयुवक इस विषय में बड़ी शीघ्रता करते हैं। प्रथम तो पहिले ही दिन वे अपनी शक्ति से अधिक दण्ड आदि व्यायाम करते हैं। फिर उत्साह में ५-५ वा १०-१० दण्ड प्रतिदिन बढ़ाने का यत्न करते हैं। उनका यह खेल २-४ दिन तो चल जाता है, किन्तु पीछे उनका यह बढ़ाने का नियम जब टूट जाता है और मन भर जाता है, तो पहले जैसी रुचि और उत्साह नहीं रहता और पुनः वे व्यायाम को छोड़ बैठते हैं। इसलिये थोड़े व्यायाम से आरम्भ करके शनैः-शनैः बढ़ाना हितकर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। इस बात का सदा ध्यान रखें कि चाहे दण्ड, बैठक आदि कोई भी व्यायाम करें, किन्तु एक बार में इतना ही करें जितना सुख-पूर्वक आप कर सकते हैं। आपका श्वास नहीं फूलना चाहिये। श्वास फूलने या उखड़ने अथवा नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी व्यायाम करते रहने से शरीर के साथ बड़ा अन्याय होता है और अनेक प्रकार की हानियां होती हैं, जिनको पहले बताया जा चुका है।

व्यायाम की मात्रा के विषय में विदेश के प्रसिद्ध पहलवान मिस्टर सैंडो लिखते हैं—

"व्यायाम से यदि बल प्राप्त करना चाहते हो तो व्यायाम थोड़ा बलानुसार करो, परन्तु नियमानुकूल करो। यह नहीं चाहिये कि एक दिन तो १०० दण्ड निकाल लिये और अगले दिन एक भी नहीं।"

शेख बू अली सीना का कथन है—

"यदि व्यायाम समतापूर्वक यथेच्छा और यथोचित समय पर किया जाये तो सर्वोपायों से लाभदायक हो सकता है, परन्तु जिस व्यायाम को समतापूर्वक न किया जाये वह दुर्बलता तथा शक्ति-हीनता का कारण होता है।"

इसी विषय में प्रोफेसर राममूर्ति जी का आदेश है—

"व्यायाम का अभ्यास क्रमशः करना चाहिए, एकदम बढ़ा देना उचित नहीं। जो व्यायाम किया जाये, धीरे-धीरे अंगों पर पूरा जोर देकर किया जाये।"

व्यायाम करने से पुट्ठों (मांस पेशियों) में पीड़ा उत्पन्न होती है। उन में पीड़ा के साथ साथ एक प्रकार का तनाव वा अकड़ाव-सा होता है। बहुत से लोग उस पीड़ा आदि के कारण को न समझकर व्यायाम करना बन्द कर देते हैं। वास्तव में इस प्रकार व्यायाम से

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न हुई पुट्ठों की पीड़ा पुट्ठों में नये बल प्राप्त करने की इच्छा या भूख को प्रकट करती है अतः इस पीड़ा से डरकर व्यायाम छोड़ देना भारी भूल है। एक-दो सप्ताह निरन्तर व्यायाम करते रहने से पीड़ा स्वयं शांत हो जाती है। यह व्यायाम से ही हुई है और व्यायाम से ही चली जाती है। अतः इसकी चिन्ता छोड़कर नित्य व्यायाम करते रहना चाहिये।

नियमित व्यायाम

जो व्यायाम नियमों को ध्यान में रखकर किया जाता है, उसे नियमित व्यायाम कहते हैं।

जो व्यायाम प्रति-दिन अपनी शक्ति, मात्रा, भोजन, आयु आदि को ध्यान में रखकर नियत समय और उचित स्थान पर श्रद्धापूर्वक किया जाता है उससे पूरा-पूरा लाभ होता है। कोई व्यक्ति यदि एक दिन व्यायाम करके दो दिन व्यायाम नहीं करता अथवा दो सप्ताह करके पुनः एक सप्ताह के लिए छोड़ देता है और एक दिन प्रातः ६ बजे, दूसरे दिन ५ बजे और तीसरे दिन ७ बजे करता है और किसी दिन अधिक और किसी दिन न्यून व्यायाम करता है उसे इस प्रकार व्यायाम करने से यथेष्ट लाभ नहीं होता, किन्तु लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

मिस्टर सैंडो पहलवान लिखते हैं—

"सड़क कूटनेवाले सारा दिन (सड़कें कूटते-कूटते। मानो व्यायाम ही करते रहते हैं। परन्तु वह एक दूसरे की अपेक्षा ऐसे हृष्ट-पुष्ट नहीं होते, जैसा कि होना चाहिये। कारण यह है कि उनका सड़क का कूटना इस अभिप्राय से नहीं होता, कि वह बल और स्वास्थ्य प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु वे तो उदर-पूर्ति के लिए यत्न कर रहे हैं। इस पर भी वे व्यायाम न करनेवालों से स्वस्थ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और बलवान् होते हैं। क्योंकि व्यायाम (परिश्रम) अपना गुण तो अवश्य करता है। यदि इसके साथ मन की शक्ति भी होतो तो बस फिर क्या था।"

सड़क कूटनेवालों के समान लोहार भी दिन भर हथौड़ा चलाकर परिश्रम करता है, किन्तु उसके भुजदण्ड और पुट्ठे नियमित व्यायाम करनेवाले पहलवान के समान सुदृढ़ और पुष्ट नहीं होते और न ही उसका शरीर वैसा स्वस्थ और बलयुक्त होता है। आलसी मनुष्यों की अपेक्षा तो लोहार आदि का शरीर स्वस्थ और दृढ़ ही होता है। क्योंकि परिश्रम वा कार्य का फल तो उसे मिलता ही है। किन्तु व्यायाम करनेवाला पहलवान नियम से प्रतिदिन सायं-प्रातः कुछ काल ही व्यायाम करता है। यह नियमित व्यायाम उसके शरीर को सुडौल, सुन्दर, स्वस्थ बलयुक्त बना देता है। क्योंकि व्यायाम-व्यायाम ही है और कार्य-कार्य ही है। लोहार वा सड़क कूटनेवाले के कार्य को अनियमित व्यायाम कहा जा सकता है। क्योंकि वह बल और स्वास्थ्य वृद्धि के लिये नहीं किया जाता और न ही उसमें स्वास्थ्य के किसी नियम का ध्यान रखा जाता है।

व्यायाम और इच्छा शक्ति

व्यायाम से पूरा लाभ उठाने के लिए पूर्ण मन लगाकर व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम करते समय अपनी इच्छा को पूर्णतया शरीर के अङ्गों की ओर लगाना चाहिये। जिस मांस-पेशी वा शरीर के अङ्ग को जितना दृढ़ और स्वस्थ करना चाहें, उस अङ्ग वा पेशी में व्यायाम करते समय उतनी ही इच्छा को प्रविष्ट कर दें वा लगायें। इच्छारहित व्यायाम जो भार समझकर किया जाता है, उससे कोई लाभ नहीं होता। व्यायाम के नाम से घबराना नहीं चाहिये, इसे मन लगाकर और आनन्द ले लेकर करना चाहिये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रोफेसर राममूर्ति लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय मन को स्थिर रखना चाहिये और शरीर के प्रत्येक भाग पर व्यायाम के लाभ का चिन्तन करते रहें।"

सैण्डो पहलवान भी इस विषय में लिखते हैं—

"एक मनुष्य जो हृदय के साथ व्यायाम करता है, उसका थोड़ा बहुत व्यायाम भी उसको अधिक स्वस्थ और सुदृढ़ बनाता है, उस व्यक्ति की अपेक्षा जो व्यायाम तो बहुत करता है, किन्तु मन से नहीं करता। जिस अङ्ग का व्यायाम करें, मन भी साथ ही साथ यह अनुभव करे कि अमुक अङ्ग बल प्राप्त कर रहा है।

इस प्रकार व्यायाम करने से मन की दृढ़ता प्रबल भावना के कारण मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यंग बड़े शीघ्र ही सुन्दर, सुदृढ़ स्वस्थ और सुडौल बन जाते हैं। अतः व्यायाम करने के समय विशेषतया ब्रह्मचारी को एकाग्रचित्त होकर यह दृढ़ भावना रखनी चाहिये कि मेरी नस-नस और अङ्ग-प्रत्यंग में बल, तेज, वीर्य, वीरता, आरोग्य, स्वास्थ्य, सुन्दरता, स्थिरता और पराक्रम शक्ति आदि सब सद्गुण प्रवेश कर रहे हैं। मेरा शरीर उन्नत, हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ हो रहा है। इस संकल्प का असाधारण प्रभाव पड़ता है, जिसको मनुष्य अनुभव से ही जान सकता है। जो लोग बहुत शीघ्रता और द्रुतगति से व्यायाम करते हैं और व्यायाम में मन की शक्ति का प्रयोग नहीं करते, वे बहुत थोड़ा लाभ उठाते हैं। अतः व्यर्थ का भार (बेगार) समझकर व्यायाम करना केवल मूर्खता ही है। इसलिये शनैः शनैः सावधानी से विधिपूर्वक मन लगाकर व्यायाम करना चाहिये। प्रोफेसर राममूर्ति तथा सैण्डो ने इसी कार्य के लिए बड़े शीशे का प्रयोग करना लिखा है। वे लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय सामने बड़ा शीशा रखकर उसमें शरीर के अङ्गों को ध्यानपूर्वक देखते हुए व्यायाम करने से शरीर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुन्दर और सुडौल बन जाता है।

व्यायाम का समय

प्रत्येक व्यक्ति को सन्ध्या के समान प्रातः और सायं दोनों ही समय व्यायाम करना चाहिये। ये दोनों ही समय अच्छे हैं, अपेक्षाकृत प्रातःकाल का समय अधिक अच्छा है और ब्रह्मचर्य की साधना के लिए अच्छी लगन के ब्रह्मचारी रात को सोने के समय भी कठोर थकाने वाला व्यायाम करके सोते हैं। इससे स्वप्नरहित गाढ़ निद्रा आती है और स्वप्नदोष आदि के द्वारा वीर्य नाश नहीं होता। सायंकाल वा सोते समय जब भी व्यायाम करें, यह अवश्य ध्यान रक्खें कि खाया हुआ भोजन पच चुका हो और पेट हल्का हो अर्थात् मल-मूत्र त्याग के पश्चात् ही व्यायाम करना चाहिये। ग्रीष्म-काल में तो प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही निबट जाना चाहिये। गर्मी की ऋतु में सूर्योदय के पश्चात् तथा सायंकाल कठोर और बहुत अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। प्रातःकाल तो सदैव स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न करनेवाला हल्का व्यायाम दौड़, आसन आदि करना चाहिये। क्योंकि प्रातःकाल बहुत अधिक और कठोर व्यायाम करने से श्रम (थकावट) के कारण आलस्य, तन्द्रा वा निद्रा तंग करती वा सताती है, जिससे दिन के कार्यों में बाधा पड़ती है। व्यायाम सदैव स्नान से पूर्व करना ही अच्छा रहता है, किन्तु व्यायाम के पीछे कुछ देर, ठहरकर शरीर को ठण्डा करके स्नान करना चाहिये। व्यायाम करने से जब शरीर उष्ण हो और स्वेद (पसीना) आया हुआ हो तो उसी समय स्नान करने से हानि होने की सम्भावना है। किसी विशेष अवस्था वा शीतकाल में स्नान के पीछे भी व्यायाम किया जा सकता है। यदि स्नान के पीछे व्यायाम करना हो तो सन्ध्या से निबटकर ही करना चाहिये। वैसे स्नान के पश्चात् व्यायाम करने से आलस्य रहता है और व्यायाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के पश्चात् स्नान करने से शरीर में स्फूर्ति, स्वच्छता और सुन्दरता आती है तथा व्यायाम का श्रम (थकावट) भी दूर हो जाता है और जो व्यायाम के द्वारा शरीर के रोमकूपों से दूषित मल निकला करता है, वह स्नान के से धुलकर शरीर शुद्ध और पवित्र हो जाता है। इसलिए स्नान से पूर्व ही व्यायाम करना हितकर है। शीत-काल वा वसन्त ऋतु में साधारण लोगों के लिए भी और अच्छा पुष्टिकारक भोजन करने वालों के लिए सदैव ही व्यायाम लाभ-दायक है।

महर्षि धन्वतरि महाराज लिखते हैं—

व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्धभोजिनाम्।
स च शीते वसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः॥

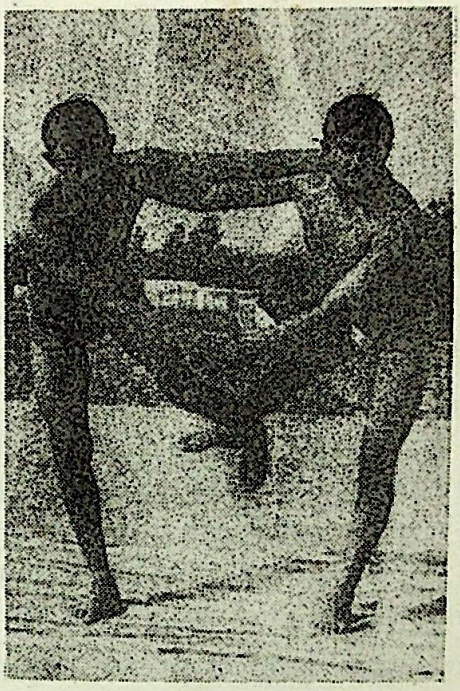
(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४५)

जो मनुष्य बलवान् हैं और जिनको घी, दूध, बादाम आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में खाने को मिलते हैं, ऐसे लोगों के लिए तो व्यायाम सदैव ही लाभदायक है। उनके लिए सदा आनन्द ही आनन्द है। किन्तु वसन्त और शीत-ऋतु व्यायाम करने के विशेष ऋतु हैं। इन ऋतुओं में व्यायाम करना अत्यन्त लाभदायक माना गया है।

ऋषियों की इस आज्ञा के अनुसार व्यायाम के पश्चात् स्निग्ध बलवर्द्धक पदार्थ अवश्य खाने चाहियें। जिन लोगों को व्यायाम के पश्चात् पुष्टिकारक भोजन खाने को नहीं मिलता, उन्हें अधिक व्यायाम न करके थोड़ा व्यायाम करना चाहिये; नहीं तो शरीर क्षीण होने लगता है। आसनों के व्यायाम में पौष्टिक भोजन के खाने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी दूसरे ढंग के कठोर व्यायामों में है। ऐसे लोगों को अखाड़े में जाकर व्यर्थ में सूखी हड्डियां नहीं रगड़वानी चाहियें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha



मल्लयुद्ध, मुलतानी दाव

व्यायाम करनेवाले का भोजन

गोदुग्ध अथवा उससे बने दही आदि पदार्थ, बादाम इत्यादि वा कोई अन्य सात्विक पदार्थ प्रातःकाल व्यायाम के पश्चात् खा लेना चाहिये। क्योंकि व्यायाम के पीछे भूख लगा करती है। खाली पेट रहना अच्छा नहीं। भूखा रहने से हानि होती है।

ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—"विद्यार्थी प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करें और सदैव कुएं के ताजे जल से स्नान करें। स्नान से निवृत्त हो यथा विश्वास परमात्मा का ध्यान करें। उपासना के पश्चात् थोड़ासा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
जलपान (प्रातराश) करें। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है, कि गेहूं का दलिया रंधवाकर यथारुचि मीठा या नमक डालकर (वा वैसे ही) खावें। फिर अध्ययन करें।"

किन्तु यह ध्यान रखें कि व्यायाम की उष्णता दूर हो जाने पर जब शरीर सर्वथा शीतल (ठण्डा) हो जाये, तभी कुछ थोड़ासा खाना चाहिये। अधिक पेट भरकर खाना भी उस समय अच्छा नहीं। व्यायाम के पश्चात् तत्काल खाना भी बहुत हानि पहुँचाता है। इसलिए कुछ ठहरकर खाना चाहिये। व्यायामी मनुष्य का भोजन सदैव नियत समय पर सात्विक, सरल (सादा), पौष्टिक; शीघ्र पचनेवाला (हलका) और अल्पमात्रा में होना चाहिये। यह समझकर कि मेरी जठराग्नि व्यायाम के कारण तीव्र और प्रदीप्त है, मैं अधिक भोजन पचा सकता हूं, व्यायामी मनुष्य को अधिक भोजन नहीं ठूंस लेना चाहिये और मांसादि अभक्ष्य, गांजा भांग शराब आदि मादक द्रव्य, मिर्च खटाई आदि चटपटे हानि-कारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। कुछ लोग तो घृत दुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाकर ही व्यायाम करने लग जाते हैं। कुछ लोग साथ-साथ खाते भी जाते हैं और व्यायाम भी करते जाते हैं। ऐसे लोगों का यही विचार है कि खा-पीकर अथवा खाते-खाते व्यायाम करने से खाया-पीया सब पच जाता है और शक्ति बढ़ती है। यह उनकी बड़ी भयंकर भूल है। इस प्रकार करने से बड़ी हानि होती है। ऐसे लोग स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित और महामूढ़ होते हैं। ब्रह्मचारी अथवा किसी भी स्वास्थ्य-प्रेमी को ऐसे मूर्खों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये।

व्यायाम करके उसी समय बैठना, लेटना, सो जाना वा खड़े रहना हानिकारक है। जब तक शरीर और श्वास अपनी पहली स्वाभाविक अवस्था में न आजायें और शरीर को उष्णता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यून न हो जाये, तब तक शरीर के अवयवों पर हाथ फेरते हुए शनैः-शनैः मन्दगति से टहलते रहना चाहिये और जो व्यायाम से आये हुए स्वेद हों उन्हें तत्काल पोंछ डालना चाहिये। जब तक पसीने सूख न जायें और शरीर ठण्डा न हो, तब तक वेग से चलने वाले वायु से भी शरीर को बचाना चाहिये। व्यायाम करके तत्काल ही लघुशङ्का (मूत्र-त्याग) करना लाभदायक और आवश्यक है। इससे शरीर की व्यर्थ की उष्णता निकल जाती है, मूत्राशय के रोग नहीं होते, शरीर और मन दोनों शान्त होते हैं।

आरम्भ आरम्भ में व्यायाम के पश्चात् प्यास लगा करती है। जो व्यायाम से होनेवाले लाभ को प्रकट करती है। कोई-कोई मूर्ख इस प्यास को बुझाने के लिए तत्काल ही जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ पी लेते हैं, जो अत्यन्त हानिकारक हैं। क्योंकि व्यायाम से जो लाभ होता है, ऐसे लोग जल पीकर उसे समाप्त कर देते हैं। व्यायाम के पश्चात् जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ नहीं पीना चाहिये। यदि पीना ही हो और प्रभु किसी को दें, तो गाय का धारोष्ण दूध अथवा बादाम आदि रगड़ कर पीने चाहिय। किन्तु ये भी शरीर के शीतल होने पर ही पीने चाहियें। इनके पीने से जहां प्यास और भूख दोनों शान्त होती हैं, वहां शरीर को बल और शक्ति भी मिलती है।

भोजन करने के पश्चात् न्यून से न्यून ४ घण्टा पीछे व्यायाम करना चाहिये और व्यायाम करने से १ घण्टा पीछे भोजन करना चाहिये।

किन-किन को व्यायाम न करना चाहिये ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चरक शास्त्र में लिखा है—

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रोधशोकभयायासैः क्लान्ता ये चापि मानवाः।
ते वर्जयेयुर्व्यायामं क्षुधितास्तृषिताश्च ये॥

(सूत्रस्थान अ० ७)

अर्थ-ज्वर आदि रोगों में, क्रोध में, शोक में, भय की अवस्था में और बहुत भूख और प्यास लगने पर व्यायाम नहीं करना चाहिये।

इसी प्रकार जिस समय पेट बहुत भरा हुआ अथवा बहुत क्षुधा (भूख) हो, उस समय भी व्यायाम करना वर्जित है।

व्यायाम समय के वस्त्र

व्यायाम के समय का सबसे अच्छा वस्त्र (पोशाक) लङ्गोट ही है। वैसे तो व्यायाम करते समय लोग लङ्गोट के अतिरिक्त रूमाली, कच्छ, जांघिया, बनियान, धोती, पाजामा, पैंट तथा और भी अन्य अंग्रेजी ढंग के वस्त्र पहनते हैं। किन्तु बनियान, धोती, पाजामा, पतलून, आदि पहनकर व्यायाम करना तो व्यायाम के साथ हास्य ही करना है। यदि ऐसे लोग रजाई ओढ़कर विस्तर पर ही पड़े रहें तो व्यायाम की दुर्गति न हो। व्यायाम करने के समय शरीर खुला हुआ होना चाहिये और व्यायाम का वस्त्र शरीर में बंधा हुआ और सटा हुआ अर्थात् चुस्त भी हो, किन्तु अधिक खिचा हुआ अर्थात् रक्त में किसी प्रकार की बाधा डालने वाला न हो। जैसे—पहलवानी जांघिया मल्लयुद्ध (कुश्ती) के लिए तो अच्छा रहता है, किन्तु इसे पहनकर व्यायाम करने में कठिनाई और कष्ट होता है। इसी प्रकार ढीले-ढाले कच्छे वा निकर भी व्यायाम के लिए उपयुक्त नहीं। इनके पहनने से व्यायाम के समय उचित स्फूर्ति और उत्साह नहीं होता। लङ्गोट को भी बहुत खींच कर नहीं बांधना चाहिये। लङ्गोट को कटि (कमर) में कसकर बांधने से बहुत हानि होती है। क्योंकि व्यायाम करते समय सारे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरीर में शिर से पग तक रक्त शीघ्रतापूर्वक दौड़ने लगता है। यदि उस समय कटि में लंगोट बहुत कसकर बंधा हुआ है तो वह रक्त की तीव्र गति को रोक देता है और रक्त की गति में बाधा पड़ने से स्वास्थ्य भी बिगड़ता और आयु भी घटती है। लंगोट वा कोई अन्य वस्त्र जो बहुत कसकर बाँधा जाता है, व्यायाम के समय हानि करता है। इसलिए लंगोट न बहुत ही ढीला और न ही बहुत खींच वा कसकर बांधना चाहिए और व्यायाम के पश्चात् लंगोट को तत्काल नहीं खोल देना चाहिए। ब्रह्मचारी को तो लंगोट वा कौपीन के बिना क्षणभर भी नहीं रहना चाहिए। एक विशेष बात यह है कि प्रायः भारत में व्यायाम करनेवालों के वस्त्र बहुत ही मलिन (गन्दे) रहा करते हैं। उनके वस्त्रों में से दुर्गन्ध आने लगती है, जो अत्यन्त ही हानिकारक है। इससे अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिए वस्त्रों को शीघ्र-शीघ्र साबुन आदि से धो डालना चाहिए और सदैव शुद्ध ही रखना चाहिए।

व्यायाम का स्थान

व्यायाम करने का स्थान स्वच्छ, पवित्र, स्वास्थ्यप्रद और खुला हुआ हो। वायु बिना रोक-टोक के भली-भांति आता जाता हो। वहां का वायु ताजा और शीतल हो, उस स्थान पर अथवा इधर-उधर कहीं निकट गलने सड़ने वाली वस्तुयें न हों, किसी प्रकार की दुर्गन्ध न आती हो, वहां की शुद्धि (सफाई) भी भली-भांति रखनी चाहिए। दुर्गन्धयुक्त स्थानों में कभी भूलकर भी व्यायाम नहीं करना चाहिए। ग्राम वा नगर से बाहर जंगलों, क्षेत्रों और उद्यान वाटिकाओं (बाग-बगीचे) का वायु और स्थान अधिक स्वच्छ और पवित्र होता है। किसी बड़ी नदी, जलाशय और तडाग का तट भी अधिक स्वास्थ्यप्रद होने से व्यायाम के लिए

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
उपयुक्त है। ऐसे ही स्थानों को व्यायाम करने के लिए चुनें तो अधिक लाभ होगा। जो व्यायामशाला वा अखाड़े वाटिका वा फुलवाड़ी में होते हैं, वे बहुत ही अच्छे होते हैं। बात तो तब है, जब विचारशील धनी-मानी लोग वा सार्वजनिक सभायें (सोसाइटियां), पञ्चायतें अथवा हमारी राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक ग्राम वा नगर के साथ बस्ती से कुछ दूर ऐसी व्यायामशालायें वा साधना मन्दिर बनायें, जिनमें सुगन्धित फूलों के पौधे लगे हुए हों। बहुत सुन्दर-सुगन्धित फूलों की फुलवाड़ी व्यायामशाला के चहुँ ओर लगी हुई हो। व्यायामशाला के ऊपर लतायें चढ़ी हुई हों और वहां प्रतिदिन नियम से सुगन्धित सामग्री से अग्निहोत्र (हवन) होता हो। व्यायामशाला के अन्दर हनुमान्, भीष्म, भीम, अर्जुन, शंकर और दयानन्द आदि वीर योद्धाओं और आदर्श ब्रह्मचारियों के चित्र भी लगे हुए हों तो ऐसे स्थान पर प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा वा रुचि व्यायाम करने की होती है।

वैसे व्यायाम एक प्रकार की तपस्या वा साधना है और किसी प्रकार की साधना वा तपस्या एकान्त में ही अच्छी होती है। इस लिए व्यायाम करने का स्थान नगर वा बस्ती से पृथक् ही होना चाहिये। जहां तक सम्भव हो, व्यायामशाला वा व्यायाम का स्थान खुला, सुरक्षित, रमणीय और एकान्त में हो। उसमें पानी का यथेष्ट प्रबन्ध हो। एक व्यक्ति के लिए व्यायाम के सब साधनों का जुटाना भी असम्भव है। व्यायामशाला में मुगदर, मोगरी, लाठी, तलवार आदि व्यायाम के साधन सुगमता से रखे जा सकते हैं। मनुष्य पर वायुमण्डल का प्रभाव भी बड़ा भारी पड़ता है। व्यायामशाला में जहां सभी व्यायाम करते हों, यदि वहां कोई व्यायाम न करने वाला पहुँच जाए, तो अन्य सबको व्यायाम करता देखकर उसकी भी इच्छा वा रुचि व्यायाम करने की होती है। परस्पर एक दूसरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
को देखकर व्यायाम करने का उत्साह बढ़ता है। प्रतिकूल विचारों वा परिस्थितियों के कारण आई हुई शिथिलता से किसी साथी का व्यायाम करने का नियम वा व्रत नहीं टूटता और व्यायाम करने की उत्सुकता सदैव बनी रहती है। व्यायामशाला के और भी अनेक लाभ हैं।

देश के सुदिन भी उसी दिन आयेंगे, जब नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में सर्वत्र व्यायामशालाएं बन जायेंगी और व्यायाम को शिक्षा का अंग बना दिया जायेगा। जहां व्यायामशाला आदि की सुविधा न हो, वहां अपनी सुविधा अनुसार बस्ती के बाहर एकान्त, शुद्ध वायुवाला स्थान व्यायाम के लिए चुन लेना चाहिए। कितने ही लोग अपने घरों वा दुकानों में, चौपाल के किसी भाग में वा ऐसे ही ग्राम के अन्दर अन्य स्थानों पर व्यायाम करने लगते हैं जहां का वायु स्वच्छ नहीं होता। आने जानेवाले लोग भी देखते हैं, व्यर्थ की भीड़ हो जाती है और जहां पर अधिक मनुष्य रहते हों वहां का वायु दूषित हो जाता है। प्रायः कुश्ती लड़नेवाले पहलवान भी अखाड़े नगर वा बस्ती के अन्दर रखते हैं यह उनकी भारी भूल है और इसी कारण वे अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। ब्रह्मचारी को तो इस विषय में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। वह सदैव ऐसे ही स्थान पर व्यायाम करे, जो शुद्ध, पवित्र और खुला हुआ हो और जहां का वायु शुद्ध और शीतल हो।

व्यायाम के प्रकार वा भेद

आजकल दो प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं। एक भारतीय, जिन्हें देशी व्यायाम कहना चाहिए। जिनमें दण्ड, बैठक, सपाट, मुगदर, गदा, मोगरी, लाठी, पट्टा, बनैटी, तलवार, मल्ल-युद्ध (कुस्ती), मल्लखम्भ का व्यायाम, तैरना, दौड़ना, कूदना, कबड्डी आदि खेल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
तथा अ सनों के सर्वश्रेष्ठ व्यायाम सम्मिलित हैं। इसी प्रकार और भी अनेक व्यायाम व्यक्तिगत और सांघिक प्रचलित हैं। दूसरे पाश्चात्य ढग के विदेशी व्यायाम वा खेल फुटबाल, बालीबाल, क्रिकेट, हाकी, टेनिस, बैडमिन्टन, सिगलबार,डबलबार, मुक्काबाजी (Boxing) और प्रोफेसर सैंडो के विशेष व्यायाम डम्बल और भार उठाना (Weight lifting) इत्यादि अनेक प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं।

कौनसा व्यायाम करें ?

व्यायाम करनेवालों के सम्मुख एक समस्या खड़ी हो जाती है, कि वे अपने लिए कौनसा व्यायाम चुनें। महर्षि धनवन्तरि जी इसका उत्तर देते हैं—

वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च।
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा. अ. २४ श्लोक ४८)

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी आयु, बल वा शक्ति शरीर, प्रकृति, देश वा स्थान, काल वा ऋतु और भोजन के अनुसार भलीभांति विचारकर उचित व्यायाम करे। जो उपरोक्त बातों को बिना विचारे व्यायाम करता है, वह अनेक प्रकार के रोगों में फंस जाता है।

क्योंकि व्यायाम का उद्देश्य मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा को सुन्दर, स्वस्थ, सुडौल, बलवान्, पवित्र और शक्तिशाली बनाना है। अतः जिस व्यायाम से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति हो, यथार्थ में उसी को व्यायाम कह सकते हैं और ऐसे सर्वगुणसम्पन्न व्यायाम हमारे प्राचीन पुरुषाओं के बहुत लम्बे अनुभव के पश्चात् प्रचलित किए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
हुए भारतीय देशी ढंग के व्यायाम ही हैं, जो हमें परम्परा से प्राप्त हैं।

महर्षि धन्वन्तार जी ने आयु, अवस्था आदि को विचारकर व्यायाम करने का आदेश दिया है। इसलिए सर्वप्रथम अपने शरीर की परीक्षा करके यह देखना चाहिए, कि मेरा कौनसा अग निर्बल है। जैसे—किसी का आमाशय (पेट) खराब है। भोजन ठीक नहीं पचता और पाचनशक्ति बिगड़ी हुई है, तो उसे अन्य अंगों के व्यायाम के साथ पेट के व्यायाम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार नियमित व्यायाम करने से उसका पेट बिना किसी औषध के ठीक हो जाएगा। जो व्यायामशील होकर भी वैद्यों और डाक्टरों के पास जाता है, उसका व्यायाम करना व्यर्थ ही है। क्यों कि व्यायाम करनेवाले को रोग नहीं हो सकते। यदि किसी भूल से हो भी जाए, तो व्यायाम के द्वारा ही उसे भगा देना चाहिए। प्रत्येक अङ्ग को सुदृढ़ और निरोग बनानेवाले प्राचीन तथा भारतीय ढंग के व्यायाम आसन आदि ही हैं। आज इनका महत्त्व योरुप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी भलीभांति समझने लगे हैं। इसलिए इनका प्रचार अमरीका आदि देशों में खूब बढ़ रहा है।

कलयुगी भीम प्रो० राममूर्ति इस विषय में अपना अनुभव लिखते हैं—

"पांच वर्ष की आयु में मुझे दमा के लक्षण दिखाई दिये। पिता जी की आज्ञा से मैंने व्यायाम करना आरम्भ कर दिया। जिसके कारण मेरा रोग दूर हो गया। मेरे सम्मुख भीमसेन, हनुमान् जैसे वीरों की मूर्तियां और चित्र सदैव रहा करते थे। मैं निरन्तर यही सोचा करता था कि इनके समान नहीं हो सकता,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो अपने शरीर को बलवान् तो अवश्य बना सकता हूं। दस वर्ष की आयु में स्थानीय कालिजियेट स्कूल के अखाड़े में भर्ती होगया। उन्हीं दिनों पहलवानों की कुश्ती की खबर सुनकर मेरे मन में भी उत्साह उत्पन्न होगया। मैं पहलवान बनने की इच्छा से व्यायाम करने लगा। ज्यों-ज्यों रुचि बढ़ती गई, त्यों-त्यों व्यायामों का अपना अभ्यास बढ़ाता गया। मैंने बड़े उत्साह से सैंडो का डम्बल घुमाना शुरु किया। परन्तु दो वर्ष के बाद ही उसे हताश होकर छोड़ दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि उससे मुझे विशेष लाभ नहीं प्राप्त हुआ। प्रारम्भ की आयु में मैंने हारीजेंटलबार पैरेललबार, रिंग आदि विदेशी ढंग की कसरतें कीं। कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें भी छोड़ दिया और देशी व्यायाम करने लगा। जितने देशीय प्रसिद्ध पहलवान मिलते गये, उन सबसे मैंने शारीरिक शक्ति बढ़ाने की भारतीय प्रथा और उपाय पूछे। परन्तु कोई सन्तोषप्रद विधि न बता सका। इस समय तक मैने इन्ट्रेन्स क्लास तक अंग्रेजी और थोड़ी संस्कृत पढ़ली थी। संस्कृत के पठन-पाठन में मुझे विशेष आनन्द आया। शारीरिक उन्नति के साथ-साथ अपने आर्य धर्म के शास्त्र मूल संस्कृत भाषा में पढ़े। गीता के साथ-साथ सुश्रुत आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थ भी देखे। अपने शास्त्र के अध्ययन में मुझे शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम उपाय सुझाई पड़ा। अतः समस्त विदेशी ढंग छोड़कर यही ग्रहण किया और घोषणा करदी, कि भीम, द्रोण, हनुमान्, अर्जुन आदि पूर्वजों के गौरव को बढ़ाने वाली यही सर्वश्रेष्ठ व्यायाम की प्रणाली है। इस देशी व्यायाम में सामान और औजार आवश्यक नहीं। धन का कुछ व्यय नहीं। वह अभ्यास ही सब कुछ है, जिससे शरीर के पुट्ठे दृढ होते हैं। पुट्ठों की दृढ़ता के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है। मैं प्रतिदिन ३ बजे से ६ बजे तक प्राणायाम करता था और १२ मील बिना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
विश्राम पैदल चलता था। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन एक घण्टा जल में तैरता था।"

वे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"आरम्भ-आरम्भ में व्यायाम करने में शरीर अकड़ने लगता था। बहुत वार मैं आधा व्यायाम करके ही छोड़ देता। अखाड़े में आना दूभर ज्ञात पड़ता। किन्तु तुरन्त ही मेरे मन के देवता जाग पड़ते। अपने आदर्श को सिद्ध करने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी। यदि ऐसा न कर सकू तो मृत्यु अच्छी। अन्त में दुर्बलताओं पर मुझे विजय मिली। धीरे-धीरे व्यायाम बढ़ने लगा, उस समय मेरे व्यायाम का ऐसा क्रम था—भोर ही उठकर घर से ३ कोस तक दौड़ता। एक फौजी खड़ा था, वहां जाकर खूब कुश्ती लड़ता। लड़कर फिर ३ कोस दौड़ता हुआ घर आता। यहाँ अपने चेलों के साथ कुश्ती लड़ता। उस समय अखाड़े में डेढ़ सौ जवान थे। उनसे कुश्ती करने के पश्चात् विश्राम कर, मैं तैरने चला जाता—। फिर सांझ को १५ सौ से लेकर ३ हजार तक दण्ड और ५००० से लेकर १०००० तक बैठक कर लेता, यही मेरा दैनिक व्यायाम था। इस का फल यह हुआ कि १६ वर्ष की आयु में मुझ में इतनी शक्ति हो गई, कि नारियल के पेड़ पर जोर से धक्का मारता, तो २-३ नारियल टूटकर भद-भद गिर पड़ते। इसी व्यायाम के कारण आज मेरी छाती ४१ इञ्च चौड़ी है और फैलाने पर ५७ इञ्च हो जाती है। शरीर की लम्बाई ५ फुट साढ़े छः इञ्च और तोल अढ़ाई मन है।"

राममूर्ति के बल के विषय में उस समय का एक लेखक लिखता है:—

"आज भारत के घर-घर में राममूर्ति का नाम फैला है। वह कलयुगी भीम है। हाथी को अपनी छाती पर चढ़ा लेते है। २५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
घोड़ों की शक्ति की दो-दो मोटरें रोक लेते हैं। छाती पर बड़ीसी चट्टान रखकर उस पर पत्थर को टुकड़े-टुकड़े करवा देते हैं। आधी इञ्च मोटी लोहे की जंजीर कमल की डण्डी के समान सहज में ही तोड़ देते हैं। ५० मनुष्यों से लदी हुई गाड़ी को देह पर से उतरवा देते हैं। यही नहीं, ७५ मील की तेजी से दौड़ती हुई हवा गाड़ी उनके शरीर पर से पार हो जाती है। यह अलौकिक बल है, दैवी शक्ति है, सुनकर आश्चर्य होता है, देखकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। किन्तु यह सब बातें देखने में असाध्य प्रतीत होने पर भी असम्भव नहीं हैं। यदि प्रयत्न करे तो प्रत्येक मनुष्य राममूर्ति के समान हो सकता है। प्रयत्न भी हो और सच्ची लग्न भी हो।"

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि राममूर्ति बाल्यकाल में श्वास रोग के रोगी थे। वे अपनी देह की निर्बलता पर बड़े दुःखी रहते थे। भीम, लक्ष्मण, हनुमान् आदि वीर योद्धाओं की कथा सुनकर उनके मन में सच्ची लग्न उत्पन्न हुई। उन्होंने व्यायाम को अपने जीवन का अङ्ग बनाया। वे ब्रह्मचर्य के कट्टर पक्षपाती थे शारीरिक और मानसिक पवित्रता को ब्रह्मचर्य की नींव समझते थे। ब्रह्मचर्य की धुन में ही उन्होंने ४४-४५ वर्ष की आयु तक विवाह नहीं किया। भारत के बालकों और युवकों के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य और प्राणायाम का क्रियात्मक प्रचार किया। उनका स्वभाव बड़ा हंसमुख था। वे हंसी को स्वास्थ्य के लिए बड़ा उपयोगी समझते थे।

वे सदैव कहा करते थे—

"मन से, वचन से और तन से पवित्र रहो। सादा भोजन करो। जीवन सरल रखो। प्रतिदिन व्यायाम करो। यही संसार में सुखी रहने का मूलमन्त्र है।"

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वे नवयुवकों को सदैव इस प्रकार उत्साहित किया करते थे— "निष्फलता ! निष्फलता !! निष्फलता !!! क्या है ? हमने नहीं जाना। एक बार, दो बार, तीन बार, पांच बार, दस बार प्रयत्न करते चलो, सफलता अवश्य मिलेगी। "Do or die" 'करो या मरो' 'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' 'करूंगा या मरूंगा' यही हमारा मूल-मन्त्र है।"

वे भारत माता के होनहार बालकों की दुर्दशा देखकर उनके उद्धार के लिए व्याकुल होकर कहा करते थे—

'भारत के बालकों और युवकों का उद्धार—यही मेरे जीवन का मूल सूत्र है। वे चाहे कृष्ण और लक्ष्मण, भीम और भीष्म, या हनुमान् के समान हों या न हों, किन्तु देश में युवकों की एक अजेय सेना तैयार हो, यह मेरी मनोकामना है। देश के कोने-कोने में घूमकर मैंने युवकों को प्रोत्साहन दिया है। मन, वचन, तन और धन से भारत के नवयुवकों का मैं सेवक बना हूं। एक दिन मैं संसार से उठ जाऊँगा, किन्तु उसके पहले मैं यह आश्वासन चाहता हूं कि मेरी सेवा भारत माता के चरणों में स्वीकृत हुई है।"

व्यायाम के विषय में फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते झूलने वाले ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी लिखते हैं—

"सब व्यायामों में दण्ड-बैठक सर्वोत्तम है। जहां जी चाहा, व्यायाम कर लिया। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दण्ड तथा बैठक करें। प्रोफेसर जी की रीति विद्यार्थियों (ब्रह्मचारियों) के लिए बड़ी लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दण्ड-बैठक के अतिरिक्त शीर्षासन और पद्मासन का भी अभ्यास करना चाहिए और अपने रहने के स्थान में वीरों, महात्माओं के चित्र रखने चाहियें।"

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति से प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करते थे। इससे उनको कितना आश्चर्यजनक लाभ हुआ, इस विषय में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

व्यायाम आदि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी के विषय में एक स्थान पर लिखा है—

"उनमें असाधारण शारीरिक बल था। तैरने आदि में वे पूरे पण्डित थे। थकान किसे कहते हैं, वह जानते ही न थे। ६०-६१ मील निरन्तर चलकर वह आगे चलने का साहस रखते थे। व्यायाम और प्राणायाम वह इतना करते थे कि देखनेवाले आश्चर्यान्वित होते थे।"

व्यायाम और प्राणायाम

वास्तव में प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति कोई अपनी निज की पद्धति नहीं, वह तो हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही पद्धति है। प्रोफेसर राममूर्ति ने मुख्यतया व्यायाम के लिए जिस नियम का आश्रय लिया वह प्राणायाम है। वे स्वय इस विषय में लिखते हैं—

"व्यायाम प्राणायाम के साथ करो अर्थात् श्वास मुख से न लेकर नाक से लो और पूरक, कुम्भ और रेचक करते हुए करो।"

लोग यह समझते हैं कि प्राणायाम तो योग का ही एक अङ्ग है। इसका व्यायाम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसी भूल के कारण लोगों को व्यायाम से पूर्ण लाभ नहीं होता। प्राणायाम व्यायाम का प्राण है और इसका हमारे शरीर के साथ सीधा सम्बन्ध है, यह समझ लेना आवश्यक है। इस लिये थोड़ा खोलकर लिखा जाता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब कोई व्यायाम आरम्भ करता है, तो उसके पुट्ठों वा मांसपेशियों में पीड़ा हो जाती है। इसका अधिक अनुभव उस व्यक्ति को होता है, जो प्रतिदिन व्यायाम नहीं करता। किन्तु एक दिन देखा-देखी वा किसी के उत्साहित करने पर सौ-पचास बैठकें इकट्ठी ही लगा डालता है अथवा एकाध मील की दौड़ लगा लेता है। इस से उसकी रानें और पिंडलियां अकड़ जाती हैं और भरी भरी प्रतीत होती हैं। उठने-बैठने में बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि जिन पुट्ठों से कभी कार्य नहीं लिया गया, ऐसे सुख (आराम) में रहनेवाले पुट्ठों के छोटे छोटे भाग (रेशे) व्यायाम करने से टूट जाते हैं और यह टूट कर शरीर में इकट्ठे हो जाते हैं और इनसे सूजन उत्पन्न होकर कष्ट होता है। किन्तु प्रतिदिन व्यायाम वा परिश्रम के अभ्यास से वे ही भाग (रेशे) सुदृढ़ हो जाते हैं और टूटते ही नहीं अथवा बहुत कम टूटते हैं। क्योंकि हमारे रक्त में जो प्राणवायु है, वह इन टूटे हुए भागों (रेशों) को जीवनशक्ति (ऑक्सीजन) श्वास द्वारा बाहर के शुद्ध वायु से हमारे अन्दर आती रहती है और प्रश्वास द्वारा टूटे हुए व्यर्थ के भागों (रेशों) वा रक्त के मल आदि से मिलकर बना हुआ विषैला वायु (कार्बन) बाहर निकल जाता है। यही कारण है कि व्यायाम करने के समय श्वास चढ़ जाता है और श्वास प्रश्वासों की गति बढ़ जाती है। क्योंकि साधारण अवस्था में टूट फूट कम होती है। इसलिए साधारण श्वास-प्रश्वास से कार्य चल जाता है। किन्तु व्यायाम करने से जब टूट-फूट अधिक बढ़ जाती है, तब इसको ठीक करने के लिए अधिक प्राणवायु चाहिए और अधिक प्राणवायु के लिए अधिक श्वास और प्रश्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ जाते हैं। जब व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ जाते हैं और प्राणवायु हमारे फेफड़ों में जाता है और रक्त के

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साथ मिलकर शरीर के कोने कोने में व्याप्त हो जाता है, तो उस समय यह शरीर की उष्णता को पसीने के द्वारा बाहर निकालता है। इसलिए व्यायाम करने से हमें पसीना आता है। जिस समय हम कोई कठोर व्यायाम करते हैं, तब श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। कार्बन के ओसजन के साथ मिलने से जो रासायनिक क्रिया होती है, उससे शरीर की उष्णता भी बढ जाती है। यदि प्राण और अपान को टक्कर वा संघर्ष से उत्पन्न हुई उष्णता को कम न कर दिया जाये तो ज्वर हो जाये। क्योंकि शरीर की उष्णता बढ जाने का ही नाम ज्वर है। इस अधिक बढी हुई उष्णता को हमारा प्राण-वायु श्वास-प्रश्वास तथा पसीने के द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकाल फेंकता है। उष्णकाल में हम जल को ठण्डा रखने के लिए उसे मिट्टी के घड़े में भर देते हैं। ऐसा करने से घड़े के बाह्य भाग पर जो जल आजाता है, वह उष्णवायु के साथ छूकर वाष्प (भाप) बन जाता है। वाष्प बनने के लिए जिस उष्णता की आवश्यकता होती है, उसको घड़े के जल से ले लेता है। इसी प्रकार जब व्यायाम आदि के कारण हमारे शरीर में उष्णता बढ़ती है तब घड़े के समान हमारा शरीर भी पसीजने लगता है और पसीने के द्वारा शरीर में बढ़ी हुई उष्णता बाहर निकल जाती है और पसीने के साथ ही अनेक प्रकार के विजातीय मल (विष) जो अनेक प्रकार के रोगों को उत्पत्ति के कारण हैं, सहज में ही शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इसलिए वेद भगवान् ने भी व्यायाम को परम आरोग्य का मुख्य साधन माना है—

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे॥

(अथर्व० कां० २; सू० ४. मं० ४)

निर्बल करनेवाले शोषक रोगों को और सब राक्षसों अर्थात् सब रोग-कृमियों को हम व्यायाम के द्वारा दबाते हैं वा नष्ट करते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाठक ! इतना लिखने से समझ गये होंगे कि श्रम (थकान) को दूर करने के लिए, टूटे हुए पुट्ठों को जोड़ने के लिए अथवा उनमें नवजीवन लाने के लिए और व्यायाम से उत्पन्न हुए विष को दूर करने के लिए प्राणवायु की बड़ी भारी आवश्यकता है।

इसलिए हमें अपने शरीर के अन्दर अधिक से अधिक प्राण-वायु को प्रविष्ट करना चाहिए। प्राणवायु का अधिक प्रवेश शीघ्र-शीघ्र श्वास लेकर अथवा गहरे श्वास लेकर ही किया जा सकता है। जिस प्रकार नदी का मार्ग भीड़ा होने से उसकी धार वा गति का वेग बढ़ जाता है उसी प्रकार हमें भी व्यायम के समय शीघ्र श्वास लेना पड़ता है और हमारा श्वास फूल जाता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा श्वास न फूले, तो हमें गहरे श्वास लेने का स्वभाव डालना चाहिए। गहरा श्वास सारे फेफड़ों में जाता है। प्रायः लोगों को श्वास लेना नहीं आता। उनका थोड़ासा श्वास थोड़े से फेफड़ों में जाकर उलटा चला आता है। गहरे श्वास लेने का स्वभाव अभ्यास से ही होता है अनेक रोगों, पैतृक दोषों और लेटने बैठने की विधि न जानने के कारण लोग छोटे छोटे श्वास लेते हैं। इसीलिए फेफड़ों के अनेक रोगों में ग्रस्त रहते हैं। इसलिए व्यायाम के समय हमें गहरा श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए। जिससे हमारे फेफड़े स्वस्थ और लचकीले हो जायें। व्यायाम में गहरे श्वासों का नाम ही प्राणायाम है। गहरा श्वास लेने के समय हमें मन की शक्ति के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक भाग में वायु पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यायाम के समय हमारी नासिका के दोनों छिद्र शुद्ध और खुले हुए होने चाहियें। आसन, दण्ड, बैठक कोई भी व्यायाम आप करें, सदैव प्राणायाम के साथ करें। यही हमारी प्राचीन शैली है। प्राणायाम वा गहरे श्वास लेने के महत्त्व को अब योरप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी समझने लगे हैं। और यही प्राणायाम की विधि Deep breathing

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के नाम से प्रसिद्ध है।

इङ्गलिस्तान के डाक्टर ऊस्टेस माइल्ज अपनी एक पुस्तक में श्वास लेने की विधि के विषय में लिखते हैं—

"पूर्ण श्वास लेने की विधि प्राचीन आर्यग्रन्थों में लिखी है। श्वास सावधानी से लो अर्थात् यदि तुम प्राकृतिक रूप से भलीभांति श्वास लेना नहीं जानते तो अभ्यास करो। श्वास गहरा लेना चाहिए कि सम्पूर्ण फुफ्फुस भर जावें और फिर सम्पूर्ण श्वास बाहर भी निकालना चाहिए। उत्तम रूप से श्वास लेने का अभ्यास बहुत गुणकारी है और एक ऐसी कला है जिसे मनुष्य को प्रतिक्षण पूर्ण करते रहना है, बुढ़ापे में जाकर इसे छोड़ा नहीं जा सकता। वह इसे मरते दम तक पूरा करता है और लाभ उठा सकता है। सहस्रों मनुष्य ऐसे हैं जो श्वास लेने की ठीक विधि को नहीं जानते। उत्तम प्रकार से एक दो वर्ष श्वास लेने का अनुभव करलो, फिर तुम्हें स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि फुफ्फुस की वायु की मात्रा दुगुनी हो गई है।"

वे आगे लिखते हैं—"उत्तम विधि से श्वास लेना शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के लिए है। इससे स्वास्थ्य बढ़ता है, उत्तम रूप से श्वास लेने से रूप-रङ्ग ठीक हो जाता है और मनुष्य का जीवन सुख भोगने के योग्य हो जाता है और हार्दिक वा मानसिक विचार उत्तम हो जाते हैं। उत्तमरूप से श्वास लेने से धन और शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं हो पाती। इससे मनुष्य अपने शरीर और मन को वश में कर सकता है।"

वैसे तो कोई भी व्यायाम करें फुफ्फुस का व्यायाम भी साथ ही होता जाता है। क्योंकि सभी व्यायामों में श्वास शीघ्र-शीघ्र आता जाता है, इससे फुफ्फुस खूब बढ़ते और सिकुड़ते हैं। अच्छे से अच्छा वायु रक्त को शुद्ध करता है। रक्त का भ्रमण बढ़ता है

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और शरीर का मल (मवाद) बाहर निकलता है। कुछ मल तो स्वेद द्वारा निकल जाता है, कुछ व्यायाम की उष्णता से जल जाता है, कुछ रक्त के साथ मिलकर फुप्फुस में आकर शुद्ध हो जाता है। कुछ श्वास मार्ग से बाहर निकल जाता है, कुछ मल मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। ये सब लाभ व्यायाम से होते हैं। किन्तु प्राणायाम वा गहरे श्वासों के अभ्यास के द्वारा रक्त और शरीर की शुद्धि और फुप्फुस का व्यायाम अन्य सभी व्यायामों की अपेक्षा सैंकड़ों गुना लाभदायक होता है। इसलिए अन्य धार्मिक नित्य कर्मों के साथ दैनिक प्राणायाम करने की आज्ञा प्राचीन शास्त्रों ने दी है। गहरे श्वासों के अभ्यास का नाम ही प्राणायाम है यह पहले ही बताया जा चुका है। अतः सदैव गहरे श्वास लेवें।

गहरे श्वास लेने की विधि का अभ्यास

किसी ऐसे शान्त और एकान्त स्थान में जहाँ का वायु शुद्ध और शीतल हो, जिसमें धूल वा धूआँ आदि हानिकारक वस्तुएँ न मिली हुई हों, सिद्धासन वा किसी आसन में जिसमें आप सुखपूर्वक बैठ सकते हों, इस प्रकार बैठ जायें कि आपकी छाती, ग्रीवा (गला) और सिर तीनों एक सीध में रहें, मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) भी सीध में रहना चाहिए। धीरे-धीरे नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकालें, जब तक छाती, आमाशय (पेट) रिक्त न हो जावें, श्वास को निरन्तर निकालते रहें अर्थात् सारा वायु निकाल देना चाहिए इस श्वास के बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे श्वास को भीतर लें और जब तक छाती और आमाशय भली भांति न भर जाएं, लेते ही रहें, इस श्वास के भरने की क्रिया को पूरक कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ आरम्भ में रेचक और पूरक का अनेक बार अभ्यास करें। जब एक दो मास के अभ्यास के पश्चात् श्वास का निकालना और भरना भलीभांति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आजावे तभी बाहर वा अन्दर श्वास के रोकने का अभ्यास करना चाहिए।

श्वास के बाहर वा अन्दर रोकने के अभ्यास का नाम ही कुम्भक है। यदि किसी की इच्छा आरम्भ में ही श्वास के रोकने की हो तो थोड़ी देर रोकना चाहिए। रोकने का समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए, बलपूर्वक रोकने से हानि होती है। अभ्यास से बाहर और भीतर दोनों ओर श्वास के रोकने की अवधि वा कुम्भक का समय स्वयमेव बढ़ जाता है। रेचक वा पूरक का अभ्यास सीधे खड़े होकर, लेटकर, चलते हुए अथवा पश्चिमोत्तान आसन में भी किया जा सकता है। व्यायाम करने से पहले एक दो बार भस्त्रिका प्राणायाम करने से बड़ा लाभ होता है, जिसकी विधि मेरी प्राणायाम पुस्तक में देख लेवें। इस प्रकार भस्त्रिका तथा गहरे श्वासों का किया गया यह अभ्यास फेफड़ों को स्वस्थ और लचकीला बना देता है। लचकीले फेफड़ों में श्वास वा प्राण की मात्रा अधिक आती है। जब हम एक वार में अधिक प्राण अन्दर भर लेंगे तो शीघ्र ही दूसरा श्वास लेने की आवश्यकता न होगी। इसी को गहरा वा उत्तम श्वास कहते हैं। इस प्रकार व्यायाम सम्बन्धी प्राणायाम का अभ्यास कर लेने के पश्चात् अभ्यासी को रात दिन गहरे श्वास लेने का ही अभ्यास पड़ जाता है। वह व्यायाम वा अन्य प्रकार के परिश्रम से भी थकता नहीं। और उसका शरीर शुद्ध, स्वस्थ, सुन्दर, सुदृढ़, निर्मल और दीर्घायुवाला हो जाता है। क्योंकि व्यायाम के प्रत्येक श्वास का सीधा सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य, बल और आयु के साथ है, इसलिए व्यायाम करते समय ब्रह्मचारी क्या सभी को फेफड़ों और गहरे श्वास लेने का पूरा ध्यान रखना चाहिए। व्यायाम करते समय जब शरीर वा शरीर के किसी अङ्ग को बल लगाना पड़ता है वा विशेष परिश्रम करना पड़ता है, उस समय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्वास अन्दर भरा हुआ होना चाहिए और श्वास को अन्दर ही रोकना चाहिए अर्थात् आभ्यन्तर कुम्भक करें। व्यायाम में किस समय रेचक, पूरक वा कुम्भक करना चाहिए यह आप भली-भांति दण्ड, बैठक आदि की विधि से समझ जायेंगे।

प्रोफेसर राममूर्ति के व्यायामों में श्वास की क्रिया का बहुत ध्यान रखा जाता है। इसलिए जिन दण्ड-बैठकों का वे प्रचार करते थे तथा नवयुवकों और विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी समझकर उन्हें सदैव करने का अनुरोध किया करते थे, उन्हीं का उल्लेख किया जाता है:—

"व्यायाम तो सभी पहलवान करते हैं, किन्तु वे व्यायाम के साथ श्वास के नियमों का ध्यान नहीं रखते। इसलिए उनकी शक्ति को हानि पहुँचना स्वाभाविक बात है।"

प्रो० राममूर्ति ने प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों का अध्ययन किया था। इसलिए इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। इसलिए प्रो० राममूर्ति के सभी व्यायामों का (देशी होते हुए भी) विशेष आदर है। क्योंकि उन्होंने प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया है और श्वास-प्रश्वास के नियमों का व्यायाम में विशेष ध्यान रखा है। इसलिए उनके व्यायाम शरीर के अन्य अङ्गों की भांति मानसिक शक्तियों के लिए भी लाभदायक हैं।

प्रो० राममूर्ति ने देशी व्यायामों में दण्ड और बैठकों की बहुत प्रशंसा की है। उनका दृढ़ विश्वास है कि शरीर के बनाने में इनसे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। उनकी दण्ड-बैठक करने की विधि नीचे दी जाती है। दण्ड-बैठक भी एक प्रकार के आसन ही हैं इसलिए दण्डों को दण्डासन भी कहते हैं।

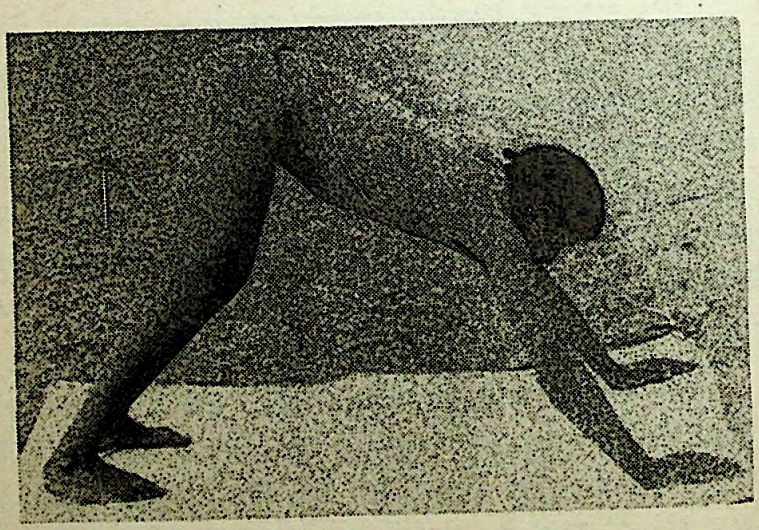
CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दण्डों के अनेक प्रकार हैं। साधारण दण्ड एक हाथ (बगल) का दण्ड, एक पैर का दण्ड, अंगुली का दण्ड, अंगूठा दण्ड, एक पैर उठाकर दण्ड, भार उठाकर दण्ड, कुर्सी दण्ड और प्रो० राममूर्ति का दण्ड इत्यादि दण्डों के बहुत प्रकार हैं। यहां केवल प्रो० राममूर्ति के दण्ड की विधि जो सभी के लिए तथा विशेषतया ब्रह्मचारियों के लिए सर्वश्रेष्ठ है, खोलकर लिखी जाती है।

दण्ड की विधि

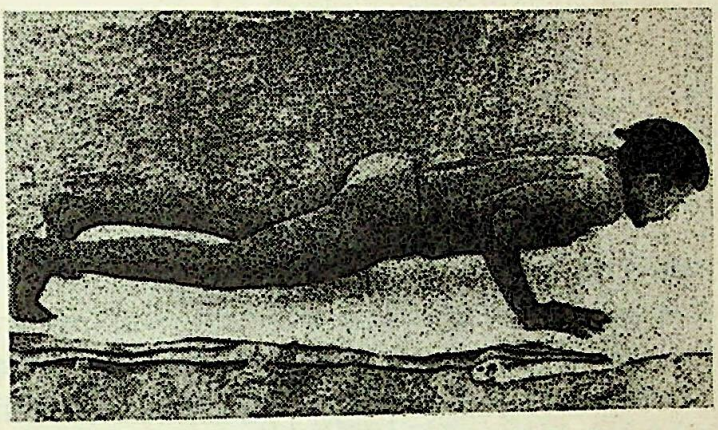
हाथों की हथेलियों को भूमि पर रखकर और पैरों को पीछे फैलाकर दण्ड करने के लिए तैयार हो जावें। पैरों की एड़ियां उठी रहें और पैरों का भार उनकी अंगुलियों पर रहे, दोनों हाथ और दोनों पैरों के बीच में छाती की चौड़ाई के समान अन्तर रहना चाहिए, सामान्यतया दो बालिश्त का अन्तर ठीक रहता है।



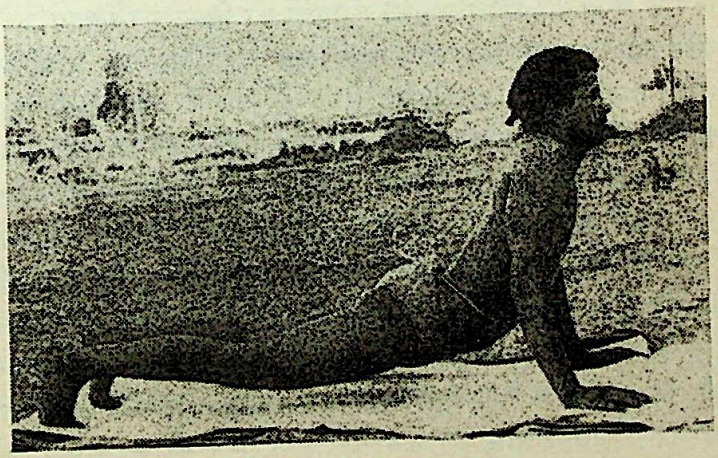
दण्ड की पूर्वावस्था

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha



दण्ड की मध्य स्थिति



दण्ड की समाप्ति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दण्ड की तैयारी में दण्ड करने से पूर्व पीठ और कमर ऊपर को उठी रहे। कमर को जितना हो सके पीछे खींचना चाहिए। ग्रीवा (गर्दन) छाती की ओर झुकी रहे, यहां तक कि ठोडी वक्षःस्थल (छाती) को स्पर्श करती हो और आंखों की दृष्टि पेट की तोंदी पर हो। पीछे पैरों के पंजे भूमि पर लगे रहें, हाथ और पैर अपने स्थानों को न छोड़ें। आगे की ओर बढ़कर हाथ बिल्कुल सीधे हों। अब कमर और छाती को नीचे ले जायें, हाथों को कोहनियों पर से झुकाते चले जायें। नीचे जाते हुए दण्ड करने से पूर्व लम्बा श्वास खींचें और जितना प्राण आप अपने अन्दर भर सकते हैं भर लें। कोहनियों के ऊपर का भाग छाती की ओर के हाथ पार्श्वों (बगलों) को स्पर्श करेगा, सिर और ग्रीवा सीधी रहेगी, पैर घुटनों से मुड़ने न पावें। छाती को नीचे ले जाकर इतनी नीची करें जितनी वह जा सकती है किन्तु भूमि से स्पर्श न हो। नितम्भ (चूतड़) और मस्तिष्क ऊँचे रहें। दण्ड की इस स्थिति में आकर अपने मन को व्यायाम की क्रिया पर एकाग्र करें। और इसके पश्चात् सिर और छाती को ऊपर उठाकर हाथों को सीधा खड़ा करदें। अब कमर नीची हो जाएगी, मस्तिष्क और छाती ऊंचे होंगे। उठने के समय कन्धों को आगे की ओर खींचकर कमर को खूब तोड़ (खींच) देना चाहिए। इस अवस्था में भी श्वास को रोके रखना चाहिए। इसके पश्चात् मस्तिष्क को नीचा झुकाते हुए और ठोड़ी से छाती को स्पर्श करते हुए जब अपनी पहली स्थिति में आजायें तब धीरे-धीरे श्वास छोड़ें। और श्वास छोड़ते हुए वहां तक भीतर के वायु को निकालें, जहां तक निकालना संभव हो, किन्तु कष्ट के साथ नहीं, सुखपूर्वक। फिर धीरे-धीरे श्वास को खींचकर जितना वायु भर सकें भरें, और दण्ड की इसी क्रिया को फिर दूसरी बार करें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार अपनी शक्ति तथा अभ्यास आदि के अनुसार दण्ड का व्यायाम करें। जितने दण्ड करने से श्वास फूल न जायें उतने दण्ड एक बार में करने चाहियें। और एक दण्ड में न्यून से न्यून ४-५ सैकिण्ड का समय अवश्य लगाना चाहिए। श्वास उखड़ने वा नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी दण्ड आदि व्यायाम करते जाने से हानि होती है। एक बार दण्ड करने के पश्चात् कुछ गहरे श्वास लेने चाहियें। थके हुए पुट्ठों पर हाथ फेरना चाहिए और थकान दूर होने पर यदि अधिक करने की इच्छा और शक्ति हो तथा पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध हो तो द्वितीय बार और तृतीय बार भी दण्ड कर लेने चाहियें। दण्ड करते समय श्वास के उतार-चढ़ाव अर्थात् रेचक और पूरक पर हमारा पूरा अधिकार रहे और कुम्भक ध्यानपूर्वक करना चाहिए। श्वास की प्रक्रिया ठीक होने से मनुष्य शीघ्र नहीं थकता, श्वास नहीं चढ़ते, दम नहीं फूलता और उसे उष्णता भी प्रतीत नहीं होती। जब दण्ड करते समय अपनी हथेली और पैर के पंजों पर सम्पूर्ण शरीर का भार झुकाया और उठाया जाता है तब बंधी हुई चाल से श्वास के नीचे आने और ऊपर खींचने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। नसें तन जाती हैं, मुख पर तेज और कान्ति चमचमाती है, आंखें चढ़ जाती हैं, नथुने फूलने लगते हैं, शरीर के जोड़ और गांठ चटकने लगती हैं। छाती, बाहु, स्कन्ध, जांघ और ग्रीवा धीरे-धीरे फूलती जाती हैं। दण्ड पेल कर निवृत्त होने के पश्चात् एक बार भुजदण्ड छाती के खिलने वा फूलने पर जब दृष्टि पड़ती है तो प्रसन्नता से बाहु फड़क कर आप ही आप भुजदण्ड फड़क उठते हैं और सुडौल देह के गर्व में ग्रीवा भी तन जाती है। दण्ड करते समय देह सीधी और तनी रहे साथ ही श्वास की गति भी सधी रहे। शरीर दण्ड करते समय दृढ़ता से जमाई हुई बाहुओं के बल पर जब धीरे-धीरे नीचे झुकायें और

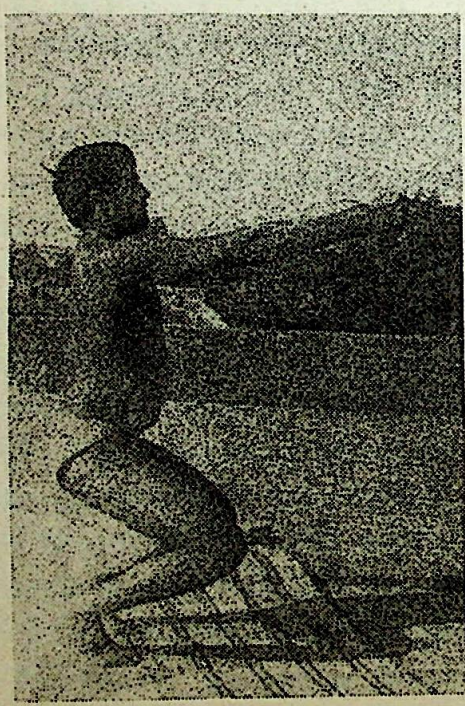
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊपर उठायें उस समय बिल्कुल सीधा तना हुआ रहना चाहिए। मांस पेशियों वा पुट्ठों को अकड़ाना चाहिए। पैरों के पंजे भी टस से मस नहीं होने चाहियें। अङ्गों को गति देते समय श्वास की गति वा बागडोर को कड़ी वा वश में रखना चाहिए।

साधारणतया सभी का विचार यह है कि दण्ड करने से शरीर के ऊपर आधे भाग का व्यायाम होता है और कटि (कमर) से नीचे के भाग का व्यायाम बैठक करने से होता है। जिस प्रकार दण्ड करने के बहुत प्रकार प्रचलित हैं उसी प्रकार बैठकें भी बहुत प्रकार की हैं। परन्तु प्रो० राममूर्ति की बैठक का प्रकार नीचे दिया जाता है।

सपाट बैठक की विधि



सपाट बैठक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पैरों के बल सीधे खड़े हो जायें। पैरों में लगभग छः इञ्च का अन्तर हो। दोनों हाथ लटकते हुए अपनी-अपनी ओर की जङ्घाओं से स्पर्श करते हों। इसके पश्चात् एड़ियों को भी ऊपर उठालें और पैर के पंजों, अंगुलियों, वा अंगूठों पर ही रहें। छाती तनी हुई अर्थात् आगे को उभरी हुई हो। शरीर सीधा समरेखा में हो। धीरे-धीरे श्वास भरकर कुम्भक कीजिए और अपने आगे ६ इंच के अन्तर पर कूदकर मुट्ठी बांधते हुए धीरे-धीरे बैठना आरम्भ करें। हाथों को भी धीरे-धीरे आगे बढ़ाएं, यहां तक कि कन्धों की सीध में आजाएं। मुट्ठियां बन्द ही रहें, एड़ियां भूमि में न टिकें, पूरा बैठ चुकने पर भी पिण्डलियां और जांघ एक दूसरे को स्पर्श न करें, दोनों में आधा इञ्च का अन्तर रहना ही चाहिए। जब बैठ चुकें तब दोनों हाथों को कोहनियों पर से मोड़ते हुए धीरे-धीरे कन्धों की ओर लायें। हाथ की मुट्ठियां कन्धों से स्पर्श न करें, उनमें भी आधा इञ्च का अन्तर हो। कुछ क्षण वहां ठहर कर धीरे-धीरे उठें। पूरा उठ चुकने पर पीछे कूदकर अपने स्थान पर आजायें, और हाथों को यथापूर्व अपने स्थान पर ले आयें और श्वास को रेचक करके निकाल दें। यह सदैव ध्यान रखें कि धीरे-धीरे उठें और बैठें। बैठक लगाने से पूर्व कुम्भक करें, बैठक की समाप्ति पर रेचक करें, बीच में श्वास न लें, नासिका द्वारा पूरा श्वास भरलें। यह न हो कि बीच में पुनः श्वास खींचना पड़े और निकालते समय सारा ही श्वास निकाल डालें। उठते-बैठते प्रत्येक अवस्था में शरीर सीधा रहे, कटि से लेकर छाती तक का भाग तना रहे, ढीला न हो, छाती कड़ी और आगे निकली रहे। मुट्ठियों को इतने जोर से बांधे रखें कि हाथ थरथराने वा कांपने लगें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साथ ही मन को जंघाओं और पिण्डलियों पर एकाग्र करके यह ध्यान करें कि मेरे सारे पैर के भागों में बल, शक्ति, दृढ़ता और ओज का संचार हो रहा है। और वेद भगवान् की इस आज्ञानुसार "ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ (पारस्कर गृ० कां० १ कण्डिका ३ सूत्र २५)" मेरी जङ्घाओं में ओज अर्थात् स्थिर रहने और चलने की शक्ति आरही है और दुर्बलता, अशक्तता दूर हो रही है। एक बार बैठक की क्रिया करने में न्यून से न्यून १-२ मिनट लगाना ही चाहिए। शक्ति अनुसार इस समय को बढ़ा भी सकते हैं। सैकड़ों बैठकों के स्थान पर यदि ये १० बैठक भी कर ली जायें तो पर्याप्त रहती हैं और अधिक लाभ करती हैं। इन बैठकों से जांघ. पिंडली आदि पैर के सभी अङ्गों का और साथ ही हाथों का भी व्यायाम होता है। और हाथ और पैर दोनों के पुट्ठे (मांस पेशियां) बनते हैं। आरम्भ में ये बैठकें ४-५ ही करनी चाहियें और फिर शक्ति के अनुसार बढ़ा सकते हैं। यदि इन्हीं बैठकों को एक ही स्थान पर खड़े होकर किया जाए, आगे पीछे न कूदा जाए तो ये साधारण बैठकें कहाती हैं। कूदने के कारण ही इनका नाम 'सपाट' पड़ा है। दोनों प्रकार से इन्हें कर सकते हैं। जैसी भी इच्छा हो करें, किन्तु सपाट बैठक अधिक लाभ करती हैं।

एक भ्रम और उसका निराकरण

लोगों में यह भ्रम बहुत बुरी प्रकार से फैला हुआ है कि बैठक का व्यायाम ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी के लिए अच्छा नहीं होता। यह सर्वथा निर्मूल है बैठकों से ब्रह्मचर्य में कोई हानि नहीं होती। किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी अथवा अन्य जो कोई भी मस्तिष्क से कार्य करनेवाले हैं उन्हें बैठकों की अपेक्षा दण्ड आदि छाती और मस्तिष्क के व्यायाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अधिक करने चाहिएं। साधारण नियम यही है कि बैठकें दण्डों से आधी होनी चाहियें।

आजकल अखाड़ों में पहलवान लोग दण्ड की अपेक्षा बैठकें अधिक करते हैं। क्योंकि पहलवानों को मोटी-मोटी और चढ़ी हुई सुन्दर जांघें प्रिय होती हैं। और मल्लयुद्ध में टांगों से वे कार्य भी अधिक लेते हैं किन्तु आप बड़े से बड़े पहलवानों को देखें, चाहे उनके शरीर कितने ही सुन्दर, सुदृढ़ वा सुडौल हों, किन्तु उनके मुख निस्तेज, कान्तिहीन और कुरूप पायेंगे।

आजकल अखाड़ों में जो व्यायाम की पद्धति प्रचलित है, उसमें बड़े भारी सुधार की आवश्यकता है। दण्ड-बैठक करते समय मल्ल लोग इतनी शीघ्रता करते हैं कि यन्त्र (मशीन) के अवयव (पुर्जे) उनकी समानता नहीं कर सकते। इसी कारण श्वास-प्रश्वास की क्रिया अत्यन्त वेग से और शीघ्र होने लगती है। ग्रीष्मकाल में उष्णता के कारण कुत्ते के समान हांपने लगते हैं। कोई-कोई खम्भे, रस्सी, वृक्ष वा भित्ति आदि को ही पकड़कर बैठकें लगाते हैं और कटि (कमर) को उस समय सीधा ही नहीं करते। इन बैठकों से बहुत हानि होती है। इस प्रकार शीघ्रता से और अनियमित रूप से दण्ड-बैठक आदि व्यायाम करने से कोई लाभ नहीं होता।

साधारण बैठक और सपाट (कूद) बैठक ही सब से अच्छी होती हैं। इनके अतिरिक्त भी हनुमान् बैठक, वीर बैठक, मुख फेर बैठक, एक पांव-पसार बैठक, अंगमरोड़ बैठक और घुटने-मरोड़ बैठक इत्यादि अनेक प्रकार की बैठकें हैं, जिनके नियमित अभ्यास से लाभ होता है। बैठकों के समान दौड़ना, तैरना इत्यादि पैरों के अनेक व्यायाम हैं। किन्तु शरीर जितना सुन्दर और सुडौल दण्ड-बैठक के लगाने से होता है उतना दौड़ आदि अन्य व्यायामों से नहीं।
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दौड़

प्रकट रूप में तो दौड़ने से टांगों का ही अधिक व्यायाम होता है, किन्तु दौड़ने का व्यायाम सारे शरीर के लिए उपयोगी है। इस से पैरों के अतिरिक्त छाती, फेफड़ों और पेट आदि का भी व्यायाम होता है। दौड़ से तो फेफड़ों को अत्यन्त लाभ पहुँचता है। क्योंकि दौड़ते समय भस्त्रा वा भस्त्रिका प्राणायाम बहुत अच्छी प्रकार से होता है, जिससे फेफड़े वज्र वा इस्पात के समान सुदृढ़ होजाते हैं और रक्त-सञ्चार के लिए भी बहुत अच्छा है। निःसन्देह टांगों का बल तो दौड़ से बढ़ता ही है। परन्तु फेफड़ों को शुद्ध और पुष्ट करने, हृदय को गतिशील बनाये रखने, और सुदृढ़ करने तथा रक्त को शुद्ध करने के लिए भी दौड़ने का व्यायाम बहुत उत्तम है। दौड़ने से मनुष्य में स्फूर्ति (चुस्ती) तथा कर्मण्यता आती है। फेफड़ों के बलवान् होने से कास (खांसी) प्रतिश्याय (जुकाम) आदि रोग नहीं सताते। बालक, युवा, वृद्ध और स्त्री सभी के लिये भागने का व्यायाम उत्तम है। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व दौड़ लगाना ब्रह्मचारी और विद्यार्थी के लिये तो अत्यन्त हितकर है।

ब्रह्मचारी ही नहीं, सभी को नंगे पांव दौड़ने से अधिक लाभ होता है। बाल्यावस्था तथा वृद्धि अवस्था में यदि जूता आदि पहनकर दौड़ा जाएगा तो पांव का स्वाभाविक विकास और वृद्धि नहीं हो सकेगी। इसीलिए पैरों के विकास का ही ध्यान रखकर ऋषियों ने "उपानच्छत्रधारणं वर्जय" जूता और छत्र (छाता) का धारण निषेध किया है। दौड़ते समय पांव उठा-उठाकर पंजों के ऊपर ही दौड़ना चाहिये अर्थात् पैरों का अगला भाग ही भूमि पर टिका रहे, एड़ियां भूमि में न टिकें। छाती आगे की ओर निकली और तनी रहे तथा कन्धे पीठ की ओर झुके रहें। मुट्ठी बांधकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोनों हाथों को छाती के बराबर रखें। नेत्र दृष्टि सम्मुख रहे। भागते समय पैरों को इतना ऊपर उठाकर ले जायें कि पैर की एड़ियां नितम्ब (चूतड़) को स्पर्श करने को होजायें। जितने लम्बे पग (कदम) दौड़ते समय रख सकें उतना ही अच्छा है। जिस समय दौड़ आरम्भ करें तो पहले ही वेग (तेजी) से न दौड़ें। शनैः शनैः वेग को बढ़ाते जायें। दौड़ने के लिए आपको अपनी पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए। न ही दौड़ को सहसा (एकदम) बन्द करना चाहिए। दौड़ चुकने के पश्चात् तुरन्त ही खड़े हो जाना, बैठ जाना वा सो जाना बड़ा ही हानिकारक है। अतः दौड़ने के पश्चात् जब तक श्वास वेग से चलता रहे तब तक भ्रमण करना ही लाभप्रद है। दौड़ने के पश्चात् जब तक शरीर पूर्णतया ठण्डा न हो जाये तब तक जल से हाथ, मुंह, पैर धोना, स्नान करना और खाना पीना कदापि नहीं करना चाहिए। दौड़ने के लिए स्थान खुला हुआ और शुद्ध वायुवाला हो। वहां की भूमि सम हो और कंटक कंकर से रहित हो। विषैले सर्प कीड़े आदि का कोई भय न हो। दौड़ने के समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास खींचने और कुछ रोकते हुये धीरे-धीरे छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। लम्बे और गहरे श्वास लेने और छोड़ने से व्याकुलता (घबराहट) और श्रान्ति (थकावट) बहुत न्यून होती है। अत्यन्त वेग से श्वास चलने पर भी नासिका द्वारा ही श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए।

मुख खोलकर उसके द्वारा श्वासोच्छ्वास करते हुए दौड़ना बहुत हानिकारक है। दौड़ते समय अङ्गों को शिथिल नहीं रखें। हाथों को पीछे की ओर भली-भांति खींचे रहें।

आरम्भ-आरम्भ में दौड़ सौ गज वा एक फर्लाङ्ग से अधिक नहीं लगानी चाहिए। प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी बढ़ाकर एक वा दो

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मील वा इससे भी अधिक का अभ्यास अपने सामर्थ्यानुसार करना चाहिए। १०-१५ मील तक भागने का भी अभ्यास किया जा सकता है किन्तु मुख्य बात तो सामर्थ्य और पुष्टिकारक भोजन की है। पुष्टिकारक भोजन के अभाव में तथा शक्ति से अधिक दौड़ने से भी शरीर को हानि होती है। आरम्भ में कुछ दूर दौड़ने पर श्वास फूल जाता है और दौड़नेवाला घबराने लगता है। किन्तु साहस बांधकर दौड़ते रहने से व्याकुलता हट जाती है और साहस भी बढ़ जाता है। गहरे श्वास भी दौड़ में अत्यन्त सहायक हैं। हमारे कबड्डो आदि बहुत से ऐसे देशी खेल हैं जिनमें दौड़ पर्याप्त मात्रा में हो जाती है। यह सदैव ध्यान रखें कि दौड़ते-दौड़ते जब उष्णता बढ़ जाए और श्वास बहुत शोघ्र-शीघ्र वा वेग से आने लगे और फेफड़ों में न समावे तब दौड़ बन्द कर देनी चाहिए। दौड़ आदि पैरों के व्यायाम से हाथी के सूंड के समान पुष्ट जङ्घायें हो जाती हैं।

जो लोग रात दिन बैठे रहते हैं और दौड़, भ्रमण आदि पैरों का व्यायाम नहीं करते उनकी टांगें निर्बल हो जाती हैं। जांघों का मांस सूख जाता है अथवा मेद (चर्बी) बढ़कर जङ्घाओं का मांस ढीला और लटकता रहता है और वे कुरूप और अत्यन्त स्थूल हो जाती हैं। जांघें सर्वथा पतली, अत्यन्त मोटी और ढीली नहीं होनी चाहियें। जिन जङ्घाओं में अगुली गाड़ने से न गड़े, ऐसी कठोर जङ्घायें स्वस्थ और सबल मानी जाती हैं। किन्तु दौड़ और बैठक के बिना ऐसी जङ्घायें कैसे हो सकती हैं। दौड़ आदि व्यायाम ही जङ्घाओं और पिण्डलियों को सुन्दर, पुष्ट और सबल बनाता है।

दौड़ते समय भी मन को टांगों की पिण्डली और जङ्घा आदि भागों पर एकाग्र करना चाहिए और यह ध्यान करना चाहिए कि मेरे इन अङ्गों की निर्बलता दूर हो रही है और वेद की आज्ञा के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अनुसार "जङ्घयोर्जवः" जङ्घाओं में वेग, स्फूर्ति और बल इत्यादि और "पादयोः प्रतिष्ठा" (अथर्व० १९।६०।२) पांवों (पिण्डलियों) में स्थिरता, सुदृढ़ता वा सुन्दरता आदि गुणों का सञ्चार और प्रवेश होरहा है। इस प्रकार की दृढ़ भावना से वेद की इस पवित्र आज्ञा के अनुसार अत्यन्त लाभ पहुँचता है। पांवों के जङ्घा, पिण्डली आदि भागों में स्फूर्ति, वेग, बल, शक्ति, सुन्दरता, स्थिरता और सुदृढ़ता आदि गुणों का अनुभव अभ्यासी थोड़े दिन में करने लगता है। उसकी जङ्घायें और पिण्डलियां बहुत शीघ्र पुष्ट और बलवान् हो जाती हैं।

तैरना

साधारण व्यायामों में से तैरना भी हमारे शरीर वा स्वास्थ्य दोनों के लिए एक बड़ा उपयोगी व्यायाम है। तैरने से शरीर का बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। बालक युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी के लिए तैरने का व्यायाम लाभप्रद है। यदि विचारपूर्वक किया जाये तो किसी अवस्था में भी किसी को हानि नहीं होती। और ब्रह्मचारी के लिए तो तैरने का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है। इससे वीर्यरक्षा वा ब्रह्मचर्य की साधना में बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारी और ब्रह्मचर्य के प्रेमी यदि प्रतिदिन एक घण्टा तैरने का व्यायाम करलें तो स्वप्नदोषादि के द्वारा वीर्यनाश का भय वा आशङ्का नहीं रहती। प्रमेह, स्वप्नदोष आदि वीर्यभ्रष्टता के रोग वा दोष बहुत शीघ्र दूर हो जाते हैं। क्योंकि यह वीर्य सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिए सर्वोत्तम औषध है। जो ब्रह्मचारी अन्य साधनों के साथ तैरने का व्यायाम करते हैं उनको स्वप्नदोष आदि रोग नहीं सताते और वे स्थिरवीर्य वा ऊर्ध्वरेता हो जाते हैं। इसलिए वेद भगवान् ने जल की महिमा का गान किया है—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्" ॥ अथर्ववेद १।४।४)

अर्थात् जल में अमृत और औषध है।

जल के महत्त्व को हमारे प्राचीन पुरुष ऋषि-महर्षि लोग भली-भाँति जानते थे। इसलिए जलाशयों और नदियों के तटों पर वे अपने आश्रम बनाकर निवास करते थे। यही कारण था कि वे सब अमोघवीर्य वा ऊर्ध्वरेता होते थे।

व्याकरण के अतिप्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं—

"अष्टाशीतिसहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुस्तत्रागस्याष्टमैर्ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः" ॥ (अ० ४ पा० १ सू० ७८)

८८ हजार ऊर्ध्वरेता ऋषि हुए हैं उन में से अगस्त्य प्रभृति आठ ऋषियों ने सन्तति उत्पन्न की।

कितने ही विचारशील लोग आज-कल भी इस विषय में अनुभव कर चुके हैं कि युवकों के स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी रोग केवल प्रतिदिन एक घण्टा शुद्ध जल में तैरने से दूर हो जाते हैं। इन रोगों में जब किसी औषध से लाभ नहीं होता तब जल में तैरने का अभ्यास अचूक औषध का काम करता है। इसलिए ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की साधना वा वीर्यरक्षा के लिये और स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी रोगग्रस्त व्यक्तियों को इन रोगों से छुटकारा पाने के लिये प्रतिदिन नदी आदि में तैरने का अभ्यास करना चाहिये। जिससे वे उर्ध्वरेता, अमोघवीर्य वा स्थिरवीर्य वाले बन सकें। तैरने में एक विशेष बात यह है कि इस से व्यायाम और स्नान दोनों साथ-साथ हो जाते हैं। इसलिए सहज में ही व्यायाम और स्नान दोनों का एक ही साथ लाभ हो जाता है। तैरने के व्यायाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से शरीर की अतिरिक्त उष्णता जल के स्पर्श से दूर हो जाती है और रोमकूप स्वच्छ होकर शरीर शुद्ध, निर्मल और पवित्र हो जाता है। यथार्थ में तडाग, नदी, नाले आदि जलाशय ही प्राकृतिक स्नान करने के यथोचित स्थान हैं जिन में तैरते वा स्नान करते समय भाग-दौड़ करने अथवा इसी प्रकार की अन्य जलक्रीडा करने से शरीर और मन दोनों में ही स्वच्छता, स्फूर्ति और उत्साह आदि सद्गुणों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। तैरने से शरीर के सब स्नायुवों और अंग-प्रत्यंगों का स्वयं ही पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। नदी के बहते हुए जल की लहरों के परस्पर टकराने से एक विद्युत् उत्पन्न होती है। जो शारीरिक साधारण रोगों को शीघ्र दूर करके हमारे स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव डालती है। तैरने में वैसे तो सभी अवयवों का व्यायाम होता है किन्तु छाती और फेफड़ों को विशेष लाभ पहुंचता है। तैरने से छाती चौड़ी और सारा ही वक्षःस्थल परिपुष्ट और विस्तीर्ण हो जाता है। फेफड़े अत्यन्त शुद्ध और बलवान् हो जाते हैं। तैरनेवाले का सम्पूर्ण शरीर नीरोग, स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल, शक्तिशाली, स्फूर्तिमान् और उत्साहयुक्त बन जाता है। गहरे जल में घुसकर प्राणायामपूर्वक धीरे-धीरे बल और आयु की वृद्धि की प्रबल भावना मन में रखते हुए तैरने से विशेष लाभ होता है। जल में गोता मारने से भी बड़ा अच्छा व्यायाम होता है।

तैरना वैसे भी एक प्रकार की विद्या है। इसलिए इसे प्रत्येक मनुष्य को सीख ही लेना चाहिये। अपनी वा दूसरों की प्राणरक्षा के लिए जीवन में इसकी आवश्यकता पड़ ही जाती है। डूबते समय हमारी पोथी वा पुस्तकें कुछ काम नहीं आतीं। तैरना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं, थोडासा यत्न करने पर छोटे-छोटे बालक भी इसे सीख लेते हैं। तैरना भी क्या, जल में घुसकर हाथ तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को ही व्यायाम समझकर इसी के द्वारा ब्रह्मचर्य की साधना करना चाहे तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी। भ्रमण के द्वारा कोई सात जन्म में भी ब्रह्मचर्य पालन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए तो शरीर और मन को थकानेवाला कठोर व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। वैसे भ्रमण रोगी आदि के लिए ठीक है। भ्रमण करने वाले को नगर वा ग्राम से बाहर ऐसे स्थान पर ही जहां का वायु शुद्ध, शीतल, स्वास्थ्यप्रद हो भ्रमण करना चाहिए। भ्रमण वा वायुसेवन के लिए सूर्योदय से पूर्व प्रातः काल का समय ही उत्तम है शौच आदि से निवृत्त होकर प्रतिदिन कुछ मील नियमित भ्रमण करने वा टहलने से स्वास्थ्य का लाभ अवश्य होता है। भ्रमण करते समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास लेने से अधिक लाभ होता है।

मल्लखम्भ का व्यायाम

मल्लखम्भ के व्यायाम का प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है। मल्लखम्भ के व्यायाम से शरीर बहुत शीघ्र ही स्वस्थ और उन्नत हो जाता है। शरीर में व्यर्थ का मेद (चर्बी) नहीं बढता। शरीर के सभी छोटे बड़े जोड़ वा अवयव सुदृढ़ हो जाते हैं। इसके व्यायाम से पेट की नसों को भी बहुत लाभ पहुँचता है। हाथों के स्नायु सुदृढ़ होजाते हैं। सारे शरीर में एक विशेष शक्ति और स्फूर्ति आजाती है। शरीर बड़ा सुन्दर, स्वस्थ और सुडौल बन जाता है। मल्लखम्भ पर जो व्यायाम किये जाते हैं वे एक प्रकार के आसन ही हैं। मल्लखम्भ के व्यायाम से आसनों के समान ही शरीर में स्फूर्ति, हलकापन और आरोग्य की वृद्धि होती है। जो मल्ल (पहलवान) मल्लखम्भ का व्यायाम करते हैं वे अपने शरीर को इतना वश में कर लेते हैं कि वे मल्लयुद्ध (कुश्ती) में बहुत ही कम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हार खाते हैं। उनके ऊपर दूसरों के दाव पेच नहीं चलते। क्योंकि मल्लखम्भ का व्यायाम करनेवाले मल्लविद्या में बड़े निपुण होजाते हैं। मल्लखम्भ के व्यायाम से बहुत शीघ्र और बड़ी अच्छी प्रकार से अपना शरीर वश में आजाता है और जिसका शरीर वश में होता है वह मल्लखम्भविद्या में कुशल होता है। मल्लखम्भ का व्यायाम किसी शिक्षक से ही सीखकर करना चाहिए। बालक इसको शीघ्र सीख सकते हैं, बड़ी आयु वा बुढ़ापे में इसका सीखना बड़ा कठिन है।

मल्लखम्भ शीशम की चिकनी और दृढ़ लकड़ी का होना चाहिए। कमर के समान इसकी मोटाई ठीक है। मल्लखम्भ गाड़ने के पश्चात् भूमि से ६-७ फुट ऊंचा रहना चाहिए। मल्लखम्भ को वृक्ष वा मकान की छाया में ही गाड़ना चाहिए जिससे जल और धूप से उसकी लकड़ी को हानि न पहुंचे। मल्लखम्भ के चारों ओर की मिट्टी अच्छी होनी चाहिए और मल्लखम्भ को कभी-कभी तेल लगाकर उसकी लकड़ी को चिकना करते रहना चाहिये। १२ वर्ष की आयु से ऊपर किसी भी अवस्था में इस व्यायाम को कर सकते हैं। सभी अवस्थाओं में यह लाभदायक है किन्तु वृद्धि अवस्थावाले युवक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों के लिये यह मल्लखम्भ का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है।

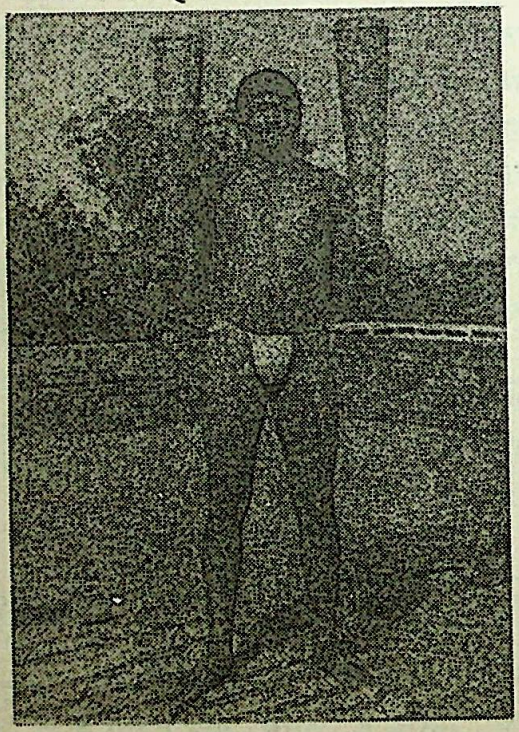
मुग्दर का व्यायाम

मुग्दर का व्यायाम बहुत प्राचीन काल से अथवा यों कहिये कि आदि सृष्टि से ही चला आरहा है और अपने देश का भी है। यह बहुत प्राचीन व्यायाम है। हमारे प्राचीन साहित्य में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि प्राचीन-काल में मुग्दर का व्यायाम बहुत उन्नत था। किन्तु हम अपनी अनेक विद्या वा कलाओं के समान व्यायाम सम्बन्धी बहुत-सी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आवश्यक बातें भी भूल गये हैं। पुनरपि देश में मुग्दर के व्यायाम सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान और आदर की भावना पाई जाती है। अखाड़ों में पहलवान लोग तो प्रायः सभी मुग्दर फेरते ही हैं किन्तु स्कूल-कालिजों में भी इसका थोड़ा बहुत प्रचार पाया जाता है। मुग्दर को जोड़ी भी कहते हैं। मुग्दर फेरने के बहुत हाथ और नियम हैं। इसके हाथ किसी मुग्दर फिराने वाले से सीख लेने चाहियें। इनको लेख द्वारा सिखाना वा समझाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।



मुग्दर की जोड़ी न बहुत हल्की न ही बहुत भारी होनी चाहिये। आरम्भ में तो मुग्दर का अधिक भारी होना बहुत हानि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
कारक है। अपनी शक्ति के अनुसार ही भार होना चाहिए। जब पूर्ण अभ्यास हो जाये तो भारी मुग्दर घुमाना चाहिए। किन्तु वह भी अपनी शक्ति के ही अनुसार हो। लम्बे मनुष्य के लिये लम्बा और छोटे (नाटे) मनुष्य के लिए छोटा मुग्दर ठीक रहता है इससे विपरीत करने पर चोट लगने का भय रहता है। मुग्दर को दृढ़ता से पकड़ना चाहिए। पकड़ते समय हाथ की अंगुलियां तथा बाहु (बाजु) बाहर की ओर रखने चाहियें। प्रथम एक ही मुग्दर को दक्षिण और वाम दोनों हाथों से घुमाने का अभ्यास करना चाहिए। जब अच्छा अभ्यास हो जाए तो एक साथ पृथक्-पृथक् मुग्दर दोनों हाथों से घुमाने चाहियें। मुग्दर घुमाते समय छाती भीतर घुसी हुई न हो, सम्मुख उभरी और निकली हुई होनी चाहिए। मुग्दर के व्यायाम से यों तो शरीर के प्रत्येक अङ्ग का व्यायाम होता है और सब अंगों पर बल पड़ता है किन्तु हाथ की अंगुलियाँ, पञ्जा, कलाई, कोहनी, कलाई के नीचे का भाग, मोड़े और कोहनी के बीच का भाग अर्थात् भुजदण्ड, कन्धे (मोढ़े) तथा पीठ के पीछेवाले पुट्ठों पर अधिक बल पड़ता है और इनका बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। ये सब अंग सुदृढ़ और बलवान् होजाते हैं। कलाई, भुजदण्ड और हाथों की माँस पेशियों को सुदृढ़, सुन्दर और सुडौल बनानेवाला मुग्दर से बढ़कर अन्य कोई व्यायाम नहीं है। केवल मनोरंजन के लिए नहीं किन्तु शारीरिक उन्नति के के लिए मुग्दर का एक सुन्दर और श्रेष्ठ व्यायाम है।

डम्बल के व्यायाम को लोग हाथों के लिए अच्छा समझते हैं और आज-कल मुग्दर के व्यायाम को प्रायः छोड़ते जारहे हैं। किन्तु मुग्दर के आगे डम्बल का व्यायाम तो कुछ भी नहीं। वैसे मुग्दर से हाथों का व्यायाम तो होता ही है, किन्तु अनेक वर्षों का मेरा अनुभव है कि एक साथ भुजदण्ड आदि हाथों के सब अंग प्रत्यङ्गों को तथा छाती, फेफड़े, सिर, रीढ़ की हड्डी आदि अन्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभी अंगों को बहुत शीघ्र स्वस्थ, सुदृढ़ और सुडौल बनानेवाला मुग्दर के समान देशी और विदेशी व्यायामों में कोई भी व्यायाम नहीं है। १६ वर्ष से अधिक आयु के ब्रह्मचारियों को मुग्दर का व्यायाम सायंकाल अन्य कठोर व्यायामों के समान प्रतिदिन करना चाहिए।

पत्थर की नाल (चकली) उठाना, गोला फेंकना भी हाथों के लिए अच्छा व्यायाम है। सैण्डो का डम्बल्स का व्यायाम भी हाथों का अच्छा व्यायाम है। किन्तु लिखनेवाले व्यक्ति को कमानीदार डम्बल्स का व्यायाम नहीं करना चाहिए। इससे हाथों में भी कभी कभी कम्प का रोग हो जाता है।

कूदना

कूदना-फांदना भी अच्छा व्यायाम है। कुदाई अनेक प्रकार की होती है—लम्बी, ऊंची, पैर बाँधकर, दौड़ कुदाई इत्यादि। कुदाई के समय हाथ-पैर ढीले रखने से बहुत न्यून लाभ होता है इसलिए हाथ-पैरों को खिंचा हुआ और कठोर रखना चाहिए। कूदते समय प्राणायाम करने से अत्यन्त लाभ होता है वैसे तो कूदने से समस्त ही अंगों का अच्छा व्यायाम होता है किन्तु मुख्यतया उदर (पेट) और पैरों को विशेष बल प्राप्त होता है। कूदने से शरीर में स्फूर्ति आती है, आलस्य दूर भागता है और शरीर के प्रत्येक अवयव में रक्त का सञ्चार होने लगता है। दौड़ने, खेलने, कूदने आदि के व्यायाम से वैसे तो बड़ी आयुवालों को भी लाभ होता है किन्तु १४ वर्ष की आयु तक के बालकों के लिए दौड़ना, कूदना, फाँदना खेलना इत्यादि बहुत ही लाभदायक है। छोटे बालकों से इसी प्रकार के व्यायाम कराने चाहियें जिनमें दौड़ना, कूदना, फाँदना अधिक पड़े। १२ वर्ष से छोटी आयु के बालकों से दण्ड, बैठक, मुग्दर और मल्लयुद्ध आदि कठोर व्यायाम नहीं कराने चाहियें।

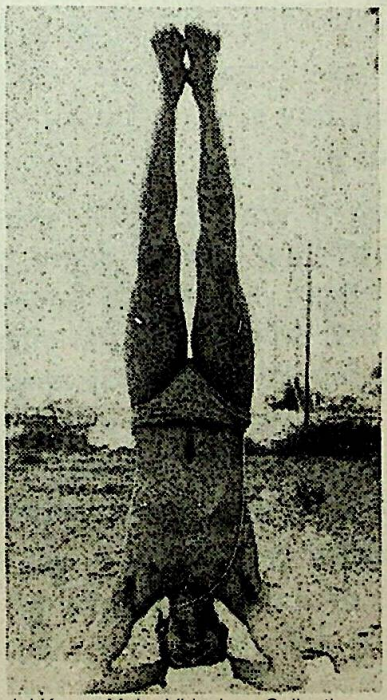
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आसन

आसनों का व्यायाम भी स्वास्थ्य के लिए अति उपयोगी है। वैसे आसन बहुत हैं किन्तु पांच-सात आसन जो ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य प्रेमी को नित्य-प्रति करने चाहियें, उनके विषय में अति संक्षेप से लिखा जाता है। अधिक विस्तार के लिए हमारी 'आसनों के व्यायाम' पुस्तक पढ़ें, जो पृथक् प्रकाशित हो गई है।

१— शीर्षासन



CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके करने की विधि इस प्रकार है— पहले भूमि पर आसन बिछा कर उस पर कपड़े की गोल गद्दी बनाकर रखें और उस पर शिर रख दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिला शिर के दोनों ओर दृढ़ता से रखें। पांव को मोड़कर शिरके समीप ले आवें, तत्पश्चात् शरीर को शनैः शनैः ऊपर को उठाते हुए शिर के बल खड़े हो जावें। मस्तिष्क और शिर के बीच का भाग ही वस्त्र पर टिकाना चाहिए। शरीर नितान्त सीधा रहे, पांवों की अंगुलियां ऊपर को खींची हुई और नेत्र खुले रहने चाहियें। घुटने भी मुड़ने न पावें, श्वास-प्रश्वास की क्रिया पूर्ववत् चलती रहे।

शीर्षासन करने के पश्चात् कुछ समय तक सीधा खड़ा रहना चाहिये। कुछ आसनों के अभ्यासियों का मत है कि जितने समय तक शीर्षासन करें उतने ही समय तक सीधा खड़ा रहने से विशेष लाभ होता है। यदि समय के अभाव से अधिक विलम्ब तक खड़े न रह सकें तो अन्य खड़े होकर करने के आसन करने चाहियें।

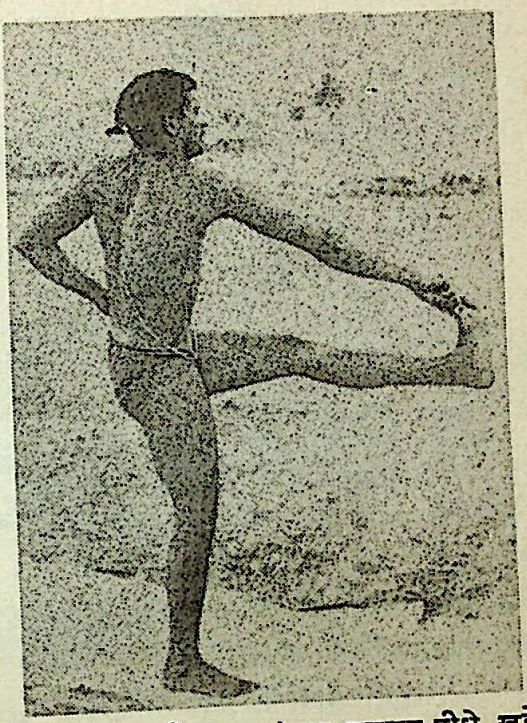
शीर्षासन एक दो सैकिण्ड से आरम्भ करना चाहिए और शनैः शनैः अपनी शक्ति तथा भोजन के अनुसार इसके करने का समय बढ़ा लेना चाहिए। पन्द्रह वा बीस मिनट का अभ्यास हो जाने पर वीर्य सम्बन्धी स्वप्नदोष, धातुक्षय, प्रमेहादि विकार दूर होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। स्वास्थ्य सुन्दर तथा चेहरा लाल हो जाता है। बुद्धि तथा नेत्रज्योति बढ़ती है, जठराग्नि तीव्र होती है, बढ़ी हुई प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) ठीक हो जाते हैं। अर्श, गुल्म, उदावर्त, आध्मान, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, बहुमूत्र प्रभृति उदररोग तथा फोड़े-फुन्सी, कुष्ठ, कण्डू (खाज), पामा, पीनस आदि चर्मरोगों में भी लाभदायक है।

❀❀❀

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२—हस्तपादांगुष्ठासन



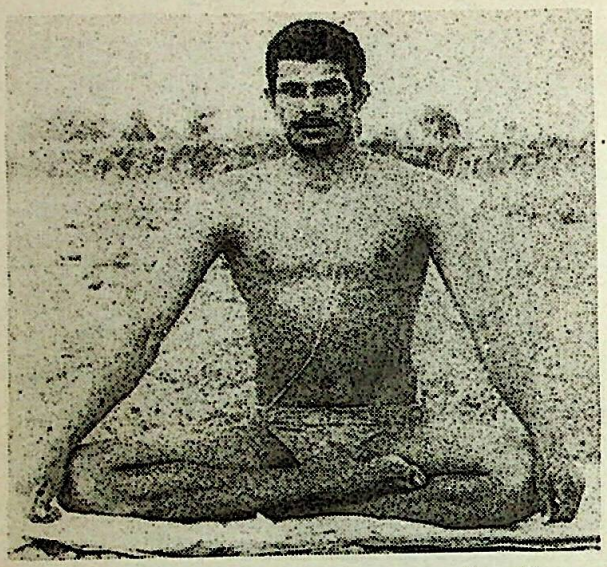
दोनों हाथों को कटि (कमर) पर रखकर पीधे खड़े हो जावें, एक पांव को शनैः शनैः ऊपर को उठावें, पांव घुटने में से न मुड़े जब पांव सम्मुख आजावे तब जिस ओर का पांव हो उसी हाथ से पांव के अंगूठे को पकड़ें, श्वास अन्दर रहना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे हाथ तथा पाँव से भी करें। इस आसन को चित्त लेटकर भी कर सकते हैं।

इस आसन के करने से ग्रीवा, कटि और उदर के विकार नष्ट होते हैं, पिंडली जङ्घा आदि के लिए भी यह लाभदायक है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३—सिद्धासन



समतल स्थान पर बैठकर बायें पांव की एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीचके स्थान पर जमाकर रखें और दाहिने पांव की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपर तथा पंजा बांयें पाँव की जंघा और पिण्डली के बीच में रहे। दोनों पांवों के गट्टे मिले हुए रहें, ठोड़ी का झुकाव कुछ नीचे की ओर करें अथवा कण्ठमूल में लगावें, हाथ घुटनों पर रहें, दृष्टि नासिकग्र भाग पर स्थिर रहे, मेरुदण्ड ग्रीवा आदि सभी सम रेखा में सरल रहने चाहियें।

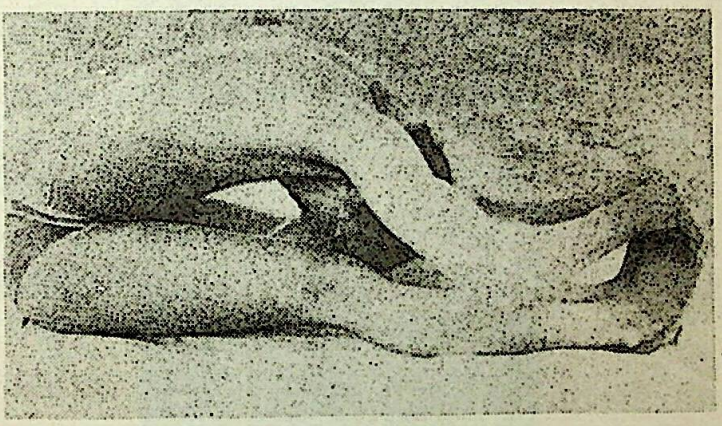
यह आसन योगाभ्यास ध्यान आदि के लिए सर्वोत्तम है, ब्रह्मचर्य की रक्षा में भी परम सहायक है, अतः इसका अभ्यास कम से कम एक दो घण्टे का तो अवश्य ही कर लेना चाहिए। इस आसन को किसी भी समय पढ़ते-लिखते, खाते-पीते कर सकते हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस आसन के अभ्यास से मन स्थिर, जठराग्नि दीप्त और हृदय बलवान् होता है। श्वास, कास, अतीसार बहुमूत्र, स्वप्नदोष, प्रमेहादि रोग नष्ट होते हैं। विषयवासना शांत होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। इसकी सिद्धि से ब्रह्मचर्य की भी सिद्धि होती है, अतः ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की सिद्धि तथा वीर्यरक्षा के लिये इसका विशेष अभ्यास करना चाहिए।

४— पश्चिमोत्तानासन



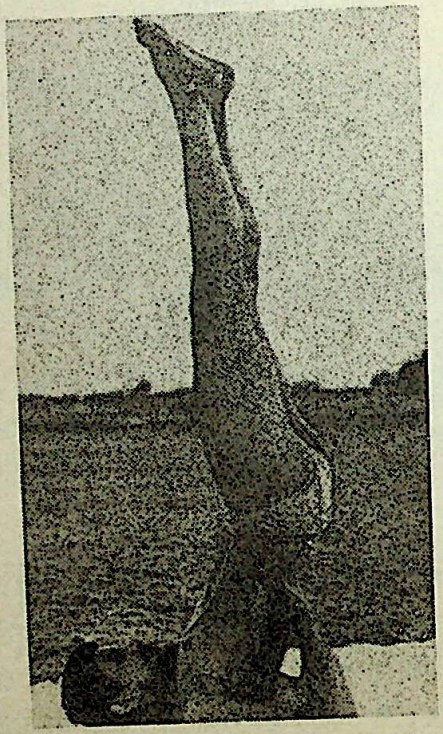
भूमि पर बैठकर दोनों पांवों को सीधा पसार दें, कुछ आगे को झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठों को पकड़ लें और साथ ही श्वास को बाहर निकालकर पेट को अन्दर खेंचें तथा शिर घुटनों पर रखें, यदि हो सके तो पांवों के बीच में भूमि पर रखने का प्रयत्न करें। पांव घुटनों में से न मुड़ें और पांवों के पंजे भी आगे को तने रहें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पेट के लिए यह आसन सर्वोत्तम है, इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पेट हल्का तथा कोमल रहता है, पेट की नस-नाड़ियां मल रहित होजाती हैं, चर्बी कम होकर पेट छोटा होजाता है। अजीर्णता, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरपीड़ा प्रभृति उदरविकार समूल नष्ट होते हैं। यकृत् और प्लीहा निर्दोष होजाते हैं, कुबड़ापन दूर होता है, कद और आयु की वृद्धि होती है।

५—सर्वाङ्गासन



समभूमि पर चित्त लेट जावें और हाथों को सीधा पसारदें, पश्चात् पांवों को शनैः शनै ऊपर को उठावें और हाथों को कटि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर लगाकर सहारा लेकर इतना सीधा करदें कि केवल कन्धों के ऊपर का भाग ही भूमि पर टिके। सम्पूर्ण शरीर खिचा हुआ हो और श्वास अन्दर रहे, ठोड़ी कण्ठमूल में लगावें तथा दृष्टि पांव के अंगूठों पर जमावें।

इस आसन के करने से यकृत्, प्लीहा, पक्वाशय, आंतें शुद्ध होकर जठराग्नि तीव्र होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। कण्ठ के रोगों में लाभदायक है। मिर्गी, गठिया तथा वीर्यरक्षा के लिये उत्तम है।

६—हलासन

सर्वाङ्गासन की स्थिति से ही पांवों को शनैः शनैः शिर के पीछे टेकदें, पांव सीधे रहें और हाथों को भूमि पर सीधा पसारदें तथा श्वास को बाहर निकाल दें।

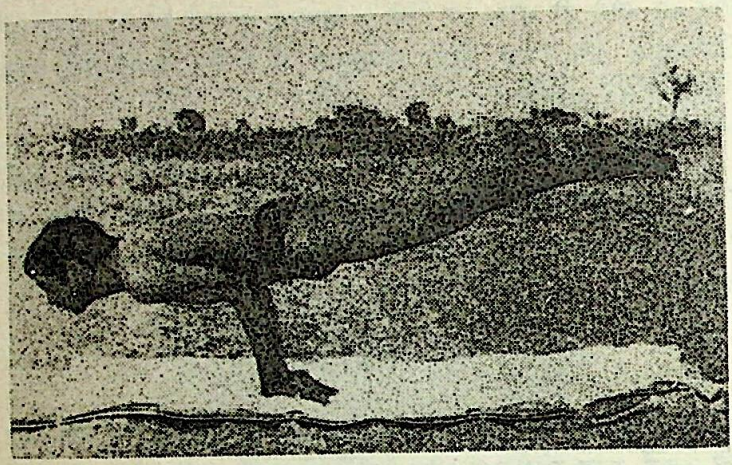
इसके लाभ भी सर्वाङ्गासन के समान ही हैं। इसके करने से विशेषतया आंतों को शक्ति मिलती है, कद बढ़ता है, कटिशूल में उत्तम है।

७—मयूरासन

इस आसन को करने के हाथों के पंजे पांवों की ओर कर दृढ़ता से भूमि पर जमावें, हाथों के पंजों में एक बालिश्त से अधिक अन्तर न रहे। कोहनियों को मिलाकर नाभि पर लगा पांवों को ऊपर उठावें, दोनों पांव मिले हुए तथा तने हुए रहने चाहियें, शिर ऊपर को उठा हुआ रहे। मोर की भांति सम्पूर्ण शरीर का भार पंजों पर सन्तुलित रहना चाहिए। आरम्भ में इस आसन का अभ्यास किसी ऊँचे स्थान मेज, कुर्सी, चबूतरे आदि पर करना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha



मयूरासन

इस आसन के करने से जठराग्नि तीव्र होने के कारण पेट के रोग नहीं होते। हाथों के पहुंचे दृढ़ होते हैं, पेट की चर्बी भी कम हो जाती है। संग्रहणी, अतिसार आदि आंतों के रोगों में लाभदायक है।

॥ इति ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

(पञ्चम भाग)

स्नान

मुख तथा मुख सम्बन्धी अवयवों की शुद्धि के पश्चात् सारे शरीर को शुद्ध करने के लिए स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य-शरीर से नाक, कान, चक्षु आदि इन्द्रियों तथा मल-मूत्र आदि द्वारों से मल निकलता है। क्योंकि शरीर के अन्दर प्रतिक्षण कार्य होता ही रहता है जिससे मल भी उत्पन्न होता रहता है और शरीर स्वभाव से ही भीतर के मल को सदा बाहर निकालता रहता है। गुदा आदि मल-द्वारों तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के अतिरिक्त शरीर के असंख्य त्वचा-छिद्रों (रोमकूपों, मसानों) के द्वार प्रतिक्षण स्वेद (पसीना) आदि के रूप में मल निकलता रहता है। यह मल पसीने के साथ मिश्रित होता है। पसीने का जल तो भाप बनकर उड़ जाता है, किन्तु मल भाग त्वचा पर (छिद्रों के मुख पर) एकत्रित हो जाता है और छिद्रों के मुख को बन्द कर देता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि शरीर से छूनेवाले वस्त्र बहुत शीघ्र मैले हो जाते हैं और उनसे दुर्गन्ध आने लगती है। पसीना शरीर से प्रतिक्षण निकलता है क्योंकि यह रक्त का विकार है, जो भाप बनकर मनुष्य के शरीर से सदैव प्रत्येक ऋतु में ही निकलता है। ग्रीष्म ऋतु तथा कठिन शारीरिक परिश्रम करने पर तो इतना अधिक निकलता है कि यह सबको स्पष्ट दिखाई देता है किन्तु शीतकाल तथा साधारण अवस्था में यह भाप के रूप में निकलता हुआ स्पष्ट दिखाई नहीं देता। और यदि इसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
भली-भांति धोया न जाए तो थोड़े ही समय में चर्म पर इसकी तह जमकर एक पतली सी झिल्ली बन जाती है और बालों के छिद्र वा रोमकूप बन्द होने से शरीर के भीतर का नया मल बाहर नहीं निकलने पाता और वह भीतर ही इकट्ठा होकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त बाहर की धूल (मिट्टी) भी उड़-उड़ कर शरीर की त्वचा पर पड़ती और जमती रहती है। अतः इस जमे हुए मल को दूर करने तथा शरीर को शुद्ध रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य के लिए स्नान करना अत्यावश्यक है। स्नान से शरीर के सब छिद्र खुल जाते हैं और छिद्रों के द्वारा मल विसर्जन की क्रिया ठीक होती रहती है जो स्वास्थ्य के लिए कितनी आवश्यक है, यह पहिले लिखा जा चुका है। जहाँ इन छिद्रों से मल निकलता है, इनके शुद्ध होने पर मनुष्य इनके द्वारा पर्याप्त मात्रा में वायु और प्रकाश ग्रहण करता है। केवल नासिका से ही श्वास न लेकर शरीर के असंख्य रोमकूपों द्वारा भी मनुष्य श्वास लेता रहता है। यह सारा कार्य मल के जम जाने से बन्द हो जाता है और इन छिद्रों के बन्द होने पर हमारा नाक, मुख भले ही खुला रहे, किन्तु हमार जीना असम्भव है।

उदाहरण

एक बार एक विज्ञापनदाता कम्पनी ने अपना प्रचार करने के लिये एक मनुष्य के सारे शरीर पर भली-भांति विज्ञापन चिपका दिये और उसे प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक सारे नगर में घुमाते रहे। सायंकाल वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चिकित्सार्थ एक वैद्य को बुलाया गया। वह बड़ा चतुर था। उसने तत्काल सारे विज्ञापन उतरवाकर उसे भली-भांति स्नान कराया फिर अच्छी प्रकार तेल का मर्दन (मालिश) कराया। तब उसकी मूर्च्छा दूर होकर चेतना आई। इसकी मूर्च्छा का कारण केवल मात्र विज्ञापनों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के चिपकाने के कारण त्वचाछिद्रों का रुक जाना था। यदि स्नान आदि के द्वारा उसके बन्द हुए त्वचाछिद्रों को नहीं खोला जाता तो वह कुछ काल पीछे मर जाता। इस सत्यता को प्रकट करनेवाले ऐसे ही अनेक सच्चे दृष्टान्त मिलते हैं।

इस लिए भारत वर्ष में प्राचीनकाल से ही प्रतिदिन स्नान करने की परिपाटी चली आरही है। हमारे पुरुषा भलीभाँति समझते थे कि स्वास्थ्य और शरीरशुद्धि के लिए स्नान कितना अनिवार्य है। इसलिये ऋषि महर्षियों ने प्रत्येक मनुष्य की दिनचर्या का इसे आवश्यक अङ्ग बनाया है। पौराणिक काल में तो स्नान को स्वर्ग-प्राप्ति का साधन बताकर धर्म का अङ्ग बना दिया गया। उसी अन्धविश्वास के कारण आज भी पुराने ढंग के हिन्दू स्त्री पुरुष इस स्वर्गप्राप्ति के लोभ में सारे कार्तिक मास में प्रतिवर्ष प्रायः बहुत शीतल जल से श्रद्धापूर्वक स्नान करते हैं। उनके कल्पित स्वर्ग का तो कोई अस्तित्व है ही नहीं, किन्तु इसकी आड़ में एक मास स्नान करनेका लाभ तो उन्हें मिल हो जाता है,इस प्रकार भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में प्रातःकाल स्नान करने की चाल इस समय भी न्यूनाधिक पाई जाती है। योरुप, अमीरका आदि अन्य महाद्वीपों वा देशों में भारतवर्ष के समान लोग स्नान नहीं करते। बहुत बड़े लोग ही उन देशों में प्रतिदिन स्नान करने के अभ्यासी मिलेंगे। भारत में अब भी जो इस प्रकार की विशेषतायें मिलती हैं, यह सब ऋषियों की कृपा है। इसी कारण स्नान को भारतीय सभ्यता का भक्त अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझकर प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करता है। किसी कारण से किसी दिन स्नान न कर सके तो अपने आपको पापी समझता है। प्रतिदिन स्नान कर अपने को यश और पुण्य का भागी समझता है। बात तो विचार करने पर यह सत्य की कसौटी पर ठीक ही उतरती है कि स्नान करने में पुण्य और धर्म तो है, परन्तु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह केवल पवित्रता का है। शरीर की शुद्धि और पवित्रता केवल मात्र शुद्ध जल के स्नान से ही होती है। इसलिए मनु जी महराज लिखते हैं:—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति (मनु० अ० ५ श्लोक १०९)

जल से शरीर के बाहर के सब अवयव शुद्ध और पवित्र होते हैं। महर्षि दयानन्द जी महराज ने भी सन्ध्या, उपासनादि नित्य-कर्म में स्नान को प्रथम स्थान दिया है वे अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं:—

"गायत्री मन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो स्नान, आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं, सिखलावें। प्रथम स्नान इस लिए है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्यता आदि होते हैं। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

महर्षि पतञ्जलि जी महाराज अपने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक शास्त्र में लिखते हैं:—

पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीरबलसन्धानं स्नानमोजस्करं परम्॥
(चरक संहिता सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ९१॥)

अर्थात् स्नान से शरीर पवित्र हो जाता है। वीर्य और आयु की वृद्धि होती है। स्नान से श्रम (थकावट) पसीना तथा मल दूर होता है। शारीरिक बल बढ़ता है तथा ओज की अत्यन्त वृद्धि होती है। इसी प्रकार सुश्रुत में महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं:—

निद्रादाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम्॥
तन्द्रापापोशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्द्धनम्।
रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम्॥
(सुश्रुत चिकित्सा० अ० २४ श्लोक० ५७-५८)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्नान-निद्रा, जलन, थकान, पसीना, खाज और प्यास को नष्ट करता है। हृदय के लिए हितकारी है। मैल दूर करने वाले साधनों में सर्वश्रेष्ठ साधन है। सब इन्द्रियों का शोधन (शुद्धि,) तन्द्रा (ऊंघना) और पाप का नाश करता है, स्नान से चित्त प्रसन्न होता है। पुंस्त्वशक्ति की वृद्धि अर्थात् पुरुषार्थ बढ़ता है, रक्त शुद्ध होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अन्य अनेक ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के लाभ लिखे हैं। एक ग्रन्थकार उपर्युक्त लाभ लिखता हुआ इतना अधिक लिखता है—

प्रातःस्नानं दुःस्वप्नविध्वंसनं रूपद्योतकरं शरीरसुखदम् ॥

अर्थात् 'प्रातः स्नान करना दुष्टस्वप्नों (स्वप्नदोष) का सर्वनाश करने वाला है। सुन्दरता-कान्ति-तेज देनेवाला और शरीर के लिए सुखकारी है।

यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि मलिनता जो रोगों का घर है, उसे दूर करने के लिए स्नान सर्वोत्तम साधन है। बाह्य शारीरिक मलिनता स्नान द्वारा जब दूर हो जाती है तो शरीर शुद्ध और पवित्र हो जाता है जिससे शरीर के सब रोमकूप (मसाम) खुल जाते हैं और शरीर से प्रतिक्षण निकलने वाला दूषित मल भलीभांति स्वेद (पसीना) द्वारा विना किसी बाधा के निकलता रहता है। इससे शरीर और रक्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है और बाहर की शुद्ध वायु छिद्रों द्वारा भीतर जाती रहती है। इस प्रकार शरीर का मल वा विष भलीभांति निकलते रहने से तथा पर्याप्त मात्रा में शुद्ध वायु की प्राप्ति से रक्त अत्यन्त शुद्ध, विकाररहित और शरीर निर्मल, पवित्र, नीरोग स्वस्थ और सुन्दर हो जाता है। प्रतिदिन स्नान न करने के कारण शरीर के मलिन होने से छिद्रों के बन्द हो जाने और वायु के निर्बाध आवागमन के रुक जाने से खुजली, दाद, फोड़े, फुन्सी आदि रक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
बिकार और इसी प्रकार के अनेक रोगों से मनुष्य असंख्य हानि और कष्ट उठाते रहते हैं। पता नहीं क्यों लोग इतने आलसी और मूर्ख हैं कि जिस स्नान पर एक कौड़ी का व्यय नहीं होता और लाभ का ठिकाना नहीं, फिर भी इतने लाभदायक कर्तव्य (कर्म) को नित्य प्रति करने में कष्ट मानते हैं वा आलस्य करते हैं।

केवल अकेले स्नान से ही बीसियों प्रकार के रोगों से मनुष्य का शरीर सुरक्षित रहता है और मनुष्य पूर्ण स्वस्थ बन जाता है। प्राचीन ऋषियों की इस महत्वपूर्ण बात से प्रभावित होकर जर्मन के प्रसिद्ध डाक्टर लूई कोहनी ने स्नान द्वारा चिकित्सा (Bath system) नाम की एक पद्धति ही चला डाली और इसी विषय पर एक बड़ा ग्रन्थ भी लिखा है। जिसमें प्रत्येक रोग की चिकित्सा भिन्न-भिन्न प्रकार के स्नानों द्वारा ही करनी लिखी है। आज योरुप आदि देशों में इसका खूब प्रचार भी हुआ है। ज्यों ज्यों समय बीतता जायेगा स्नान के माहात्म्य को संसार समझता जाएगा और विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली स्वास्थ्य प्रदायिनी ऋषियों की इस दैनिक पवित्र स्नान क्रिया को अवश्य अपनायेगा। तभी सब रोगों से मुक्ति होगी और मनुष्य पूर्ण स्वस्थ और सुखी होकर जीवन का आनन्द पायेगा। क्योंकि हमारे पूर्वज साक्षात्कृतधर्मा ऋषि महर्षि परम पिता परमात्मा के परम पवित्र कल्याणकारी वेदज्ञान से सर्वथा परिचित थे। इसलिए वे अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहकर प्राणिमात्र की उन्नति के लिए वेदज्ञान का प्रचार देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में करते थे। संसार का उपकार करना ही उनके जीवन का ध्येय वा मुख्य उद्देश्य था। इसलिए जीवनोपयोगी इस स्नान क्रिया का प्रचार वे क्यों न करते।

जल का सदुपयोग मनुष्य के लिए कितना कल्याणकारी है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
इस विषय में स्नान के समय पाठ किये जानेवाले कुछ ही वेदमन्त्रों से यह स्पष्ट प्रकट होता है—

वेद में शुद्ध जल वा स्नान की महिमा

ओ३म् —आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ ऋक्० १०।९।१॥

(आपः) जल (हि) सचमुच (मयोभुवः) सुखदायी (ष्ठा) होते हैं। (ताः) वे जल [नः] हमें [ऊर्जे] बल के लिए [महे] महत्व के लिए (रणाय-चक्षसे) स्वस्थ देखने के लिए (दधातन) धारण करें।

सार यह है—जल के सदुपयोग द्वारा हमें सुख बल, ओज, महत्ता, बोलने की शक्ति पैदा होती है।

ओ३म्—यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ ऋक्० १०-९-२ ॥

(वः) तुम्हारा (यः) जो (शिवतमः) अत्यन्त कल्याणकारी (रसः) रस है [जल है] (उशतीः मातरः इव) सन्तान से स्नेह करनेवाली माताओं की भांति (इह) इस समय वा इस लोक में (नः) हमें (तस्य) उसका (भाजयत) भागी कीजिए।

भावार्थः—जल परमात्मा का अत्यन्त कल्याणकारी रस है जो हमारी स्नेहमयी माता के समान प्राणिमात्र का पालन पोषण और रक्षा करता है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में "अप्सु विश्वानि भेषजा अग्निं च विश्वशम्भुवम्" यह आया है। अर्थात् जलों के भीतर सब औषधियां हैं और संसार का कल्याण करनेवाली अग्नि है।

ओ३म्—आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ऋक्० ११-१९-१० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(आपः) जल (मम तन्वे) मेरे शरीर के लिए, विस्तार के लिए (च) और (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यं दृशे) सूर्य को देखने के लिए (वरूथम्+भेषजम्) श्रेष्ठ औषध [पृणीत] प्रभु कृपा से दें।

इस मन्त्र में जल को विस्तार देनेवाला, दीर्घायु और चिरकाल तक देखने के लिए नेत्रज्योति देनेवाली श्रेष्ठ औषध बताया है।

स्नान (जल) पाप का विनाशक है

ओ३म्—इदमापः प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥ ऋक्० १०-९-८॥

(मयि) मुझ में (यत् किं च) जो कुछ भी (दुरितम्) दोष (पाप) है, (वा) अथवा (यत्) जो (अहम्) मैंने (अभि दुद्रोह) सृष्टि नियम का उल्लङ्घन किया हो (वा) अथवा (यत्) जो (शेपे) गाली दी हो (उत) और (अनृतम्) मिथ्या बोला हो (आपः) जल में शीतलता का आधान करनेवाला भगवान् मेरे (इदम्) इस सब दुरित (दोष को पाप) को (प्रवहत) भली प्रकार बहा दे।

भावार्थः—जल अनृत भाषण, सृष्टि नियमों का उल्लङ्घन तथा इसी प्रकार अन्य अनेक दोषों को (अपने शीतलता गुण के कारण) दूर करनेवाला है।

इसी प्रकार जल की महिमा वेद भगवान् ने खूब गाई है। अथर्ववेद १-४-४ में "अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्" जल में अमृत और औषध है ऐसा आया है।

इन प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि भगवान् ने जल के भीतर एक अद्भुत शक्ति कूट-कूट कर भर रखी है जो प्राणियों की प्यास को बुझाती है, शरीर का मल जिससे धुलता है और यदि युक्तिपूर्वक जल का सेवन (स्नानादि के द्वारा) किया जाये तो कोई रोग पास न फटके। यदि भूल से कोई नियम विरुद्ध आचरण कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बैठे और दुर्भाग्य से प्रकृति रोग के रूप में हमें दण्ड दे दे तो इससे बचने का उपाय जल है। जिसमें सब औषध हैं। जल सुखों का भण्डार, बल, ओज, शीतलता (शान्ति), शक्ति, पुष्टि, महत्ता, वक्तृत्वशक्ति, नेत्रज्योति आदि के प्रदान करनेवाला है सब रोगों की एकमात्र औषध है। वेद ने जल को संसार का सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी रस माना है और इसकी माता के समान उपमा दी है। क्योंकि "जितना माता से सन्तानों का उपदेश पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता।" (सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)।

महर्षि दयानन्द ने माता की प्रशंसा में उपर्युक्त शब्द कहे हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि जिस प्रकार माता अपने प्राणों की आहुति देकर अपने सन्तान की रक्षा और हित चाहती है उसी प्रकार भगवान् का सर्वश्रेष्ठ जल भी प्रभु के प्रिय पुत्रो (सब प्राणियों) की रक्षा और हित के लिए पूर्ण आहुति दे देता है। जिस प्रकार प्राणियों का प्राण वायु है, इसी प्रकार जल भी क्या वनस्पति क्या प्राणी सभी के जीवन का आधार है। जल की आवश्यकता पड़ने पर यदि जल न मिले उस समय इसके मूल्य का पता चलता है। जल न मिलने पर खेती सूख जाती है। क्या जङ्गम क्या स्थावर सारा संसार ही व्याकुल हो उठता है, उस समय याद आता है :--

"यो वः शिवतमो रस उशतीरिव मातरः" आहा! प्रभु यह तेरा रस सचमुच कल्याणकारी है और यह हमारी माता के समान रक्षा करता है।

संस्कृत में जल का नाम जीवन रखना जल की महत्ता को प्रकट करता है। जल के बिना जीवन असम्भव है, इसको सिद्ध

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य के शरीर में लगभग ३/४ भाग जल का है। फिर यह किस बाडी का बथुआ है जो बिना जल जी सके। इसलिए जहाँ जल होता है वहां ही यह सदैव से बसता आया है। इसी सत्य को प्रकट करने के लिए वेद शास्त्रों ने जल की महिमा का इतना वर्णन किया है।

जगदम्बा ने अपने प्रिय पुत्रों [जीवों] के कल्याण के लिये जल जैसा शीतल, शान्तिदायक अमृतरूपी पदार्थ रच दिया। किन्तु हम हैं उसके अभागे कपूत, जो इस अमृत से भी दूर भागते हैं। स्नान तो दूर रहा हमारा जलपान भी ठीक नहीं होता। पर्याप्त मात्रा में जल न मिलने से पाचन क्रिया ठीक नहीं होती और जल के सहारे ही शरीर के मल स्वेद [पसीना] और मूत्र के द्वारा बाहर निकलते हैं और शरीर से निकला हुआ हमारा देह-मल जल से स्नान द्वारा धुल कर तन और मन को शान्त, पवित्र और निर्मल कर देता है। मनुष्य को बल, शक्ति, तेज, क्रांति, रूप और सुन्दरता आदि गुण शरीर शुद्धि से ही प्राप्त होते हैं। शरीर शुद्ध होने से आरोग्य और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। क्योंकि मलिनता रोगों की जननी है। और स्वस्थ मनुष्य ही दीर्घजीवी होता है। इस प्रत्यक्ष को सिद्ध करने के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं। शरीर की मलीनता से मन भी मलीन रहता है।

"मलीन वा गन्दा मन ब्रह्मचर्य का परम शत्रु है। काम रिपु मलीन मन में ही आकर डेरा जमता है और जगी हुई कामवासना ब्रह्मचर्य रूपी भवन की जड़ों को खोखला कर डालती है।"

कामवासना को शान्त करने के लिए शीतल जल का स्नान एक श्रेष्ठ साधन है। यह अनुभव सिद्ध और सर्वसम्मत सिद्धांत है। जाग्रत अवस्था में ही नहीं स्वप्न अवस्था में सताने वाले दुःस्वप्न वा काम विकारों का भी स्नान शमन करता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
योगी याज्ञवल्क्य भी इस सत्य को इस प्रकार प्रकट करता है :—

गुणाः सदा स्नानपरस्य साधोः,
रूपं च तेजश्च बलञ्च शौचम् ॥
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वम्,
दुःस्वप्ननाशञ्च यशश्च मेधाम् ॥

हे सज्जनो ! सदव स्नान करने वाले मनुष्य को रूप, तेज, बल, पवित्रता आयुष्य, आरोग्यता, अलोलुपता, बुरे स्वप्नों का न आना, यश और मेधादि गुण प्राप्त होते हैं।

ऊपर लिखे प्रमाणों से सिद्ध होता है कि स्नान सभी के लिये अत्यन्त लाभदायक होने से प्रतिदिन करना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के लिये विधिपूर्वक स्नान करना अमृत की घूंट भरना है। वेद के कोष निघण्टु में उदक (जल) के एकशत (सौ) नाम आये हैं। इसमें "रेतः शुक्रम्" जो सब धातुओं के सार वीर्य के ही नाम हैं और इसी प्रकार ओज तेज जो शुद्ध वीर्य वा उस से उत्पन्न हुई शक्ति के नाम हैं, ये निघण्टु में पढ़े हैं। ये भी जल के नाम हैं। इसी प्रकार अमृत भी जल का नाम लिखा है। इस से यही सिद्ध होता है—

"कि यदि ब्रह्मचारी स्नानादि के द्वारा जल का उचित प्रयोग करता रहे तो जल वीर्यरक्षा में अमृत के समान सहायक है और यह ब्रह्मचारी को शुक्र (वीर्य) से परिपूरित करता हुआ ऊर्ध्वरेता, ओजस्वी, तेजस्वी बना देता है।"

जल की विशेषता प्रकट करनेवाले और भी अनेक "सर्पिः, घृतम् क्षीरम्, अन्नम् भेषजम्, पवित्रम्, शुभम्, महायशः, स्वः" आदि नाम भी इसके वहीं लिखे हैं। जिससे प्रकट होता है कि जल का सदुपयोग दूध, घी के समान हृष्ट-पुष्ट करनेवाला है, अन्न के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
समान जीवन का आधार तथा (अन्न के उत्पादन में मुख्य हेतु है) सर्वरोग नाशक औषध है। इसलिए इसको आरोग्य और स्वास्थ्य प्रदान करके शुद्ध, पवित्र करनेवाला कहा गया है। यह मनुष्य को कल्याण मार्ग का पथिक बनाकर महान् और यशस्वी बनाता है। तब ही मानव अन्त में स्वः=स्वर्गलोक की प्राप्ति करता और मोक्ष पद को पाता है। इसलिए ब्रह्मचारी को जल को तुच्छ वस्तु समझ कर इससे उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। ब्रह्मचर्य पालन में जो विघ्न और बाधायें हैं, स्नान उनका वध (सर्वनाश) करके वीर्यरक्षा में सच्चे मित्र के समान सहायता करता है। किन्तु यह लाभ शास्त्रीय विधि के अनुसार स्नान करने से होते हैं।

स्नान की शास्त्रीय विधि

लोग प्रायः स्नान करने में बड़ी शीघ्रता करते हैं। समय पर शीतल, उष्ण मलीन वा स्वच्छ जैसा भी जल मिल जाता है, झट-पट शरीर पर दो चार लोटे डाल लेते हैं। शरीर सारा भीगा है वा सूखा इसका भी ध्यान नहीं रखते। स्नान के समय शरीर को रगड़ने के लिये हाथ लगाने में इन्हें कष्ट होता है। मूर्खों ने ऐसी-ऐसी लोकोक्तियां भी घड़ रखी हैं कि—

"स्त्री का नहाना और पुरुष का खाना बहुत शीघ्र होना चाहिये।"

भला इस प्रकार के स्नान से भी कोई लाभ हो सकता है। यह तो स्नान का नाम ही करना है। इस से लाभ के स्थान पर हानि होती है। जब सारा शरीर ही नहीं भीगता तो शरीर का मैल कैसे दूर हो सकता है? उल्टा थोड़ सा जल डालने से शरीर के भीतर की उष्णता ऊपर आ जाती है और वह शान्त न होने से हानि वा कष्ट पहुँचाती है। इसलिए जब तक स्नान से शरीर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
शीतल और शान्त न हो जाए और उस पर लगा हुआ मल तथा विष सर्वथा न धुल जाए तब तक उसका नाम स्नान रखना मानो स्नान का तिरस्कार करना है। इसलिए सभी ऋतुओं में पर्याप्त शुद्ध शीतल जल से पर्याप्त समय तक ब्रह्मचारी को प्रतिदिन रगड़ रगड़ कर अर्थात् घर्षण स्नान करना चाहिये। तभी देह के सभी मल दूर होकर शुद्ध शीतल और शान्त होता है। शीत ऋतु की अपेक्षा उष्ण ऋतु में अधिक समय तक स्नान करना चाहिए। उष्णकाल में तो प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिए ही दोनों समय का स्नान अत्यन्त आवश्यक और बहुत लाभदायक है किन्तु ब्रह्मचारी को तो सभी ऋतुओं में दोनों समय स्नान करना भोजन से भी आवश्यक समझना चाहिये। कितने ही ब्रह्मचर्य प्रेमी रात्रि को शयन से पूर्व भी स्नान करते हैं। इस से उन्हें बड़ा लाभ यह होता है कि उन्हें निद्राकाल में ब्रह्मचर्य का परम शत्रु स्वप्नदोष नहीं सताता।

"स्वप्नदोष के रोगी को चाहे वह गृहस्थी हो वा ब्रह्मचारी सायंकाल अवश्य स्नान करना चाहिये।"

जिन को स्वप्नदोष होता है उनको दोनों समय का स्नान अथवा तीसरी बार का भी स्नान बहुत लाभ करता है। स्वप्नदोष की संख्या अवश्य घट जाती और किसी किसी का यह रोग वा व्याधि स्नान से ही हट जाती है। जिस सौभाग्यशाली स्त्री वा पुरुष को यह महारोग नहीं होता वह भी भविष्य में दोनों समय के स्नान से सदैव निश्चिन्त और सुरक्षित (बचा) रहता है।

"सायं प्रातः का स्नान स्वप्नदोष के शस्त्र के प्रहार को रोकने की एक ढाल है।"

सभी ऋतुओं में ब्रह्मचारी ही नहीं, आबाल वृद्ध वनिता सभी नर-नारियों को गृहस्थ, वानप्रस्थ वा संन्यासियों को, यों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहिये कि सभी वर्णाश्रम वालों को सदैव शीतल जल से स्नान करना चाहिये। उष्ण जल का प्रयोग वा स्नान ब्रह्मचारी के लिये अत्यन्त हानिकारक है। उष्ण जल तो ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य का सर्वनाश करने वाला है। मुझे यह पढ़कर अत्यन्त दुःख और आश्चर्य होता है कि ब्रह्मचर्य की पुस्तकों में भी लेखकों ने शीतकाल में उष्णजल से स्नान करने का विकल्प कर दिया है किसी किसी ने तो खुली आज्ञा दे दी है। मैं समझता हूं उन्होंने यह भारी पाप किया है।

"उष्ण जल से स्नान करना तो वीर्यनाश का निमन्त्रण देना है"

ब्रह्मचारी क्या ? किसी भी ब्रह्मचर्य प्रेमी को कभी भूलकर भी उष्ण जल से स्नान नहीं करना चाहिये। शीतल जल का स्नान जहां ब्रह्मचर्य के लिये पीयूषपान है इसी प्रकार सभी के लिये और सब प्रकार से स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। जहां शीतल जल के स्नान से शरीर के भीतर की व्यर्थ की उष्णता बाहर या ऊपर आकर शान्त हो जाती है इसी प्रकार बाहर की उष्णता दबकर भीतर चली जाती है। इसी से मनुष्य की जठराग्नि प्रदीप्त और प्रबल हो जाती है। यह सभी के अनुभव की बात है कि भूख कितनी ही न्यून क्यों न हो किन्तु स्नान के पश्चात् अवश्य बढ़ जाती है।

हमारे प्रान्त में लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है। "ब्राह्मण नहाया और गजब आया।" कोई जन्म जाति का ठेकेदार बिना विचारे दुःख न मान जाये। यह सत्य इस प्रकार है :— ब्राह्मण अध्ययन अध्यापन, यजन याजन तथा उपदेश आदि का कार्य बैठकर ही करता है, यह सब मस्तिष्क का ही कार्य है। इसलिए ब्राह्मण को अन्य वर्णों की अपेक्षा शारीरिक श्रम बहुत न्यून करना पड़ता है,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
इसलिए उसे भूख कम लगती है। किन्तु शीतल जल के स्नान से उसे भी भूख के कष्ट का अनुभव होता है। इस लोकोक्ति का यही अभिप्राय है। इसीलिये महर्षि धन्वन्तरि ने "स्नानमग्नेश्च दीपनम्" ऐसा कहा है। अर्थात् अन्य लाभों के अतिरिक्त स्नान जठराग्नि को दीप्त करता है, अर्थात् भूख को जगाता व लगाता है। भारतवर्ष जैसे उष्ण देशवासियों के लिए तो शीतल जल का स्नान लाभदायक है ही किन्तु शीतप्रधान पाश्चात्य देशों के लिए भी शीतल जल का स्नान लाभ ही करता है। वहां के लोग भी इस की उपयोगिता समझने लगे हैं।

योरुप के एक डाक्टर निकोल्स लिखते हैं :—"शीतल जल से मत डरो। मैंने शीतल वायु के लगने से लोगों को रोगी होते देखा है, परन्तु शीतल जल से स्नान करने पर किसी को रोगी पड़ते नहीं देखा। मैं चालीस वर्षों से निरन्तर शीतल जल से स्नान किया करता हूं। जब वायु की शीतलता (ठण्ड) थर्मामीटर में शून्य डिग्री से भी १० डिग्री नीचे हो गई थी और जल की एक-एक बूंद फर्श पर पड़ते ही जमकर बर्फ हो जाती थी उस समय भी मैंने शीतल जल से स्नान किया है। शीतल जल से मैंने तो सदा बल और आरोग्यता को ही प्राप्त किया है।"

जब योरुप और अमरीका जैसे शीतल देशों के निवासी शीतल जल के स्नान को इतना लाभदायक और महत्त्वपूर्ण समझते हैं, तब भारत समान उष्ण जलवायु वाले देशों में शीतल जल से स्नान करने के लाभ और महत्व को सभी सहज में ही समझ सकते हैं।

शीतल जल के स्नान से मनुष्य में स्वाभाविक पवित्रता और उच्च विचारों की जागृति होती है। कुत्सित वा गन्दे विचारों का सर्वनाश होता है। क्यों कि शीतल जल का स्नान शरीर ही नहीं,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan
मन को भी शुद्ध पवित्र और शान्त करता है। जिसका अन्तःकरण चतुष्टय और आत्मा पर भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार स्नान बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार की शुद्धि करता है, जो ब्रह्मचर्य के लिए अत्यन्त आश्यक है। इसीलिए महर्षि धन्वन्तरि जी ने —

"पापोपशमनं स्नानं"

शीतल जल का स्नान पापों का उपशमन (सर्वनाश) करता है ऐसा लिखा है। यह अनुभूत भी है। जब कामविकार किसी युवक को बहुत तंग करने लगे और किसी उपाय से भी शांत न हो तो ऐसे समय में शीतल जल का स्नान रामबाण के समान कार्य करता है। सिर पर शीतल जल पर्याप्त मात्रा में डालना चाहिए जिससे सिर भी सर्वथा शीतल हो जाए। इससे मस्तिष्क की उष्णता दूर होकर मन और शरीर भी शुद्ध, पवित्र और शांत हो जाते हैं और कामाग्नि वा पाप की भावना के ठहरने का स्थान कहां ? क्योंकि मलीन शरीर में मलीन मन और मलीन मन में काम-विकार (पाप) का निवास होता है। इस बात का तो स्नान करते समय सभी को सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जब स्नान करने के लिए बैठें तो सबसे प्रथम सिर पर ही जल डालें और इसे भिगोकर खूब ठण्डा करलें। कभी भूलकर भी पहले पैरों पर वा शरीर के नीचे के भागों पर स्नान करते समय जल न डालें, नहीं तो नीचे की सब उष्णता सिर में चढ़कर मस्तिष्क, स्मरणशक्ति और नेत्र-ज्योति को बहुत हानि पहुँचायेगी, और इससे काम-विकार जागृत हो प्रबल होते हैं। मन और स्वास्थ्य दोनों पर ही दुष्प्रभाव पड़ता है। इसलिए स्नान करते समय सबसे प्रथम सिरको भिगोयें और भलीभांति धोयें। इस छोटी सी भूल के कारण अज्ञानवश लोग अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। वैसे तो साधारण मनुष्यों में भी यह बात प्रचलित है कि सिर को सदैव शीतल (ठण्डा) और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पैरों को उष्ण (गर्म) रखना चाहिए किन्तु स्नान करते समय इस स्वास्थ्य के रहस्य को भूल जाते हैं। अंगरेज भाषा में भी यह लोकोक्ति इस प्रकार आती है:—

"Keep the head cool and the feet warm"

अर्थात् सिर ठण्डा और पैर उष्ण रखें। यदि पैरों को और शरीर के नीचे के अंगों को स्नान के समय पहले भिगोया वा धोया जावे और पीछे सिर और ऊपर के अंगों को भिगोयें, धोयें तो स्नान का जो उद्देश्य शरीर शुद्धि है, वह भी ठीक-ठीक नहीं होती। क्योंकि सिर अन्य अंगों को मैला वा गन्दा करता है, जिन्हें फिर धोना पड़ता है इसलिए सिर भिगोकर मुख आदि नीचे के अंगों को क्रमशः खूब भिगोयें और रगड़-रगड़कर भलीभांति धोयें। शरीर के प्रत्येक अंग को हाथों से खूब रगड़-रगड़कर शुद्ध कर डालें। साथ ही शरीर पर इच्छानुसार जल भी डालते रहें। बिना रगड़े शरीर पर जल डालने से मैल दूर नहीं होता। किन्तु आंख, मूत्रेन्द्रिय आदि कोमल अंगों को सावधानता से शुद्ध करना चाहिए, नहीं तो हानि होने की सम्भावना है। स्नान करते समय हाथ से रगड़ने से शरीर में जो उष्णता वा विद्युत् सी उत्पन्न होती है उससे शरीर में उत्साह, स्फूर्ति, साहस, बल, तेज वा कान्ति की वृद्धि होती है, और सभी शारीरिक रोगों की निवृत्ति होती है। इसलिए शरीर के प्रत्येक अवयव को भलीभांति रगड़ना चाहिए। इससे स्नान के साथ व्यायाम भी हो जाता है, और जिस अंग वा स्थान को नहीं रगड़ा जाता वह निर्बल और रोगी हो जाता है। स्नान के समय पेट का खूब घर्षण करना चाहिए जिससे प्रायः सभी उदर विकार समाप्त हो जाते हैं। पेट अपानवायु के निकलने से अत्यन्त कोमल हो जाता है। शौच भी खुलकर आता है और मनुष्य का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सारा शरीर सुन्दर, स्वस्थ और तेजस्वी हो जाता है। इस प्रकार घर्षण स्नान से अर्थात् रगड़-रगड़कर नहाने से मनुष्य सारे दिन प्रसन्न और आनन्द में मग्न रहता है। जो स्नान नहीं करते अथवा शरीर को बिना रगड़े स्नान करते हैं उनको स्नान का पूरा लाभ नहीं पहुँचता, और ऐसे ही लोग सदा मलीन, आलसी, विषयी, रोगी, दुःखी, निरुत्साही तथा निस्तेज रहते हैं। इन्हें ब्रह्मचर्य पालन में सफलता नहीं मिलती इसलिए अल्पायु में ही मृत्यु के ग्राम बन जाते हैं। दीर्घ-जीवन और आनन्द की प्राप्ति इनके भाग्य में नहीं होती। ब्रह्मचारी को स्नान करते समय एक बात का और ध्यान रखना चाहिये कि जहां वह मस्तिष्क को खूब शीतल जल डालकर स्नान से पूर्व धोएं और शुद्ध करें, उसी समय नाभि के नीचे पर्याप्त शीतल जल की धारा और मूत्रेन्द्रिय तथा उसके आस-पास के स्थान को धोकर शुद्ध कर डालें। मूत्रेन्द्रिय को रगड़ें या मलें नहीं। इससे हानि हो सकती है। इस स्थान की शुद्धि आवश्यक है। स्नान करते समय हम अन्य सभी अंगों को तो शुद्ध कर लेते हैं किन्तु मूत्रेन्द्रिय को लज्जा वा प्रमाद के कारण छोड़ देते हैं। इसकी शुद्धि का हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए, यह एक कोमल अंग है। इसे तथा अण्डकोषों को तथा आस-पास के स्थान को प्रतिदिन स्नान के समय शुद्ध करना आवश्यक है। इनकी शुद्धि के अभाव में दाद, खुजली, स्वप्नदोष आदि रोग उत्पन्न होते हैं। किन्तु नाभि के नीचे जल डालने तथा मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि और स्नान से ब्रह्मचर्य पालन में बड़ी सहायता मिलती है। स्नान के समय मूत्रेन्द्रिय स्नान भी यदि सुविधा हो तो प्रतिदिन अवश्य करें। जिसकी विधि और लाभ पहले लिख चुके हैं। काम-विकार शांत होते हैं और केवलमात्र इस क्रिया के करने से ही बहुत से रोगियों का स्वप्नदोष और धातु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रमेह दूर हो जाता है। १६ वर्ष की आयु के पीछे मूत्रेन्द्रिय के आस-पास के स्थान पर बाल उगते हैं इनको भी मास में दो बार कैंची से काट डालना चाहिये नहीं तो हानि होने की सम्भावना है। इस स्थान की शुद्धि करने में भी यह बाधक हैं। आजकल फैशन के पागलपन में लोग शिर पर बड़े-बड़े बाल रखते हैं। इससे शिर में धूल आदि मैल जम जाता है और शिर का स्नान भलीभांति नहीं होता। ऐसे लोगों के शिर में मैल जमा ही रहता है। बिना शिर की शुद्धि के स्नान ही क्या है? इस लिए कहा है— 'न च स्नायाद् बिना शिरः' अर्थात् बिना शिर का स्नान किये वा भिगोये स्नान कभी नहीं करना चाहिये।

इसलिये शिर का स्नान सर्वप्रथम और अवश्य होना चाहिये। बाल इस स्नान में बाधक हैं। भारत जैसे उष्णप्रदेश और विशेष-तया उष्णकाल में बाल अत्यन्त हानिकारक हैं। इनसे मस्तिष्क बुद्धि और आंखें खराब हो जाती हैं। इसलिये इन बालों की बला से बचे रहें जिससे स्नान का लाभ शरीर और नेत्रों को पूर्णतया पहुँच सके। कई लोग बालों को तथा शरीर को शुद्ध करने के लिये साबुन मलकर उष्ण जल से नहाते हैं। पहले लिखा जाचुका है कि उष्ण जल ब्रह्मचर्य की दृष्टि से तो अत्यन्त हानिकारक है ही, इसके अतिरिक्त उष्ण जल के स्नान से और भी अनेक हानियाँ होती हैं। शिर पर उष्ण जल के डालने के विषय में सुश्रुत में महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं:—

'उष्णेन शिरसः स्नानमहितं चक्षुषः सदा।'

अर्थात् उष्ण जल शिर पर डालकर स्नान करना नेत्रों को सदा हानिकारक है। और शीतल जल के विषय में वे लिखते हैं:—

'शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यमिति निर्दिशे
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Kanya Gurukula Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् शीतल जल शिर पर डालकर स्नान करना नेत्रों को लाभदायक है।

एक वैद्य एक स्थान पर लिखते हैं:—

'शीतल जल के स्नान से उष्णवात, सोजाक, मृगी, उन्माद, रक्तपित्त, स्वप्नदोष, प्रमेह और मूर्च्छा आदि रोगों में बड़ा उपकार होता है।'

आजकल जब कि धातुक्षीणता से ९० प्रतिशत मनुष्यों की प्रकृति वा स्वभाव उष्ण रहता है इस दृष्टि से भी सभी को शीतल जल से स्नान करना लाभदायक है। सन्देह होता है, क्या रोगी भी उष्ण जल से न नहाये ? प्रथम तो ब्रह्मचारी रोगी होता ही नहीं। यदि किसी भूल से हो भी जाये और स्नान करने की इच्छा हो तो उसे शीतल जल से ही स्नान करना चाहिये। रुग्ण अवस्था में जो लोग भोजन करते हुए नहीं डरते, पता नहीं वे स्नान से क्यों डरते हैं ? और रोगी तो दीन दया का पात्र ही होता है। इसलिये मनु जी ने 'नातुरः स्नानमाचरेत्' (मनु०अ० ४ श्लोक १२९) रोगी स्नान न करे। यह आज्ञा देकर रोगी पर दया दृष्टि की है। दौर्भाग्यवश रुग्ण अवस्था में किसी को उष्ण जल से स्नान करना ही पड़े तो शिर, मसाना (मूत्रेन्द्रिय) पर तो शीतल जल ही डालना चाहिये। इन दोनों स्थानों पर तो उष्ण जल का कभी प्रयोग न करें। इसकी हानियां पहले ही बताई जा चुकी हैं।

स्नान का स्थान

स्नान करने के लिये भी सर्वोत्तम स्थान नदी का माना जाता है। तडाग (तलाब) और कुओं पर भी स्नान करते हैं। कहीं भी नहाओ, जल शुद्ध होना चाहिये। मैले सड़े हुये जल में, चाहे वह नदी, कूप, तडाग किसी का भी हो, उसमें स्नान करना रोग मोल

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेना है। इसीलिये वर्षाकाल में जल गन्दा होने के कारण ही नदी में स्नान करने का निषेध किया है। चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय २७ श्लोक २१० में लिखा है:—

वसुधाकीटसर्पाखुमलसंदूषितोदकाः ।
वर्षाजलवहा नद्यः सर्वदोषसमीरणाः ॥

मिट्टी, कीड़े, सांप, चूहे आदि तथा अन्य मलों से दूषित जल वर्षाकाल में नदियों में मिल बहने लग जाता है। इसलिये नदियों के जल दूषित होकर सब (तीनों) दोषों को बढ़ानेवाले होते हैं।

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान ४५वें अध्याय में लिखा है:-

कीटमूत्रपुरीषाण्डशवकोथप्रदूषितम् ।
तृणपर्णोत्करयुतं कलुषं विषसंयुतम् ॥९॥
योवगाहेत वर्षासु पिबेद्वापि नवं जलम् ।
स बाह्याभ्यन्तरान् रोगान् प्राप्नुयान् क्षिप्रमेव तु ॥१०॥

कीड़े, मूत्र, विष्ठा, अण्डे, शव (लाश), कोथ (दुर्गन्धित पदार्थ), तृण से घास पात, कूड़ा-ककंट वर्षा के जल में मिले रहते हैं। वर्षा का नवीन जल मलीन और विषयुक्त होता है। जो मनुष्य उस जल में स्नान करता है वा उस नवीन जल का पान करता है उसके शरीर में बाहर होनेवाले (फोड़े-फुन्सी नहरुवा आदि चमड़े के) रोग हो जाते हैं तथा अन्दर के भीतरी रोग (उदर विकार अजीर्ण ज्वर आदि) तत्काल हो जाते हैं।

किन्तु ऋषियों की इस हितकारी बात पर भी पौराणिक अन्धविश्वास में फंसे हुये लोग ध्यान नहीं देते और गङ्गा यमुना को पवित्र पापनाशिनी और मोक्षदायिनी समझकर वर्षाकाल में इनके गन्दे और सड़े हुये जल में डूबते रहते हैं और इसीलिये दाद,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खाज आदि चर्मरोगों से सड़ते हुये दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कलकत्ता, दिल्ली आदि नगरों के निकट सारे नगर का मल-मूत्र बहकर प्रतिदिन गङ्गा और यमुना में मिलता रहता है वहां भी लोग उनमें स्नान करके अपने आपको पुण्य और यश का भागी समझते हैं। किन्तु जिस प्रकार मैले जल के पीने से रोग होते हैं उसी प्रकार मलीन जल का स्नान भी अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। अतः बुद्धिमान् लोगों को चाहिये कि नदी, तडाग कूप वा बावड़ी जहां पर स्नान करें, शुद्ध शीतल जल से ही स्नान करें। वैसे शुद्ध जलवाले नदी वा सरोवरों में स्नान करने से ब्रह्मचारी को बड़ा लाभ होता है। स्नान का स्नान और व्यायाम का व्यायाम। क्योंकि तैरने से शरीर के सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है। फुफ्फुस शुद्ध और बलवान् होते हैं। छाती चौड़ी और सम्पूर्ण शरीर हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, सुदृढ़, निरोग, स्वस्थ और शक्तिशाली बन जाता है। मनुष्य में स्फूर्ति, उत्साह, कान्ति और तेज की वृद्धि होती है। नियमपूर्वक तैरने से चक्षु और वीर्य सम्बन्धी सभी रोग दूर हो जाते हैं। तैरने की बड़ी अच्छी विद्या है। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से तो हितकारी है ही तथा समय पड़ने पर दूसरों की प्राणरक्षा के लिये भी खूब काम आती है। इसलिये ब्रह्मचारी को तैरना अवश्य सीख लेना चाहिये। चक्षुःस्नान और मूत्रेन्द्रिय स्नान के लिये भी बड़ी सुविधा है और ये दोनों ब्रह्मचारी के लिये अत्यन्त आवश्यक और हितकर हैं। यदि नदी और सरोवर सुलभ न हों तो कूप पर ही पर्याप्त, शुद्ध, शीतल जल से खूब रगड़-रगड़ कर स्नान करना चाहिये। कूप में से जल निकालने के समय आलस्य न करें। इससे भी व्यायाम होता है। निकालने के परिश्रम के भय से स्नान के समय जल के बर्तने में लोभ करना मूर्खता है। स्नान के समय वा स्नान के पश्चात् शरीर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को खद्दर के वस्त्र से खूब रगड़-रगड़ कर मलना चाहिए। स्नान-काल में तो गीले अङ्गोछे से रगड़ें, परन्तु स्नान कर चुकने पर सूखा अङ्गोछा ही ठीक है।

इस क्रिया को चरक में परिमार्जन के नाम से लिखा है और इसके अनेक लाभ बतलाये हैं:—

दौर्गन्ध्यं गौरवं तन्द्रां कण्डूं मलमरोचकम्।
स्वेदबीभत्सतां हन्ति शरीरपरिमार्जनम्॥
(सूत्रस्थान अध्याय ५ श्लोक ६०)

स्नानादि के समय शरीर का परिमार्जन वस्त्र आदि के द्वारा रगड़-रगड़कर मैल उतारने की क्रिया करने से दुर्गन्ध, भारीपन, तन्द्रा (आलस्य), कण्डू (खुजली), मल (सब प्रकार की मलीनता), अरुचि (भोजन में रुचि न होना) और स्वेद (पसीने) द्वारा बीभत्सता (कुरूपता) नष्ट होती है। जो लोग स्नान के पीछे गीले शरीर को शुष्क अङ्गोछे से रगड़-रगड़कर नहीं पोंछते उनको उपर्युक्त दाद, खुजली आदि दोष वा रोग लग जाते हैं। शरीर को अङ्गोछे से पोंछे बिना स्नान से विशेष लाभ नहीं हो सकता। सूखे और मोटे अङ्गोछे से शरीर को पोंछने से स्नान से फूला हुआ शरीर का मैल सहज में ही छूट जाता है और त्वचा अत्यन्त शुद्ध होकर इस पर एक विशेष कान्ति और तेज आजाता है। शरीर को इस प्रकार मोटे खुरदरे वस्त्र से पोंछने से शरीर के समस्त अवयवों का व्यायाम भी हो जाता है। जितनी शुद्धि वा लाभ इस प्रकार वस्त्र पोंछने से होता है उतना अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता। आजकल के पढ़े लिखे बाबू लोग स्नान के समय साबुन का प्रयोग करते हैं वे घर से धन व्यर्थ में खोकर साथ ही अनेक हानियां भी उठाते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसीलिये राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जैसे विचारशील नेता स्नान के लिये साबुन का प्रयोग नहीं करते थे।

स्नान के विषय में कुछ आवश्यक बातें

वैसे तो स्नान के समय शरीर के सभी अङ्गों को (मूत्रेन्द्रिय को छोड़कर) रगड़-रगड़कर घर्षण स्नान करना ब्रह्मचारी के लिये आवश्यक है किन्तु पांवों की सभी अंगुलियों के बीच के भाग को हाथ के अंगूठों से एक दो मिनट तक रगड़ना ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए लाभदायक है। क्योंकि हमारे पांव के अंगूठों की मोटी नसों का सम्बन्ध मूत्रेन्द्रिय से है। इन नसों के दबने वा मलने से मूत्रेन्द्रिय में अनावश्यक उत्तेजना नहीं होती। इसी लाभ को दृष्टि में रखते हुये ब्रह्मचर्यप्रेमी सज्जन खूंटीवाली खड़ाऊं का प्रयोग करते हैं।

स्नान सदा भोजन से पूर्व ही करना चाहिये। क्योंकि यह पहले ही लिखा जा चुका है कि स्नान के पश्चात् भूख भी खुलकर लगती है। किन्तु स्नान के तुरन्त ही पश्चात् पित्त आदि दूषित होने और पाचनक्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इस लोकोक्ति "सौ काम छोड़कर खा, हजार काम छोड़कर नहा" से यही सिद्ध होता है कि भोजन से स्नान दशगुणा आवश्यक है। इसलिए भोजन से पूर्व स्नान करना चाहिये। किसी संस्कृत के कवि ने इस भाव को कितना अच्छा प्रकट किया है:—

'शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।'

सौ काम छोड़कर भोजन करे, हजार काम छोड़कर स्नान करे। मनुष्य खाकर पछताता है, नहाकर नहीं पछताता। स्नान से तो तुरन्त ही उत्साह, स्फूर्ति, पवित्रता आदि गुणों की प्राप्ति होती है और सात्विक वृत्ति का उदय होता है। भोजन के पश्चात् मनुष्य

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को आलस्य और तन्द्रा दबा लेती है। एक प्रकार से कुछ अंश में तमोगुण छा जाता है।

'न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा' ॥ मनु० अध्याय ४ श्लोक १२६ ॥

भोजन करके स्नान न करे, मनु जी महाराज की आज्ञा के विरुद्ध भोजन करने के पश्चात् स्नान करने से अनेक उदरविकार होजाते हैं। यदि किसी विशेष कारण से भोजन के पीछे स्नान करना ही पड़े तो भोजन के कई घण्टे पश्चात् करना चाहिये। महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है "भोजन से पूर्व स्नान अवश्य करना" (सत्यार्थप्रकाश, ३ समुल्लास)।

स्नान करते समय शरीर पर "न वासोभिः सह स्नानमाचरेत्"। मनु० अ० ४ श्लोक १२६ "वस्त्रों के साथ स्नान न करे" मनु जी की इस आज्ञा के अनुसार वस्त्र नहीं रखने चाहियें। वस्त्र पहने हुए स्नान भलीभांति नहीं हो सकता। सदैव वस्त्र पहने रहने से मनुष्य का शरीर निर्बल हो जाता है। अतः प्रातःकाल की वायु जब खुले शरीर पर लगती है वह संजीवनी बूंटी के समान शक्ति प्रदान करती है और खुले शरीर स्नान करने से शरीर की सहनशक्ति बढ़ती है। फिर शीत और उष्णता के प्रभाव से शरीर की कोई हानि नहीं होती किन्तु लाभ ही होता है। केवल एक लङ्गोट पहन कर नहाना ही भारतीयों की सर्वश्रेष्ठ प्राचीन रीति है। इसमें सारे शरीर का घर्षण करने (रगड़ने) की पूरी सुविधा रहती है। पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे लोग सर्वथा नंगे होकर भी स्नान करते हैं। किन्तु यह असभ्यता और जगलीपन है और भारतीय सभ्यता के सर्वथा विरुद्ध है। मनुस्मृति में लिखा है—

'न नग्नः स्नानमाचरेत्' (मनु० अ० ४ श्लोक ४४)

अर्थात् नङ्गा होकर स्नान न करे।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कौटलीय अर्थशास्त्र में मुनिवर चाणक्य लिखते हैं—

"न नग्नो जलं प्रविशेत्" (कौटलीय अर्थशास्त्र सूत्र ४०७)

अर्थात् नंगा होकर जल में स्नान न करे।

इसलिए हमारे ऋषियों ने इसका सर्वथा निषेध किया है।

नदी, तडाग आदि का स्नान अच्छा है किन्तु "अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तैरना न जाने तो डूब भी सकता है।" (सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)। यह वाक्य महर्षि दयानन्द जी का हमारे लिए कितना अमूल्य है।

मनु जी महाराज का भी ऐसा ही आदेश है—

"नाविज्ञाते जलाशये" (मनु० अ० ४ श्लोक १२९)।

अविज्ञात जलाशय (तालाब आदि) में प्रविष्ट होके स्नानादि न करे। अन्यथा हानि ही होने की सम्भावना है।

प्राचीन ऋषियों ने शुद्ध जलपान और इसी के द्वारा स्नान करने पर बड़ा बल दिया है। सामान्य लोग कौनसा जल शुद्ध, पवित्र वा गुणकारक है, इसका भलीभांति ज्ञान नहीं रखते।

चरक संहिता-सूत्र स्थान के २७वें अध्याय में लिखा है—

जलमेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात्।
यत्पतत्यतितं चैव देशकालावपेक्षते ॥१९३॥

आकाश से मेघ के सब जल एकसे ही गिरते हैं, किन्तु वे गिरते हुये तथा गिर कर देश और काल की अपेक्षा रखते हैं। अन्तरिक्ष से जल जो बरसता है वह अत्यन्त स्वच्छ होता है किन्तु मार्ग में धूली गैस आदि मल अतिशीत और उष्णता आदि के संसर्ग से रूप-रस आदि गुणों तथा हित-अहित में भिन्नता आजाती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर गिर कर वहां वहां की मिट्टी वा मिट्टी में स्थित धातु, क्षार आदि के संसर्ग से उनमें भिन्नता आजाती है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके विषय में सुश्रुतसंहिता सूत्र के स्थान ४५वें अध्याय में खूब खोलकर लिखा है—

जिस अन्तरिक्ष जल में धूल आदि नहीं मिलती और शुद्धरूप में नीचे गिरता है उसे अच्छे पात्र में औटा कर कितने ही वर्ष रखें, वह गंगाजल के समान न सड़ता है न बिगड़ता है। इसलिए इस सर्वोत्तम जल का नाम सुश्रुत ने "गाङ्ग" रखा है और जिसमें धूल आदि मल तथा अन्य हानिकर गैसें मिल जाती हैं अतः समुद्र के समान अत्यन्त अशुद्ध होने से इसको सुश्रुत ने 'सामुद्र' नाम दिया है।

शुद्धजल के चरक संहिता में छः गुण दिये हैं —

शीतं शुचि शिवं मृष्टं विमलं लघु षड्गुणम्।
प्रकृत्या दिव्यमुदकं भ्रष्टं पात्रमपेक्षते॥

(सूत्रस्थान अध्याय २७ श्लोक १९५)

अन्तरिक्ष जल के स्वाभाविक गुण (१) शीतल (२) पवित्र (३) कल्याणकारक (४) धूलि आदि से रहित वा आस्वाद में प्रिय (५) निर्मल (६) लघु (हल्का) ये छः हैं। गिरने पर पात्र की अपेक्षा से यह दोषों को धारण करता है और जैसे स्थान पर गिरता है वैसे ही गुण इसमें आजाते हैं। इसलिये स्नान के समय यदि वर्षा होने लगे तो ब्रह्मचारी को वर्षा में स्नान करके खूब आनन्द लूटना चाहिये। जो अन्तरिक्ष से गिरते समय वर्षा का जल स्वच्छ पात्र में इकट्ठा किया जाता है। धीर मेधावी लोग उसे 'ऐन्द्र' अर्थात् इन्द्र का जल कहते हैं और उसका श्रेष्ठपुरुष वा राजा लोग पान करते हैं। यह आश्विन के महीने में ग्रहण किया जाता है। वर्षाजल के सेवन का विधान सुकुमार अर्थात् ब्रह्मचारियों के लिये चरक और सुश्रुत ने विशेषतया किया है। वर्षाजल भी शरद् ऋतु का सर्वश्रेष्ठ होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके विषय में लिखा है:—

राजभिः राजमात्रैश्च सुकुमारैश्च मानवैः।
संगृहीताः शरद्यापः प्रयोक्तव्याः विशेषतः॥

(चरक संहिता सूत्रस्थान। अध्याय २७ श्लोक २०५)

राजाओं, धनी-मानी राजपुरुषों और सुकुमार अर्थात् ब्रह्मचारियों को शरद् ऋतु में विधिपूर्वक इकट्ठे किये हुये जलों का विशेषतया प्रयोग करना चाहिये।

चरक में शरद् ऋतु के जल के विषय में लिखा है:—

तनु लघ्वनभिष्यन्दि प्रायः शरदि वर्षति।
तत्तु ये सुकुमाराः स्युः स्निग्धभूयिष्ठभोजनाः।
तेषां भक्ष्ये च भोज्ये च लेह्ये पेये च शस्यते॥

(सूत्रस्थान। अध्याय २७ श्लोक २००-२०१)

शरद् ऋतु में जो जल बरसता है पतला और हल्का होता है। वह अभिष्यन्द वा क्लेश करनेवाला नहीं होता। वह जल सुकुमार ब्रह्मचारियों के लिए तथा अत्यधिक स्निग्ध (घृत आदि) भोजन करने वाले पुरुषों के भक्ष्य भोज्य लेह्य तथा पेय चारों प्रकार के आहार में प्रशस्त है अर्थात् इसका प्रयोग स्नान, खान-पान आदि सभी आवश्यक कार्यों में श्रेष्ठ माना गया है। इसलिये ब्रह्मचर्य-प्रेमियों को वर्षाजल के सदुपयोग से भलीभांति लाभ उठाना चाहिये।

संध्या और ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचारी के नित्य कर्मों में संध्या वा ईश्वरभक्ति को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसलिये महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं:—

"प्रथम शरीर शुद्धि अर्थात् स्नान पर्यन्त कर्म करके संध्योपासन का आरम्भ करें।" यही सब वेद-शास्त्रों की आज्ञा है। वैसे तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्नान करने के पश्चात् ब्रह्मचारी ही क्या प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह न्यून से न्यून एक घण्टा प्रतिदिन संध्योपासना में लगावे। कितने दुःख का विषय है कि सांसारिक सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये तो दिन-रात एक कर दिया जाये और परमात्मा का चिंतन करने के समय, समय न मिलने का मिस (बहाना) बनाया जावे। इस लोक और परलोक दोनों में सुख और शांति चाहनेवाले मनुष्यों को जीवन के इस सर्वप्रथम कर्त्तव्य की अर्थात् संध्या की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए और प्रातः सायं दोनों समय बहुत श्रद्धापूर्वक संध्योपासना करनी चाहिए। ब्रह्मचारी और संध्या का सम्बन्ध तो इस प्रकार का है जैसे प्राण और शरीर का। ब्रह्मचारी कौन है ? वेद भगवान् इसका उत्तर देता है। "ब्रह्मचारीष्णंश्चरित रोदसी उभे" (अथर्ववेद ११ कां० सूक्त ५ मन्त्र १) जो ब्रह्म को बार-बार चाहता हुआ खोजता हुआ दोनों लोकों में विचरता है वही ब्रह्मचारी है क्योंकि ब्रह्मचारी ब्रह्म की निरन्तर खोज करता हुआ वन में, पर्वत में, इस लोक में, परलोक में, द्यावा में, पृथ्वी में, स्थूल में, सूक्ष्म में, आकाश में, पाताल में, सर्वत्र सारे ही संसार में विचरता है। वह मारा-मारा फिरता है। इसको प्राप्त किये बिना उसको शांति कहां ? इसलिये "ब्रह्म इष्णन् चरतीति ब्रह्मचारी" ब्रह्म की खोज वा प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व लुटा देता है।

किसी सच्चे ब्रह्मचारी गुरु की शिक्षा, सत्सङ्ग, पथप्रदर्शन और निरन्तर निरीक्षण के बिना ब्रह्मचर्य पालन में सफल होना असम्भव है। क्योंकि अनुभवी सच्चा ब्रह्मचारी ही किसी को ब्रह्मचारी बना सकता है। इसलिए वेद ने "आचार्यो ब्रह्मचारी" ब्रह्मचारी ही आचार्य हो सकता है इस सत्य को प्रकट किया है। आचार्य की ब्रह्मचर्य रूपी अग्नि से ही ब्रह्मचारी में भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। जैसे "दीपाद्दीपमिवान्तरम्"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जलते हुए दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है। बुझा हुआ दीपक दूसरे दीपक को जलाने में असमर्थ है। इसलिये तत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली में कहा है कि 'आचार्यः पूर्वरूपमन्तेवासी उत्तररूपम्" अर्थात् आचार्य पूर्वरूप है और ब्रह्मचारी उसका उत्तररूप है। निष्कर्ष यह है कि जैसा आचार्य होता है वैसा ही ब्रह्मचारी भी होता है। मानो आचार्य ही स्वयम् ब्रह्मचारी में घुसकर अपना रूप प्रकट करता है।

सब गुरुओं का गुरु और आचार्यों का आचार्य वह परम ब्रह्मचारी परमेश्वर है। इसमें योगदर्शन का प्रमाण है। "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" (समाधि० सू० २६) वह ईश्वर पूर्व (आदि) गुरुओं का भी गुरु है. काल सीमा उसके लिए नहीं है। जैसे वह इस सर्ग का भी आदिगुरु है ऐसे ही अतीत और अनागत सर्गों का आदिगुरु अर्थात् गुरुओं का भी गुरु है। "तस्य वाचकः प्रणवः" (योग० समाधि० सूत्र० २७) उस आदि गुरु परमात्मा का नाम 'ओ३म्' है। इस नाम से प्रभु का नित्य सम्बन्ध है अर्थात् सभी सर्गों में यह नाम उसका स्थिर रहता है। इसलिए उस परम ब्रह्मचारी 'ओ३म्' की शरण में आये बिना और उसका निरन्तर सत्सङ्ग किये बिना कोई कैसे ब्रह्मचारी बन सकता है? विषयभोगों का चक्र बड़ा प्रबल है। इनकी कीचड़ में बिना फंसे निकलना बहुत कठिन है। विषयों से सदैव दूर रहनेवाले सच्चे ब्रह्मचारी गुरु की सहायता से ब्रह्मचारी इस दुर्गम मार्ग को पार कर सकता है और ऐसा सच्चा त्यागी और परम वैरागी गुरु तो केवलमात्र 'ओ३म्' है जो परम ऐश्वर्य का स्वामी होता हुआ भी त्रिकाल में भी विषय भोगों का स्पर्श तक नहीं करता। वह सर्वथा निष्काम है। इस परब्रह्म के ब्रह्मचर्य के सहारे यह क्षणभंगुर संसार टिका हुआ है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं तो कभी का नष्ट होगया होता। इसलिए इस परम सहायक की सहायता और आश्रय की ब्रह्मचारी को आवश्यकता है। जिस प्रकार बालक माता की गोद में बैठकर सर्वथा निश्चिन्त और आनन्दमग्न हो जाता है इसी प्रकार इस जगज्जननी का संरक्षण ब्रह्मचारी को सब विघ्न बाधाओं से बचा देता है।

"परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहायता से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो जाते हैं। जितेन्द्रिय (ब्रह्मचारी) बनने के अभिलाषी को रात दिन प्रणव (ओ३म्) का जप करना चाहिये। जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीतनिवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।"

महर्षि दयानन्द जी के इन वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य पालन जैसे महाकठिन कार्य की सिद्धि के लिये ईश्वरोपासना वा सन्ध्या की कितनी आवश्यकता है। क्योंकि सन्ध्या वा ईश्वरोपासना से ही ब्रह्मचारी का सम्बन्ध सीधा परम-ब्रह्मचारी परमेश्वर से जुड़ जाता है और जब ब्रह्मचरी ब्रह्मचर्य की साधना के लिए घोर तपस्या करता है तो ऐसे पुरुषार्थी ब्रह्मचारी का सहाय परमेश्वर भी करता है। करे भी क्यों नहीं? जबकि ब्रह्मचारी प्रभु का सब से अधिक प्रिय पुत्र वा शिष्य ठहरा।

तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।
(प्रश्नोपनिषद् १।१५॥

यह प्रश्नोपनिषद् का वाक्य इस में प्रमाण है। जो ब्रह्मचर्य रूपी तप की भट्टी में अपने आप को तपाते हैं उन्हीं का ब्रह्मलोक पर अधिकार है। पूर्ण ब्रह्मचर्य ही ब्रह्मप्राप्ति का एकमात्र साधन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
है। विषयी लम्पट लोग भला ईश्वर को क्या प्राप्त कर सकते हैं। ब्रह्मप्राप्ति तो दूर रही ब्रह्मचर्य के बिना ईश्वरभक्ति भी पूर्ण नहीं हो सकती और ईश्वरभक्ति के बिना ब्रह्मचर्य सिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वरभक्ति और ब्रह्मचर्य, सामान्य मनुष्य को पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं किन्तु यथार्थ में हैं एक ही।

इसलिए ही वेद ने 'ब्रह्मचारीष्णन् चरति' ब्रह्म की खोज करनेवाले को ही ब्रह्मचारी कहा है। इसलिये पंचयज्ञों में से ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना-पढ़ाना, संध्योपासना करना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना और दूसरे देवयज्ञ में केवल अग्निहोत्र का ही करना ब्रह्मचारी के लिये ऋषियों ने आवश्यक नित्य-कर्म ठहराया है। इसलिए संस्कारविधि के वेदारम्भ संस्कार में ब्रह्मचारी के नित्यकर्मों के विषय में यह आदेश आया है:— "प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसंध्योपासनेश्वर-स्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान् नित्यमाचर। (गोभिल गृह्यसूत्र)

"रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, संध्योपासना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का नित्य आचरण किया कर।"

इसलिए स्नान के पश्चात् ब्रह्मचारी को संध्योपासना करनी चाहिए। संध्या का अर्थ पञ्चमहायज्ञविधि में इस प्रकार लिखा है:—

संध्या शब्द का अर्थ

"संध्यायन्ति संध्यायते वा परं ब्रह्म यस्यां सा संध्या।"

भलीभांति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाए परमेश्वर का जिस में वह संध्या है।

संध्या का समय

"तत्र रात्रिन्दिवयोः सन्धिवेलायामुभ योस्सन्ध्ययोः सर्वैर्मनुष्यै-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
रवश्यं परमेश्वरस्यैव स्तुतिप्रार्थनोपासनाः कार्याः ।" रात और दिन के संयोग समय दोनों संध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति प्रर्थना उपासना, करनी चाहिये।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

"सन्ध्या अग्निहोत्र साय प्रातः दो ही समय में करें। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं।" मनु जी का भी इसमें प्रमाण हैः—

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥
(मनु० अ० ४ श्लोक ९३)

फिर उठकर दिशा जङ्गल होकर पवित्र हो एकाग्रचित्त से प्रातः सन्ध्या में बहुत काल पर्यन्त जप करता रहे और सायं सन्ध्या को भी अपने काल में देर तक करे।

पहले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि राग द्वेषादि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी आवश्यक है। शरीरशुद्धि के साथ अन्तः करण की शुद्धि भी अवश्य करें। क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन है। जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि प्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य रीड में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवे। जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्य-प्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है। ईश्वरभक्ति का यह फल तो पृथक् होगा ही 'परन्तु आत्मा का बल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटीसी बात है ?" इसलिए "जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करें। न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान करें।" यदि अधिक समय हो तो गायत्री मन्त्र वा 'ओ३म्' इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार कर नित्य प्रति जाप किया करें। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवें। मनु जी महाराज का इस विषय में यह आदेश है:—

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधियीत गत्वारण्यं समाहितः॥
(मनु० अध्याय २ श्लोक १०४)

स्वामी दयानन्द जी महाराज इसका अर्थ इस प्रकार करते हैं:- जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा सावधान होके जल के समीप स्थित होके नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल-चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में ईश्वरभक्ति पर बड़ा बल दिया है। "ईश्वरप्रणिधानाद्वा" (समाधिपाद सूत्र २३) ईश्वर के प्रणिधान (भक्ति) से (निकटतम) समाधि होती है। अर्थात् जब मनुष्य अनन्यचित्त होकर ईश्वर की संध्योपासना में तत्पर होता है तब ईश्वर अपने भक्त की इस भक्ति से प्रसन्न होकर कृपादृष्टि डालते हैं, जिससे भक्त योगी की समाधि सिद्ध हो जाती है।

संध्या में मन कैसे लगे ?

संध्या करनेवाले लोग प्रायः सभी यह शङ्का करते रहते हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि संध्या के समय संध्या में मन नहीं लगता। इसका मुख्य कारण तो यही है कि लोग संध्या के मन्त्रों का अर्थ याद नहीं करते। महर्षि पतञ्जलि के इस आदेश को वे भूल जाते हैं:—

"तज्जपस्तदर्थभावनम्।" (योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २८)

ओ३म् का जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना ही ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की भक्ति है। ओ३म् का जप उसके अर्थ के चिन्तन के साथ जो करता है उसका चित्त एकाग्र हो जाता है।

आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द जी इस प्रकार के जप करने के लिए बड़ा बल देते हैं। उन्होंने एक स्थान पर कहा है:—

"उसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिये।"

वे ब्रह्मचारी के लिए रात-दिन प्रणव का जप करना ब्रह्मचर्य पालन का मुख्य साधन मानते हैं। उनके जीवन में इस प्रकार आता है।

"रात को यदि जप करते हुये आलस्य बहुत बढ़ जाये तो दो घण्टे गाढ़ निद्रा लेकर उठ बैठे और पूर्ववत् प्रणव पवित्र का जप करना आरम्भ कर दे।"

उनका अपना जीवन भी इसका प्रतीक वा प्रत्यक्ष उदाहरण है। ४९ वर्ष की आयु तक तो ऋषिवर का सारा जीवन योगाभ्यास ईश्वर भजन और तपश्चर्या में बीता। वे रात-दिन ईश्वर के ध्यान में ही मग्न रहते थे। इसी ईशभक्ति के कारण प्रभु ने उनकी आत्मा में एक ऐसी अद्भुत शक्ति और बल का सञ्चार किया जिससे थोड़ेसे दस वर्ष के समय में कुमार्ग पर चलते हुए संसार को ही पलट डाला और सारे संसार को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। वे अपने व्याख्यानों में इन बातों को बार-बार कहा करते थे— "जब कोई

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जन अपने सच्चे मन स, अपने आत्मा से, अपने प्राण से और सारे सामर्थ्य से परमेश्वर का भजन करता है तब वह कृपामय परमात्मा उसको अपने आनन्द में निमग्न कर देता है। जैसे छोटा बालक घरकी छत पर अथवा नीचे से अपने माता-पिता के पास जाना चाहता है तो उसके माता-पिता इस भय से कि हमारे पुत्र को इधर-उधर गिर पड़ने से कष्ट न हो, अपने सहस्रों कामों को छोड़ दौड़कर उसे गोद में उठा लेते हैं, वैसे ही परम कृपानिधि परमात्मा की ओर यदि कोई सच्चे आत्मभाव से चलता है तब वह भी अपने अनन्त शक्तिमय हाथों से उस जीव को उठाकर सदा के लिए अपनी गोद में रख लेता है। फिर उसको किसी प्रकार का कष्ट (क्लेश) नहीं होने देता और वह जीव सदा आनन्द में ही रहता है। परमात्मा माता-पिता की भांति अपने भक्तों को सदा सुख-सम्पन्न करने की ही कृपा करता है।" उनकी इन वाक्यों पर अटल श्रद्धा और ध्रुव धारणा थी।

जिन्होंने उनके दर्शन किये हैं वे बताते हैं कि जब ऋषिराज ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्र उच्चारण करते थे तब प्रेमरस का एक सागरसा उमड़ पड़ता था। उन के शब्द सजीव होते थे। वाक्यों में भक्तिभाव ओत-प्रोत रहता था। उनका एक-एक वचन श्रोताओं के अन्तःकरण को स्पर्श करता था। उस समय उस अपूर्व भक्तिरस के प्रवाह में लोग ऐसे डूब जाते थे कि उनको देश काल तक का भी ज्ञान न रहता था। वे ईश-भक्ति में लीन हो जाते थे। उपदेश के आरम्भ में ऋषिवर मधुर स्वर में ओ३म् का नाद सुनाया करते थे, तो वह भी एक मोहन मन्त्र बन जाया करता था। एक बार राव युधिष्ठिर के निमन्त्रण पर ऋषिवर रिवाड़ी पधारे और अपने व्याख्यान में एक दिन ऐसे मीठे स्वर से सामगान किया कि लोगों के चञ्चल चित्त भी तुरन्त एकाग्र होगए और सब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रोताओं की समाधि लग गई। ऐसे वृद्ध पुरुष जो उस समय उनके विरोधी थे उन पर भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि आज तक वे उनकी प्रशंसा के गीत गाते नहीं थकते। जब उन्हें ऋषिवर के सामगान का स्मरण आजाता है तब वे आज भी गद्‌गद् होकर झूमने लगते हैं और उन्हें रोमाञ्च हो जाता है।

कुछ वर्ष हुए ऐसे वृद्ध के रिवाड़ी में मैंने स्वयं दर्शन किए और उन्होंने महर्षि की ऐसी अनेक घटनायें मुझे सुनाईं। उनकी प्रार्थनायें भक्ति और प्रेम-रस से कैसी परिपूरित होती थीं। नीचे लिखी प्रार्थना से इस पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है:—

"हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणाधार, प्राणजीवन! आपके बिना मेरा सहायक (दूसरा) कोई भी नहीं है। मेरे ईश्वर! मैं अत्यन्त दीनभाव से यह वर मांगता हूं कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं।

'आप आश्चर्यगुण, आश्चर्यशक्ति, आश्चर्यस्वरूप और सर्वोत्तम हो। न कोई आपके समान है और न कोई आपसे महान् है। हे सर्वज्ञ! आप ही स्तुति करने योग्य हो। सत्पुरुषों के प्रति-पालक आप ही हो। अपने भक्तों को परमानन्द प्रदान करना आपका सत्यव्रत है। आप देवों के भी देव हो। आपके अनुग्रह से हम परस्पर प्रेमपूर्वक रहें, सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, आप ही को पिता-माता बन्धु, राजा मानें, स्वामी और सहायक समझें। आप ही को सुख-दाता, सुहृद् और परम गुरु जानें। आपके तुल्य तथा आपसे अधिक किसी को कभी भी स्वीकार न करें। क्षणमात्र के लिए भी आपको न भूलें। हे करुणामय! जैसे माता-पिता अपनी सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन कीजिए।"

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने अपनी जीवन यात्रा समाप्त करते समय जो प्रार्थना की थी वह उनकी ईश्वरभक्ति का और प्रभु प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है। वैसे तो स्वामी जी महाराज को पापियों ने १६ बार विष दिया था किन्तु वेश्या के षड्यन्त्र से जोधपुर में अन्तिम बार भयंकर हालाहल विष दिया गया और वह सारे शरीर में रोम-रोम से फूटकर निकलने लगा। उनकी इस भयंकर अवस्था को देखकर डाक्टरों ने कहा—"यदि ऐसा भयंकर विष किसी और मनुष्य को दिया जाता तो वह पांच मिनट में ही मर जाता।" जोधपुर महाराज का डाक्टर अलीमर्दान खां जो अत्यन्त नीच प्रकृति का था, वह भी औषध के स्थान पर विष ही देता रहा। इस भयंकर विष के प्रभाव से प्रतिदिन सौ-सौ दस्त आने लगे। खून और आंतें कट-कट कर गिरने लगीं। ऐसी भयंकर अवस्था होने पर भी महाराज जी अत्यन्त शान्त और धैर्य से रहे। अपने इस घोरतम कष्ट को इस प्रकार सहन करते थे कि मुख से एक बार भी हाय! वा अन्य कष्टसूचक शब्द न निकलता था। महाराज बड़ी सावधानता से रहे और बातचीत करते रहे।

मृत्यु के समय पर किसी प्रकार के शोक वा घबराहट के चिह्न न थे। उस दिन शौच के पश्चात् स्वयं पानी लिया, हाथ धोए और दातौन की। पुनः पलंग पर कुछ देर बैठकर लेट गये। श्वास बड़े वेग से चल रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि महाराज श्वास रोककर ईश्वर का ध्यान करते हैं। किसी ने पूछा आपका चित्त कैसा है? तब कहा कि अच्छा है, एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है। लाला जीवनदास ने पूछा, आप कहां हैं? तब कहा कि ईश्वरेच्छा में। महाराज ने पक्ष तिथि और वार पूछा। किसी ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का आदि, अमावस्या और मंगलवार है। यह सुनकर छत और दीवारों की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
ओर दृष्टि की। पुनः कई वेदमन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वरोपासना की और भाषा में ईश्वर का गुणकीर्त्तन किया और फिर बड़ी प्रसन्नता और हर्षपूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे।

उस समय उसके स्वर्णाभ मुखमण्डल के चारों ओर सुप्रसन्न प्रभात की झिलमिलाहट पूर्णरूप से झिलमिल कर हरी थी। ऐसा प्रतीत होता था कि जिस शिव की खोज वा प्राप्ति के लिए बाल्य-काल में धन धान्य से परिपूर्ण घरबार को छोड़कर आये थे, आज उसी महादेव के साक्षात् दर्शन कर कृतकृत्य हो ऋषिवर हर्ष से फूले नहीं समा रहे थे। इस प्रकार कुछ देर समाधिस्थ होकर आँखें खोल दीं और यों कहने लगे "हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तूने अच्छी लीला की।"

महाराज उस समय सीधे लेट रहे थे। यह शब्द कहकर उन्होंने स्वयं ही करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोककर एक दम बाहर निकाल दिया। महाराज की मानवी लीला समाप्त हुई। उनका आत्मा नश्वर देह को छोड़कर जगज्जननी की प्रेममयी गोद में जा विराजा।

महाराज के मृत्यु दृश्य को पण्डित गुरुदत्त चुपचाप खड़े हुए देख रहे थे। वह यद्यपि आर्यसमाज के सभासद थे, परन्तु ईश्वर के अस्तित्व में उनको सन्देह था। उन्होंने देखा कि एक योगी और ईश्वर का सच्चा विश्वासी मृत्यु पर कैसे विजय पा सकता है। इस दृश्य को देखकर उनके सारे सन्देह दूर होगये, जो उस समय तक किसी युक्ति से दूर न हुए थे और वह सच्चे आस्तिक बन गये।

कविरत्न आचार्य मेधाव्रत जी ने इन्हीं भावों को कुछ श्लोकों द्वारा कितने सुन्दर ढंग से प्रकट किया है—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतिदारुणदेहदुर्दशास्वपि शान्तस्य महात्मनो मुखात् ।
मुदिताद् विजितेन्दुमण्डलान्मधुरं मन्त्रजगीतममृतम् ॥९७॥
स निपीय निजश्रवःपुटैर्भगवद्भाविसुभक्तमण्डनः ।
गुरुदत्तबुधोऽतिनास्तिको गुरुदेवात्मबलेन विस्मितः ॥९८॥
परमं पदमेष्यतो यतेः प्रभुभक्तिपरमां विलोक्य ताम् ।
स्वमनोमुकुरं शिवास्तिता-द्युतिभिर्दीपितमन्वभूदरम् ॥९९॥
(दयानन्ददिग्वजय । सर्ग-२७)

देह की अति भयंकर दुर्दशा में भी शान्तशील महात्मा के चन्द्रमण्डलविजयी प्रसन्न मुख से निकलते हुए मधुर मन्त्रगीतामृत को अपने कर्णपुटों से पीकर भगवान् के भावी भक्तशिरोमणि अतिनास्तिक पण्डित श्री गुरुदत्त जी गुरुदेव के आत्म-बल को देखकर आश्चर्यसागर में डूब गये ॥९७-९८॥

परमपद को पधारनेवाले योगीश्वर की परम प्रभुभक्ति को देखकर गुरुदत्त का चित्तदर्पण सृष्टिकर्त्ता प्रभु की विद्यमानता की प्रभा से अत्यन्त प्रकाशित होगया अर्थात् वे आस्तिक बन गये ॥९९॥

एक हिन्दी के कवि ने महर्षि की ईश्वर-भक्ति की प्रशंसा में निम्न शब्द कहे हैं—

"भक्तिरस में दयानन्द ऐसे बहे ।
पूर्ण जन्म अहिंसक ब्रह्मचारी रहे ।
धर्म-जाति के हित लाखों संकट सहे ।
मरते दम भी ये वचन मुख से कहे ।
तेरी इच्छा हो पूर्ण ऐ प्यारे प्रभु ।
ओं भूः ओं भूः ओं भूः ओं भूः ॥"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस युग के विधाता आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के विषय में ईश-भक्ति और संध्योपासना सम्बन्धी इन उद्धरणों से यही सिद्ध होता है कि ईश-भक्ति वा संध्यावन्दन ब्रह्मचारी के प्राण हैं। संध्यावन्दन की प्रणाली इस देश में आदिसृष्टि से चली आई है।

संध्या के विषय में मनु जी ने कहा है—

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिञ्च ब्रह्मवर्चसमेव च ।९४।

(मनु० अध्याय ४)

ऋषि लोग चिरकाल तक संध्यावन्दन करने के कारण दीर्घायु सुबुद्धि, यश, सुकीर्ति और निश्चय करके ब्रह्मतेज को प्राप्त हुए हैं।

इसलिए जो उक्त कर्मों का विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है वह भी दीर्घायु आदि को प्राप्त होता है।

हमारे प्राचीन पुरुषा के संध्या के महत्व को भलीभांति समझते थे। इसलिए सब नित्यकर्मों में उन्होंने संध्या को सर्वोच्च स्थान दिया था। वे अत्यन्त आवश्यक कार्यों को भी छोड़कर संध्यावन्दन आदि किया करते थे। बाल्मीकि रामायण और महाभारत में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं—

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ।१।

(बाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, षष्ठ सर्ग)

पुरोहित (वशिष्ठ जी) के चले जाने के पश्चात् रामचन्द्र जी ने अपनी धर्मपत्नी विशालाक्षी सीता के साथ स्नान किया और (दोनों स्नान कर) शुद्ध मन से नारायण के संध्योपासन में लग गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्र शृण्वन् सुखा वाचः सूतमागधवन्दिनाम् ।
पूर्वां संध्यामुपासीनो जजाप यतमानसः ।३।

(बाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, षष्ठ सर्ग)

(राम और सीता दोनों) सूत मागध और वन्दीजनों की सुखदायक वाणियों को सुनते हुए प्रातः संध्योपासन कर एकाग्रचित्त से ग़ायत्री का जप करने लगे ।

संध्याकालमना श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ।५०।
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतलजलां नदीम् ।५१।

(बाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड, १४ सर्ग)

संध्याकाल में मनवाली, श्यामवर्णवाली, वरवर्णिनी सीता इस शुभ (सुन्दर) जलवाली नदी पर अवश्य ही आयेगी ।५०।

यदि वह चन्द्रमुखी देवी जीती है तो वह अवश्य ही इस शीतल जलवाली नदी पर आयेगी ।

महाभारत में बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर को दीर्घायु प्राप्ति के साधन बतलाते हुए कहा है—

ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ।
तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः ।।

(अनुशासन० अ० १०४ श्लोक १८)

नित्य प्रति संध्या करने से ऋषियों ने दीर्घ आयु प्राप्त की । इसलिए प्रातःकाल और सायंकाल वाग्यत (मौन) होकर संध्या करनी चाहिये ।

अकृत्वा देवपूजां च नाचरेद् दन्तधावनम् ।
अकृत्वा देवपूजां च नाभिगच्छेत्कदाचन ।।

(महाभारत० अनु० अ० १०४ श्लोक ४५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दातौन किए बिना देवपूजा अर्थात् संध्या न करे और संध्या किए बिना कहीं इधर उधर अपने कार्यों को करने के लिए न जावे।

संध्या पापों से हटाकर मनुष्य को धर्म की ओर ले जाती है। इस पर उनकी अटल श्रद्धा थी। जिसको मनु जी महाराज ने इस प्रकार प्रकट किया है—

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥
(मनु० अध्याय २ श्लोक १०२)

प्रातःकाल की संध्या वा गायत्री का जप करता हुआ मनुष्य रात्रिभर के पापों का नाश करता है और सायंकाल की संध्या वा जप करता हुआ दिन के मलिन संस्कारों (पापों) का नाश करता है अर्थात् पाप करने की इच्छा नष्ट हो जाती है।

महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"प्रत्येक दिन पवित्रता के लिए हृदय से की गई प्रार्थना उत्तरोत्तर पवित्र बनाती है।"

जिस प्रकार निवास स्थान की शुद्धि प्रतिदिन सायं-प्रातः झाड़ू लगाकर वा जल से धोकर की जाती है इसी प्रकार मनुष्य के हृदय-मन्दिर को भी शुद्ध करना आवश्यक है जिस को कुसंस्कार दूषित करते रहते हैं। इन मलिन संस्कारों के कूड़े-कर्कट को प्रातः और सायंकाल की संध्या रूपी झाड़ू वा जल से धोकर शुद्ध करना आवश्यक है। जिस प्रकार मलिन वस्त्रों को साबुन से धोकर शुद्ध किया जाता है उसी प्रकार अन्तःकरण रूपी वस्त्र पर जमे हुए काम, क्रोध, राग, द्वेष रूपी मल को दूर करने के लिए संध्या रूपी साबुन की आवश्यकता है। जिस प्रकार प्रातःकाल का किया हुआ भोजन हमें सायंकाल तक कार्य करने को शक्ति देता है और सायं-काल का भोजन रात भर के लिए शक्ति प्रदान करता है, उसी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार प्रातःकाल का किया हुआ सन्ध्या-भजन वा ईश्वर-चिन्तन सायंकाल तक बुरे विचारों तथा पापों से बचाता है और सायंकाल की हुई ईश्वरोपासना रात्रि भर पापों और गन्दे विचारों तथा स्वप्नों से बचाती है। जिस प्रकार हम अपने माता-पिता वा गुरु के सम्मुख भय वा लज्जा के कारण चोरी और व्यभिचारादि पाप कर्म नहीं करते, उसी प्रकार पिताओं के पिता, माताओं की माता और गुरुओं का गुरु सर्वद्रष्टा 'ओ३म्' है। जिससे छिपकर हम कुछ भी नहीं कर सकते। जो हमारे कर्मों का फल सुख-दुःख के रूप में देता है। यदि हमें उसका ध्यान हो तो हम कैसे पाप कर सकते हैं? हम उसे भूल जाते हैं तभी पाप पंक में फंसते हैं. किन्तु वह हमें नहीं भूलता। हम भले ही उसे न देख सकें, किन्तु वह अन्दर बैठा-बैठा हमें बार-बार सन्मार्ग पर चलने के लिए सचेत करता रहता है। इतना ही नहीं, जब कभी हमारे मन में पाप करने की प्रवृत्ति होती है, तब वह हमें अन्दर से बार-बार टोकता और रोकता है। हम यह अनुभव भी करते हैं, किन्तु प्रभु की चेतावनी को अनसुनी कर देते हैं। जब हम अच्छे कार्य करने लगते हैं उस समय हमें वह शुभ कर्म करने के लिए उत्साहित भी करता है।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं—

जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

(सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु हम अपने ऐसे सच्चे रक्षक की भी नहीं सुनते और पाप वा कुमार्ग की ओर चलते रहते हैं, उसका भी रक्षा का हाथ हमारे सिर पर से उठ जाता है क्योंकि वह पापी का रक्षक वा साथी नहीं। "इन्द्रः इच्चरतः सखा" ऐश्वर्यशाली इन्द्र भगवान् पुरुषार्थी का साथी है, "मा मर्त्यस्य मायिनः" कपटी, छली, दुष्ट का साथी नहीं। वह अनाथों का भी नाथ है, निराशों की आशा है। मनुष्य को इसे किसी अवस्था में भी नहीं भूलना चाहिए। भूलनेवाले की अपनी ही हानि है। अपने कल्याण और स्वार्थ के लिए भी प्रातः सायं यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक उसका स्मरण करता रहे तो फिर किस लिए दुःख और क्लेश भोगने पड़े।

इसी भावना को यह दोहा प्रकट करता है—

दुख: में सुमरण सब करें – सुख में करे ना कोय।
जो सुख में सुमरण करे—तब दुःख काहे को होय॥

ईश उपासना के विना मनुष्य को सुख भी नहीं होता और वह कृतघ्न और पापी भी होता है।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं—

"जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिए दे रखे हैं उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।" (सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास)

सन्ध्या न करने पर दण्ड

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।
(मनु० अध्याय २ श्लोक १०३)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो द्विज(ब्रह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) प्रातः सन्ध्या नहीं करता और सायंकाल को भी सन्ध्योपासना नहीं करता उसको सब द्विजकर्मों से शूद्र के तुल्य बाहर कर देना चाहिए अर्थात् जिस प्रकार शूद्र को द्विजों के यज्ञादि कर्मों में अधिकार नहीं इसी प्रकार वह भी शूद्रवत् होने से शुभ कर्मों में सम्मिलित होने का पात्र नहीं।

इसीलिए ऋषियों ने "नैत्यिके नास्त्यनध्यायः" ,नित्यकर्मों में अनध्याय (छुट्टी) नहीं होता अर्थात् सन्ध्या और अग्निहोत्र (हवन) आदि नित्य कर्म ब्रह्मचारी को अनिवार्य रूप से करने होते हैं।

महर्षि दयानन्द का कथन है-कि दो यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ | जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा, संग करना, परन्तु ब्रह्मचर्य में ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।" (सत्यार्थप्रकाश समु० ३)

ब्रह्मचारी को ईश्वर भक्ति की क्यों आवश्यकता है ?

इस विषय में महात्मा गांधी जी लिखते हैं—

"याद रखिये ! प्राणी मात्र की सेवा करने और इस प्रकार ईश्वर की महत्ता और प्रेम प्रदर्शित करने के लिए मनुष्य परमात्मा का प्रतिनिधि है।"

"सदा उस अदृश्य शक्ति का विचार करो जिसे चाहे हम कभी भी न देख सकें तब भी हम अपने अन्दर रखवाली करते और प्रत्येक अपवित्र विचार को टोकते अनुभव करते हैं। फिर आप देखेंगे कि वह शक्ति सदा आप की सहायता कर रही है।"

"जब आपकी विषय-वासनायें आपको धर दबोचने की धमकी दें तब आप अपने घुटनों के बल बैठ जायें और परमात्मा से सहायता के लिए पुकार लगायें। ईश्वर का नाम हमारा अमोघ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

सहायक है। सहायता के लिए ठंडे पानी से भरे हुए टब में अपनी टांगें बाहर निकाल कर लेटना चाहिये। ऐसा करने आपकी विषय वासनाएं समाप्त होती दिखाई देंगी।"

"मुझे विश्वास होता है कि अपने को पूर्णरूप से ईश्वरार्पण किये बिना विचारों पर पूरी विजय कभी नहीं मिल सकती।"

"समस्त धर्म-पुस्तकों में मैंने ऐसे वचन पढ़े हैं और अपने ब्रह्मचर्य के सूक्ष्मतम पालन के प्रयत्न में मैं उनकी सत्यता का अनुभव भी कर रहा हूँ।"

पूर्णतया मेरी समझ में केवल प्रभु प्रसादी है और इसलिए भक्त लोग अपनी तपश्चर्या से पवित्र करके गायत्री आदि मंत्र हमारे लिए छोड़ गये हैं।

ब्रह्मचर्य के सोलह आने पालन का अर्थ है ब्रह्मदर्शन। यह अर्थ मेरे सामने धीरे-धीरे सिद्ध होता गया। उससे सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र-वचन मैंने बाद में पढ़े। यह असिधारा व्रत है, निरन्तर जागरूकता की आवश्यकता देखता हूं। ईश्वर-दर्शन के लिये ब्रह्मचर्य का व्रत अनिवार्य है ब्रह्मचर्य के आकांक्षी की प्रार्थना अन्तिम चरण है किन्तु उपादेयता में यह किसी से कम नहीं है। प्रत्येक दिन ब्रह्मचारी को पूरे मन से ईश्वर का नाम जपना चाहिए और ईश्वरीय कृपा मांगनी चाहिये।

पाशवी कामलिप्सा के संयम में हमारा सबसे अधिक शक्तिशाली सहायक ईश्वर का नाम है।

जो मन्त्र भावे वही भजा जावे। मैंने ईश्वर के एक नाम का संकेत किया है। जो भी मन्त्र चुना जाये उसमें पूर्णतया तन्मय हो जाना चाहिए। यदि दूसरे विचार जप को बीच में भंग करें तो इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि जो भी श्रद्धा से जप करता चला जायेगा वह अन्त में अवश्य जीतेगा। मन्त्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

जीवन की लकड़ी बन जाता है और अपने जपनेवाले को प्रत्येक परीक्षा में से निकाल ले जाता है। यह ध्यान रहे कि मन्त्र को तोते की तरह न रटना चाहिए। अपनी आत्मा उसके अन्दर प्रवेश करा देनी चाहिए। तोता ऐसे मन्त्रों को मशीन की नाईं रटता है। हमें चाहिए कि अवांछनीय विचारों को बाहर करने की आशा में ·····पूर्ण श्रद्धा रखकर उनका जप करें।"

संध्या के अतिरिक्त यदि कोई ब्रह्मचारी जप में अधिक समय लगाना चाहे तो गायत्री मन्त्र वा प्रणव अर्थात् ओ३म् का जाप करना चाहिए। यही सर्वमान्य प्राचीन शास्त्रीय पद्धति है जिसे ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त सब ऋषि-महर्षि मानते हैं।

श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य परमविद्वान् श्री स्वामी विरजानन्द जी महाराज आदर्श ब्रह्मचारी और अपने समय के अद्वितीय पंडित थे। व्याकरण के तो वे सूर्य कहलाते थे। इन्हीं की कृपा से इनके शिष्य प्रातः स्मरणीय स्वामी दयानन्द पूर्ण विद्वान्, पूर्ण योगी तथा पूर्ण ब्रह्मचारी बने। जो आगे चलकर पतित भारत के भाग्य-विधाता और विश्व के सुधारकों के शिरोमणि कहलाए। उस महापुरुष स्वामी विरजानन्द जी महाराज के विषय में स्वाध्यायशील व्यक्ति जानते हैं कि विरजानन्द बाल्यकाल से अन्धे थे। उनके पाँच वर्ष की आयु में दोनों चक्षुरत्न जाते रहे थे। पुनः वे इतने ऊँचे महात्मा और विद्वान् कैसे बने? वे चौदह वर्ष की आयु में गृहत्याग कर मार्ग में अनेक कष्ट सहते हुए ऋषिकेश पहुँच गये। यह स्थान बहुत काल से ही पुण्यप्रद पवित्र स्थान माना जाता है। उनको उपनयन (जनेऊ) संस्कार के समय गायत्री की दीक्षा दी गई थी। यह सुना था "कि पवित्र गायत्री मन्त्र की सिद्धि के बल से मनुष्य ईश्वर तक का साक्षात् दर्शन कर सकता है।" बालक के सरल हृदय पर यह अमिट छाप लग गई और उसको इसका दृढ़ निश्चय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
हो गया। इसी कारण ऋषिकेश में आकर उसने एकमात्र गायत्री का अवलम्बन(आश्रय) किया और अनन्यचित्त होकर वह श्रद्धापूर्वक गायत्री का जप करने लगा। प्रातःकाल, सायंकाल, यहां तक कि कभी-कभी रात्रि के मध्य में भी वह गायत्री की सिद्धि में लगे रहने लगे। इस के अतिरिक्त प्रातःकाल स्नान के पश्चात् गंगा के निर्मल जल में कण्ठ तक निमज्जित होकर बहुत देर तक वे गायत्री का जप किया करते थे। जप में ब्रह्मचारी विरजानन्द की ऐसी दृढ़ता देखकर ऋषिकेश के लोग आश्चर्यान्वित होगये और यदि सब नहीं तो अधिकतर ऐसी बातें कहने लगे-कि यह तरुण तपस्वी बुद्धि वा देवजन स्पृहणीय किसी दुर्लभ वर की प्राप्ति के लिए ऐसा उग्र तप कर रहा है।

उस समय का ऋषिकेश इस समय के ऋषिकेश के समान निरापद नहीं था। समय-समय पर वन के पशुवों उपद्रव के कारण वहां के निवासियों को कष्ट होता था। कभी-कभी ऐसा होता था कि जंगली पशु रात्रि में आकर विरजानन्द की छोटीसी कुटिया को तोड़ जाते थे। ऋषिकेश निवासी विरजानन्द प्रायः फल-मूल खाकर ही दिन बिताते थे। कभी-कभी मन्दिर वा क्षेत्र में जाकर भोजन कर आते थे। परन्तु इस प्रकार के विघ्न और बाधाओं के होते हुए भी विरजानन्द एक दिन के लिए भी अपने लक्ष्य से भ्रष्ट नहीं हुए वह अपने संकल्प पर दृढ़ और स्वावलम्बित साधना पर अविचलित रहकर बहुत दिन काल-यापन करते रहे। उन्हें जब इस प्रकार रहते हुये कुछ दिन बीत गये तो अकस्मात् एक दैवी घटना उपस्थित हो गई। विरजानन्द रात्रि में सोये हुए थे, सोते-सोते उन्हें एकदम यह शब्द सुनाई दिये—

"तुम्हारा जो कुछ होना था वह हो चुका, अब तुम यहां से चले जाओ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन शब्दों के सुनते ही विरजानन्द की निद्रा भंग हो गई और एक भयभीत मनुष्य की नाईं उठकर इधर-उधर ढूंढने लगे। थोड़ी ही देर में उन्हें मालूम होगया कि उनके पास वा उनकी कुटिया में कोई मनुष्य नहीं है और कोई था भी नहीं। उन्होंने इन सुने हुए शब्दों को दैव वाणी करके ग्रहण किया और जितने बार भी उस वाणी पर विचार किया उतने बार वह चिन्तित हुये।

अस्तु, ऋषिकेश छोड़ने के लिए ही उन्हें यह दैवाज्ञा हुई है यह समझकर उन्होंने ऋषिकेश छोड़ने में विलम्ब नहीं किया। कनखल में पूर्णाश्रम जो विद्या में और वैराग्य में पूर्ण थे, उनसे सन्यास लिया, कुछ दिन तक उनसे अध्ययन भी किया। अन्यत्र भी इसी प्रकार अध्ययन करते रहे, साथ-साथ पढ़ाने का भी काम करते रहे।

पाठक ! आश्चर्य करेंगे कि वे चक्षुहीन होते हुये किस प्रकार पढ़े। विरजानन्द ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य के प्रभाव और गायत्री की सिद्धि से उनकी स्मृति, धारणाशक्ति उज्ज्वलतर हो गई थी। बाह्य चक्षु भले ही बन्द थे किन्तु भीतर के प्रज्ञाचक्षु खुल गये थे इसलिए ये प्रज्ञाचक्षु कहलाते थे। विशेषतया गायत्री मन्त्र की सिद्धि के कारण वे धारणावती मेधाबुद्धि के धनी हो गये थे।

गायत्री मन्त्र के जप का विशेषफल ही स्मरणशक्ति की प्रखरता और बुद्धि की कुशाग्रता है। इसी के फलस्वरूप प्रियतम प्रभु ने ये दोनों शक्तियां अपने प्रियपुत्र विरजानन्द को प्रदान कीं। इन्हीं शक्तियों के बलबूते पर स्वामी विरजानन्द ने अन्धे होते हुए भी संसार के अविद्यान्धकार को छिन्न-भिन्न कर डाला। यह सब गुरुमन्त्र के गुणगान और जप का ही फल समझना चाहिए।

यह मन्त्र पुस्तक के आरम्भ में अर्थसहित पाठकों की सुविधा के लिए दे दिया गया है। वहां से कण्ठस्थ कर श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जप करके लाभ उठावें। इस मन्त्र का छन्द गायत्री है, इसलिए इसका नाम गायत्री पड़ गया है। इस मन्त्र का देवता (विषय) सविता है इसलिए इसे सावित्री भी कहते हैं। बालक को वेद अधिकार देने के लिए आचार्य वा गुरु सर्वप्रथम इस मन्त्र का उपदेश देते थे, इसलिए यह मन्त्र गुरुमन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह मन्त्र वेदों के सब मन्त्रों में शिरोमणि माना गया है। जो इस विषय में अधिक जानना चाहें वे महर्षि दयानन्द जी कृत सत्यार्थ-प्रकाश आदि ग्रन्थ तथा स्वामी वेदानन्द जी कृत सावित्री-प्रकाश पढ़कर लाभ उठावें।

इसी प्रकार प्रणव (ओ३म्) के जप का भी महत्त्व है। वैसे तो परमात्मा के अनन्त गुण और कर्मों के कारण नाम भी अनन्त हैं। बहुत से तो ऐसे नाम हैं, जो परमात्मा के भी हैं और अन्य पदार्थों के भी। जैसे-- न्यायकारी और दयालु परमात्मा के नाम हैं, किन्तु न्याय करनेवाला और दया करनेवाला मनुष्य भी न्यायकारी और दयालु कहलाता है। ओ३म् एक ऐसा नाम है जो परमात्मा को छोड़कर और किसी का नाम नहीं।

"तस्य वाचकः प्रणवः" से यह सिद्ध किया जा चुका है कि जप करने के लिए तो केवल ओ३म् नाम का ही प्रयोग करना चाहिए वेदादि शास्त्रों में परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म् ही बताया गया है। हमारे प्राचीन पुरुषा ऋषि-महर्षि सभी जप के लिए ओ३म् नाम का ही अनुष्ठान और इसी का व्यवहार और प्रचार करते आये हैं।

पौराणिक युग में धर्म के ठेकेदारों ने अवतारवाद को सिद्ध करने और प्रचार करने के लिए राम कृष्ण आदि; जो हमारे महापुरुषों के नाम थे, उन्हें ही परमात्मा बना डाले और उनका खूब

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्रचार किया और उन्हीं नामों से दीक्षा भी देने लगे। उसी भ्रम में पड़े हुए साम्प्रदायिक लोग आज भी राम नाम आदि का कीर्तन और जप करते हैं। यही प्रभाव महात्मा गांधी आदि आधुनिक नेताओं पर भी पड़ा है और इसी कारण राम नाम आदि के जप का प्रचार करते रहे हैं।

पाठक! भ्रम में न पड़ जायें, इसलिए मैंने उनके ईश्वर-भक्ति सम्बधी जिन उद्धरणों में ओ३म् वा ईश्वर नाम का बार-बार प्रयोग किया है वह उनके आशय के अनुकूल ही है।

ओ३म् नाम में सबसे बड़ी एक विशेषता यह है। जैसे—एक मनुष्य जन्म से मूक (गूंगा) उत्पन्न हुआ है वह दीन मनुष्य तन पाकर भी गोड, अल्लाह, राम, कृष्ण, ईश्वर आदि नामों के द्वारा भगवान् का भजन नहीं कर सकता। क्योंकि वह उनका उच्चारण करने में असमर्थ है। तो फिर क्या वह इच्छा होने पर भी ईश भजन से वञ्चित ही रहेगा? नहीं! नहीं!! परमात्मा का ओ३म् नाम एक ऐसा नाम है जिसे गूंगा भी बोल सकता है। इसलिए भगवान् का निज नाम ओ३म् ही है। इसके सिद्ध करने में यह प्रबल और अकाट्य युक्ति है।

ओ३म् के सर्वव्यापक, रक्षक, सर्वज्ञ, पापनाशक, सर्वशक्तिमान् आदि अनेक अर्थ हैं। ऐसा सुन्दर मधुर, संक्षिप्त बहुत अर्थों वाला गम्भीर नाम भगवान् का अन्य किसी भी भाषा में नहीं है। वेद ने भी ओ३म् के जप के लिए आदेश दिया है—

"ओं क्रतो स्मर, क्लिवे स्मर" इत्यादि।

हे कर्मशील जीव! तू अपने कल्याण के लिए ओ३म् का स्मरण कर। ऋषि मुनियों ने भी इसीलिए ओ३म् के जप पर बहुत बल दिया है। मैं पहले लिख चुका हूं कि महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
में ओ३म् के जप को ब्रह्मदर्शन का एक साधन मानते हैं।

गोपथ ब्राह्मण में भी आया है कि 'अमृतं वै प्रणवः' ओ३म् अमृत अर्थात् जीवन है "अमृतेनैव तन्मृत्युं तरति" अमृत अर्थात् जीवन के द्वारा मनुष्य मृत्यु को पार करता है।

सार यह है— जन्म मरण के चक्र से निकलने के लिए ओ३म् एक प्रबल सहारा है। ब्रह्मचर्य पालन के लिए ओ३म् जैसे परम सहायक को छोड़कर एक सच्चा ब्रह्मचारी इधर उधर कैसे भटक सकता है। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचर्यप्रेमी वा ब्रह्मचारी को सदैव इस ब्रह्मचारी ओ३म् की छत्रछाया वा शरण में निवास करना चाहिए, जिससे किसी प्रकार की विघ्न बाधाओं का भय वा आशंका ही न रहे और ब्रह्मचर्य का यह कठोर तपस्यामय असिधारा व्रत सरल और अत्यन्त सुगम होजाये और इसके लिए तपश्चर्या करता हुआ यह अनुभव करने लगे कि वह ब्रह्मचर्य रूपी अमृत रस को खूब घूट-घूट कर और आनन्द ले ले कर पी रहा है अर्थात् उसकी तपश्चर्या रसमय बन जाये। यह सब कुछ सम्भव है, किन्तु सच्ची लग्न और श्रद्धा चाहिए। सच्ची लग्न वाले श्रद्धालु ब्रह्मचारी के आगे उस परम दमालु ओ३म् की कृपा से विघ्न बाधायें आती ही नहीं। यदि किन्हीं पुराने संस्कारों के कारण कामवासना का अकुर मुख दिखाने लगता है तो सहस्रों हाथों से रक्षा करनेवाला परम दयालु ओ३म् उसी समय उस काम रूपी अंकुर की ग्रीवा को तोड़-मरोड़ कर इतिश्री कर डालता है।

इसी भाव को एक दोहा अच्छी प्रकार से स्पष्ट करता है। इस दोहे को पूज्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज, जो गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक नैष्ठिक ब्रह्मचारी वीतराग आर्यसंन्यासी और गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के आचार्य हैं व्रत के धनी और ब्रह्मचर्य के अद्वितीय

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रचारक हैं, वे अपने व्याख्यानों में खूब झूम-घूम कर और आनन्द लेकर गाया करते हैं। बालकों और युवकों को याद कराया और सिखाया करते हैं। उनका वह प्रिय दोहा यह है—

विषय का विषधर जब डसे ओ३म् जड़ी को ले चबा।
है नाग दमन यह औषधि ढूंढन दूर न जा ॥

विषय रूपी नाग (सर्प) जब डसता वा काटता है तो इस विषैले नाग के विष का दमन करने के लिए, उस समय इस सर्प विष को दूर करने वाली ओ३म् रूपी नागदमन बूंटी का सेवन करना चाहिए और वह बूंटी 'तद्वन्तिके' तेरे अत्यन्त निकट है उसे ढूंढने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं।

पर्वतों में एक बिच्छू के समान काटने जैसी भयङ्कर पीड़ा वाली बूंटी होती है। किन्तु उसी बूंटी की जड़ में ही एक दूसरी बूंटी होती है उसको छूने से वह पीड़ा तुरन्त ही दूर हो जाती है। वहां रहनेवाले लोग इसे भली भांति जानते हैं। इसी प्रकार जिस दूषित मन में दुष्ट-विचार वा काम-विकार का उद्भव वा उत्पत्ति होती है वहीं इस पाप विनाशक ओ३म् का निवास है। क्योंकि हमारा शरीर, मन और आत्मा ही क्या, यह सारा संसार ही सर्व-व्यापक ओ३म् से ओत-प्रोत है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

(यजु० अध्याय ४० मन्त्र ४)

यह संसार के प्रत्येक पदार्थ के अन्दर बाहर विद्यममान है। "जहां पर तेरा नहीं निवास ऐसी कोई ठोर नहीं है।" इसलिए विद्वान् योगिजन बाहर उसकी खोज त्यागकर समाधि के द्वारा उसके अपने अन्दर ही दर्शन करते हैं। इसी प्रकार ऐसा विकट समय आने पर ब्रह्मचारी को ईश्वरचिन्तन में लग जाना चाहिए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और प्राणायाम करते हुए ओ३म् का जप करना चाहिए। काम-रिपु का वध करने के लिए यह अमोघ अस्त्र है और कामरिपु का सर्वथा दमन करने के लिए ही प्रातः सायं सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कर्म का करना ब्रह्मचारी क्या सभी आश्रमवासियों के लिए अनिवार्य समझा गया है।

एक श्लोक जिसको आर्यसमाज के विद्वान् उपदेशक पं० सुरेन्द्र शर्मा जी गौर अपने व्याख्यानों में बहुधा सुनाया करते हैं। उन्हीं की कृपा से मुझे यह प्राप्त हुआ है—

शतं विहाय भोक्तव्यं, सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं, कोटीं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥

ग्रामों में भी इसी प्रकार की लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

सौ काम छोड़कर खा हजार काम छोड़कर नहा।
लाख काम छोड़कर दान दिया कर,
करोड़ काम छोड़कर प्रभु ध्यान किया कर॥

इस प्रकार भोजन से स्नान आवश्यक और इन दोनों से दान और दान से भी ईश्वर का ध्यान आवश्यक है। किसी विशेष अवस्था में अन्न वा जल के न मिलने पर अथवा रोग के कारण स्नान और भोजन का अपने लिए त्याग किया जा सकता है, किन्तु ऐसी दशा में भी पात्र को दान देने की भावना और परोपकार की प्रवृत्ति को बनाये रखना विचारशील व्यक्ति का आवश्यक कर्तव्य है। दुर्भाग्यवश दरिद्रता में धन-धान्य के अभाव से मनुष्य किसी की दान द्वारा सहायता न भी कर सके किन्तु उपर्युक्त बाधायें ईश्वर-चिन्तन में बाधक नहीं। भूखा, प्यासा, दरिद्र, रोगी सब कोई किसी न किसी रूप में भगवद्भजन कर ही सकता है, केवल श्रद्धा और प्रभुप्रेम चाहिए, जिसमें एक कानी कौड़ी का भी व्यय नहीं। एक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
करोड़ काम एक समय में किसी के पास नहीं होते। इनके छोड़ने का आशय यही है कि ईश्वर भजन से बढ़कर संसार में कोई आवश्यक कार्य नहीं है। इसलिपे ब्रह्मचारी क्या प्रत्येक कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को सदैव श्रद्धा पूर्वक सन्ध्योपासना करनी चाहिये।

किन्तु सन्ध्योपासना विधिपूर्वक करने से पूर्ण लाभ होता है। इस की विधि विस्तार पूर्वक महर्षि दयानन्द कृत पञ्चमहायज्ञ-विधि, संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में दी है, वहां पढ़कर पूर्ण लाभ उठावें। इतना अवश्य ध्यान रखें कि बिना प्राणायाम के सन्ध्या अधूरी है। प्राणायाम करने से मनुष्य के मन आदि इन्द्रियों की मलीनता व चञ्चलता मिटकर निर्मलता और एकाग्रता प्राप्त होती है। जिससे सन्ध्या में खूब मन लगता और आनन्द आता है। इस-लिए सन्ध्या से पूर्व प्राणायाम अवश्य करें।

प्रणायाम की विधि

प्राणायाम की सामान्य विधि यह है:— शुद्ध देश और पवित्र आसन पर जिधर की वायु हो उधर को ओर मुख करके सिद्धासन लगाकर बैठ जावे। नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच (खींच) करके हृदय वा भीतर के वायु को बल से बाहर निकालकर यथाशक्ति बाहर ही रोक दें। पश्चात् शनैः शनैः भीतर वायु को लेकर वहां भी कुछ थोड़ा सा रोके। यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करें। अथवा जितना सामर्थ्य और इच्छा हो उतना करें। नासिका को हाथ से न पकड़ें। जब घबराहट हो तो धीरे धीरे वायु को बाहर निकाल दें। और जब बाहर निकालना चाहें तब मूलेन्द्रिय (नाभि के नीचे के भाग) को ऊपर खींच रखें। इस प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
है और यह क्रिया स्वप्नदोष आदि को दूर करने तथा ब्रह्मचर्यरक्षा में अत्यन्त सहायक है। प्राणायाम करते समय मन में ओ३म् का जप करता जाये अथवा प्राणायाम मन्त्र का मानसिक जप करे। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।

यह सदैव ध्यान रखें कि अपनी शक्ति के अनुसार सुखपूर्वक अन्दर और बाहर प्राण को रोकना चाहिए, बलपूर्वक अधिक देर रोकने से हानि होती है।

यही प्राणायाम की क्रिया सन्ध्या में जो प्राणायाममन्त्र आता है उसका जप करके करनी चाहिए। प्राणायाम की जो रीति दी है इस प्रकार कम से कम तीन और अधिक से अधिक इक्कीस प्राणायाम सन्ध्या के साथ करने चाहियें। यहां विधिपूर्वक सन्ध्या करने के लिए थोड़ासा प्राणायाम के विषय में लिख दिया है। ब्रह्मचर्य पालन की दृष्टि से प्राणायाम का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसलिए इसका पृथक् ही एक भाग कर दिया है उसका स्वाध्याय करके लाभ उठायें।

जो मनुष्य अपने आचरण का सुधार नहीं करता और दिखाने के लिए सन्ध्या करता है वह दम्भी है। इस विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं "कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता है और अपना चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है"।

इसलिए ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह "जगदीश्वर को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र, सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाने देवे, किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्तमान रखे"।

आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द जी की इस आज्ञा के अनुसार चलने से ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य नाश का कोई भय नहीं रहता और वह अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करने में सहज में ही समर्थ और सफल होता है। ब्रह्मचारी की ब्रह्मचर्य की शुभ और पवित्र प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करता है और फिर वह पूर्ण विद्वान्, बलवान् और आयुष्मान् होकर सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करता है।



हवन

जिस प्रकार सायं प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासना करना आवश्यक है उसी प्रकार सबको अग्निहोत्र (हवन) भी दोनों समय नित्य करना चाहिए। इसकी विधि भी महर्षि दयानन्द जी कृत पंचमहायज्ञविधि और संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में लिखी है। उसके अनुसार नियमपूर्वक अग्निहोत्र करके लाभ उठावें।

यह सब लोग जानते हैं कि हमारे शरीर से मल-मूत्र आदि के रूप में दूषित और दुर्गन्धयुक्त पदार्थ निकलते रहते हैं जो जल और वायु को दुर्गन्धयुक्त और दूषित कर देते हैं। जल वायु के बिगड़ने से रोगों की उत्पत्ति और रोगों से प्राणियों को दुःख होता है। इसी प्रकार चन्दन, घृत आदि सुगन्धित और पौष्टिक द्रव्य जो हवन के समय अग्नि में डाले जाते हैं वे पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्धि की निवृत्ति करते हैं और जल वायु के सुगन्धि होने से आरोग्य की वृद्धि और रोगों का नाश होता है, जिससे सब प्राणियों को सुख होता है। अग्नि में डाला हुआ पदार्थ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
नष्ट नहीं होता। क्योंकि जहां होता है वहां से दूर देश में खड़े हुये पुरुष को भी (नासिका से) सुगन्ध का ग्रहण होता है। पदार्थ विद्या जाननेवाले लोग इसे भलीभांति जानते हैं। अग्नि में भेदक शक्ति है। जब होम किया जाता है तो वह घर में ठहरी हुई वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हल्का करके घर से बाहर निकाल देता है और उसके स्थान पर पवित्र वायु का प्रवेश कराके रोगों के नाश और सुख की वृद्धि का कारण बनता है। घर में रक्खे हुये केसर कस्तूरी वा सुनन्धित पुष्पों के सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके। क्योंकि इसमें अग्नि के समान भेदक शक्ति नहीं है। जो मनुष्य होम नहीं करता वह पाप का भागी होता है। इस विषय में सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—

"क्यों कि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उस से अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत और सुगन्ध आदि पदार्थ एक मनुष्य खाता उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तमोत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इसके अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये, परन्तु उस से होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना आश्यक है।" (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

हमारे पुरुषा प्राचीन काल से सन्ध्या के समान होम भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिदिन सभी करते थे। वाल्मीकि रामायण में आता है—

द्रष्टुमशक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः॥
(बालकाण्ड, सप्तम सर्ग)

अयोध्या में अशिक्षित (अनपढ), नास्तिक (ईश्वर को न मनाने वाला), प्रतिदिन यज्ञ न करने वाला, नीच और चोर आदि ढूंढने पर भी नहीं मिलता था, वहां इनका दर्शन असम्भव था अर्थात् सभी ईश्वर के भक्त, आस्तिक, विद्वान् धर्मात्मा वा प्रतिदिन होम करनेवाले थे।

अश्वपति महाराज का राज्य भी इसी प्रकार का था। इन दो राज्यों की क्या बात है, सृष्टि से ले के महाभारत से कुछ काल पूर्व तक सारे भारतवर्ष की ऐसी ही अवस्था रही है।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छः २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इस से अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिये आर्यवर शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि राजे महाराजे लोगे बहुतसा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्य्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये" (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

इसलिये सन्ध्या के समान होम भी ब्रह्मचारी को प्रतिदिन करना चाहिये क्योंकि होम के लिये शास्त्रों में अनध्याय (छुट्टी) करने की अनुमति नहीं है।

मुद्रक— जय्यैद प्रैस, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आ. कु. दा. अ. वि.

MF

0 22

Sunanda Prakash Arya
68 A. CHARU DEAD STREET
P.Ph.-LOTUS
MAU.-LOTUS

Sunanda Prakash Arya
68 A. CHARU DEAD STREET
P.Ph.-LOTUS
MAU.-LOTUS

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

ब्रह्मचर्य के साधन



(१—११ भाग)

प्रातः जागरण, शौच, दन्तरक्षा, व्यायाम, सन्ध्या यज्ञ,
प्राणायाम, सत्संग स्वाध्याय, भोजन,
निद्रा, मेखला

लेखक

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर रोहतक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय संस्करण २०००
विक्रमसंवत् २०४२

मूल्य २०-००

मुद्रक:—
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
गोहाना रोड, रोहतक
दूरभाष : २८७४

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

आद्य वक्तव्य

महाभारत से एक सहस्र पूर्व इस आर्यावर्त देश का पतन होना आरम्भ हो गया था। इस पतन में सबसे प्रथम ब्रह्मचर्य हानि का स्थान है। मानव की गिरावट में अन्य पतन सहन किए जा सकते हैं, किन्तु चरित्रभ्रष्टता असह्य होती है। वर्तमान में चरित्रहनन सीमा का अतिक्रमण कर रहा है। इसमें मुख्यकारण पाश्चात्य दूषित शिक्षा प्रणाली है। आज भारतीय बच्चे बच्चियां, युवक-युवतियां सभी बचपन से ही दुश्चरित्रता की शिक्षा गली-कूचों में घूमते-फिरते स्वयं ही ले लेते हैं। रही-सही बातें स्कूल कालेज में सीख लेते हैं। माता-पिता और गुरुओं को यह भी ज्ञात नहीं होता कि उनके सन्तान और शिष्य कहां रहकर क्या कुछ सीखते जा रहे हैं।

हमारे वेद शास्त्र, रामायण, महाभारत और उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थ ब्रह्मचर्य के महिमा से आप्लावित हैं। इसकी क्रियात्मक शिक्षा प्राचीन काल में ऋषि मुनि लोग आश्रमों में अपने शिष्यों को दिया करते थे। इसी कारण हनुमान् और भीष्म सदृश वीर ब्रह्मचारी इस देश में हो चुके हैं। इस आर्यावर्त्त देश में अट्ठासी सहस्र ८८००० ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हुए हैं। इन्होंने देशविदेश में वेदशास्त्रों का प्रचार प्रसार करके अज्ञजनों का महदुपकार किया था।

भारत की ऐसी दुर्दशा को देखकर आदित्यब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य शिक्षा का क्रियात्मक पुनरुद्धार किया। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के माध्यम से ही छात्र ब्रह्मचारी रह सकता है। आज के विषयवासनापूर्ण समाज में छात्रों को चरित्र की शिक्षा देने के लिए ही हमने ब्रह्मचर्य के ११ भाग लिखे हैं। आशा है बालक और विद्यार्थी इनसे शिक्षा लेकर अपने जीवन को सुपथ पर चला सकेंगे।

शुभाकांक्षी

ओमानन्द सरस्वती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
प्रथम भाग	प्रातः जागरण	१
द्वितीय भाग	चक्षुः स्नान, उषःपान, शौच आदि	११
तृतीय भाग	दन्तरक्षा	३७
चतुर्थ भाग	व्यायाम	६१
पञ्चम भाग	स्नान, सन्ध्या, हवन	१४७
षष्ठ भाग	प्राणायाम	१
सप्तम भाग	सत्संग	९९
अष्टम भाग	स्वाध्याय	१३३
नवम भाग	भोजन	१६१
दशम भाग	निद्रा	२६५
एकादश भाग	मेखला	३१९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha



ब्रह्मचर्य के साधन

[प्रथम भाग]

प्रातः जागरण

ब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ, जो भी जीवन में उन्नति करना चाहता है उसे सबसे पूर्व प्रातः उठने का ही अभ्यास करना चाहिए।

मनु महाराज ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर आवश्यक कर्त्तव्य कर्म करने का इस प्रकार विधान किया है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ।।

मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ९२

ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। अपने शरीर के क्लेशों और उनके कारणों पर विचार करना चाहिए और वेद के तत्त्वों का अध्ययन करना चाहिए।

एक अन्य स्थान पर भी ऐसा ही लिखा है:—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ।।

आयु की रक्षा के लिए ब्राह्ममुहूर्त में उठे और शरीर की चिन्ताओं को छोड़कर, शौच स्नानादि करके स्वस्थचित्त होकर ईश्वर का ध्यान आदि नित्य कर्मों को करे। प्रातःकाल उठने से मनुष्य स्वस्थ रहता है उसको रोग नहीं होते अतः निरोग

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरीर अधिक वर्षों तक कार्य कर सकता है। प्रातःकाल उठने के असंख्य लाभ शास्त्रकारों ने बतलाये हैं।

गोभिल गृह्यसूत्र में भी इसी प्रकार का विधान हैः—

"प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा०"

प्रति-दिन रात्रि के चौथे प्रहर में जाग। महर्षि दयानन्द जी भी इस विषय में संस्कार विधि में लिखते हैं—

सदा स्त्री-पुरुष दस बजे शयन और रात्रि के पिछले प्रहर वा ४ बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म अर्थ का विचार करना और धर्म अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त काम न छोड़ना चाहिए, किन्तु सदा निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्तव्य कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वरोपासना भी करनी कि जिस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके।"

(सं० वि० गृहाश्रमप्रकरण)।

इसलिए प्रातः उठते ही सर्वप्रथम निम्न मन्त्रों से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिएः—

(ओ३म्) प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

(ओ३म्) प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

(ओ३म्) भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

(ओ३म्) उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

प्राणायाम

[षष्ठ भाग]



प्राणायाम का महत्त्व

आज मानव का जीवन नितान्त नीरस एवं क्लेशपर्ण हो चुका है। चारों ओर भय और आशंका के बादल मंडरा रहे हैं। मनुष्यों के जीवन में सुख शांति का कोई भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होता। सारा विश्व एक भयंकर अशांति की अग्नि में धू-धू करके जल रहा है। जीवात्मा को सब लौकिक सुखों की प्राप्ति कराने का साधन एवं मोक्ष तक पहुँचाने का सुन्दर वाहन यह शरीर नाना आधि व्याधियों से जर्जरित हो चला है। "शरीरं व्याधिमन्दिरम्" की उक्ति स्पष्ट रूप से चरितार्थ हो रही है। आर्य सन्तान राजयक्ष्मा, (तपेदिक) श्वास-दमा, प्रमेह, अर्श (ववासीर), हृदय रोग, यकृत् रोग, उदर रोग तथा भयंकर वातरोगों से पीड़ित होकर कराह रही है। रोगियों की चीत्कार से वायुमण्डल परिपूर्ण है। वैद्य और डाक्टर छाया के समान मनुष्यों का पीछा कर रहे हैं। किन्तु इन सब प्रयत्नों के बाद भी देश का स्वास्थ्य उन्नति के स्थान पर दिन प्रतिदिन गिरता ही जारहा है। शरीर के समान ही मन की अवस्था है। सब लोग मानसिक रोगों से पीड़ित हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मद, मत्सर आदि भयंकर शत्रु आज खूब बढ़े हुऐ हैं।

काम का अग्नि मनुष्य को भस्मसात् कर रहा है। मनुष्य अन्धा होकर पतंग के समान इस विषयों के अग्नि में छलाँग लगा रहा है। शृंगारपूर्ण जीवन दूषित शिक्षा तथा अश्लील चलचित्र

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

प्राण और ब्रह्मचारी का परस्पर एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध है इस पर छान्दोग्य उपनिषद् के आधार पर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ-प्रकाश में प्रकाश डाला है वे लिखते हैं "ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है, कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। कनिष्ठ ब्रह्मचारी के लिये यह सत्कर्त्तव्य है कि २४ वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे और विवाह करके भी लम्पटता न करे तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभ गुणों के वास करानेवाले होते हैं और ब्रह्मचारी का शरीर और आत्मा आरोग्य और बलवान् होता है।" इसका फल यह लिखा है कि :—

"वसु ब्रह्मचारी की आयु ७० वा ८० वर्ष तक रहेगी। मध्यम ब्रह्मचर्य यह है जो मनुष्य ४४ वर्ष ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण इन्द्रियां, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होके सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करने हारे होते हैं जो ब्रह्मचारी प्रथम वय में तपश्चर्या करता है उसके ये रुद्र रूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा, उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त होता है। उत्तम ब्रह्मचारी के प्राण अनुकूल होकर वह सकल विद्याओं को ग्रहण करता है। जो आचार्य और माता पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में तपस्वी बनाकर विद्या और गुण ग्रहण का उपदेश करते हैं वे सन्तान आप ही आप तोसरे उत्तम अखण्डित ब्रह्मचर्य को पूर्ण करते हैं उनको पूर्ण अर्थात् ४०० वर्ष पर्यन्त की आयु प्राप्त होती है और जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं"।

उपरिलिखित लेख में आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचारी को तपस्या करने के लिये आदेश दिया है और तीनों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan
प्रकार के ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य पालन से जिन फलों को प्राप्ति होती है उनका भी स्पष्ट उल्लेख किया है। इन सब में एक बात ध्यान देने योग्य है कि "प्रथम वसु ब्रह्मचारी के शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभ गुणों के वसाने वाले होते हैं और उसका शरीर और आत्मा नीरोग वा बलवान् होता है यह वसु ब्रह्मचारी बसने योग्य अर्थात् सच्चा वैश्य बनता है। दूसरे रुद्र ब्रह्मचारी के प्राण; इन्द्रियां, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होते हैं और वह रुद्र रूप प्राणों से युक्त होकर दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करने की शक्ति प्राप्त करता है अर्थात् सच्चा क्षत्रिय बनता है। तीसरा उत्तम ब्रह्मचारी ४८ वर्ष तक अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसके प्राण उसके अनुकूल हो जाते हैं और वह सब विद्याओं का भण्डार बन जाता है और उसको पूर्ण अर्थात् ४०० वर्ष पर्यन्त की आयु प्राप्त होती है और ऐसा अखण्ड ब्रह्मचारी यदि ब्रह्मचर्य का लोप नहीं करता तो वह अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति करता है अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये जीवन के चारों फल उसको प्राप्त होते हैं। जब तक मनुष्य अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके पूर्ण विद्वान् नहीं होता तब तक उसके प्राण अनुकूल नहीं होते और बिना प्राण अनुकूल हुए पूर्ण आयु जिसकी अवधि ४०० वर्ष बताई है, प्राप्त नहीं हो सकती और ऐसे देव लोग ही मृत्यु को जीतकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्" देवता लोग मृत्यु को बिना ब्रह्मचर्य और तप के नहीं जीत सकते और यह इन्द्र अर्थात् आत्मा अपनी इन्द्रियों को निश्चय से इहलौकिक सुख और पारलौकिक आनन्द मोक्ष तभी प्रदान कर सकता है जब वह निश्चय से सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करता है। "देवा अमृतमानशानाः" देव लोग अमृत का भोग अर्थात्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan
अमरपद की प्राप्ति करते हैं। यह वेद की शिक्षा यही सिद्ध करती है कि देव लोक में जाने के लिये देव बने बिना निर्वाह नहीं। वहां देवों को ही प्रवेश मिलता है और देवता बनने से पूर्व तो सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ऋषि पद की प्राप्ति करनी होगी। "चतुर्वेदादृषिः, अत ऊर्ध्वं देवः" चारों वेदों को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सांगोपांग पढ़ने से ऋषि पद की प्राप्ति होगी। ऋषियों से ऊपर देवों का स्थान है और एक-एक वेद के पढ़ने के लिये १२-१२ वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। फिर जाकर ऋषिपद मिलता है और देवपद तो इससे भी ऊंचा है अर्थात् जो सारी आयु अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए घोर तपश्चर्या करता है वही देव बनकर मृत्यु को जीत मोक्ष को प्राप्त होता है। ऐसे आप्त पुरुष देव दयानन्द थे। इसलिये प्राणों के वसुरूप, रुद्ररूप और आदित्यरूप को प्राप्त करने के लिये तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य का उपदेश किया है।

ऋषि दयानन्द ने सर्वोत्तम विवाह का समय ८ वें वर्ष में माना है क्योंकि इस आयु में सब सांगोपांग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं। "जैसे पुरुष का सर्वोत्तम विवाह का समय ४८ वां वर्ष है इसी प्रकार स्त्री का २४ वां वर्ष माना है। यह भी लिखा है कि इस समय के पीछे जो धातु बढ़ता है वह शरीर में नहीं रहता किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है अतः ४८ वें वर्ष से आगे पुरुष और २४ वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य नहीं रखना चाहिये" इस स्थल को पढ़ कर अनेक बार ब्रह्मचर्यप्रेमियों को सन्देह होता है कि जब २४ वें वर्ष से आगे स्त्री और ४८ वें वर्ष से आगे पुरुष के शरीर में जो वीर्यादि धातु बढ़ते हैं वे शरीर में ठहरते ही नहीं और स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाते हैं तो ब्रह्मचारी रहने से क्या लाभ है? इस

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
विषय में कई बार ब्रह्मचर्य-प्रेमियों ने मिलकर तथा पत्र द्वारा शंकायें की हैं, महर्षि दयानन्द के यथार्थ तात्पर्य का समझे बिना भ्रम हो जाता है। उपरोक्त बात सामान्य व्यक्तियों के विषय में लिखी है किन्तु जो सारी आयु ब्रह्मचारी रहना चाहें उनके लिए यह नियम नहीं है। यह नियम तो विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है "किन्तु जो विवाह करना ही न चाहें वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहें परन्तु यह काम पूर्ण विद्यावाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है यह बड़ा कठिन कार्य है कि जो काम के वेग को थाम के इन्द्रियों को अपने वश में रखना।" महर्षि दयानन्द जी महाराज की उत्कट इच्छा थी कि इस प्रकार के सारी आयु ब्रह्मचारी रहनेवाले स्त्री और पुरुष उनके समान सहस्रों हों। उन्होंने पूना में व्याख्यान देते हुए इस इच्छा को इस प्रकार प्रकट किया है—

"आर्य धर्म की उन्नति के लिये मुझ जैसे बहुत से उपदेशक आपके देश में होने चाहियें। ऐसा काम अकेला आदमी भली प्रकार नहीं कर सकता फिर भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार जो कुछ दीक्षा ली है उसे चलाऊँगा"

देव दयानन्द की कितनी दृढ़ धारणा थी वे अपनी इसी इच्छा को पुनः सत्यार्थप्रकाश में इन शब्दों में प्रकट करते हैं "जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या, धर्म वृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे जैसे पञ्चशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं"। उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि देव दयानन्द अपने समान देशोपकार के लिये सहस्रों नैष्ठिक (आजीवन) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ बनाना चाहते थे, ऐसी अवस्था में यदि ४८ वें वर्ष के पश्चात् शरीर में वीर्यादि धातुओं को सुरक्षित न रखा जा सकता हो तो वे स्वयं क्यों ब्रह्मचारी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
रहते और अपने समान "ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते" इस वेद मन्त्र के अनुसार ब्रह्मचारियों की क्यों कामना करते। बात यथार्थ में यह है कि यह कार्य सर्वश्रेष्ठ है किन्तु बड़ा कठिन भी है जैसे ऋषिवर ने लिखा है किन्तु पूर्ण विद्वान् और पूर्ण योगी का है। योग के आठ अंग हैं उन आठों में से एक अंग प्राणायाम है जिसको परम तप कहा है और बिना प्राणायामादि की साधना के पूर्ण योगी तो क्या साधारण ब्रह्मचारी भी नहीं बन सकता। इसलिए प्राणायाम ब्रह्मचारी का प्राण है। सत्यार्थप्रकाश में एक शंका की है कि "जो ब्रह्मचर्य से संन्यास लेवेगा उसका निर्वाह कठिनता से हो सकेगा और काम का रोकना भी अति कठिन है इसलिये गृहाश्रम, वानप्रस्थ हो कर जब वृद्ध हो जावे तभी संन्यास लेना अच्छा है।" ऋषिवर इसका उत्तर देते है—" जो निर्वाह न कर सके इन्द्रियों को न रोक सके वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्य संरक्षण के गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता है उसका वीर्य विचाराग्नि का ईन्धनवत् है अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है।" इस वाक्य ने पूर्वोक्त शंका का पूर्णतया समाधान कर दिया है। जो व्यक्ति प्राणायामादि की साधना करता है उसका वीर्य स्वप्न और प्रस्वेदादि के द्वारा बाहर नहीं निकलता वह ऊर्ध्वरेता बन जाता है अर्थात् उसका वीर्य प्राणायाम के द्वारा उसके मस्तिष्क में पहुँच जाता है और वहां विचाराग्नि का ईंधन बनकर उसमें व्यय होता है और ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में ज्ञान की ज्योति जलाता है। वीर्य का एक बिन्दु भी उसके शरीर से बाहर नहीं निकलता। जैसे दीपक का तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता रहता है और सबको प्रकाशित करता है ऐसे ही आदित्य ब्रह्मचारी प्राणायाम के द्वारा
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

इस वीर्य को मस्तिष्क में पहुंचाकर, सब विद्याओं से परिपूरित होकर सूर्य के समान संसार को देदीप्यमान करता है। जिस प्रकार इस पवित्र आर्यावर्त में "अष्टाशीति सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसां बभूवुः" ८८ हजार ऊर्ध्वरेता अखण्ड ब्रह्मचारी ऋषि हुए हैं जिन्होंने इस ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही सारे विश्व में वेद के पवित्र ज्ञान का प्रकाश किया और प्राणायामादि अष्टांग योग के द्वारा पूर्ण योगी बनकर वे ऊर्ध्वरेता पदवी को प्राप्त हुए।

इसलिये ब्रह्मचारी के प्राण प्राणायाम को अपनाकर हमारे देश के बालक बालिकायें सच्चे ब्रह्मचारी बनने में सफल हों इसी भावना से ब्रह्मचारी का प्राण "प्राणायाम" यह छोटी सी पुस्तिका पाठकों की भेंट है।

—ओ३मानन्द सरस्वती

गुरुकुल झज्जर
शिवरात्रि २०३२ वि०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूमिका

"प्राणायाम ब्रह्मचारी का प्राण है" यह सोलह आने सत्य है। प्राणायाम की साधना श्रद्धापूर्वक निरन्तर दीर्घकाल तक अभ्यास किये बिना पूर्णतया सिद्ध नहीं होती और इसकी सिद्धि के बिना ब्रह्मचर्य पालन में सफलता नहीं मिल सकती। यदि कोई व्यक्ति प्राणायाम की साधना किये बिना ब्रह्मचर्य पालन में सफलता प्राप्त करना चाहता है तो वह इस प्रकार का दुस्साहस है कि जैसे कोई बूंदों को पकड़कर आकाश में चढ़ना चाहे। अतः "प्राणायामः परमं तपः" अर्थात् प्राणायाम सर्वश्रेष्ठ तप है यह रहस्यपूर्ण वाक्य लिखकर मनु जी ने हमारी आंखें खोल दीं, क्योंकि तप ब्रह्मचारी का भूषण है। इसलिये महर्षि देव दयानन्द ने दया करके हमें यह चेतावनी दी कि "चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।" इसलिए प्रत्येक बालक को अपने कल्याणार्थ अनिवार्य रूप से ब्रह्मचर्य की साधना के लिये तप करना ही होगा। इसके बिना अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना सर्वथा असम्भव है और शरीर सुखाना वा भूखे मरने का नाम तप नहीं है किन्तु धर्म कार्य में जो कष्ट आयें उनको सहते हुए निरन्तर धर्माचरण करना ही तप है। यह तप तो सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति के लिये आचरण में आनेवाला तप है किन्तु जिसे सर्वश्रष्ठ मानव बनना है उसे सर्वश्रेष्ठ तप प्राणायाम की साधना करनी ही होगी। इसलिये सभी आश्रमवासियों के लिये प्राणायाम के अभ्यास के लिये ऋषियों ने आदेश दिया है किन्तु सर्व आश्रमों के आधार ब्रह्मचर्याश्रम में सफलता पाने के लिए प्राणायाम रूपी तप की भट्टी में तपे बिना कल्याण वा सफलता नहीं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
इस अग्नि में वायु का काम कर रहे हैं। क्रोध भी अपनी प्रचंड अवस्था में है। क्रोध रूपी विष में सिक्त वचन दूसरे मनुष्यों के हृदयों में अपने समान ही प्रतिक्रिया उत्पन्न करके वातावरण को विक्षुब्ध कर रहे हैं। इसलिए द्वेष, ईर्ष्या, विवाद तथा कलह का भयंकर बाजार गर्म है। धन की डाह ने तो मानव जीवन की धारा को ही परिवर्तित कर दिया है। जिस मनुष्य का जन्म आत्म-ज्ञान के लिए हुआ था आज वही इन भौतिक पार्थिव कंकर- पत्थरों के संग्रह में व्यर्थ नष्ट कर रहा है, जीवन का मापदण्ड पैसा कमाना ही बन गया है। चरित्र-संयम-ब्रह्मचर्य-योगाभ्यास का तो कहीं नाम भी नहीं सुनाई पड़ता। इस प्रकार आज मानसिक रोगों को अमृत समझ कर स्नेह के साथ बढ़ाया जा रहा है।

अय मानव जाति ! क्या तू जानती है कि हमारी यह दयनीय दशा क्यों हो गई ? जन्म से मृत्यु पर्यन्त सुख हमारे लिए मृग मरीचिका मात्र क्यों बन गया ? जीवन में इतनी विषमता-अशान्ति और निराशा कहां से आगई ? सब प्रकार की दिव्य शक्तियों से हमारा सम्बन्ध विच्छेद क्यों होगया ? आज हम पशुओं से भी निकृष्ट, दीन हीन, दुःखी एवं निराश्रय क्यों बन गये ? इन सब प्रश्नों का यदि आप एक ही उत्तर चाहते हैं तो मैं कहूँगा कि हम लोगों ने वेद में परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट प्राण विद्या को भुला दिया है। इस जीवनदायिनी प्राणविद्या को आदि सृष्टि में वेद द्वारा ऋषि महर्षियों ने प्राप्त करके मानव मात्र तक इसका क्रियात्मक प्रचार किया था। इसी प्राणविद्या, जिसका स्वरूप प्राणायाम है, के कारण "न ह अस्य प्रजा हीयते" के अनुसार हमारे देश में आयु का माध्यम शत वर्ष था। लोग चार सौ वर्ष तक भी निरोग जीवन धारण करते थे और मृत्युञ्जय की पदवी से विभूषित थे। पिता के सामने पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी, विशाल

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
ललाट, बलवान् एवं उभरा हुआ वक्षःस्थल, प्रचण्ड भुजदण्ड तथा कान्ति से युक्त ६ फीट लम्बे सुदृढ़ सुन्दर शरीर को देखकर रोग दूर ही रहते थे। प्राणायाम के प्रभाव से शरीर और मन के पवित्र होने से किसी भी प्रकार की निर्बलता निराशा, निष्कर्मण्यता को स्थान न था। यह प्राण विद्या भारतवर्ष के प्रत्येक नर नारी तक पहुँची हुई थी। इसके प्रभाव से सभी लोग चरित्र के धनी होते थे। इसी कारण मनु महाराज ने विश्व के समक्ष घोषणा की थी—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् सारे विश्व के मानव भारतवर्ष के लोगों से चरित्र की शिक्षा ग्रहण करके अपने चरित्र को विशुद्ध बनावें। इसी प्राणायाम विद्या के कारण देश में सब प्रकार से सुख शान्ति थी।

प्राणायाम का आदिस्रोत वेद

महर्षि दयानन्द जी द्वारा प्रणीत आर्यसमाज के तृतीय नियमानुसार "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" सभी विद्याओं के समान ही इस प्राण विद्या का भी आदिमूल वेद है। वेद में प्राणायाम के मौलिक सिद्धान्तों का स्पष्ट रूप में वर्णन आता है। सुविज्ञ पाठकों के ज्ञान के लिए कुछ मन्त्र यहां उद्धृत किये जाते हैं—

द्वाविमौ वातौ वात आसिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु परान्यो वातु यद्रपः॥ ऋ० १०-१३७-२

इस मन्त्र का भाष्य आर्य विद्वान् इस प्रकार करते हैं—(इमौ द्वौ) ये दो प्रकार के (वातौ) वायु (वातः) बहते हैं एक वायु (आसिन्धोः) हृदय तक चलता है और दूसरा (आपरावतः) बाहर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के वायुमण्डल तक चलता है। (अन्यः) उनमें एक (ते) तेरे लिऐ (दक्षं) बल (आवातु) अन्दर बहा लावे और (अन्यः) दूसरा (यद्रपः) जो दोष बुराई है उसे (परावातु) बाहर बहा ले जावे।

हे मनुष्य ! तुझ में दो वायु चल रहे हैं। तुझ में श्वास और प्रश्वास के रूप में प्राण की दो तरह की गति हो रही है। श्वास द्वारा बाहर का शुद्ध वायु तेरे अन्दर के सिन्धु स्यन्दनशील हृदय तक आता है और प्रश्वास द्वारा अन्दर का दूषित वायु बाहर 'परावत' तक पहुंचता है। हमारे अन्दर हृदय वह 'सिन्धु' स्थान है जहां कि सैकड़ों रुधिरवाहिनी नाड़ी रूप नदियां आ आकर मिलती हैं. और बाहर 'परावत' वह वायुमण्डल नामक स्थान है जोकि वायु का अपार अटूट भण्डार है। एवं ये जो परावत से सिन्धु तक और सिन्धु से परावत तक दो वायु हम में निरन्तर चल रहे हैं ये ही हमारे जीवन का आधार हैं। क्योंकि इनमें से पहिला वायु श्वास, हमारे सिन्धु में बाहर से प्राण और नवजीवन को लाता है और हमारे रुधिर के एक-एक कण को नववल संयुक्त कर देता है और दूसरा वायु, हमारे रुधिर में से, सारे शरीर में से, सब मल दोष विकार को बहा ले जाता है और बाहर परावत में फेंक देता है एवं हमारा जीवन बढ़ रहा है, इस प्रकार हमारे जीवन की वृद्धि होती है। हम नित्य अधिक-अधिक बलवान् और नीरोग होते जा रहे हैं। पर हे मनुष्य ! यह द्विविध प्राणक्रिया केवल तेरे भौतिक जीवन का सिद्धान्त नहीं है किन्तु तेरे मानसिक और आत्मिक जीवन का रहस्य भी इसी में है। तू जानता नहीं कि सब महामना महापुरुष अपने श्वास द्वारा केवल शारीरिक शक्ति को नहीं किन्तु उत्साह, धैर्य, बल सत्य प्रेम आदि सब मानसिक और आत्मिक सद्भावों को अन्दर ले रहे हैं, तथा प्रश्वास द्वारा सब मन्दता, कायरता, अशक्ति, झूठ, वृणा आदि सभी असद्भावों को बाहर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निकाल रहे हैं और इसीलिये वे महान् हुये हैं। प्राण के साथ मन ऐसा जुड़ा हुआ है कि तू श्वास के साथ जो सोचेगा वह तुझ में आ बसेगा और जिसे प्रश्वास के साथ ध्यान करेगा वह बाहर निकल जावेगा। तनिक अपनी प्रार्थना में तू इस सिद्धान्त का उपयोग करके देख। जिसे बसाना चाहता है उसे श्वास के साथ चित्रित करके देख और जो ओ अशुभ विचार टलना ही नहीं है उसे उसके आने पर बार-बार प्रश्वास के साथ बाहर करके देख तो तुझे निःसंदेह अद्भुत सफलता मिलेगी। एवं अपने व्यायाम प्राणायाम और प्रार्थना में तू इस जगत् व्यापक जीवन सिद्धान्त का सदा उपयोग कर। तू देख कि अपनी इस द्विविध प्राणक्रिया द्वारा अनन्त शक्ति भण्डार से जुड़ा हुआ है, और इस भण्डार से अपने प्रत्येक श्वास द्वारा यथेच्छ बल पा सकता है, और अपने श्वास द्वारा उस पवित्रकारक महा-पारावार में अपनी तुच्छ मलिनतायें फेंककर सदा पवित्र होता रह सकता है। अतः हे मनुष्य ! तू उठ और अब अपने प्रत्येक श्वास और प्रश्वास के साथ नित्य उन्नत और नवजीवन सम्पन्न होगा। इस प्रकार यह वेद की आज्ञा है।

इसी प्रकार दूसरा मन्त्र भी प्राणायाम के स्वरूप का स्पष्ट चित्रण करता है—

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥ ऋ० १०, १३७, ३

अर्थात्—(वात) हे प्राण ! (भेषजं आवाहि) मुझ में ओषध को बहा लाओ और (वात) हे प्राण ! (यद्रपः) मुझ में जो दोष-मल है उसे (वि वाहि) मुझ से बाहर बहा ले जाओ। (त्वं) तुम (हि) निश्चय रूप से (विश्वभेषजः) सर्व औषध रूप हो, (देवानां दूत ईयसे) तुम देवताओं के दूत होकर चल रहे हो।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्त्र में प्राण का एक दिव्य देव के रूप में सुन्दर आलंकारिक वर्णन किया है यथा—हे वायु ! हे प्राण ! तुम सर्व ओषधरूप हो, तुम में सबकी सब दवाइयां मौजूद हैं, मैं तो यूं ही इन बाहिर की नाना प्रकार की दवाइयों के खाने-पीने के चक्कर में पड़ रहा हूँ। यदि मैं, हे वात ! तुम्हारा ठीक तरह सेवन करूँ, तुम्हारी शक्ति का उपयोग करूँ, तो मुझे कभी किसी दवा कि जरूरत न हो। संसार के ९० प्रतिशत रोगी इसलिए रोगग्रस्त हैं चूंकि वे ठीक तरह श्वास लेना नहीं जानते तथा सर्वौषधमय तुम्हारा लाभ उठाना नहीं जानते। यदि हम ठीक प्रकार श्वास लेवें तो अन्दर आता हुआ श्वास ही हमारा दिव्य औषधपान होवे और बाहर जाता हुआ प्रश्वास हमारे सब रोग-मल निकालने वाला होता रहे। यह जो कहा जाता है कि देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार हैं वे और कोई नहीं हैं, वे नासत्यौ (नाक से पैदा होनेवाले) अश्विनौ ये श्वास प्रश्वास वा प्राणापान ही हैं जिन्हें इड़ा, पिंगला, चन्द्रप्राण, सूर्यप्राण आदि अन्य रूपों में भी देखा जाता है। इस प्राणापान के नियमन द्वारा संसार के सब रोगों की दिव्य और अमोघ चिकित्सा हो जाती है। मैं यूं ही बाहर के वैद्यों को खोजता फिरता हूँ। जब कि वास्तविक दिव्य वैद्य मेरे अन्दर ही बैठे हुवे हैं। सब औषध मेरे अन्दर विद्यमान हैं, मैं इन्हें बाहर कहां ढूंढता हूँ ?

और हे प्राणो ! तुम तो देवदूत हो, हमारे अन्दर देवदूत होकर चल रहे हो, हमारे अन्दर सब देवों के सन्देशों को लाकर सुनाते हुवे सदा चल रहे हो। हम प्राणोपासना से रहित, स्थूलरत लोग बेशक तुम्हारे इन सूक्ष्म देव-सदेशों को न सुनते हों अत एव तुम्हारी दिव्य चिकित्सा से वंचित रहते हों, परन्तु जो तुम्हारे उपासक हैं वे तो अपने प्राण में सूक्ष्म रूप से चलने वाले सब पृथ्वी, अप तेज आदि देवों के सन्देशों को सुनते हैं। शरीर की सब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan

हरकतों व चेष्टाओं के प्रेरक और नियामक वात ! हे प्राण ! शरीर में दोष उत्पन्न होते ही तुम हम में दिव्य प्रेरणायें करते हो, शरीर को विशेष प्रकार से हिलाने-डुलाने वा चेष्टा करने की प्रेरणा तथा विशेष प्रकार के भोजन, पान, आच्छादन की प्रेरणा पैदा करते हो, यदि हम उन्हें सुना करें और उनके अनुसार आचरण कर लिया करें तो हमारे सब रोगों की चिकित्सा हो जाया करे या बहुत अवस्थाओं में तो हम रोग के उत्पन्न होने से ही बच जाया करें। पर हम उन्हें सुनते नहीं हैं। दूसरी तरफ जो सुननेवाले हैं वे अपनी नासिकाओं में चलनेवाले तुम्हारे 'स्वरों' को भी सुनते हैं, बल्कि उन्हें आधिदैविक संसार के स्वरों से मिलाये रखते हैं अत एव उनका जीवन ऐसा संगीतमय हो जाता है कि वे सदा स्वस्थ एवं नीरोग रहते हैं। हे प्राण ! हम चाहे तुम दिव्यदूत के सन्देशों को सुनें या न सुनें, पर वह सच है कि तुम हमारे आये हुवे दिव्य चिकित्सक हो। तुम सर्वौषध रूप हो। हे हमारे स्वास्थ्य के लिये सम्पूर्ण देवों के दूत होकर हम में चलनेवाले प्राण ! तुम सचमुच सर्वौषध रूप हो।

इस प्रकार वेद में प्राणायाम के महत्त्व का विशद वर्णन है। शारीरिक मानसिक सभी विकारों को दूर करके उनमें शक्ति का संचार करना प्राणायाम का मुख्य कार्य है। जीवन पूर्णतः श्वास क्रिया पर ही अवलम्बित है। प्राणायाम के द्वारा देह में संजीवन शक्ति का संचार हो जाता है। मन की प्रसुप्त शक्तियां जागरित हो उठती हैं, शरीर शुद्ध, पवित्र, बलवान्, तेजस्वी तथा कान्तिमान् बन जाता है, शरीर की सब मांस पेशियां सम्पुष्ट हो जाती हैं, शरीर में परिभ्रमण करनेवाला रक्त शुद्ध एवं विकाररहित हो जाता है। इस प्रकार प्राणायाम सब धातुओं के मलों को दूर करके वीर्य को शुद्ध पवित्र कर ओजरूप में परिणत कर जीवन को मुख-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मय बना देता है। इसी कारण प्राण को वेद में पिता, भ्राता, मित्र आदि के रूप में वर्णित किया गया है—सामवेद के उत्तरार्चिक में इस विषय का मन्त्र निम्न प्रकार है—

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि ॥ साम, उ. प्र. ६ सू. ११ म. २

मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि प्राण ही हमारा पिता, भ्राता और मित्र है। अतः प्राण ही हमें दीर्घजीवन के लिये समर्थ करता है। सामवेद में इस से पहला मन्त्र भी सब रोग दूर करके प्राणायाम को कल्याण करनेवाला बताता है—

वात वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र न आयूंषि तारिषत्।

अर्थात्—(वात) हे वायु (नः) हमारे (हृदय में) (शम्भु) कल्याण और शांतिकारक (मयोभु) सुखकारक (भेषजं) आधि व्याधि को शांत करने हारे ओषधि को (आवातु) प्राप्त कराए और (नः) हमें (आयूंषि) समस्त जीवन को (प्रतारिषत्) पार कराए। प्राण शरीर की प्रधान शक्ति है प्राण के ऊपर वशित्व प्राप्त करने पर मन सहित—ज्ञानेंद्रियां, कर्मेन्द्रियां भी मनुष्य के वश में आ जाती हैं। अथर्ववेद में प्राणविद्या का विशद वर्णन है। अथर्ववेद के प्राणसूक्त का प्रथम एक मन्त्र प्राण की प्रधानता का स्पष्ट रूप से वर्णन करता है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्। अथर्व ११-४-१

इस मन्त्र का भाष्य महर्षि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम समुल्लास में निम्न प्रकार से करते हैं—

"जैसे प्राण के बश सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं वैसे
CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है" इस मन्त्र में परमेश्वर का स्वामित्व बताने के लिये प्राण की उपमा दी है। जिस से प्राण की महत्ता स्पष्ट सिद्ध है।

जिस प्रकार अन्य वेदों में प्राण के महत्त्व का वर्णन है उसी प्रकार यजुर्वेद में भी प्राण का विशद वर्णन है स्थालीपुलाकन्याय से कुछ स्थल यहां उद्धृत किये जाते है। प्राणों को पुष्ट और दीर्घ करने के लिये लिखा है —

प्राणास्त आप्यायताम् ॥ यजु० ६-१५ अर्थात् तेरा प्राण संवर्धित हो। प्राण की पुष्टि से ही सब शरीर के अंगों की पुष्टि होती है इस का वर्णन निम्न मन्त्र करता है—

ऐन्द्रः प्राणो अंगे अंगे निदिध्यदैन्द्र उदानो अंगे अंगे निधीत

यजु० ६-२६

अर्थात् आत्मा की शक्ति से प्रेरित होकर प्राण प्रत्येक अंग में पहुँचता है। आत्मा की शक्ति से प्रेरित होकर उदान प्रत्येक अंग में पहुँचता है। अतः सबको प्राण की रक्षा करन चाहिये। इसका संकेत वेद में स्पष्टरूप से किया है।

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि। यजु० १४-८-१७ अर्थात् मेरे प्राण-अपान-व्यान का संरक्षण करो। प्राणों का रक्षण होने से प्राण सारे शरीर का संरक्षण करते हैं। इसी प्रकार "प्राणं ते शुन्धामि" (६-१४) "प्राणं मे तर्पयत" (६।३१) आदि वेद के वचन भी उपरोक्त भाव को व्यक्त करते हैं। यजुर्वेद में प्राण को शरीर का राजा माना है तथा "राजा मे प्राणः।" यजु० २०-५ अर्थात् मेरा प्राण राजा है। जिस प्रकार लोक में राजा के श्रेष्ठ होने से सब व्यवस्थाएं ठीक चलती हैं इसी प्रकार प्राण के सबल होने पर मनेन्द्रिय आदि सब शरीर के अवयव उचित कार्य करते हैं। उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट सिद्ध होगया है कि प्राण-विद्या का आदि स्रोत वेद है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपनिषदों में प्राण का महत्त्व

उपनिषद् आध्यात्मिक ग्रन्थ है, तथा प्राण भी अध्यात्म क्षेत्र का तत्त्व है। इसी कारण उपनिषदों में प्राण का विशेषरूप से महत्त्व वर्णन किया गया है। उपनिषदों में प्राण को कहीं ब्रह्म, कहीं देव, कहीं वसु, रुद्र, आदित्य, पिता, माता, स्वसा, आचार्य आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। जिस से प्राण की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध होती है। इस विषय में निम्न स्थल विशेष द्रष्टव्य हैं—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्धचैव खल्विमानि भूतानि जायन्ते प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभि संविशन्ति।
तै० उ० ३-३

इस प्रकरण का अभिप्राय स्पष्ट है—प्राण ही ब्रह्म है, क्योंकि प्राण से सब भूत उत्पन्न होते हैं, प्राण से जीवित रहते हैं और अन्त में प्राण में ही जाकर मिल जाते हैं। इसी प्रकार प्राण को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बतानेवाले उपनिषदों के स्थल नीचे देखिये—

१ कतम एको देव इति ? प्राण इति ॥ बृ. उ. ३-९-९।
२ प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ छा० ५-१-१ बृ० ६-१-१
३ प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितम्। बृ० ५-१४-४
४ प्राणो वा अमृतम्। बृ० १-६-३।
५ प्राणो वै सत्यम्। बृ० २-१-२०।
६ प्राणो वै यशोबलम् बृ० १-२-६।

प्राणों की सर्वश्रेष्ठता बताने के लिये प्रश्नोपनिषद् में एक अतिरोचक उपाख्यान है। शरीर में एक बार इन्द्रियों का परस्पर विवाद होने लगा, मन-श्रोत्र-चक्षु-त्वचा रसना, आदि सब इन्द्रियां स्वयं को बड़ा और अन्यों को छोटा बताने लगीं। ऐसी अवस्था देख प्राण ने सब को कहा—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमापद्यथ। अहमेवैतत् पंचधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्वाणमवष्टभ्य विधारयामि इति। तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ।३। सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव, तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते, तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते।

ते प्रीताः प्राणं स्तुवन्ति ।४।

उन विवाद करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ प्राण ने कहा कि तुम मोह अज्ञान को प्राप्त मत होओ। मैं ही अपने आप को पांच भागों में बाँटकर इस शरीर को धारण करता हूँ। किन्तु प्राण के इस वचन पर उनका विश्वास नहीं हुआ। इस पर अभिमान से प्राण शरीर से बाहर सा जाने लगा। जब वह बाहर निकलने लगा तो अन्य मन आदि इन्द्रिय भी साथ ही निकलने लगे और उसके स्थिर होने पर सब वहां स्थिर होने लगे। तब वे सन्तुष्ट हो प्राण को श्रेष्ठ मानकर उसकी स्तुति करने लगे। इस सारे उपाख्यान का तात्पर्य प्राण की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करना ही है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राण को शरीर के अंगों का रस रूप में स्वीकार किया है जिस में उसके प्रधानत्व का निश्चय होता है। यथा—

अंगिरसोंऽगानां हि रसः प्राणो वा अंगानां रसः—तस्मात् यस्मात्कस्माच्चांगात्प्राण उत्क्रामति तदेव तच्छुष्यति।

बृह० उप० १-३-१९।

अर्थात् प्राण ही अंगों का रस है। जिस अंग से प्राण चला जाता है वह अंग सूख जाता है।

प्राण का वसु रुद्र आदित्य रूप में वर्णन

प्राणा वाव वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ति ।१।
प्राणा वाव रुद्रा, एते हीदं सर्वं रोदयन्ति ।। २ ।।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राणा वावात्या; एते हीदं सर्वमा ददते ॥ ३ ॥

(छान्दोग्य ३-१६)

प्राण वसु हैं क्यों कि ये सबको वसाते हैं जीवन प्रदान कराते हैं। प्राण रुद्र हैं क्योंकि इनके निकल जाने से मृत्यु होती है सब रोते हैं। प्राण आदित्य हैं क्योंकि ये सब विद्याओं को ग्रहण करते हैं।

हम पहले यह लिख चुके हैं कि वेद में प्राण को माता-पिता भ्राता रूप में वर्णित किया है। उपनिषदों में भी प्राण की उसी प्रकार स्तुति की है—

प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः।
स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥

छा० उ० ७-१५-१।

अर्थात्—प्राण ही माता (मान्य हित करनेवाला) है। प्राण ही पिता (पाता-पालक-संरक्षक) है। प्राण ही भ्राता (भरण पोषण करने योग्य) है। प्राण ही स्वसा (उत्तम प्रकार रखने-वाला) है। प्राण ही आचार्य (आत्मिक गुरु) है। प्राण ही ब्राह्मण (ब्रह्म के पास ले जाने वाला) है। इसी प्रकार अन्य भी उपनिषदों के अनेक स्थल प्राण की स्तुति करते हैं।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक में प्राण का महत्व

तिस्र एषणाः पर्येष्टव्या भवन्ति, तद्यथा प्राणैषणा, धनैषणा परलोकैषणेति। आसां तु खल्वेषणानां प्राणैषणां तावत्पूर्वतर-मापद्येत। कस्मात् प्राणपरित्यागे ही सर्वत्यागः।

अर्थात् मनुष्य को तीन इच्छायें करनी योग्य हैं। १—प्राण की कामना। २—धन की कामना, ३—मोक्ष की कामना। इन तीनों में प्राणों के सुरक्षणादि की कामना मुख्य है। क्योंकि प्राण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाश से सर्वनाश होता है । अर्थात् धनैषणा और परलोकैषणा दोनों जीवितावस्था में ही हो सकती हैं। मरने पर नहीं । अत एव प्राणैषणा मुख्य है । इसलिए प्राणरक्षा के लिये मनुष्य को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। प्राणायाम का अभ्यास करने से मनुष्य दीर्घायु हो जाता है।

प्राणायाम से बुद्धि का विकास

प्राणायाम का कार्य जहां शरीर की शक्ति बढ़ाना है वहां मलों का नाश करना भी इसका मुख्य कार्य है। मनुष्य की बुद्धि त्रिगुणात्मक होती है। तमोगुण के प्रभाव से बुद्धि में जड़ता-मलिनता-प्रमाद-आलस्य तन्द्रा का बाहुल्य रहता हैं । सदैव निष्कर्मण्यता का साम्राज्य मन पर बना रहता है । इसी प्रकार जब बुद्धि पर रजोगुण का प्रभाव होता है तब मन में चञ्चलता-राग-द्वेष-ईर्ष्या आदि की अधिकता रहती है । सांसारिक ऐश्वर्य इन्द्रियों के विषय में आसक्ति तथा आडम्बर प्रधान जीवन रहता है। प्राणायाम करने से बुद्धि के तमोगुण आदि मल दूर होकर सत्वगुण की प्रधानता हो जाती है। योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि जी लिखते हैं—

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" योग० २-५२ ।

प्राणायाम के करने से हमारे मन पर प्रकाश का आवरण स्वरूप जो मल है वह क्षीण हो जाता है । जिसके कारण हमारी अविद्या-अज्ञान दुर्बलता आदि सब मानसिक कमजोरी दूर होकर मन, आत्मा सब शक्तियों के भण्डार बन जाते हैं इसी कारण किसी अनुभवी विद्वान् ने लिखा है—

प्राणायामात् पुष्टिर्गात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशो बलम् ।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मात्प्राणायाममाचरेत् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् प्राणायाम करने से मनुष्य का शरीर हृष्ट पुष्ट होता है। बुद्धि सूक्ष्मग्राहिणी एवं कुशाग्र बन जाती है। मनुष्य के तेज यश और बल की निरन्तर वृद्धि होती है। अतः प्रतिदिन प्राणायाम अवश्य करना चाहिये।

इस युग के सर्वमूर्धन्य योगिराज महर्षि दयानन्द जी इस विषय में योगदर्शन के एक सूत्र का भाष्य करते हुये निम्न प्रकार से लिखते हैं—

"योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

(योग २-२८)

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढता जाता है। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

इसी प्रकार महर्षि आगे लिखते हैं—

इस प्रकार प्राणायाम करें तो दोनों (प्राणायाम) की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है, कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इस से मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्ति होकर स्थिर बल पराक्रम जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

ऐसे ही मनुस्मृति का प्रमाण उद्धृत करते हुये महर्षि प्राणायाम का महत्व वर्णन करते हैं—

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥ ७०॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ७१ ॥
प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ७२ ॥
(मनु० अ० ६)

इस प्रकार ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् संन्यासी को उचित है कि ओंकार पूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे। परन्तु तीन से तो न्यून प्रायाणाम कभी न करे। यही संन्यासी का परम तप है। क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत होते हैं। इसलिए संन्यासी लोग नित्य प्रति प्राणायामों से आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोप धारणाओं से पाप, प्रत्याहार से संग दोप, ध्यान से अनीश्वर के गुणों अर्थात् हर्ष शोक और अविद्या आदि जीव के दोषों को भस्मीभूत करें। (सत्यार्थप्रकाश पंचम समुल्लास)

प्राणायाम से मन की एकाग्रता

हमारे मन में अनेक दिव्य शक्तियां विद्यमान हैं। किन्तु मन की चंचलता के कारण हम उनका उपयोग करने में असमर्थ हैं। संसार में सब से कठिन कार्य मन को वश में करना ही है। गुरु द्रोणाचार्य की परीक्षा में चिड़िया की आंख में तीर मारकर उत्तीर्ण होनेवाले, मछली की आंख को बाण की नोंक से बींधकर द्रौपदी स्वयंवर को जीतने वाले तथा निद्रा को वश में कर गुडाकेश की पदवी से विभूपित विश्वप्रसिद्ध योद्धा अर्जुन ने भी इस मन की चंचलता को अनुभव करते हुए योगिराज श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर कहा था—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

अर्थात् हे कृष्ण ! यह मन अतिबलवान्, दृढ़ प्रमाथि तथा अति चंचल है। इसे एकाग्र करना मैं वायु के निरोध के समान अति दुष्कर समझता हूँ।

यदि हमारा अधिकार मन पर होजावे तो निश्चितरूप से हम अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं। इसकी चंचलता को नष्ट कर एकाग्र करने का प्राणायाम मुख्य साधन है। मन और प्राण का अति निकट का सम्बध है। मन के निरोध से प्राण का निरोध तथा प्राण के निरोध से मन का निरोध अवश्यम्भावी है। इसीलिये किसी साधक विद्वान् ने लिखा है—

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत् ।।

अर्थात् प्राण के चंचल होने पर मन चंचल तथा प्राण के निरोध से मन भी निरुद्ध हो जाता है। प्राणायाम से योगी स्थिर-भाव को प्राप्त होता है, अतः प्राण का अवरोध करना चाहिये।

इसी प्रकार योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि मन निरोध के साधनों का वर्णन करते हुये लिखते हैं—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य। योग० १-३४।

वायु के बाहर निकालने और विशेषरूप से धारण करने रूप प्राणायाम से मन को साधक स्थिर करे। अर्थात् रेचक और पूरक प्राणायाम करने से मन चंचलता को छोड़ एकाग्र हो जाता है।

प्राण का फल निर्देश करते हुए योगदर्शनकार पुनः लिखते हैं—

धारणासु च योग्यता मनसः। योग २-५३।

अर्थात् प्राणायाम करने से मन एकाग्र हो धारणा के लिये
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
समर्थ बन जाता है।

सांख्य दर्शन के निर्माता महर्षि कपिल भी प्राणायाम से मन की एकाग्रता को अपने दर्शन में स्वीकार करते हैं—

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम्। सांख्य० ३—३३॥

अर्थात् रेचक पूरक प्राणायामों से मन की वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

इस प्रकार सब ऋषि महर्षि इस विषय में एक मत हैं - साधक महानुभाव स्वयं अनुभव करके लाभ उठावें।

प्राण अपान का स्वरूप

आज शिक्षित समाज में प्राण अपान के विषय में नितान्त भ्रम फैला हुआ है। लोगों की यह धारणा है कि जो वायु हम बाहर से भीतर शरीर में ग्रहण करते हैं वह प्राण तथा जो वायु बाहर निकलता है वह अपान है। यह भ्रम प्राण अपान को श्वास प्रश्वास का पर्यायवाची मानकर ही हुआ है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्राण अपान का स्वरूप इसके सर्वथा भिन्न है। महर्षि दयानन्द जी ने भी अपने ग्रथों में प्राचीन मान्यता को प्रामाणिक मानकर जो श्वास बाहर निकलता है उसकी संज्ञा "प्राण" तथा जो वायु बाहर से भीतर लिया जाता है उसका नाम "अपान" स्वीकार किया है।

कितने ही पुस्तक प्रकाशक महानुभाव महर्षि के मन्तव्य को न समझकर वर्तमान काल की मिथ्या धारणा के अनुसार सत्यार्थ-प्रकाश आदि ऋषि ग्रन्थों में परिवर्तन करने का अक्षम्य अपराध कर बैठते हैं। प्राण अपान के विषय में महर्षि का मन्तव्य जानने के लिये उनके ग्रन्थों के उद्धरण यहां देना उपयुक्त होगा।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि वैशेषिकदर्शन के सूत्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं—"(प्राण) भीतर से वायु को निकालना, (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना।" (तृतीय समुल्लास)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी प्रकार "प्राणमय कोश" का विवेचन करते हुये महर्षि अन्य स्थान पर लिखते हैं—"प्राणमय" जिसमें प्राण अर्थात् जो वायु भीतर से बाहर, "अपान" जो बाहर से भीतर जाता —
(नवम समु०)

प्राण अपान का स्वरूप बताते हुए महर्षि यजुर्वेद में निम्न मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं—

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा, चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा। यजु० २२–२३॥

पदार्थ–(प्राणाय) य आभ्यान्तराद् बहिर्निःसरति (अपानाय) यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति.....

आर्यभाषा—(प्राणाय) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है... (अपनाय) जो बाहर से भीतर को जाता..... .....।

इसी प्रकार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में अथर्ववेद का मन्त्र उद्धृत करते हुए लिखते हैं—

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च।
प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च॥

(प्राणश्चापानश्च) प्राणायामरीत्या प्राणापानयोः शुद्धिबले कार्ये। शरीराद्बाह्यदेशं यो वायुर्गच्छति स "प्राणः", बाह्यदेशाच्छरीरं प्रविशति स वायुरपानः"।

(प्राणश्चापानश्च) जो वायु भीतर से बाहर आता है उस को "प्राण" और जो बाहर से भीतर जाता है उसको "अपान" कहते हैं। (वेदोक्तधर्मवि०)

प्राणायाम के विषय में अन्य ऋषि महर्षियों का भी यही मन्तव्य है, यथा महर्षि पाणिनि जो अपने वर्णोच्चारण शिक्षा ग्रंथ में लिखते हैं—नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्नुर आदीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विचार्यते।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महर्षि दयानन्द इस सन्दर्भ का अर्थ आर्यभाषा में इस प्रकार करते हैं—जो ऊपर को श्वास निकलता है उसको प्राण कहते हैं, जो आत्मा के उच्चारण की इच्छा से विचारपूर्वक नाभिदेश से प्रेरणा किया प्राणवायु ऊपर को उठता हुआ कंठ आदि स्थानों में से किसी स्थान में उत्तम यत्न के साथ विचारा जाता है।

प्राणापान का वर्णन वाचस्पत्य कोश में भी इसी प्रकार लिखा है—यद्वै पुरुषः प्राणिति मुखनासिकाभ्यां वायुं बहिर्निस्सारयति स प्राणाख्यो वायुर्वायुवृत्तिविशेषः। यदपानित्यपश्यमिति ताभ्यामेव मुखनासिकाभ्यां अन्तराकर्षति सोऽपानाख्यो वृत्तिरिति।

इसी प्रकार अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर प्राणापान का यही स्वरूप वर्णित है।

इति प्रथमोऽध्यायः।

मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प

(ले० स्वामी आत्मानन्द जी महाराज)

यह ग्रन्थ योगमार्ग के पथिकों और विद्यार्थियों तथा मनोवैज्ञानिकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसमें मन के विषय में बहुत खोलकर लिखा गया है। मन तथा इन्द्रियों को किस प्रकार वश में किया जाये? इसके लिये अनेक साधन व उपाय बतलाये गए हैं। मूल्य ५-००

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय अध्याय

प्राणायाम का स्वरूप

इस उपस्थित अध्याय में प्राणायाम का स्वरूप एवं शरीर की उन्नति में प्राणायाम किस प्रकार सहायक है इसकी विवेचना करनी है। प्राणायाम योगांगों में चौथा अंग है। योगदर्शन में इसे समाधि की सिद्धि में बहिरंग साधन माना गया है। प्राणायाम का स्वरूप प्रकट करते हुए महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन में लिखते हैं—

"तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

(योग २-०९)

(तस्मिन्सति) उस आसन के सिद्ध हो जाने पर (श्वास-प्रश्वासयोः) श्वास-प्रश्वासों की (गतिविच्छेदः) गति का बन्द होना (प्राणायामः) प्राणायाम है।

जो वायु हम बाहर से भीतर ग्रहण करते हैं उसे श्वास तथा जो भीतर से बाहर छोड़ते हैं उसे प्रश्वास कहते हैं। आसन का सम्यक् प्रकार से अभ्यास करने के पश्चात् इन श्वास-प्रश्वासों की गति को रीति विशेष के अनुसार रोकने को प्राणायाम कहते हैं।

यहां पर श्वास प्रश्वास की गतिविच्छेद से तात्पर्य यह है कि श्वास को भीतर ले जाकर भीतर ही यथाशक्ति रोकना, तथा प्रश्वास को बाहर ही यथाशक्ति रोकने का यत्न करना। प्राणायाम शब्द (प्राणानामायामः) प्राण+आयाम इन दो शब्दों के संयोग से बना है, प्राण का अर्थ श्वास प्रश्वास तथा आयाम का अर्थ फैलाना या विस्तार करना है। अर्थात् शनैः शनैः अभ्यास द्वारा श्वास प्रश्वास का निग्रह करके उनको रोकने की अवधि बढ़ाना ही प्राणायाम है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शारीरिकोन्नति का साधन प्राणायाम

"प्राणो वै बलम्" के अनुसार शरीर का बल बढ़ाने में प्राण मुख्य साधन है। प्राणायाम के अभ्यास से एक दुर्बल एवं निर्वीर्य मनुष्य भी सशक्त तथा तेजस्वी बन सकता है। इतिहास में इसके अनेक प्रमाण उपस्थित हैं, रावण की सभा में अंगद के द्वारा भूमि में पैर जमाकर सब राक्षसों को लज्जित करने में यह प्राणायाम ही कारण था। महर्षि दयानन्द जी ने भी प्राणायाम के ही अभ्यास से अतुल शारीरिक बल का संग्रह किया था। उनके जीवन में अनेक घटनाएं आश्चर्यजनक देखने में आती हैं। मनों भार से लदी हुई कीचड़ में धंसी हुई दो बैलों से न निकलने वाली गाड़ी को सहज में ही निकालकर कीचड़ से बाहर कर देना प्राणायाम द्वारा ही सम्भव था। परस्पर टकराते हुए दो भयंकर सांडों को सींग पकड़कर पीछे धकेल देना। भागती हुई घोड़ा बग्गी को पीछे से पकड़ कर रोक देना और सैकड़ों वरिष्ठ पहलवानों की सभा में हाथ को ऊपर करके शक्ति परीक्षण की चेतावनी देना, कर्णसिंह को हाथ पकड़ कर मूर्च्छित कर देना, अपनी गोली कौपीन से जल निचोड़ कर पहलवानों की परीक्षा करना और इसी प्रकार अन्य अनेक अवसरों पर अपने शारीरिक बल से लोगों को आश्चर्यचकित कर देना आदि सब इस प्राणायाम का ही प्रताप था। वे नित्य प्रति बहुत प्रातःकाल ही उठकर ३-४ घण्टे तक प्राणायाम किया करते थे। प्राणायाम के कारण उनका शरीर वज्रसदृश्य बन चुका था। बड़े-बड़े पहलवान पैर दबाने के व्याज से पैरों का स्पर्श कर और ऐसी उनके शरीर की अद्भुत कठोरता को देख आश्चर्यचकित हो उठते थे।

प्रो० राममूर्ति के लोकप्रसिद्ध बल का रहस्य भी यह प्राणायाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही था। प्रो० राममूर्ति इस विषय में स्वयं लिखते हैं कि बाल्यावस्था में शरीर पर तपेदिक के लक्षण दिखाई देने लगे थे। किन्तु ब्रह्मचर्य, व्यायाम और प्राणायाम के विशेष अभ्यास से मैं शारीरिक बल में विश्वविजेता बनने में सफल हुआ। इसी प्राणायाम से प्रो० राममूर्ति ने एक ही मुक्के में विदेशी पहलवान को मृत्यु का ग्रास बना दिया था। मोटी-मोटी जंजीरों को कच्चे सूत के धागे के समान वे अनायास ही तोड़ दिया करते थे। सैकड़ों मन के पत्थर को छाती पर रखकर तुड़वाना तथा हाथी को अपनी छाती पर चढ़ाना, दो-दो मोटरों को एक साथ रोककर उन्होंने प्राणायाम की धाक देश-विदेश में सब जगह बैठा दी थी। आज देश का स्वास्थ्य पतनोन्मुख है यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश में फिर से बलिष्ठ स्त्री पुरुष हों तो हमें अपनी दिनचर्या में प्राणायाम को स्थान देना होगा। बिना प्राणायाम के हम आरोग्य एवं बल प्राप्ति की दिशा में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। प्राणायाम से शारीरिक उन्नति किस प्रकार होती है इसे जानने के लिये एक दृष्टि शरीर के अन्दर होनेवाले अनिच्छित कार्यों में से हृदय और फेफड़ों के कार्यों पर डालनी चाहिये।

हृदय

रक्तपरिचालक यन्त्र का नाम हृदय है। यह अंग अनैच्छिक मांस से निर्मित है और दोनों फुफ्फुसों (फेफड़ों) के बीच में वक्ष के भीतर रहता है। जवान मनुष्य का हृदय कोई ४॥ इंच लम्बा ३॥ इंच चौड़ा और २॥ इंच मोटा होता है और उसका भार ३॥ छटांक के लगभग होता है।

किसी मनुष्य का हृदय, आकार, परिमाणादि में उसकी बन्द मुट्ठी से बहुत कुछ मिलता है। हृदय का अधिक अंश मध्यरेखा के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाईं ओर अवस्थित है और उसके दाहिनी ओर दाहिना और बाईं ओर बांयां फुप्फुस रहता है। हृदय मांस से निर्मित एक कोष्ठ है जिसके भीतर रक्त भरा रहता है। इसके अन्दर चार भिन्न-भिन्न कोठरियां होती हैं। जिन्हें (१) दाहिना ग्राहक कोष्ठ, (२) दाहिना क्षेपक कोष्ठ, (३) बांयां ग्राहक कोष्ठ, (४) बांयां क्षेपक कोष्ठ कहते हैं।

हृदय कभी एक जैसा नहीं रहता। वह कभी सिकुड़ता है और कभी फैलता है। हृदय से दो प्रकार की नाड़ियों का सम्बन्ध होता है जो नाड़ियां शरीर से दूषित रक्त को हृदय में वापिस लाती हैं उन्हें शिरायें कहते हैं तथा जिनमें शुद्ध रक्त शरीर के पोषण के लिए हृदय से जाता है उन्हें धमनियां कहते हैं। शरीर से शिराओं द्वारा आये हुए अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिये फुप्फुसों में भेजना तथा फुप्फुसों से आये हुए शुद्ध रक्त को शरीर में भेजना ही हृदय का कार्य है। हृदय निरन्तर अपने कार्यों में लगा रहता है। मनुष्य के शरीर में कुल रक्त का भार शरीर के भार के बीसवें अंश के लगभग होता है। जिस मनुष्य का भार १ मन २० सेर है उसके शरीर में ३ सेर के लगभग रक्त होता है। हृदय के सिकुड़ने को आंकुचन या संकोच कहते हैं और फैलकर पूर्वदशा को प्राप्त होने को प्रसार। हृदय इस संकोच और प्रसार के द्वारा रक्त को ग्रहण करता है और आगे धकेलता है। एक मिनट में ७२ वार हृदय यह संकोच और प्रसार की क्रिया करता है। इस प्रकार २४ घण्टे में २५२ मन रक्त हृदय से शुद्ध होने के लिए फुप्फुसों में जाता और इतना ही फुप्फुसों में शुद्ध होकर हृदय में वापिस लौट जाता है। जब हृदय संकोच करता है तो वह रक्त को बड़े वेग से धमनियों में ढ़केलता है और प्रसार से शिराओं द्वारा रक्त को ग्रहण करता है। इस संकोच विकास से एक शब्द उत्पन्न होता है जो लूब-डप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
लूब्र-डप लूब-डप जैसा सुनाई पड़ता है।

फुफुप्स या फेफड़े

फुप्फुस दो होते हैं। वे वक्ष (छाती) में हृदय के दाहिनी और बाईं ओर रहते हैं। दाहिना फुप्फुस बायें की अपेक्षा अधिक चौड़ा और भारी होता है। मनुष्य के फुप्फुसों का भार एक सेर के लगभग होता है। स्त्रियों में इससे थोड़ा कम होता है। फुप्फुसों में श्वास नासिका द्वारा श्वासप्रणाली में होता हुआ पहुँचता है। फुप्फुसों के अनेक छोटे-छोटे अंश होते हैं जो परस्पर सौत्रिक तन्तुओं के द्वारा बन्धे रहते हैं जिन्हें वायु मन्दिर कहा जाता है। फुप्फुसों का कार्य श्वास प्रश्वास क्रिया का सम्पादन करना है। ये श्वास लेने पर फैल जाते हैं और प्रश्वास अर्थात् वायु के वाहर निकालने पर अपनी पूर्व अवस्था में हो जाते हैं। प्रश्वास के पश्चात् भी फुप्फुसों में वायु भरा रहता है। साधारणतः स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में १६ से २० तक श्वास लेता है। बचपन में यह संख्या अधिक होती है। रोग में श्वास की संख्या घट जाती है। फुप्फुस निरन्तर श्वास-प्रश्वास क्रिया से रक्त की शुद्धि करते हैं। यह हम पूर्व लिख चुके हैं कि फुप्फुस स्पंज की भांति असंख्य छोटे-छोटे वायु मन्दिरों का समुदाय है। लम्बाई चौड़ाई में फैला देने से फेफड़ा १४००० वर्ग फिट स्थान घेरता है। ये वायु मन्दिर वक्षोदर, मध्यस्थ पेशी की चाल से खुलते और बन्द होते रहते हैं। जब ये वायु मन्दिर खुलते हैं, तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास के द्वारा लिया हुआ वायु उन्हें भर देते हैं। रक्त और वायु के मध्य एक अति पतली झिल्ली होती है। प्रकृति का एक विलक्षण नियम उसमें काम करता है। उस नियम के वशीभूत होने से जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह दूसरे से खींच लेता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। शुद्ध वायु से जीवनीय तत्त्व (ओषजन) रक्त में मिल जाते हैं और रक्त में संचित दूषित तत्त्व वायु में मिल जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध हुआ रक्त धमनियों द्वारा शरीर में पहुँच जाता है। और अशुद्ध हुई वायु प्रश्वास के द्वारा बाहर निकल जाती है। यह कार्य प्रतिक्षण हुआ करता है।

फेफड़े में शुद्ध वायु न पहुँचने का परिणाम

अस्तु, अब विचारणीय बात यह है कि यदि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में जावे परन्तु श्वास द्वारा पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुँचे या सब वायु मन्दिरों में जहां रक्त पहुंच चुका है शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा ?

फेफड़े के मुख्यतया तीन भाग हैं (१) ऊपरी भाग जो प्रायः गर्दन तक है। (२) मध्यभाग जो दोनों ओर हृदय के इधर-उधर है। (३) निम्न भाग जो वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के ऊपर दोनों ओर है। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है वह पूर्ण श्वास नहीं होता इसीलिये फेफड़े के सब भागों अथवा सब भागों के समस्त वायु मन्दिरों में नहीं पहुंचतां तो ऊपरी भाग फेफड़े का रोगी होना प्रारम्भ हो जाता है।

इसी प्रकार फेफड़ों के मध्य और निम्न भागों के रोगी हो जाने से खाँसी-श्वास-निमोनिया और जीर्ण ज्वरादि अनेक रोग जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं, होने लगते हैं। इस प्रकार पर्याप्त वायु फेफड़ों में न पहुंचने से जहां एक ओर फेफड़ों से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं तो दूसरी ओर रक्त शुद्ध नहीं होने पाता और यह बिना शुद्ध हुआ अशुद्ध रक्त ही हृदय में लौटकर वहां से समस्त शरीर में धमनियों के द्वारा फैल जाता है। बार-बार इस प्रकार दूषित रक्त के शरीर में फैलने से मामूली खाज से लेकर कुष्ठ रोग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
तक हो जाया करते हैं। शरीर में उत्साह-कान्ति स्फूर्ति का नितान्त अभाव हो जाता है। शरीर-मन-मस्तिष्क की सारी शक्तियां मन्द पड़ जाती हैं और मनुष्य अनेक भयंकर व्याधियों से पीड़ित हो साक्षात् नरक का अनुभव करता है।

प्राणायाम का महत्त्व

ऊपर हमने हृदय फुफ्फुस आदि-शरीर के अंगों का वर्णन इसीलिये किया कि हम श्वास संस्थान के कार्य और महत्त्व को समझ सकें। हमारी ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि सब अध्यात्मजगत् के तत्त्वों का निर्माण रक्त से ही होता है। रक्त से ही मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र यावत् धातुएं बनती हैं। रक्त जितना शुद्ध पवित्र होगा उतना ही शरीर के अन्य अंग प्रत्यंगों का निर्माण भी ठीक रूप में हो सकेगा। रक्त को शुद्ध तथा जीवनीय तत्त्वों से परिपूर्ण करने का कार्य फुफ्फुसों का है जिसे वह श्वास-प्रश्वासों द्वारा सम्पादित करता है। ऐसी अवस्था में प्राणायाम का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। हम पूरक प्राणायाम द्वारा विशुद्ध वायु अधिक परिमाण में फुफ्फुसों में पहुँचा सकते हैं जो कि अपने दबाव के कारण फुफ्फुसों में स्थित सूक्ष्म से सूक्ष्म वायु मन्दिरों में पहुँचकर रक्त को शुद्ध कर सके, तथा आभ्यन्तर कुम्भक के द्वारा फेफड़े की धारणशक्ति को अधिकाधिक बढ़ाकर उसे सबल बना सकते हैं तथा वेगपूर्वक रेचक प्राणायाम करके फुफ्फुसों में स्थित सम्पूर्ण दूषित वायु को बाहर फेंक सकते हैं। इस प्रकार रेचक और पूरक की क्रिया से हम पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करके सुखी हो सकते हैं।

हमने यह प्राणायाम के स्थूल कार्य का वर्णन किया जिसे आधुनिक शरीरशास्त्रज्ञ भी स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राणायाम का अति महत्त्वपूर्ण कार्य अन्य भी है। जो वायु हम नासिका द्वारा अन्दर लेते या बाहर निकालते हैं केवल उसी का नाम प्राण नहीं है। प्राणवहा नाड़ियां शरीर के प्रत्येक अंग में यहां तक की त्वचा के भी प्रत्येक अणु में फैली हुई हैं। इन सब नाड़ियों में प्रतिक्षण प्राणदेव परिक्रमा करते हैं। प्राणवाहक नाड़ियां रक्तवाहक नाड़ियों के समान सच्छिद्र नहीं हैं अपितु ठोस हैं। इनके आभ्यन्तर तथा बाहर के अवयवों से होता हुआ प्राण इस प्रकार गति करता है जैसे कि "ब्लाटिंग पेपर" में पानी। इन्हीं को प्राणसूत्र कहते हैं। गति और ज्ञान इन दोनों प्रकार के कार्यों का सम्पादन प्राण और देव मन इन सूत्रों द्वारा करते हैं। प्राणायाम करने से इन सभी प्राणसूत्रों को विशेष बल मिलता है। जिससे सम्पूर्ण शरीर में स्फूर्ति और उत्साह का संचार हो जाता है।

प्राणायाम करते समय "मूलाधार का संकोच" नामक क्रिया विशेष ध्यान से करनी होती है। जिसका वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे। मूलाधार के संकोच से प्राण की ऊर्ध्व गति होकर मस्तिष्क में स्थिर हो जाता है जिस से मन अनायास एकाग्र होकर साधक को आनन्दित कर देता है। इस प्रकार प्राणायाम करने से अनेक अपूर्व लाभ होते हैं।

दीर्घायु का साधन प्राणायाम

प्राणियों की आयु को श्वास प्रश्वासों में तो विभक्त नहीं माना जा सकता, किन्तु जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये नियमपूर्वक प्राणायाम करते हैं वे जहां शरीर मन आदि से नीरोग रहते हैं वहां उनकी आयु में भी वृद्धि हो जाती है। प्राणायाम के अभ्यास से मनुष्य के फुफ्फुस बलवान हो जाते हैं श्वास प्रश्वास की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गति गम्भीर होने से आयु क्षीण नहीं होती। उनके श्वास प्रश्वासों की संख्या बहुत कम हो जाती है। इसी कारण ऋषि महर्षि तथा संयमी लोग दीर्घायु होते हैं और उनकी अपेक्षा चरित्रहीन संयम-रहित जीवन बितानेवाले लोग अति अल्पायु होते हैं। जिस समय हमारे देश में इस प्राणायाम विद्या का प्रचार था तब लोगों की आयु का माध्यम शत वर्ष था। रोग प्रायः नहीं होते थे। मृत्यु विना इच्छा के नहीं आती थी। महाभारत में भीष्म पितामह कई मास तक मृत्यु से संघर्ष करते रहे और फिर अपनी इच्छानुसार प्राणविसर्जन किये। श्वासों के साथ आयु का घनिष्ठ सम्बन्ध है यह निम्न विवरण तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

श्वासोपरि प्राणियों की आयु

(प्राणी)	(प्रति मिनट श्वास)	(आयु)
शशक	३८	८ वर्ष
कबूतर	३६	८ वर्ष
बन्दर	३२	२१ वर्ष
कुत्ता	२९	१४ ,,
बकरा	२४	१३ ,,
बिलाव	२५	१३ ,,
घोड़ा	१९	५० ,,
मनुष्य	१५	१०० ,,
हाथी	१२	१०० ,,
सर्प	८	१२० ,,
कच्छुआ	५	१५० ,,

द्रष्टव्य—यह श्वास संख्या स्वस्थ प्राणियों की है रोगी और दुर्व्यसनियों की नहीं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्वास सदैव नाक से ही लें

वैसे भगवान् की ओर से मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त है कि वह नाक और मुंह दोनों से ही श्वास ले सकता है, किन्तु थोड़ा गम्भीरता से देखने पर यही परिणाम निकलता है कि श्वास लेने के लिये प्रकृति ने नासिका का ही निर्माण किया है। आज अनेक लोग और विशेषकर सभ्य कहे जानेवाले मनुष्यों में मुँह में से श्वास लेने का दुर्व्यसन दिखाई देता है। जिसका परिणाम अतिहानिप्रद रहता है। कारण यह है कि मुख में ऐसा कोई साधन नहीं जो वायु का संशोधन कर फुफ्फुसों के योग्य बना सके। इस कारण दूषित परमाणुओं सहित वायु फेफड़ों में पहुँच कर अनेक संक्रामक रोगों को पैदा कर देता है। मुँह से श्वास लेने का मार्ग छोटा होने से भी वायु अति शीत अथवा अति उष्ण रूप से ही फेफड़ों में पहुँच जाता है। जिससे सर्दी जुकाम-खाँसी आदि अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। इसके विपरीत नासिका से श्वास लेना अति उपयोगी है। नासिका में भगवान् ने इस प्रकार के साधन संयुक्त किये हैं जो फुफ्फुसों को हानि पहुंचाने वाले कीटाणुओं को मध्य में ही रोक लेते हैं। फेफड़े तक पहुँचते-पहुँचने वायु उपयुक्त शीतोष्ण बन जाता है। जो लोग प्राणायाम के मार्ग पर बढ़ना चाहते हैं उन्हें सर्वप्रथम नाक से श्वास लेने का स्वभाव बनाना चाहिये। यह देखने में सामान्य सी बात प्रतीत होती है किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।

इति द्वितीयोऽध्यायः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीय अध्याय

प्राणायाम की तैयारी

प्राणायाम करने से पूर्व उस की तैयारी करना परमावश्यक है। तैयारी से अभिप्राय है—अपने आपको प्राणायाम के योग्य बनाना।

जो साधक स्वयं को प्राणायाम के अधिकारी नहीं बनाते वे अनुभवी गुरुओं के सानिध्य में रहते हुये भी यथेष्ट उन्नति से वंचित ही रहते हैं। अतः प्राणायाम के पथिकों को निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

प्राणायाम के प्रति आस्था

जो लोग प्राणायाम में सफल होना चाहते हैं उनका सर्वप्रथम यह कर्तव्य है कि वे अपने मन को प्राणायाम के गुणों से परिचित करा दे। जिस से प्राणायाम का विचार आते ही उसके मधुर परिणामों को विचार कर मन उछल उठे। प्राणायाम करने से पूर्व हमारे मन में यह विचार दृढ़ होना चाहिये कि अब हम एक जीवनदायिनी क्रिया को करने चल रहे हैं जिससे अनेक दिव्य शक्तियां प्राप्त होंगी। शरीर की सब धातुओं के मल भस्मीभूत हो जावेंगे। निराशा-दुर्बलता-निष्कर्मण्यता नाम को भी शेष न रहेंगी। सब प्रकार के रोगों की इतिश्री हो जावेगी। जीवन में उत्साह-पौरुष-साहस-शौर्य-पुरुषार्थ आदि शुभ गुणों का उदय होगा। इन्द्रियों की मलिनता एवं चंचलता नष्ट होकर परमपुरुषार्थ की सहयोगिनी बन जावेंगी। बुद्धि कुशाग्र होने से ज्ञान के अथाह सागर में इच्छानुसार विचरण हो सकेगा। सब प्रकार की ऋद्धिसिद्धियां चरण चूमेंगी, वीर्य की ऊर्ध्व गति होने से आत्मा वास्तविक रूप से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
शरीर का राजा बन सकेगा। संकीर्णता दूर होकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" का दिव्य सन्देश मन में स्फुरित हो उठेगा। अन्तःकरण के मल विक्षेप आवरण आदि सब दोष दूर होकर जीवन पवित्र एवं सफल हो जावेगा। इस प्रकार से अनेक शुभ गुणों का ध्यान करते हुए अति उत्साह-निष्ठा और श्रद्धा के साथ प्राणायाम करने बैठें। मन के अन्दर संशय अथवा विकल्प को थोड़ासा भी अवकाश न दें, इस प्रकार करने से शीघ्र ही यथेष्ट उन्नति सम्भव है।

प्राणायाम में आसनों की उपयोगिता

प्राणायाम तथा आसन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आसन की सिद्धि के पश्चात् ही साधक प्राणायाम में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है इसलिये योग दर्शन में महर्षि पतञ्जलि प्राणायाम का लक्षण करते हुये लिखते हैं—

"तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।
योग० २-४९॥

अर्थात् आसन के सिद्ध होने पर श्वास प्रश्वास की गति का रोकना प्राणायाम है। सूत्र में तस्मिन् सति पद विशेष ध्यान देने योग्य है। आचार्य इस पद से प्राणायाम के लिये आसन की विशेष उपयोगिता सिद्ध करना चाहते हैं। इसी कारण प्राणायाम से पूर्व यह आसन का विधान किया है। आसन की स्थिरता का सब से बड़ा लाभ यह है कि साधक को उपासना के विघ्न सर्दी-गर्मी-भूख-प्यास आदि द्वन्द्व दुःख नहीं पहुँचाते। इसीलिये योगसूत्रकार लिखते हैं— "ततो द्वन्द्वानभिघातः॥ योग० २-४७

अर्थात् जब आसन स्थिर हो जाता है तब उपासक को कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता और सरदी-गर्मी अधिक पीड़ा नहीं पहुँचाती।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवद् गीता में आसन के विषय में लिखा है —

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥२॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्याऽऽसने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥३॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥४॥

योगी एकान्त देश में बैठकर मन एकाग्र करे। परमेश्वर चिन्तन से अतिरिक्त अन्य विषयवासनाओं का चिन्तन न करे। निरन्तर एकरस ममतारहित होकर मन को परमेश्वर में लगावें । ॥१॥

ऐसे स्थान में कि जहां की भूमि, जल, वायु शुद्ध हो और जो न तो बहुत ऊंचा और न बहुत नीचा हो वहां नीचे कुच का आसन उसके ऊपर मृगछाला बिछा उस पर एकाग्र मन से चित्त और इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध करके निश्चल दृढ़ आसनपूर्वक स्वयं बैठकर अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये ध्यान योग से परमात्मा के चिन्तन में तत्पर होवे ॥२–३॥

धड़, रीड की हड्डी, शिर और गर्दन को अचल और सीधा धारण किये हुये अपनी नासिका के अग्रभाग में ध्यान ठहराकर स्थिर होकर बैठे और इधर-उधर किसी दिशा में दृष्टि न करे ॥४॥

प्राणायाम करने के लिये उपयुक्त आसन की जिज्ञासा में हमारा निवेदन है कि जिस आसन में सुखपूर्वक देर तक बैठा जा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
सके वही आसन उचित है। योग दर्शन में भी इसी को प्रधानता दी है यथा—"स्थिरसुखमासनम्" योग० २-४६॥

प्राणायाम का अभ्यास करने के लिये सिद्धासन सर्व श्रेष्ठासन है। सिद्धासन के अभ्यास से अन्य अनेक धातु सम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं। विधि इस प्रकार है—

समतल भूमि पर बैठकर बायें पैर की एडी अण्डकोष और गुदा इन्द्रिय के बीच में जो स्थान है उस पर लगाओ। यह वह स्थान है जहां से वीर्यवाहक नाड़ियां जाती हैं। दायें पैर की एडी मूत्र इन्द्रिय के ऊपर जहां बाल उगते हैं, लगाओ। दोनों पैरों के गट्टे मिले हुये हों। दोनों घुटने भूमि पर टिके हों। सिर-ग्रीवा मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) समरेखा में (सीधी) रहने चाहियें। ठोडी का झुकाव नीचे को करें वा कण्ठमूल में लगावें। दोनों हाथों को तान कर दोनों घुटनों पर रखें। शरीर सारा खिंचा हुआ होना चाहिये। छाती तनी हुई और आगे को उभरी हुई हो। दृष्टि नासिका के अग्रभाग अथवा भृकुटि में स्थिर करें। प्राणायाम के अभ्यास से पूर्व एक या दो घण्टे तक इस आसन में बैठने का अभ्यास करना चाहिये।

इस आसन के करने से पाचनशक्ति बढ़ती है। अतिसार, श्वास, कास, बहुमूत्र आदि रोग दूर होते हैं। हृदय बलवान् होता है। स्वप्नदोष, प्रमेह आदि धातुसम्बन्धी सब दोष नष्ट हो जाते हैं। मन एकाग्र एवं शान्त होकर वश में आजाता है। विषय लालसा कम होती है। वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिये इस का विशेष अभ्यास करना चाहिये। इसके अतिरिक्त शीर्षासन, पद्मासन, सर्वांगासन, हलासन, मयूरासन, पश्चिमोत्तानासन भी प्राणायाम के अभ्यासी के लिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष लाभदायक आसन हैं। इन आसनों के करने से नाड़ियों की शुद्धि होकर प्राणायाम में सफलता मिलती है। अभ्यासी का स्वास्थ्य ठीक रहता है। विशेष जानकारी के लिये मेरी बनाई हुई पुस्तक "व्यायाम सन्देश" पढ़ें।

प्राणायाम और बन्ध ज्ञान

प्राणायाम के अभ्यासी के लिये बन्धों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। बन्ध तीन होते हैं। (१) मूलबन्ध, (२) उड्डियानबन्ध, (३) जालन्धरबन्ध (कण्ठबन्ध)। इन तीनों को मिलाकर बन्धत्रय कहते हैं। तीनों ही बन्ध प्राणायाम मार्ग में अति लाभप्रद एवं परमोपयोगी हैं। तीनों की विधि यहां पृथक्-पृथक् दी जाती है।

मूलबन्ध

पद्मासन वा सिद्धासन पर बैठकर नाभि से नीचे उदर के भाग को पीछे सिकोड़ें तथा गुदा इन्द्रिय एवं मूत्र इन्द्रिय का ऊपर को संकोच करें। आप इसे दूसरी प्रकार से भलीभांति समझ सकते हैं, जब लघुशंका करने जाओ और मूत्रत्याग करते समय बीच में ही नाभि के नीचे के भाग को ऊपर की ओर खींचें तो इसके ऊपर संकोच से गुदा इन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय भी एक साथ खिचेंगी तथा मूत्र निकलना एकदम बन्द हो जावेगा तथा जब तक इस मूलाधार को ढीला न छोड़ेंगे तब तक एक बूंद मूत्र भी बाहर नहीं जा सकता। इस क्रिया को मूलबन्ध कहते हैं। सब प्रकार के प्राणायामों में इस बन्ध का लगा होना अत्यावश्यक है। यह मूलाधार संकोच ब्रह्मचारी का तो प्राण ही समझना चाहिये। इसके निरन्तर अभ्यास से सब प्रकार के वीर्यसम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं तथा वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। जिन लोगों को कुसंग आदि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
के कारण स्वप्नदोष आदि रोग हो गये हैं उनके लिये यह अति उत्तम प्रयोग है। जब आप कुछ मास प्राणायाम का अभ्यास करेंगे तथा मूलबन्ध को लगाने का ठीक अभ्यास हो जावेगा तब आप देखेंगे कि स्वप्नों और स्वप्नदोषों की संख्या घटती चली जावेगी। शनैः शनैः आप स्वप्नदोष से मुक्त हो जावेगे आपकी विजय होगी।

इसके अतिरिक्त मूलाधार के संकोच से कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है। तथा सुषुम्णा का मुख खुल जाता है। जिस से कुण्डलिनी इसमें प्रवेश कर जाती है, इस क्रिया से साधक के प्राणों की ऊर्ध्व गति होकर सुषुम्णा द्वारा मस्तिष्क में चले जाते हैं और वहां स्थिर होने से साधक को परमात्मा के दिव्य आनन्द की प्राप्ति होती है। इस विषय में स्वामी आत्मानन्द जी महाराज अपनी "सन्ध्या अष्टांग योग" पुस्तक में लिखते हैं—

कुण्डलिनी पेट में कौनसा अंग है और उसके जग जाने पर सुषुम्णा का मुख खुल जाने से क्या तात्पर्य है इस में मतभेद है। हां इतनी बात अवश्य है कि "कुण्डलिनी जागरण" नामक क्रिया के बाद सुषुम्णा मार्ग में प्राण बिना आयास के तीव्रता से मस्तिष्क की ओर चला जाता है और इससे प्रथम ऐसा नहीं होता था, बहुत सम्भव है कि सुषुम्णा का नीचे का भाग श्लेष्मा आदि मलों से आक्रान्त रहता हो और वही प्राण की ऊर्ध्वगति का प्रतिबन्धक रहता हो। (मूलबन्धादि) विशेष क्रियाओं द्वारा संशोधन हो जाने के बाद प्राणों का बन्ध हट जाता हो...। कुण्डलिनी का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो किन्तु यह तो निश्चित ही है कि मूलाधार के संकोच से प्राण की ऊर्ध्वगति होकर अध्यात्म आनन्द की प्राप्ति होती है।

उड्डियानबन्ध

पद्मासन या सिद्धासन लगाकर बैठ जावें तथा सम्पूर्ण श्वास

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
को एक बार में ही बाहर निकाल दें, उदर को पीछे की ओर खींचें, ऐसा करने से अंतड़िया शरीर के पिछले भाग में लग जाती हैं तब पेट के सब अवयवों में संकोच उत्पन्न हो जाता है इसी को उड्डियानबन्ध कहते हैं। उड्डियान का अर्थ उड़ना भी लगाया जाता है, क्योंकि जब इसका अभ्यास किया जाता है तो प्राण सुषुम्णानाडी से ऊपर उड़ जाता है। इसलिये इस बन्ध का नाम उड्डियान है।

इसका अभ्यास बाह्यकुम्भक के समय किया जाता है। प्राणायाम के समय इस बन्ध को बैठकर तथा व्यायाम के समय खड़ा हो के किया जा सकता है। इस बन्ध को ६ से ८ मिनट तक करना चाहिये। नौलि क्रिया की प्रारम्भिक क्रिया उड्डियान बन्ध ही है। नौलि क्रिया विशेषतया खड़े होकर की जाती है। लेकिन उड्डियान बन्ध बैठकर भी किया जाता है। ब्रह्मचर्य रक्षा में इस से बड़ी सहायता मिलती है। इस का अभ्यास करने से स्वास्थ्य शक्ति तेज और स्फूर्ति मिलती है। इसका अभ्यास नौलि क्रिया के साथ किया जाता है। यह अभ्यास आमाशय-अंतड़ी आदि के दोषों के लिये रामबाण है। पेट के सब रोगों से बचने के लिये उड्डियान बन्ध अचूक कवच है। इस क्रिया से उदर के सब अवयवों को यथावश्यक व्यायाम मिल जाता है। इससे बढ़कर इनके लिये और कोई क्रिया नहीं है। सभी प्रकार के व्यायामों में यह क्रिया अनुपम और सब से अधिक लाभकारी है। पेट और अन्तड़ियों के कठिन रोगों में जहाँ औषधियाँ व्यर्थ हो जाती हैं वहाँ यह क्रिया अति शीघ्र सफलता प्राप्त करती है। उदर की चर्बी को कम करने और वायु की निवृत्ति करने में यह अद्वितीय क्रिया है।

जालन्धरबन्ध

पद्मासन अथवा सिद्धासन से बैठकर आभ्यन्तर प्राणायाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करें, अर्थात् नासिका द्वारा वायु को अन्दर फेफड़ों में भरें। और फिर वहीं रोक लेवें, फिर गले को संकुचित करके ठुड्डी को छाती में लगा दें इसी को जालन्धर बन्ध कहते हैं। जब कुम्भक की अवधि पूरी हो जावे तब सिर ऊपर उठावें। सिर ग्रीवा और समस्त शरीर सीधा रहे और फिर श्वास को बाहर निकाल दें। आभ्यन्तर कुम्भक करते समय वायु ऊपर मस्तिष्क में चला जाता है जिसके कारण सिर में उष्णता, सिर दर्द, भारीपन आदि अनेक विकार हो जाते हैं किन्तु जालन्धर बन्ध को ठीक प्रकार से लगाने पर प्राण ऊपर नहीं जा सकता और किसी प्रकार के विकार की सम्भावना नहीं रहती।

मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध तथा उड्डियान बन्ध का पृथक्-पृथक् ऊपर विवेचन किया है। सिद्धासन पर बैठकर प्राणायाम करते समय इनका अभ्यास किया जाता है। इस के साथ ही प्राणायाम करने से विशेष लाभ होता। अतः इन का प्रयोग ध्यान से करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य एवं प्राणायाम

जो लोग प्राणायाम से पूर्ण लाभ प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें सर्वप्रथम ब्रह्मचार्य पालन के लिये दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिये। संयम के बिना कोई भी साधक इस मार्ग में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। पुस्तकों तथा व्याख्यानों में प्राणायाम के दिव्य आकर्षक गुणों का श्रवण कर अनेक व्यक्ति ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करते हुए प्राणायाम में परिश्रम करते हैं। "चौबे जी गये थे छब्बे जी बनने, दो पास से देकर दुब्बे जी रह गये" के अनुसार वे लाभ के स्थान पर अनेक भयंकर रोग क्रय कर लेते हैं। वास्तव में प्राणायाम और ब्रह्मचर्य का अविनाभाव सम्बन्ध है। जिस प्रकार ब्रह्मचर्य के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
बिना प्राणायाम में सफलता नहीं मिल सकती, उसी प्रकार प्राणायाम के अभाव में ब्रह्मचर्य मार्ग प्रशस्त होना भी संभव नहीं।

प्राणायाम करने से शरीर में एक प्रकार की उष्णता उत्पन्न होती है। जिससे जठराग्नि प्रदीप्त होकर उदरस्थ सभी विकास नष्ट हो जाते हैं, तथा शरीर की रस-रक्त-मांस मेदादि वीर्य पर्यन्त सब धातुओं के मल क्षीण होकर शरीर शुद्ध पवित्र हो जाता है। इसके विपरीत जिस असंयमी मनुष्य ने भोग विलास से अपने आपको निर्वीर्य बना लिया है, वह यदि प्राणायाम करता है तो उसके अन्दर उष्णता अधिक बढ़कर शरीर की धातुओं को सुखा देता है। जिस से शरीर दुर्बल रूक्ष एवं निस्तेज हो जाता है।

प्राणायाम के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य पालन की कितनी आवश्यकता है इसका एक प्रमाण महर्षि दयानन्द जी के जीवन-चरित्र में मिलता है—एक दिन एक ठाकुरप्रसाद सुनार दानापुर ने स्वामी जी के चरणों में निवेदन किया कि आप मुझे योग (प्राणायाम) की विधि बतलाइये। स्वामी जी ने उत्तर दिया—"एक विवाह और करलो तुम्हारा योग (प्राणायाम) पूर्ण हो जायेगा"। ठाकुरप्रसाद ने कुछ समय पूर्व पहली पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह किया था। अतः महर्षि ने उसे इस प्रकार का उपहासात्मक उत्तर दिया, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राणायाम के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य का दृढ़व्रती होना चाहिए।

वैसे तो प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में मनुष्य को अनभ्यास के कारण कठिनता अनुभव होती है, किन्तु प्राणायाम के प्रारम्भिक अभ्यास काल में साधक पर आलस्य-प्रमाद के तीव्र आक्रमण होते हैं, जिनसे पार होना ब्रह्मचर्य पालन से ही सम्भव है। इसी कारण भगवान् कृष्ण ने गीता में ठीक ही कहा है—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप्य इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यततः शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥

अर्थात्—संयम रहित आत्मावाले को योग प्राणायाम आदि कठिनता से प्राप्त होते हैं ऐसा मेरा निश्चय है। परन्तु यत्न करने वाले संयमी (ब्रह्मचारी) आत्मा को यत्न से प्राप्त हो सकते हैं। अतः जो सज्जन प्राणायाम के मार्ग पर चलना चाहें उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन विशेष निष्ठा से करना चाहिये।

प्राणायाम और भोजन

भोजन हमारे जीवन का मूल आधार है। भोजन की सात्त्विक मीमांसा के बिना हम किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर सकते, कारण, यह है कि शरीर-मन-मस्तिष्क तथा अन्य सब साधनभूत शरीर अवयव भोजन ही से निर्मित एवं विकसित होते हैं। सात्विक-राजसिक और तामसिक भेद से भोजन तीन भागों में विभक्त हो जाता है, प्राणायाम के अभ्यासी को शुद्ध सात्विक पौष्टिक तथा स्निग्ध आहार ही सदा सेवन करना चाहिए, और वह भी परिमित मात्रा में नियत समय पर देश काल एवं शरीर के बलाबल का विचार करते हुए लाभप्रद होता है।

आज हमारा भोजन दूषितप्रायः हो चुका है। प्रथम तो हमें यही ज्ञान नहीं कि भोजन स्वाद के लिये न होकर शरीररक्षा के निमित्त होता है। इसी कारण हम भोजन का चुनाव करते समय लाभ-हानि की अपेक्षा जिह्वा की लोलुपता को अधिक महत्व देते हैं। प्राणायाम के अभ्यासियों के लिये भोजन की चर्चा करते हुये अनुभवी साधक विद्वान् ने लिखा है—

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं धातुप्रपोषणम्।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात्—प्राणायाम के साधक योगी को शरीरपोषक, मधुर, स्निग्ध, शरीर की सब धातुओं को पुष्ट करनेवाला, रुचिकारक, प्रकृति अनुकूल भोजन करना चाहिये।

इसी प्रकार सात्विक भोजन का विधान करते हुये श्रीकृष्ण-चन्द्र जी गीता में कहते हैं—

आयुःसत्त्ववलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
(१७-८)

आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले, तथा रसीले, चिकने, स्थिर=देर तक ठहरनेवाले एवं हृदय को हितकर भोजन सत्त्वगुणी मनुष्यों को प्रिय होता है। अर्थात् जिस भोजन के सेवन से आयु, बल, वीर्य, आरोग्य आदि शुभ गुणों की वृद्धि हो, जो सरस चिकना—घृतादियुक्त चिरस्थायी और हृदय के लिये हितकर हो वह वह भोजन सात्विक है। कुछ सात्विक पदार्थ नीचे दिये जाते हैं।

सात्विक पदार्थ

गाय का घी, दूध, गेहूँ, जौ, चावल, मूंग, मोठ, उत्तम फल, पत्तों के शाक, काली तोरई, घीया (लौकी) आदि मधुर शीतल, स्निग्ध, सरस, शुद्ध, पवित्र और शीघ्र पचनेवाले तथा ओज एवं कान्तिप्रद पदार्थ हैं वे सब सात्विक हैं।

आजकल मनुष्यों के भोजन में सात्विकता का अभाव तथा राजसिक एवं तामसिक अंश की प्रधानता है। सभी लोग खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, दाहक, नमक, मिर्च-इमली तथा मसालों से युक्त भोजन करते हैं जिस के कारण रजोगुण की वृद्धि होकर प्रतिक्षण तृष्णा और चिन्ता की ज्वाला-मालाओं में मानव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अशान्त है। इस प्रकार के मनुष्य प्राणायाम में कभी भी सफल नहीं हो सकते अतः प्राणायाम के अभ्यासियों को सात्विक भोजन की मात्रा का भी ध्यान रखना आवश्यक है। अधिक मात्रा में खाया हुआ सात्विक भोजन दुःखदायक हो जाता है। गरिष्ठ और मलबद्ध करनेवाले आहार से भी साधक को दूर ही रहना चाहिये।

प्राणायाम और नियमित दिनचर्या

प्राणायाम की सफलता के लिये दिनचर्या का नियमित होना भी परम आवश्यक है। साधक का प्रत्येक क्षण निश्चित कार्यक्रमानुसार विभक्त होना चाहिये। प्रातःकाल जागरण से रात्री के शयन तक नियमित रूप से दिनचर्या अबाध रूप से चलनी चाहिये। इस प्रकार एक क्रम से लम्बे काल तक अभ्यास करने से मन तथा शरीर के अन्य अवयवों को समयानुसार कार्य करने का अभ्यास बन जाता है। मन सब विकल्पों से रहित अतिशांत रहता है। सायंकाल निश्चित समय पर शयन करने से प्रातः ठीक समय पर निद्रा पूरी हो जाती है, एवं थोड़े ही समय में शरीर की सब श्रान्ति दूर हो जाती है। शौच आदि मल विसर्जन का समय नियत होने से हमारा अनैच्छिक मांस उचित समय पर मल छोड़ता है। कब्ज आदि रोगों से अनायास ही मुक्ति मिल जाती है। भोजन का समय निश्चित होने से क्षुधा भी ठीक लगती है और भोजन का परिपाक भी उचित रीति से होता है। शरीर के सब अंगों की व्यवस्था ठीक रहने से प्राणायाम करने में प्रतिदिन मन उत्साहित रहता है। मन स्वतः ही प्राणायाम में लग जाता है। इस प्रकार नियमित दिनचर्या से शीघ्र ही उन्नति हो जाती है।

प्राणायाम के अभ्यासियों के लिये कुछ बातें ऊपर लिखी जा चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आजकल अनेक लोग हठ योग के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आडम्बर को प्रधान मानकर अनेक प्रकार की मुद्रा बस्ति धौति त्राटक आदि क्रियाओं का विधान करते हैं। किन्तु ये सब क्रियाएं प्राणायाम के मार्ग में साधक होने के स्थान में बाधक ही हैं। कितने ही मनुष्यों को मैं जानता हूँ कि जिन्होंने मुद्राओं और बस्ति आदि क्रियाओं से अपने आप को सदा के लिये रोगी बना लिया है। जो साधक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये शुद्ध सात्विक आहार करते हैं उन्हें इन अस्वाभाविक साधनों की कोई आवश्यकता ही नहीं क्योंकि प्राणायाम करने से सब मलों का निराकरण हो जाता है। अतः इन बखेड़ों से दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

इस विषय में दिव्य योगी महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने पूना के ग्यारहवें व्याख्यान में इस प्रकार विधान किया है—

अब हठ योग का विधान वर्णन किया जाता है। हठ योग में बस्ति उसे कहते हैं कि गुदा के रास्ते से पानी चढ़ाकर सफाई करना। टकटकी लगाकर इस प्रकार देखने को जिस में पलक भी न झपके त्राटक कहते हैं। नासिका में सूत्र डालकर मुख से निकालने को नेति कहते हैं। मलमल का चार अँगुल चौड़ा और १६ से लेकर ८० हाथ तक लम्बा कपड़ा मुख के रास्ते पेट में लेकर फिर बाहर निकालने को धौति कहते हैं। यह बाजीगरी का खेल है इन सब से कब निवृत्ति पाकर योग प्राप्त कर सकते होंगे ? यह हठवाले ही जानें कि इन कामों में बिमारियां पैदा होती हैं।

महर्षि के उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट सिद्ध है कि ये बस्ति आदि हठ योग की क्रियाएं क्रीड़ामात्र हैं, इनका योग और प्राणायाम से कोई निकट का सम्बन्ध नहीं, इन के करने से साधक योगी न बनकर रोगी तो निश्चित ही बन जाता है। अतः इन से दूर ही रहना चाहिये।

इति तृतीयोऽध्यायः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्थ अध्याय

प्राणायाम विधि एवं भेद

प्राचीन काल में भारतवर्ष भौतिक ऐश्वर्य के साथ अध्यात्म विद्या में भी उन्नति के शिखर पर विराजमान था। प्राणायाम विद्या यहां मनुष्यमात्र तक फैली हुई थी। ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरुओं की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती थी। प्राणायाम के मर्म को जाननेवाले मनीषी विद्वानों के स्थान-स्थान पर गुरुकुलादि आश्रम बने हुए थे, जिनमें सहस्रों की संख्या में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी लोग प्राणायामादि योगांगों का क्रियात्मक अभ्यास करते थे। संन्यासी महात्मा ग्राम-ग्राम में भ्रमण करके प्राणायाम के गम्भीर रहस्यों का विवेचन निष्काम भाव से मनुष्य मात्र के हितार्थ करते थे। उस समय भारतवर्ष सम्पूर्ण विश्व का गुरु था। प्राणायाम विद्या के कारण सभी क्षेत्रों में तेजस्विता का एकछत्र साम्राज्य था। इसी कारण पवित्र आर्यावर्त में सभी स्त्री-पुरुष (आबाल वृद्ध वनिता) श्रद्धा पूर्वक प्राणायाम नित्यप्रति करते थे।

शनैः शनैः प्रमाद आलस्य के प्रभाव से तथा सत्कर्मों के ह्रास से वैदिक ज्ञान का भानु अस्ताचल को पहुँच गया। जिसके परिणाम स्वरूप तत्त्ववेत्ताओं की सन्तान आज प्राणविद्या से नितान्त शून्य है। सामान्य जनता ही नहीं अपितु बड़े-बड़े पंडितंमन्य भी प्राणायाम विद्या से कोरे हैं इसलिए सर्वत्र अन्धपरम्परा चल रही है। लोग प्राणायाम के नाम से भयभीत हैं और इसे केवल योगियों के उपयोग की ही वस्तु मानते हैं। कितने ही पाखण्डी योग के नाम से आडम्बर करके लोगों से धन हरण कर महापातकी बन रहे हैं। चेले चेलियों को बढ़ाकर सम्प्रदाय का रूप दे अति निन्दित कार्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर रहे हैं। ऐसी अवस्था देख ऋषियों के सन्देश को मनुष्यमात्र तक पहुंचाने की भावना से यहाँ शास्त्रोक्त प्राणायाम की विधि लिखी जा रही है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज इस युग के सर्वमान्य योगिराज एवं आप्त पुरुष हुए हैं। महाभारत काल से आज तक इन ५ हजार वर्षों में उनके समान कोई योगी नहीं हुआ। आजकल के योगी और महात्मा कहलानेवाले जन तो उनके पैरों की धूल भी नहीं। उन्होंने अपने जीवन में पूर्णरूपेण योगतत्त्वों का साक्षात्कार किया था। उन द्वारा उपदिष्ट विधि सर्वथा वेदादि शास्त्रोक्त होने से पाठकों के कल्याणार्थ यहां उद्धृत करता हूँ—

"प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य। योग० १—३४

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचे रखे जब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में "ओ३म्" इसका जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। एक "बाह्य विषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोके। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही बार जहाँ का तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसा एक दूसरे के विरुद्ध किया करें।

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

मुख्य रूप से प्राणायाम के चार भेद होते हैं। महर्षि ने ऊपर प्राणायाम की पूर्ण विधि लिख दी है। इसका आधार योग दर्शन के "बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः" तथा "बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः" (योग २-५०। ५१) ये दो सूत्र हैं। इन दोनों सूत्रों का भाष्य ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासनाविषय में संस्कृत तथा आर्य दोनों भाषाओं में महर्षि ने इस प्रकार किया है—

"यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभाव स बाह्यः। यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः। तृतीयः स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः सकृत् प्रयत्नाद् भवति। यथा तप्ते न्यस्तमुपले जलं सर्वतः संकोचमापद्यते तथा द्वयोर्युगपद् गत्यभाव इति।

बालबुद्धिभिरङ्गुल्यंगुष्ठाभ्यां नासिकाछिद्रमवरुध्य यः प्राणायामः क्रियते स खलु शिष्टैस्त्याज्य एवास्ति। किन्त्वत्र बाह्याभ्यन्तरांगेषु शान्तिशैथिल्ये सम्पाद्य, सर्वांगेषु यथावत् स्थितेषु सत्सु बाह्यदेशं गतं प्राणं तत्रैव यथाशक्ति संसाध्य प्रथमो बाह्याख्यः प्राणायामः कर्तव्यः। तथोपासकैर्यो बाह्याद्देशादन्तः प्रविशति तस्याभ्यन्तर एव यथाशक्ति निरोधः क्रियते। स आभ्यन्तरो द्वितीयः सेवनीयः। एवं बाह्याभ्यान्ताराभ्यामनुष्ठिताभ्यां द्वाभ्यां कदाचिदुभयोर्युगपत्संरोधो यः क्रियते स स्तम्भवृत्तिस्तृतीयः प्राणायामोऽभ्यसनीयः। योग २-५०॥

इसी प्रकार अगले सूत्र का भाष्य महर्षि करते हैं—

"यः प्राणायाम उभयाक्षेपी स चतुर्थो गद्यते। तद्यथा यदोदराद्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाह्यदेशं प्रति गन्तुं प्रथमक्षणे प्रवर्तते, तं संलक्ष्य पुनः बाह्यदेशं प्रत्येव प्राणाः प्रक्षेप्तव्याः। पुनश्च यदा बाह्याद् देशादाभ्यन्तरं प्रथममागच्छेत्तमाभ्यन्तर एव पुनः पुनः यथाशक्ति गृहीत्वा तत्रैव स्तम्भयेत् स द्वितीयः। एवं द्वयोरेतयोः क्रमेणाभ्यासेन गत्यभावः क्रियते, स चतुर्थः प्राणायामः। यस्तु खलु तृतीयोऽस्ति स नैव बाह्याभ्यन्तराभ्यासापेक्षां करोति; किन्तु यत्र यत्र देशे प्राणो वर्तते तत्र तत्रैव सकृत्स्तम्भनीयः। यथा किमप्यद्भुतं दृष्ट्वा मनुष्यश्चकितो भवति तथैव कार्यमित्यर्थः।" योग० २-५१॥

इसके आगे महर्षि आर्यभाषा में लिखते हैं—

"और यह प्राणायाम चार प्रकार से होता है। एक बाह्य विषय, दूसरा आभ्यन्तर विषय, तीसरा स्तम्भवृत्ति। और चौथा जो बाहर भीतर रोकने से होता है। वे चार प्राणायाम इस प्रकार के होते हैं कि जब भीतर से बाहर को श्वास निकले, तब उसको बाहर ही रोक दे, इसको प्रथम प्राणायाम कहते हैं। जब बाहर से श्वास भीतर को आवे, तब उसको जितना रोक सके, उतना भीतर ही रोक दे, इसको दूसरा प्राणायाम कहते हैं। तीसरा स्तम्भवृत्ति है कि न प्राण को बाहर निकाले और न बाहर से भीतर ले जावे, किन्तु जितनी देर सुख से हो सके, उसको जहां का तहां, ज्यों का त्यों एकदम रोक दे। और चौथा यह है कि जब श्वास भीतर से बाहर को आवे, तब बाहर ही कुछ-कुछ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर जावे, तब उसको भीतर ही थोड़ा-थोड़ा रोकता रहे इसको बाह्याभ्यन्तराक्षेपी कहते हैं। और इन चारों का अनुष्ठान इसलिये है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासनाविषय)

इसके अतिरिक्त महर्षि ने संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आदि ग्रन्थों में भी प्राणायाम विधि का संकेत किया है। किन्तु प्रधानता से सत्यार्थप्रकाश एवं भाष्यभूमिका में प्राणायाम का निर्देश है। साधक महानुभावों की सुविधा के लिये उपरोक्त चार प्रकार के प्राणायामों को नीचे कुछ विस्तार से लिखा जाता है।

१. बाह्यविषय या बाह्यकुम्भक प्राणायाम

पहले सिद्धासन अथवा पद्मासन से बैठें। सिद्धासन का प्रकार हम पूर्व लिख चुके हैं। प्राणायाम करने से पूर्व बांयां स्वर चलता हो तो ठीक है। जिधर से वायु आता हो उधर मुंह रक्खो। जैसे अत्यन्त वेग से वमन (कै) होता है और अन्न जल बाहर निकल जाता है, वैसे ही प्राण (श्वास) को बल से बाहर फैंक दो। एक ही बार निरन्तर एक श्वास में सारा वायु बाहर निकल जाय। झटके दे दे कर नहीं। प्राणायाम करने से पूर्व मूलबन्ध ठीक प्रकार से लगा लें और जब तक प्राणायाम करें उतनी देर निरन्तर मूलबन्ध लगा रहे बीच में किञ्चित् भी ढीला न होने पावे। पहले हृदय का वायु बल से बाहर निकालो फिर ऊपर के फेफड़े का श्वास निकाल कर खाली करना चाहिये। फिर उदर को खाली करना। श्वास इस विधिपूर्वक निकालने में स्वयं हृदय फुफ्फुस और पेट का वायु क्रमशः एक बार ही निकल जाता है। किन्तु यह ध्यान रखो सारा प्राण एक ही श्वास में बाहर निकल जावे। श्वास तोड़ तोड़ कर कभी न निकालो। श्वास को लम्बा करके निरन्तर गति देते हुये एक ही बार बाहर निकाल दो। श्वास बाहर निकलने के बाद उड्डियान बन्ध भी लगा लो। श्वास को यथाशक्ति बाहर रोकने का यत्न करो। जब घबराहट हो तब उड्डियान बन्ध हटाकर धीरे-धीरे वायु को भीतर ले लो किन्तु अन्दर नहीं रोको। मूलबन्ध पूर्व के समान ही लगा रहे यह एक प्राणायाम हुआ। फिर इसी प्रकार इस

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राणायाम की दूसरी आवृत्ति करे। न्यून सें न्यून ३ प्राणायाम अवश्य करे। इस प्राणायाम के अभ्यास काल में अन्दर श्वास नहीं रोकना चाहिये। पहले इसी बाह्यविषय का अभ्यास न्यून से न्यून एक वर्ष तक करना चाहिये। यही प्रथम प्राणायाम है, इसके सिद्ध होने पर ही दूसरा प्राणायाम करना उपयुक्त है। सामान्यतया लोग बाहर तथा भीतर रोकना, दोनों एक साथ आरम्भ कर देते हैं। इसलिये विशेष लाभ तथा उन्नति नहीं होती। एक मास तक तीन ही प्राणायाम करें, फिर शनैः शनैः प्रतिमास संख्या बढ़ाते जाओ। यदि गोदुग्ध घृत वा अन्य पौष्टिक भोजन पर्याप्त खाने को मिले तो दोनों समय अभ्यास करना चाहिये। इस प्राणायाम की संख्या २१ तक बढ़ा सकते हैं। प्राणायाम करते समय हाथ से नासिका पकड़ कर श्वास नहीं रोकना चाहिये। मूलाधार का संकोच निरन्तर बना रहे। एक प्राणायाम करने के पश्चात् तीन चार साधारण श्वास लेकर फिर दूसरा प्राणायाम करना चाहिये इस प्रकार प्रत्येक प्राणायाम की आवृत्ति में यही क्रम रहेगा। प्राणायाम के समय ओ३म् का जप करते रहें।

लाभ—यह प्राणायाम विशेष लाभप्रद है। इसके निरन्तर अभ्यास से सब लोग ऊर्ध्वरेता बनकर ब्रह्मचर्य के दिव्य आनन्द का उपभोग कर सकते हैं। शरीर तथा नाड़ियों की शुद्धि इस प्राणायाम से अति शीघ्र होती है। शरीर और इन्द्रियों के सब विकार नष्ट होकर तेजस्विता तथा स्थिरता आती है। ब्रह्मचारियों के लिये अमोघ प्रयोग है।

२. आभ्यन्तरकुम्भक या आभ्यन्तरविषय प्राणायाम

यह प्राणायाम बाह्यप्राणायाम के सिद्ध होने पर करना चाहिये। पूर्व प्राणायाम के समान सिद्धासन अथवा पद्मासन से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
बैठकर मूलबन्ध लगावें। उसके बाद नाक से सहसा श्वास अन्दर भर लें। एक श्वास में ही वायु पूरा भर जाना चाहिये। श्वास भरने के बाद जालन्धर बन्ध लगा लें और यथाशक्ति श्वास को अन्दर ही रोके रखें। घबराहट होने पर जालन्धर बन्ध हटाकर श्वास को सहसा बाहर निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ। दो चार सामान्य श्वास लेकर फिर उसी प्रकार पूरक करके कुम्भक करें। प्रथम प्राणायाम के समान शनैः शनैः भोजन और शक्ति अनुसार इस प्राणायाम की भी संख्या बढ़ानी चाहिये। मूलबन्ध निरन्तर सावधानी पूर्वक लगा रहे। मन को नाभि के नीचे, हृदय, भृकुटि आदि स्थानों में एकाग्र करें। ओ३म् का जप निरन्तर करते रहें। ध्यान के द्वारा प्राण का दबाव फेफड़ों के प्रत्येक अवयव पर डालने का यत्न करें यह दूसरा प्राणायाम है। इसे पूरक कुम्भक भी कहते हैं।

लाभ— इस प्राणायाम से शरीर की शक्ति अत्यधिक बढ़ती है। शरीर सुन्दर-सुडौल बन जाता है। फेफड़े एवं वक्षःस्थल वज्र के समान दृढ़ हो जाते हैं। शीत से रक्षा करने में भी यह अति सहयोगी है। धातु के विकार भी इस प्राणायाम से नष्ट होते हैं। इस के अभ्यास के साथ प्रथम रेचक प्राणायाम भी किया जा सकता है।

३—स्तम्भवृत्ति प्राणायाम

यह तीसरा प्राणायाम है। इस में पूर्ववत् आसन में बैठ मूलबन्ध लगाकर न श्वास को बाहर निकालने की आवश्यकता है और न बाहर से अन्दर लेने की। जिस अवस्था में श्वास विद्यमान है उसी अवस्था मे उसे रोक दिया जाता है, और रोकने के बाद जालन्धर बन्ध लगा लिया जाता है। जब न रहा जा सके तो साधारण रीति से श्वास लेकर वा निकालकर फिर उसे उसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अवस्था में रोक दिया जाता है। शेष सब प्रक्रिया पूर्वोक्त ही है। इस प्राणायाम में श्वास प्रश्वास दोनों का निरोध हो जाता है। इसके लिये व्यास जी ने बड़ा अनुकूल दृष्टान्त दिया है उन्होंने लिखा है— 'जैसे तपे हुये पत्थर पर डाला हुआ जल चारों ओर से हटकर एक स्थान पर संचित हो जाता है। इसी प्रकार इस प्राणायाम में श्वास और प्रश्वास दोनों का युगपत् निरोध हो जाता है। योग-दर्शन के २-५० सूत्र में उपर्युक्त तीनों प्रकार के प्राणायामों के परीक्षण के लिये लिखा है—"बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल-संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।" अर्थात् बाह्य, आभ्यन्तर, स्तम्भ-वृत्ति इन तीनों ही निरोधों के देश-काल और संख्या का परिमापण करना चाहिये। इन के परिमापण की विधि इस प्रकार है—वायु निरोध के समय प्राण शरीर में कितनी दूर तक फैला इसका निरीक्षण देश का परिमापण है। प्राण जितनी दूर तक फैलता है शरीर के उतने भाग में चीटियां सी चलती प्रतीत होने लगती हैं। यही प्राण की देश की अपेक्षा से पहचान है। प्राणनिरोध के समय मन में यह प्रबल भावना होनी चाहिए कि प्राण मेरे सम्पूर्ण शरीर में फैल रहा है। कितने समय तक श्वास को हमने अन्दर स्तम्भित किया यह उसका काल की दृष्टि से परिमापण है और उस प्राणायाम की हमने कितनी आवृत्ति की; अर्थात् कितनी बार वह प्राणायाम किया यह संख्या की दृष्टि से प्राणायाम का माप हुआ।

इसके अतिरिक्त निरोध की दीर्घता और सूक्ष्मता का निरीक्षण भी आवश्यक है। दीर्घता से अभिप्राय है पहले की अपेक्षा देश काल-संख्या की दृष्टि से प्राणायाम में कितनी वृद्धि हुई। देश-काल-संख्या द्वारा परिदृष्ट निरोध प्राणायाम को अगले दिन ही देश-काल-संख्या के बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। उसे उसी अवस्था में अभ्यस्त करने के लिये कुछ दिन अवश्य लगाने चाहियें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
फिर शनैः शनैः उस प्राणायाम का इतना अभ्यास हो जाना चाहिये कि अभ्यासी को पता भी न चले कि मैं प्राणायाम कर रहा हूँ। किसी प्रकार के भी श्रम का अनुभव प्राणायाम करते हुये न हो और श्वास के लेने और निकालने की गति अति सूक्ष्म हो जावे इसे ही सूक्ष्मता कहा है। जिस प्रकार हमने आभ्यन्तर प्राणायाम के देश-काल-संख्या से दीर्घता और सूक्ष्मता के परीक्षण की विधि ऊपर बताई उसी प्रकार बाह्य प्राणायाम का भी परीक्षण किया जा सकता है। बाह्य प्राणायाम काल और संख्या का परीक्षण तो पूर्ववत् ही होगा किन्तु देश का परीक्षण शरीर के अन्दर न करके शरीर के बाहर किया जाता है, अर्थात् नासिका से निकलते हुये प्रश्वास का प्रभाव बाहर के प्रदेश पर कहां तक पड़ा इसकी परीक्षा हम नासिका के सम्मुख रूई आदि का हल्का टुकड़ा रखकर कर सकते हैं। यह परीक्षा इसलिये की जाती है कि प्राण जितना शनैः-शनैः और सूक्ष्म करके निकाला जावेगा उतना ही उसका प्रभाव निकट देश तक रहेगा और प्रभाव जितना निकट देश तक पड़ेगा उतना ही लाभप्रद भी होगा। यह हमने प्रथम और द्वितीय प्राणायाम की देश काल-संख्या द्वारा दीर्घता और सूक्ष्मता के परिमापण का प्रकार वर्णित किया। स्तम्भवृत्ति प्राणायाम में श्वास प्रश्वास की देश संख्या और काल से समालोचना न करके उसे जहाँ का तहां ज्यों का त्यों रोक दिया जाता है। इस प्रकार यह तीन प्राणायाम हुये।

४—बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी प्राणायाम

यह अन्तिम तथा पूर्ण प्राणायाम है। अब तक प्राणायाम के एक-एक अवयव का अभ्यास चल रहा था। इसी निरन्तर अभ्यास के प्रभाव से साधक में इस अन्तिम प्राणायाम के करने की योग्यता आ सकी है। यद्यपि स्तम्भवृत्ति प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास दोनों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का ही निरोध करना पड़ता है, परन्तु इसमें और चतुर्थ प्राणायाम में बड़ा अन्तर है। स्तम्भवृत्ति में श्वास और प्रश्वास के विषय का ध्यान रखे विना ही उन्हें रोक दिया जाता है। परन्तु यहां श्वास और प्रश्वास का विषय देश काल और संख्या की आलोचना करते हुये उन दोनों को युगपत् नहीं क्रम से रोकना पड़ता है। इस प्राणायाम की विधि इस प्रकार है—

सर्वप्रथम पूर्व लिखी विधि अनुसार वाह्य प्राणायाम करें और उड्डियान बन्ध और जालन्धर वन्ध लगा लें। मूलवन्ध तो सभी प्राणायामों में अवश्य लगा ही रहता है। थोड़े समय के कुम्भक के पश्चात् जव वाहर से वायु भीतर आने लगे तव श्वास को भीतर न लेकर जालन्धर वन्ध को ढ़ीला कर अन्दर से धक्का देकर वायु को वाहर ही फेंक दें और फिर जालन्धर बन्ध लगा लें। ऐसे करने से नाभि के नीचे का सूक्ष्म प्राण बड़े वेग से ऊपर उठेगा और हृदयस्थ प्राण में आकर मिल जायेगा। वाहर से श्वास भीतर लेने की बार-बार तीव्र प्रेरणा होगी किन्तु आप मानसिक इच्छा से वायु को धक्का देकर वाहर ही निकालते रहें। ऐसा करते समय बड़े वेग से हिचकी के सदृश शब्द होगा। शरीर से पसीना छूटने लगेगा। जव अधिक घबराहट होने लगे तब जालन्धर वन्ध को छोड़कर श्वास अन्दर ले लें यह आधा प्राणायाम हुआ फिर दो चार सामान्य श्वास-प्रश्वास लेकर आभ्यन्तर प्राणायाम करें जाल धर वन्ध लगा लें। मूल बन्ध तो पूर्व से ही लगा है। थोड़े समय कुम्भक करने वाद जव श्वास भीतर से वाहर को निकलने लगे तव मन की इच्छा शक्ति के प्रभाव से श्वास को नीचे दबा दें, तथा जालन्धर बन्ध को ढ़ीला कर नासिका द्वारा और श्वास भर कर फिर जालन्धर बन्ध लगा दें इस प्रकार करने से थोड़े समय तक श्वास अन्दर ही रुक जायेगा। इच्छा शक्ति का दबाव

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
निरन्तर रखें। पुनः श्वांस ऊपर उठकर बाहर निकलने का यत्न करेगा किन्तु जालन्धर बन्ध लगा होने के कारण नासिका द्वारा बाहर तो न निकल सकेगा किन्तु कुछ प्राण श्वास प्रणाली से अन्न प्रणाली में चला जायगा। प्राण जब धक्का देकर ऊपर उठता है और अन्न प्रणाली में जाता है तो उस समय एक शब्द उत्पन्न होता है जिसे अभ्यासी लोग स्पष्ट अनुभव करते हैं। यह ध्वनि डभ, डभ, से कुछ मिलती-जुलती होती है। इस प्रकार साधक बार-बार प्राण को नीचे दबा कर और श्वास लेता रहता है और थोड़ा-थोड़ा श्वास अन्न प्रणाली द्वारा उदर में जाता रहता है और वहां पहुंच कर मलबद्धता (कब्ज) को समूल नष्ट कर देता है। इस प्राणायाम में विशेष परिश्रम करना पड़ता है प्रत्येक नस नाड़ी प्राण के दबाव से फड़फड़ा उठती है। सारा शरीर पसीने से तरबतर हो जाता है। जब विशेष घबराहट अनुभव होने लगे तो जालन्धर बन्ध को हटाकर श्वास बाहर निकाल दें। इस प्राणायाम की श्रद्धेय योगिराज स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने भी अपने ग्रंथों में इसी प्रकार की व्याख्या की है। इस प्रकार यह एक प्राणायाम हुआ। यथाशक्ति इसकी संख्या को बढ़ाते चलें। इसका अभ्यास किसी अनुभवी गुरु के ही सान्निध्य में करना चाहिये नहीं तो हानि होने की आशंका रहती है और यथेष्ट उन्नति भी नहीं हो पाती। इस प्रकार यह चारों प्राणायामों की विधि पूरी हुई।

लाभ—इस प्राणायाम के अभ्यास से प्रथम अध्याय में वर्णित सभी गुणों का वास साधक में हो जाता है। धातुओं के सब मल एवं अन्तःकरण के पाप भस्मीभूत होकर साधक कृतकृत्य हो जाता है। इसके बाद समाधि को समीप ही समझना चाहिये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राणापान की परस्पर आहुति

प्राणायाम के क्षेत्र में इस रहस्य की बड़ी चर्चा हुआ करती है कि प्राणायाम में पूर्ण सिद्धि तभी मिलती है जब अपान की प्राण में, तथा प्राण की अपान में आहुति पड़ने लगे। इसी भाव को व्यक्त करते हुये गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी ने भी कुछ विचार व्यक्त किये हैं श्लोक इस प्रकार हैं—

"अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगतीरुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥

कुछ लोग प्राणायाम में तत्पर प्राण अपान की गति को रोक कर अपानवायु में प्राण की और इसी प्रकार प्राणवायु में अपान की आहुति डालते हैं, अन्य नियमित भोजन करने वाले प्राणों की प्राणों में आहुति डालते हैं। ये सभी यज्ञ को जानने वाले तथा यज्ञ से पाप दूर करने वाले हैं। इन दो श्लोकों में प्राण की अपान में, तथा अपान की प्राण में, और प्राण की प्राण में आहुति डालने का संकेत है, और ऐसा करने वाला साधक प्राणायाम में पारंगत हो जाता है, सब पाप रहित हो जाता है यह इन आहुतियों का फल भी निर्देश किया है

इन आहुतियों का स्वरूप आगे दिया जाता है।

अपान की प्राण में आहुति

नाभि से नीचे के भाग में स्थित वायु का नाम अपान है, तथा उदर से ऊपर हृदय प्रदेश में स्थित वायु का नाम प्राण है। चतुर्थ प्राणायाम में जैसे कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि जब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
वाह्यकुम्भक करके मूलबन्धपूर्वक उड्डियान बन्ध लगाया जाता है तो नीचे के प्राण की ऊर्ध्वगति होने लगती है। वार-वार मानसिक शक्ति से जब अन्दर से श्वास बाहर को धकेला जाता है तो नीचे का प्राण अति तीव्रता के साथ हृदयस्थ प्राण में आकर मिल जाता है। जालन्धर वन्ध लगा होने से दोनों प्राण हृदय प्रदेश में स्थित हो जाते हैं यही अपान की प्राण में आहुति है।

प्राण की अपान में आहुति

प्राण की अपान में आहुति भी चतुर्थ प्राणायाम में आभ्यन्तर विषय की आलोचना करते हुये डाली जाती है। जिस समय आभ्यन्तर कुम्भक शक्तिपूर्वक बहुत समय तक किया जाता है तो प्राण ऊपर को उठने लगता है। जालन्धर बन्ध के लगा होने से यह ऊपर उठा हुआ प्राण नासिका से वाहर न निकलकर श्वास प्रणाली से अन्न प्रणाली में चला जाता है और अन्तड़ियों में जाकर अपान में मिल जाता है। फिर मानसिक शक्ति से प्राण को छाती में नीचे दवाकर जालन्धर वन्ध को ढीला कर पुनः फेफड़ों में और श्वास भर लिया जाता है, और थोड़े समय वाद फिर प्राण ऊपर उठकर अन्न प्रणाली में चला जाता है। यह क्रिया बार बार होती रहती है और प्राण की अपान में आहुति पड़ती रहती है। उदर में गया हुआ यह प्राण सभी उदर रोगों को नष्ट कर देता है।

प्राण की प्राण में आहुति

यह आहुति तीसरे स्तम्भवृत्ति प्राणायाम में डाली जाती है इस प्राणायाम में, न प्राण की अपान में और न अपान की प्राण में आहुति डाली जाती है किन्तु प्राण जिस अवस्था में हो उसे रोक दिया जाता है। इसलिये यह प्राण की प्राण में ही आहुति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
है। इसके अतिरिक्त ध्यान से भी सूक्ष्म प्राण और अपान की परस्पर आहुति डाली जाती है। यह पहले लिखा जा चुका है कि मन और प्राण का घनिष्ठ सम्बन्ध है जिस स्थान पर मन एकाग्र होगा प्राण भी वहीं जाकर स्थिर हो जावेगा। जब मन की सब वृत्तियों को रोककर भृकुटि ब्रह्मरन्ध्र आदि मस्तिष्क के स्थानों में मन एकाग्र किया जाता है तो हृदय के नीचे का सूक्ष्म प्राण जिसकी अपान संज्ञा है ऊपर उठकर हृदय के प्राण में जाकर मिल जाता है। यह प्राण अपान की परस्पर एक दूसरे में आहुति हुई और जब हृदयस्थ प्राण मस्तिष्कगत प्राण में जाकर मिलता है तो यह प्राण में आहुति कही जाती है।

उपर्युक्त चार प्राणायाम ही मुख्य प्राणायाम हैं किन्तु इन्हीं प्राणायाम में थोड़ा थोड़ा अन्तर करके उपभेद रूप में प्राणायाम के अभ्यासियों ने अन्य प्राणायामों के रूप में नामकरण कर रखा है। किसी न किसी अवस्था में वे प्राणायाम भी साधक को आगे बढ़ने में सहयोग देते हैं। इसी उपयोगिता के कारण उनका संग्रह भी पाठकों को जानकारी की दृष्टि से कर रहा हूं। इन प्राणायामों की उपयोगिता विशेष अवस्था में ही है। इनका दैनिक अभ्यास करना आवश्यक नहीं।

१—भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका संस्कृत में लुहार की धौंकनी को कहते हैं। लुहार या सुनार एक गति से जिस प्रकार अपनी धौंकनी धौंकते हैं उसी प्रकार श्वास प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिये। जोर जोर से श्वास लेना और निकालना भस्त्रिका प्राणायाम की विशेषता है।

पद्मासन अथवा सिद्धासन पर बैठकर शरीर-गर्दन-सिर को एक सीध में रखें। हथेलियां घुटनों पर हों। २१ बार लुहार की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धौंकनी के समान श्वास लें और निकाल दें। साथ ही छाती को फुलाते और संकुचित करता जाये। श्वास अन्दर भरते समय उदर बाहर तथा श्वास बाहर निकालते समय उदर अन्दर संकुचित कर लें। एक के बाद दूसरा श्वास बिना रुके निरन्तर लेते रहें। नौ बार से लेकर यथाशक्ति २१ बार इस प्रकार श्वास प्रश्वासक्रिया करके एक बार लम्बा श्वास लें, उसे यथाशक्ति अन्दर रोक के नासिका द्वारा बाहर निकाल दें। इस प्रकार एक प्राणायाम हुआ। सायं प्रातः प्राणायाम के आरम्भ में तथा अभ्यास के पश्चात् १ से ३ बार तक कर लेना चाहिये। कुछ लोग इसे इतना बढ़ा देते हैं कि वे थकने तक करते रहते हैं। इससे बहुत पसीना निकलेगा। यह कठिन व्यायाम है। इससे सिर चकराने लगे तो रुककर विश्राम करलें। प्रत्येक प्राणायाम के बाद दो मिनट आराम करना चाहिये।

लाभ—भस्त्रिका प्राणायाम से गले की पीड़ा दूर होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। कफ का विकार नष्ट होता है। नाक और छाती की व्याधि दूर होती हैं। दमा क्षय आदि रोग दूर होते हैं। कुण्डलिनी जागृत होती है। शरीर को गर्मी मिलती है। नाड़ियां शुद्ध होती हैं। सभी प्रकार के कुम्भकों में यह उत्तम है। इसका अभ्यास कर लेना चाहिये। भस्त्रिका प्राणायाम की आवृत्ति अपनी शक्ति अनुसार करनी चाहिये। अभ्यास में अति करना ठीक नहीं।

२—प्लावनी प्राणायाम

इस प्राणायाम में उदर में श्वास भरने का अभ्यास किया जाता है पेट में वायु भर के मसक या रबड़ के गोले के समान फुला दिया जाता है। खूब वायु भर जाने पर पेट में ठोकने पर एक प्रकार की आवाज सी होने लगती है। परन्तु इस में यह ध्यान

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
रखने की बात है कि जिस समय उदर में वायु भरें तब शरीर के अन्य अंगों में वायु न होना चाहिये तभी प्लावनी सिद्ध होगा।

इस प्राणायाम में साधक का प्राण पर तो अधिकार हो ही जाता है साथ ही उदर के सब रोगों का नाश होकर पेट रेशम के समान कोमल हो आरोग्यता का विकास करता है। कब्ज तो जड़ मूल से ही मिट जाती है। जिसको सर्वरोगों की जननी कहते हैं। अपानवायु की शुद्धि, मल-मूत्र का निर्विघ्न त्याग होना, पाचन-शक्ति की वृद्धि, वीर्य एवं रक्त की शुद्धि आदि अनेक लाभ होते है। प्लावनी प्राणायाम करके इच्छानुसार पानी पर भी पड़ा रहा जा सकता है। फिर उड्डियान वन्ध करके वायु धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। इस प्राणायाम को किसी अनुभवी से सीख लेना चाहिये। जो मनुष्य इस के अभ्यासी होते हैं वे कुछ दिन तक बिना आहार के भी रह सकते हैं। इस प्रकार का वर्णन है।

३—शीतली प्राणायाम

जीभ को लम्बी करके नली की भांति मोड़ लें। सिसकारी भरते हुये मुँह से श्वास लें और-आराम से जितनी देर हो सके वायु रोके रखें फिर नासिका द्वारा वायु बाहर निकाल दें। यह प्राणायाम बैठे-बैठे, खड़े रहकर अथवा चलते हुये भी १० से १५ मिनट तक किया जा सकता है।

इस प्राणायाम के अभ्यास से रक्त शुद्ध होता है। भूख-प्यास कम होती है। आमाशय को शीतलता मिलती है। गुल्म-प्लीहा, संक्रामक रोग, ज्वर, क्षय, अपच, बवासीर आदि रोग दूर होते हैं। प्यास लगने पर इस के अभ्यास से प्यास शान्त हो जाती है।

४—शीतकरी प्राणायाम

जीभ को इस प्रकार मोड़े कि उसका सिरा तालु से लगा रहे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
और मुँह से सिसकारी के साथ श्वास खींच, अथवा दांतों की पंक्तियों को एक दूसरे से मिला दो और जीभ को दांतों से सटाकर सीत्कार जैसी आवाज करते हुये मुख से शनैः शनैः श्वास अन्दर भरो। यथाशक्ति अन्दर रोककर नासिका द्वारा बाहर निकाल दो। इसे भी बैठकर, खड़े होकर तथा चलते चलते किया जा सकता है। १० बार तक इसे करना चाहिये।

इस प्राणायाम के अभ्यास से शक्ति और सौन्दर्य की प्राप्ति होती है। भूख-प्यास आलस्य निन्द्रा कम होती है। पित्त के विकार शांत होते हैं।

५. उज्जायी प्राणायाम

पद्मासन या सिद्धासन पर बैठ जायें और मुंह बन्द करलें। धीरे-धीरे और एक ही श्वास में जितना फेफड़े ले सकें वायु अन्दर खींचें, फिर जालन्धर बन्ध लगा लें। यथाशक्ति वायु को रोककर बांयें नासारन्ध्र से धीरे-धीरे बाहर फेंकें। विरेचन जितना धीरे-धीरे हुआ करता है उतना ही प्राणायामों का फल अधिक होता है यह बात सभी प्राणायामों में ध्यान रखने योग्य है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि श्वास लेने के पश्चात् वायु फेफड़े से हटाकर मुँह में भर लें और तब मुंह से उसे बाहर निकाले। इस के अभ्यास से सिर की उष्णता दूर होती है, शरीर में सौन्दर्य बढ़ता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। दमा, क्षय, फुफ्फुस सम्बन्धित रोग दूर होते हैं। सायं प्रातः ४ बार इसका अभ्यास किया जा सकता है।

६. सूर्यभेद प्राणायाम

इस प्राणायाम की विशेषता यह है कि केवल सूर्य नाड़ी अर्थात् दाहिने नासारन्ध्र से ही श्वास प्रश्वास की क्रिया की जाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिद्धासन या पद्मासन पर निश्चिन्त मन से बैठ जायें, पुनः अति धीरे-धीरे दाहिने नासारन्ध्र से श्वास इतना अन्दर खींचे कि यथासंभव वायु अन्दर चला जावे। इसके बाद जालन्धर बन्ध लगा लें। वायु अन्दर भरे रखें, पसीना आने तक श्वास को अन्दर ही रोके रहें। घबराहट होने पर जालन्धर बन्ध हटाकर दाहिने नासारन्ध्र से प्रश्वास क्रिया करें। यह श्वास प्रश्वास की क्रिया बहुत ही धीरे-धीरे होनी चाहिये। एक बार सब वायु जोर से निकालना ठीक नहीं।

सूर्यभेद प्राणायाम के अभ्यास से पेट और अन्तड़ियों के रोग दूर होते हैं। वात रोग, नाक सम्बन्धी रोग, जुकाम आदि नष्ट होकर अभ्यासी को दीर्घायु और शक्ति प्राप्त होती है तथा कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

७. सुखद प्राणायाम

पद्मासन या सिद्धासन से बैठकर शनैः शनैः वायु को अन्दर खींचो, पहले फेफड़े के नीचे के भाग को भरो। मन में प्रबल इच्छा रखो कि फेफड़े का अधोभाग वायु से भर रहा है। इससे कुछ पेट फूलेगा। इसके बाद इसी श्वास से फेफड़े के मध्य भाग में वायु पहुँचाओ। प्रत्येक क्रिया के साथ मानसिक शक्ति का सम्बन्ध बना रहे। इन क्रियाओं से पेट कुछ पिचकेगा और छाती कुछ उभरेगी। इसके बाद श्वास के तीसरे और अन्तिम भाग से फेफड़े के ऊपरी भाग को भरो, इस क्रिया से पूर्व दोनों कन्धे ऊपर उठालो, इन तीन क्रियाओं से पूरा कुम्भक करो। लगभग एक मिनट तक वायु भरी रहे। फिर सीटी बजाने के समान मुखाकृति बनाकर वेग से तीन से अधिक बार में थोड़ा थोड़ा श्वास बाहर फेंको। एक बार फेंककर कुछ रुक जाओ इसी प्रकार कुछ रुक रुक कर बलपूर्वक श्वास बाहर फेंको। यह एक प्राणायाम हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्राणायाम से शरीर को विश्राम मिलता है। थकान दूर होती है। शरीर बलवान् स्वस्थ सुन्दर बनता है। रजोगुण व तमोगुण दूर होकर मन एकाग्र होता है। इसका अभ्यास प्रत्येक प्रकार के व्यायाम प्राणायाम के अन्त में करना चाहिये।

भ्रामरी प्राणायाम

इच्छानुसार आसन लगाकर दोनों नासारन्ध्रों से भौंरे जैसा ऊं ऊं ऊं ऊँ.....नाद करते हुये पूरक करें। फिर यथाशक्ति कुम्भक करके उसी प्रकार भ्रमर के समान शब्द करते हुये दोनों नासिका छिद्रों से श्वास निकाल दें। इसमें भ्रमर के समान ध्वनि होने से इस प्राणायाम का नाम भ्रामरी प्राणायाम है।

भ्रामरी प्राणायाम से मन की चंचलता दूर होकर शांत होता है। मन को अति आनन्द का अनुभव होता है।

९—समवृत्ति प्राणायाम

यह प्राणायाम शरीर की दुर्बलता को दूर करने के लिये अचूक प्रयोग है। इसका नाम समवृत्ति इस कारण से है कि इसमें पूरक-कुम्भक रेचक समान वृत्तियों में होते हैं। अर्थात् पूरक रेचक प्राणायाम इतने सूक्ष्मता से किये जाते हैं कि साधक को थोड़ा भी श्रम तथा शब्द का अनुभव नहीं होता।

प्राणायाम की विधि इस प्रकार है कि सामान्यतया किसी भी सुखद आसन से बैठकर अति शनैः शनैः सूक्ष्म भाव से श्वास को उदर एवं फेफड़ों के सब भागों में अच्छी प्रकार भर लें। बिना विशेष शक्ति लगाये केवल मानसिक प्रभाव के कारण श्वास को कुछ समय तक भीतर ही रोकने का अभ्यास करें। फिर शनैः शनैः बिना शब्द और श्रम के बाहर निकाल दें, तथा थोड़े समय तक प्राण को बाहर ही स्तम्भित करें। यह प्राणायाम स्वाभाविक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूप से प्रसन्नतापूर्वक करें। उदर तथा फेफड़ों पर दबाव न पड़ने दें। इस प्रकार शक्ति अनुसार प्रतिदिन इस प्राणायाम का अभ्यास करने से अशक्त मनुष्य भी सशक्त हो जाता है।

इस प्राणायाम का अभ्यास धैर्यपूर्वक लम्बे काल तक करने से सब रोगों का नाश होकर गई हुई शक्ति पुनः प्राप्त हो जाती है। नियमित रूप से इसे करने पर क्षय (तपेदिक) आदि भयंकर रोगों का भी समूल उच्छेद करने का सामर्थ्य इस प्राणायाम में है। सब प्रकार की निर्बलताएँ, निराशाएँ दूर होकर साधक आनन्द-विभोर हो उठता है। इस प्राणायाम में यह विशेष ध्यान देने योग्य शर्त है कि श्वास का शब्द अपने कान तक भी न सुनाई पड़े और न ही फेफड़ों का किसी भी प्रकार का श्रम हो तभी इससे पूर्वोक्त लाभ होंगे। अन्यथा दुर्बल अवस्था में फेफड़ों में वायु के दबाव से हानि होने की भी सम्भावना रहती है।

१०—अग्नि प्रदीप्त प्राणायाम

एक बार अमृतसर निवासी चौधरी जयकिशन जी महर्षि दयानन्द सरस्वती के पास सत्संग के लिये गये तो देखा कि स्वामी जी प्राणायाम कर रहे हैं और उनके शरीर पर पसीना बड़े वेग से बह रहा है, और सम्पूर्ण शरीर रक्तवर्ण हो रहा है, मुखमण्डल तेज से प्रदीप्त है। दृष्टि स्वामी जी की ओर नहीं जमती थी। ऐसी अवस्था देखकर वे चकित थे। जब प्राणायाम समाप्त करके सत्संग में बैठे तब उन्होंने प्रश्न किया— महाराज जी क्या यह बतलाने की कृपा करेंगे कि आप कौनसा प्राणायाम करते हैं उसका नाम क्या है? उत्तर—महर्षि ने कहा इसको अग्नि प्रदीप्त कहा करते हैं। इसकी विधि यह है—सुखासन से बैठकर प्राण को धीरे-धीरे पूरक द्वारा मूलाधार तक भर दें फिर बलपूर्वक कुम्भक करें कि छाती और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मुख लाल वर्ण हो जायें। प्रारम्भ में अधिक कुम्भक न कर, शनैः शनैः बढ़ाते जायें, शिर की ओर प्राण का वेग न जाने पावे नहीं तो मूर्च्छा होने का भय होता है। घबराहट होने पर रेचक अर्थात् प्राण को बाहर निकाल दें। इस प्राणायाम के गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि ने कहा कि इस प्राणायाम से शीत का निवारण हो जाता है। योगी, तपस्वी हिमगिरि में बैठकर इसी प्राणायाम का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्राणायाम से जठराग्नि प्रदीप्त होकर शरीर हल्का हो जाता है। उत्साह, स्वर में मधुरता, बल, ओज, तेज, धैर्य एवं सौन्दर्य की वृद्धि होकर सब रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी प्राणायाम के आधार पर महर्षि घोर शीतकाल में भी अनेक बार सहसा ही पसीना निकाल देते थे, जिसे देख भक्तजन अति श्रद्धान्वित होकर नतमस्तक हो जाते थे।

११-क्षुधा तृषा निवारक प्राणायाम

पद्मासन से बैठकर हथेलियों को दोनों घुटनों पर स्थिर करके कण्ठ और मुख को बन्द कर ओ३म् शब्द करते हुए मुख में वायु उत्पन्न करें तथा जल की घूट के समान वायु की घूट उदर में भरते जायें। प्रथम दिन पाँच बार इस प्रकार वायुपान करें। प्रति-दिन पाँच घूट बढ़ाते जावें। फिर कुछ दिनों के अभ्यास से उदर वायु से पूर्ण हो जाया करेगा। ३० मिनट का अभ्यास हो जाने पर वायु से भरा उदर फूलकर जलपूर्ण मशक के समान भारी हो जाता है। फिर पूर्व अवस्था में आने के लिये कई मिनट तक कई बार मयूरासन करके शीर्षासन करना होता है। अथवा मयूरासन और सर्वाङ्गासन करना चाहिए। ऐसा करने से यह वायु अपानवायु के रूप में गुदा द्वार ले निकला करता है। इस प्रकार एक घण्टे का समय पूर्व अवस्था में आने में लग जाता है। इस प्राणायाम से यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाभ होता है कि भूख प्यास का अभाव होकर कई दिनों तक निराहार रहकर भी योगी निश्चिन्त समाधि का अनुष्ठान कर सकता है। इस प्राणायाम को वायुपान प्राणायाम भी कहते हैं।

प्राणायाम के बल पर चमत्कारिक प्रदर्शन

प्राणायाम जहां हमारे शरीर के सब विकारों को नष्ट करके विकास में परम सहायक है वहां शक्ति का अपार भण्डार भी है। ब्रह्मचर्य विद्या एवं श्रद्धापूर्वक निरन्तर लम्बे काल तक प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर का अतिशय बल बढ़ता है। प्राणायाम के द्वारा मनुष्य शरीर की सम्पूर्ण शक्ति किसी भी एक अंग में केन्द्रित करके आश्चर्यजनक पराक्रम दिखा सकता है। महर्षि दयानन्द जी एवं प्रो० राममूर्ति आधुनिक युग में प्राणायाम के बल पर अद्भुत शक्ति का परिचय दे चुके हैं। अब मैं इस प्रकार के कुछ प्रदर्शनों की विधि लिखूंगा जिनके अनुसार प्रत्येक साधक ब्रह्मचारी प्राणायाम का महत्त्व क्रियात्मक रूप में सामान्य लोगों के समक्ष भी स्थापित कर सकेंगे।

छाती पर भारी पत्थर तोड़ने की विधि

शक्ति का प्रदर्शन करने से पूर्व प्रत्येक अभ्यासी को शरीर में पर्याप्त बल संचित कर लेना चाहिये। इसके लिए न्यून से न्यून ५, ७ मिनट का आभ्यन्तरकुम्भक तथा अनेक वर्षों का अखण्डित ब्रह्मचर्य पालन अत्यावश्यक है। इसके अभाव में अनेक बार अधिक बल लगाने से हृदय की रक्तवाहिनी धमनियां फट जाती हैं। जिस से आजीवन भयंकर पीड़ा से पीड़ित रहना पड़ता है। छाती पर भारी पत्थर तुड़वाने की विधि इस प्रकार है—

समतल भूमि पर एक मोटा रूई का गद्दा इस प्रकार बिछालें कि लेटने पर गर्दन छाती के समतल वा कुछ ऊंची रहे। गद्दे पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
सीधे लेटकर वक्षःस्थल पर एक और मोटा रूई का गद्दा रख लें। उसके ऊपर लकड़ी का चौड़ा तखता रखें। तखता दृढ़ लकड़ी से निर्मित होना चाहिये जिसके टूटने की किञ्चित् भी आशंका न हो। दोनों हाथ भूमि पर शरीर के साथ पार्श्वों में फैले रहें। शरीर और मन में उत्साह तथा दृढ़ विश्वास रहना चाहिये। भगवान् के प्रति मन में अति कृतज्ञता एवं शक्ति प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिये इसके बाद सर्वप्रथम लेटे हुये ही पूरक प्राणायाम कर कुम्भक करें तथा जालन्धर वन्ध लगा लें। इसका विशेष ध्यान रखें कि श्वास का वेग मस्तिष्क की ओर न होने पावे। मानसिक शक्ति से प्राण को छाती में ही रोके रखें। यदि असावधानी से प्राण मस्तिष्क में चला गया तो निश्चित ही मूर्च्छा (बेहोशी) हो जावेगी। इस विषय में असावधानी होने पर अनेक व्यक्तियों के प्राण मूर्च्छित अवस्था में ही सदैव के लिये कूच कर जाते हैं। अतः इस प्रकार के प्रदर्शनों में विशेष ध्यान रखता चाहिये। प्रारम्भ में अभ्यास करते समय हल्के-हल्के पत्थर छाती पर रखकर तुड़वाने चाहियें। इस प्रकार शनैः शनैः अभ्यास बढ़ाकर पचासों मन भार के पत्थर को भी अपनी छाती पर रखकर भारी घनों और हथोड़ों के आघातों को सहन करके लोगों को आश्चर्यचकित कर सकेंगे। अनेक महानुभाव लोकैषणा से अभिभूत होकर शक्ति से अधिक बल प्रदर्शन का दुस्साहस कर बैठते हैं जो कि सदैव हानिप्रद सिद्ध होता है। अतः अभ्यास को शक्ति अनुसार शनैः शनैः धैर्य के साथ बढ़ाना चाहिये। शक्तिसंचय के लिये सात्विक-पौष्टिक पदार्थ घी-दूध-बादाम आदि का प्रचुरमात्रा में सेवन करना चाहिये।

लोहे की जंजीर तोड़ने की प्रणाली

लोहे की जंजीर तोड़ते समय श्वास निकालकर पुनः वेग से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
भर के शक्ति लगाई जा सकती है। किन्तु पत्थर रखते समय अथवा मोटर रोकते समय ऐसा करना मानो स्वयं मौत के मुंह में प्रविष्ट करना है। जंजीर तोड़ते समय बार-बार श्वास भरके तोड़ने में अनेक लाभ हैं। प्रथम तो ऐसा करने से शरीर में उष्णता आने से वेगपूर्वक शक्ति लगाने पर सरलता रहती है। उचित अवसर पाकर झटका मारने से जंजीर आसानी से टूटती है। इसके अतिरिक्त ऐसा करने से दर्शकों के ऊपर प्रभाव भी अधिक पड़ता है।

जंजीर तोड़ते समय दो कुर्सियों के बीच एक आड़ी लकड़ी रख उसमें जंजीर अटका दी जाती है। कुर्सियों पर एक-एक मनुष्य बैठा दिया जाता है। स्वयं भी लकड़ी पर ही खड़ा होना। पड़ता है। जंजीर तोड़ने से पूर्व ही इतनी तंग रखनी चाहिये कि तोड़ते समय ढ़ीली हो जाने के कारण फिर दूसरी बार छोटी न करनी पड़े। पीठ पर एक मोटा रूई का गद्दा रखें, जिससे रगड़ के कारण कमर पर त्वचा न छिल सके। जंजीर सदैव आगे की अपेक्षा पीठ पीछे अधिक तंग रखकर फिर कन्धों को पीठ पीछे की ओर थोड़ा मोड़कर और झटका देकर तोड़ना चाहिये। जंजीर तोड़ना भी शनैः शनैः अभ्यास का ही फल है। प्राणायाम, ब्रह्मचर्य आदि का विशेष अभ्यास पूर्ववत् शक्ति से सम्भव प्रत्येक प्रदर्शन के लिये आवश्यक है।

मोटर रोकने का सरल साधन

मोटर रोकने के लिये प्राणायाम के विशेष अभ्यास की आवश्यकता है। प्रारम्भिक अभ्यास के लिये कठोर भूमि में एक खूंटा गाडकर और उसमें एक रस्सी बांधकर उखाड़ने का अभ्यास करना चाहिये। मोटर चलाने से पूर्व ही आभ्यन्तर कुम्भक करके रस्से जोर से खींच लेने चाहियें। पूरक प्राणायाम करके पूरी शक्ति के साथ आरम्भ में ही कुम्भक करें। मध्य में रस्से ढ़ीले न करें।
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसा करने से भारी आघात पहुचने की आशंका रहती है। मोटर चालक को सहसा ही वेग से मोटर न चलानी चाहिये अपितु आरम्भ में शनैः शनैः चलाकर फिर पूर्ण शक्ति लगवाने में सुविधा रहती है। सामने दो खूंटे गाडकर उनमें लकड़ी का तखता अटका के तखते के साथ दोनों पैर लगा लेने चाहियें और मोटर के साथ मोटा रस्सा बांधकर अपनी भुजाओं में बांध लेना चाहिये। गर्दन थोड़ी तिरछी रहे। श्वास मानसिक शक्ति से छाती एवं भुजाओं में स्थिर किया जावे। इस प्रकार शनैः शनैः अभ्यास से मोटर रोकने में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

ग्रीवा से लोहे के मोटे-मोटे सरियों को मोड़ना

लोहे के सरिये मोड़ने के लिये गले में कुम्भक का अभ्यास करना होता है। जिस प्रकार रबड़ की ट्यूब में वायु भरने से मनों बोझ से भी नीचे नहीं दबती उसी प्रकार ग्रीवा में प्राण वायु को भरकर कुम्भक करने से अधिकाधिक शक्ति लगाने पर भी ग्रीवा पीछे को नहीं हटती।

जब गले में कुम्भक का अच्छी प्रकार अभ्यास हो जावे तब लोहे का आठ नौ फीट लम्बा सरिया लें। इसके दोनों भाग अच्छी प्रकार से गोल कर लें। जिस से ग्रीवा में चुभकर हानि पहुंचने की आशंका न रहे। सरिये का एक भाग किसी तखते आदि पर छाती के समान ऊंचाई पर लगावें। दो तीन व्यक्ति तखते और सरिये को भलीभांति साधे रहें। सरिये का दूसरा सिरा ग्रीवा में टेटवे के नीचे तथा वक्षोस्थि के ऊपर खाली स्थान में लगावें। सरिया हड्डी या टेटवे पर न लगाना चाहिये। क्योंकि हड्डी पर लगाने से त्वचा उतरकर रक्त आने लगता है, तथा टेटवे पर लगाने से थोड़े दबाव से ही खांसी आने लगती है। अतः दोनों के मध्य का भाग ही अत्युपयुक्त है। सरिया मोड़ते समय ग्रीवा में खूब श्वास भर के ग्रीवा को फुला

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
लें तथा वक्षःस्थल का बल लगाकर झटका दें। सरिये के लगने से गले में जो पीड़ा हो उसकी ओर ध्यान न देकर शक्ति लगावें। आरम्भ में पतले सरियों को गर्दन में कपड़ा लगाकर मोड़ने का अभ्यास करें। निरन्तर अभ्यास से ग्रीवा की त्वचा दृढ़ हो जावेगी। अभ्यास के बाद त्वरन्त का हाथ से मर्दन कर लेना चाहिये। ऐसा करने से किसी प्रकार का छाला आदि गले में नहीं पड़ता। शनैः-शनैः अभ्यास होने पर बिना किसी कष्ट के मोटे-मोटे सरियों को सरलता से मोड़कर जनता को आश्चर्यचकित कर सकेंगे।

नाड़ी अवरोधक प्राणायाम

पद्मासन से बैठकर बायें नाक से पूरक करके वायु को यथा-शक्ति मूलाधार तक भर लें। मुट्ठियों को बांधकर दोनों घुटनों पर रक्खें। पूरक द्वारा अन्दर गई वायु को वक्षस्थल की ओर से दक्षिण भुजा की ओर संकल्पशक्ति से प्रेरित करें। यह क्रिया तब तक करते रहें जब तक हाथ फूलकर कठोर तथा नाड़ी स्तम्भित होने लगे। जब तक नाड़ी पूर्णतया रुक न जाये तब तक छोटे-छोटे पूरक तथा कुम्भक करके अन्तःप्राण को हाथ में भेजते रहें। प्राणवायु के पूर्णतया भर जाने से रक्तसंचार रुक जाने से अन्त में नाड़ी रुककर लुप्तप्राय हो जाती है। कुछ काल तक अभ्यास करने पर प्राण को हाथ में केन्द्रित करने की विधि आजाती है। खेल में दिखाने के लिये श्वास को प्रथम बाहों में भरा जाता है। शेष शरीर पूर्व-स्थिति में जैसा का तैसा बना रहता है। कई बार रक्तसंचार कुछ देर के लिये इतना स्तब्ध हो जाता है कि नाड़ियां नीली प्रतीत होने लगती हैं।

इस प्रकार से प्राणायाम का अनेक प्रकार अभ्यास करने से मनुष्य अद्भुत पराक्रम दिखाकर जनता को आश्चर्यचकित कर सकता है। वास्तव में प्राण ही शक्ति का भण्डार है।

इति चतुर्थोऽध्यायः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पंचम अध्याय

प्राणायाम से रोग निवारण

हम प्रथमाध्याय में ऋग्वेद के मन्त्रों से यह सिद्ध कर चुके हैं कि प्राण एक सर्वश्रेष्ठ औषध है। शरीर के प्रत्येक अवयव पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। नित्य प्रति प्राणायाम का अभ्यास करनेवाले मनुष्य के शरीर के सब दोष क्षीण होकर स्वास्थ्य अति उत्तम बन जाता है। प्राणायाम के अन्दर यह एक विशेष गुण है कि यह व्यर्थ की चर्बी सुखाकर जहां साम्यावस्था में कर देता है वहाँ कृशकाय व्यक्ति के शरीर में धातुओं की वृद्धि कर परिपुष्ट भी बना देता है। आयुर्वेद के अनुसार अधिक मोटे मेदस्वी मनुष्य को स्वस्थ न मानकर एक भिन्न ही लक्षण किया है। यथा—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात् जिस मनुष्य के वात पित्त कफ तीनों दोष, जठराग्नि रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा शुक्र आदि धातुएं साम्यावस्था में हैं, पुरीष मूत्र आदि मलों का विसर्जन उचित परिमाण से ठीक समय पर होता है आत्मा एवं इन्द्रियां प्रसन्न उत्साहयुक्त हैं वही स्वस्थ है।

प्राणायाम करनेवाले मनुष्य के उपर्युक्त लक्षण अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं। सभी रोगों का उद्गमस्थान उदर है। मिथ्या आहार विहार करने से सर्वप्रथम वात पित्त कफ आदि दोष उदर में ही कुपित होते हैं, और फिर भिन्न भिन्न स्थानों में जाकर भिन्न-भिन्न रोगों के उत्पादक बन जाते हैं। उदर को ही सब रोगों का उत्पत्तिस्थान मानकर आज प्राकृतिक चिकित्सा को माननेवाले

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
विद्वान् सभी रोगों की चिकित्सा उदर के ही उपचार को प्रधानता देकर करते हैं, तथा इस विषय में वे पर्याप्त सफल भी देखे जाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार भी प्रधानरूप से उदर ही सब रोगों का जनक है। यदि हम अपने उदर को स्वस्थ एवं सक्रिय रख सकें तो निश्चित ही रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। रोग की उत्पत्ति के पश्चात् विविध औषधियों से उसे नष्ट करने की अपेक्षा यदि रोग पैदा ही न हों तो यह सर्वश्रेष्ठ प्रयास है। प्राणायाम एक ऐसी सफल क्रिया है जिससे शरीर में मल संचित हो ही नहीं सकता। शरीर के जिस किसी भाग में मल होगा प्राण वहीं पहुंचकर उससे टकरायेगा तथा उस विकार को शरीर से बाहर निकाल कर ही दम लेगा।

वात पित्त कफ ये शरीर में धातु दोष एवं मल रूप में कार्य करते हैं। जब ये तीनों साम्यावस्था में शुद्ध रूप में होते हैं तो शरीर को धारण करने से धातु कहलाते हैं, जब दूषित होकर हानि करते हैं तो इनकी संज्ञा दोष हो जाती है तथा ये ही वात पित्त कफ अतिदूषित होकर शरीर में शमन के अयोग्य हो जाते हैं तो इनको मल के नाम से कहा जाता है। पित्त और कफ दोनों ही अपने रूप में पङ्गु हैं। वायु ही इन्हें इधर-उधर शरीर के भागों में ले जाता है। इसी कारण वायु का ही प्राधान्य है। वायु के ठीक होने पर कफ पित्त भी ठीक कार्य करते हैं। शरीर में वायु अपने आप को दस भागों में बांटकर कार्य करता है। कार्य भेद से वायु के नाम भी दस ही प्रसिद्ध हैं। १. प्राणवायु, २. अपानवायु, ३. व्यानवायु, ४. समानवायु, ५. उदानवायु, ६. देवदत्तवायु, ७. कृकलवायु, ८. धनञ्जयवायु, ९. नागवायु, १०. कूर्मवायु, ।

प्राणायाम करने से यह दसों प्रकार का वायु शुद्ध एवं परिपुष्ट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
होकर अपने कार्यों को अच्छी प्रकार करता है। जिससे सम्पूर्ण विकार क्षीण होकर शरीर निर्मल रोगरहित हो जाता है। इस प्रकार प्राणायाम रोग के मूल को ही समाप्त कर मनुष्य को निश्चिन्त बना देता है। ऊपर हमने स्वस्थ मनुष्य के लिये प्राणायाम की उपयोगिता पर विचार किया अब हम यह बताने का यत्न करेंगे कि उत्पन्न हुये रोगों को प्राणायाम के द्वारा नष्ट कर शारीरिक शक्तियों का विकास किस प्रकार किया जा सकता है।

सर्वव्याधिनिवारक प्राणायाम

चाहे शरीर के किसी भी अङ्ग में किसी भी प्रकार की व्याधि हो उसे दूर करने के लिये निम्न क्रिया करनी चाहिये। सर्वप्रथम शरीर को कुछ शिथिल करके गहरा श्वास लो फिर जिस स्थान पर पीड़ा वा व्याधि हो उस पर अपना हाथ रखो। फिर अपनी चित्त की वृत्ति को व्याधि के स्थान पर स्थिर करो।

मान लो तुम्हारी छाती में दर्द है। तो उस समय शरीर के किसी भी अवयव की ओर ध्यान न ले जाकर केवल छाती की ओर मन लेगाओ। ऐसा प्रतीत होने लगे कि छाती को छोड़ शरीर का और कोई अवयव है ही नहीं। इस प्रकार वह अङ्ग तुम्हारी चित्त-वृत्ति का केन्द्र बन जावेगा। मन की वृत्ति के अनुसार सूक्ष्म प्राण की गति पीड़ा स्थल की ओर हो जावेगी। जिस प्रकार सामान्य कांच के अन्दर सूर्य किरणों को संगृहीत करने की शक्ति न होने से अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती, किन्तु सूर्यकान्त काँच के द्वारा धूप में थोड़े समय में ही अग्नि उत्पन्न हो जाती है इसी प्रकार सारे शरीर में फैला हुआ प्राण रोग निवारण में असमर्थ था। ध्यान के द्वारा एक स्थान पर केन्द्रित करने से अद्भुत परिणाम दिखाई देता है। जिस स्थान पर व्याधि है वहां पर मन की वृत्ति केन्द्रित करके यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
दृढ़ धारणा कर कि रोग हमारे शरीर से निकलकर प्रश्वास द्वारा दूर हो रहा है तथा जो श्वास हम ग्रहण कर रहे हैं उसके द्वारा शक्ति प्राप्त हो रही है। इस प्रकार तुम आत्मविश्वास के साथ तीव्र आज्ञा दो कि सम्पूर्ण व्याधि मेरे शरीर से निकल जावे। फिर उसके बाद बिना किसी संकोच के यह अनुभव करें कि व्याधि शरीर से बाहर निकल रही है। इस प्रकार क्रिया करने से तुम्हारी मानसिक शक्ति बढ जावेगी। प्राण मनकी वृत्ति अनुसार पीड़ा स्थल पर अपना कार्य करना आरम्भ कर देगा और आप स्वास्थ्य लाभ करेंगे। इस प्रकार आप प्रत्येक रोग पर इस क्रिया का प्रयोग कर सकते हैं। इच्छाशक्ति जितनी बलवती होगी उतनी शीघ्रता से प्राण भी अपना कार्य करेगा तथा शीघ्र ही लाभ प्रतीत होने लगेगा। कदाचित् शीघ्र लाभ न भी हो तो भी इस क्रिया को शीघ्र मत छोड़ो। क्योंकि फलप्राप्ति में विलम्ब होने का कारण क्रिया की शिथिलता ही है। क्रिया को दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक करने पर सफलता अवश्य मिलती है। इस रीति के द्वारा प्रत्येक व्याधि को दूर किया जा सकता है।

बुद्धिवर्धक प्राणायाम

ब्रह्मचर्य पालन न करने से, निरन्तर बौद्धिक परिश्रम अत्यधिक करने से, चिन्ता-शोक-भय-क्रोध-लोभ-मोह आदि मानसिक विकारों द्वारा अभिभूत होने से, मन को एक विषय में केन्द्रित न करने से, उदर की शुद्धि ठीक प्रकार न होने से, भूख न लगने से, शरीर के अतिकृश होने से, मद्य-मांस-तम्बाकू आदि मादक द्रव्यों का सेवन करने से, किसी भयंकर चोट के आघात से तथा अन्य इसी प्रकार के विपरीत आहार विहार से मनुष्य के वात पित्त दोष कुपित होकर मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओं को शिथिल कर देते हैं, जिससे सिर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
में भारीपन, मानसिक एवं शारीरिक थकान, स्मरणशक्ति का न्यून होना, सुनी और देखी हुई वस्तु को शीघ्र भूल जाना, बौद्धिक कार्यों में मन का न लगना आदि लक्षण प्रकट होते हैं जिनसे मनुष्य हर समय चिन्तित एवं निराश रहता है। इस प्रकार के व्यक्ति को निम्न प्रकार का प्राणायाम करना चाहिये।

इस विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में विद्यार्थियों के लिये प्राणायाम विधान करते हुए लिखते हैं—"चौथा बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उसके विरुद्ध न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले, और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इस प्रकार योगाभ्यास करे।"

यहां महर्षि ने प्राणायाम से स्पष्ट ही बुद्धि बढ़ने का निर्देश किया है, जो कि अनुभूत एवं प्रामाणिक है। इस प्राणायाम की विस्तार से हम चतुर्थ अध्याय में चर्चा कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त प्रातःकाल जलनेति, उज्जायी प्राणायाम, शीर्षासन, वृक्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, हलासन, चक्रासन आदि भी अत्युपयोगी हैं। मस्तिष्क को हानि पहुंचानेवाला सब आहार विहार बन्द कर देना चाहिये। मन में यह दृढ़ विश्वास रखना आवश्यक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
है कि मेरी बुद्धि किसी से कम नहीं तथा शनः शनः बढ़ रही है। काम क्रोध चिन्ता आदि मानसिक आवेशों से पृथक् होकर सदैव प्रसन्नचित्त रहने का अभ्यास करें।

भोजन पौष्टिक सात्विक और स्निग्ध करें। ब्रह्मचर्यपालन में विशेष निष्ठा से प्रवृत्त हों।

ऊर्ध्वरेता प्राणायाम

ऊर्ध्वरेता बनने की विधि से पूर्व वीर्य के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। वीर्य प्राणिमात्र का जीवन तत्त्व है। इस वीर्यरूपी वीज के विना संसार के किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति, रक्षा और जीवन नहीं रह सकता। इसको शास्त्रों में बोजत्व, वीरत्व ओजस् वल, तेज, शुक्र, पवित्रता, रेतस्, कान्ति, विन्दु, भर्ग आदि नामों से कहा है। उपर्युक्त सभी नाम मानव जीवन की दिव्य अलौकिक शक्तियों के सूचक हैं। यह दिव्यशक्ति हमारे भोजन का सारतत्त्व है। इस वीर्य की ऊर्ध्व एवं अधः नाम से दो गतियां होती हैं। दूपित आहार विहार एवं कुसंस्कारों से जहां वीर्य अधोगति को प्राप्त होता है वहां प्रयत्नविशेप करने से वीर्य की ऊर्ध्वगति भी हो जाती है।

ऊर्ध्वरेता होने की एक विशेष विद्या है। जिससे वीर्य की गति सदा के लिये ऊर्ध्व हो जाती है। उसी विद्या की झलक व रूपरेखा आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में मिलती है। अनेक वर्ष इसकी खोज तथा अनुभव मैं भी करता रहा हूं। इसका अनुभव मेरे अनेक ब्रह्मचर्यप्रेमी साथियों ने किया व कराया है। जिसने इसका अनुभव किया, उसी ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। जो इसका दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक और निरन्तर सेवन करेगा वह निश्चयपूर्वक ऊर्ध्वरेता हो जायेगा। उसकी इच्छा के बिना वीर्य का एक बिन्दु भी उसके शरीर से वाहर नहीं निकल सकता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
उस विधि का कुछ भाग ब्रह्मचर्यप्रेमियों के लाभार्थ नीचे देता हूं।

यह एक प्राणायाम की विधि है। इसके केवल पढ़ने मात्र से कार्य नहीं चलेगा। ब्रह्मचर्य के अन्य नियमों के पालन के साथ प्राणायाम का प्रतिदिन अभ्यास करना होगा। आजकल "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" के अनुसार सन्तान का निर्माण नहीं होता। माता-पिता बालकों को उत्पन्न करने में ही अपने कर्त्तव्य ही इतिश्री समझ बैठे हैं। ब्रह्मचर्यविहीन माता-पिता द्वारा उत्पन्न बालक दुर्बल, रोगी एवं अल्पायु होते हैं। बीज में ही दोष होने के कारण प्रायः बालकों की प्रवृत्ति संयम, चरित्र, ब्रह्मचर्य पालन की ओर न होकर स्वभाव से विषय-वासना की ओर होती है। तथा दुर्भाग्य से उन्हें चरित्र-पूर्ण गुरुकुल का वातावरण उपलब्ध न होकर शिक्षा के नाम पर सह-शिक्षा की तीव्र भट्टी से गुजरना पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप १५, १६ वर्ष की आयु में पहुँचते पहुँचते प्रत्येक बालक का शरीर कामाग्नि से जलने लगता है, शरीर के अन्दर जमा हुआ वीर्य पिघलने लगता है। जैसे शीत में जमा हुआ घृत अग्नि पर रखने से पिघलकर पतला हो जाता है तथा छिद्रयुक्त पात्र से बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे बालकों में भी दुष्टविचारों एवं कुचेष्टाओं के कारण वीर्य पतला होकर बहने लगता है और नाभि के नीचे मूत्राशय के समीप जो वीर्य का कोष (खजाना) है उसमें ठहरने लगता है और वीर्य से वीर्यकोष भर जाता है। यह वीर्य फिर लौट कर ऊपर नहीं जाता और स्वप्नदोषादि के द्वारा बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार वीर्य का कोष बार-बार भरता और खाली होता रहता है। यह वीर्य जो शरीर का राजा है जिसे शरीर का अंग बनाना था। जो २५ वर्ष की आयु से पहले कभी भी वा आयु भर शरीर से बाहर नहीं निकल सकता था तथा जो ऊर्ध्वगति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होकर शरीर और मस्तिष्क की शक्ति का रूप धारण करता, आज इच्छा के विरुद्ध और शरीर का सार अमृतरूपी वीर्य मूत्र के समान बुरी तरह टपक-टपक कर निकल रहा है, ऐसी अवस्था में बालक और युवक धाड़ मारकर रोते और चिल्लाते हैं।

उनके आंसू पूंछने के लिए यह ऊर्ध्वरेता होने का गुप्तरहस्य कर्त्तव्यभावना से लिख रहा हूं। इससे शुक्राशय (वीर्य के खजाने) में पड़ा हुआ वीर्य फिर ऊपर को जाने लगेगा। जैसे दीपक का तैल जाता है। यह ऋषियों की गुप्तविद्या है जो आज लाखों रुपये खर्च करने पर नहीं मिलती। ब्रह्मचर्य के दीवाने इसकी रक्षा करने में रात-दिन एक कर देते हैं, भयंकर से भयंकर पर्वतों की गुफाओं और कन्दराओं को छान मारते हैं तब जाकर इसका भेद मिलता है। इसलिए इसको पढ़कर व्यर्थ न समझ लेना, इसका श्रद्धापूर्वक अभ्यास करो। इससे स्वप्नदोषादि रोगों से अवश्य ही पिंड छूट जायेगा और वीय-रक्षा में सफल हो जाओगे। विधि इस प्रकार है—

पहले सिद्धासन से बैठ जाओ। जिसकी विधि तीसरे अध्याय में लिखी जा चुकी है। यदि केवलमात्र इस सिद्धासन का ही अभ्यास किया जाये तो यह भी वीर्यरक्षार्थ तथा स्वप्नदोष को दूर करने में अत्यन्त हितकर है। उसके पश्चात् बाह्यविषय या बाह्यकुम्भक प्राणायाम करें। जिसकी विधि का उल्लेख हम चतुर्थ अध्याय में कर चुके हैं। ऊर्ध्वरेता बनने के लिये इस प्राणायाम के आदि से अन्त तक एक विशेष क्रिया का ध्यान रखना तथा अभ्यास करना है।

श्वास निकालने से पूर्व जो नाभि के नीचे मूलाधार को खींचा था उसे निरन्तर खींचे ही रखना है। ढीला नहीं छोड़ना। जितने समय तक अथवा जितने भी प्राणायाम करें मूलाधार जो खींचे ही रखें। पहले-पहले कुछ कठिनाई प्रतीत होगी किन्तु कुछ दिनों के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभ्यास से सरलता से कर सकेंगे। फिर मूलाधार को खींचने से तथा गुदा खिंची रहेगी और वीर्य कोष जहां ठहरता है वह भी ऊपर को खिंचा रहेगा। मूलधार खींचते समय नाभि से नीचे ध्यान करें कि हम वीर्य को ऊपर की ओर खींच रहे हैं। कुछ समय के अभ्यास के बाद वीर्य ऊपर को यथार्थ में खिंचने तथा जाने लगेगा और आगे चलकर आप पूर्णरूपेण ऊर्ध्वरेता बन जावेंगे। वीर्य ऊपर को बहने लगेगा। वीर्यकोष में वीर्य आना ही बन्द हो जावेगा। फिर आपकी इच्छा के बिना एक बिन्दु भी बाहर नहीं निकल सकता। स्वप्नदोष प्रमेह आदि रोग तो हो ही कैसे सकते हैं। ऐसी अवस्था भी आवेगी कि कभी स्वप्नदोष होने का अवसर आवेगा तो अर्धनिद्रा में आप मूलाधार को खींच लेंगे। आखें खुल जावेंगी, स्वप्नदोष से बच जावेंगे। आप की विजय होगी। आपकी विजय और हार आपके अभ्यास के ऊपर है। एक वर्ष तक इस बाह्य (रेचक) प्राणायाम का अभ्यास करें। उसके पश्चात् द्वितीय आभ्यन्तर प्राणायाम करें और इसी क्रम से तृतीय स्तम्भ-वृत्ति तथा चतुर्थ बाह्याभ्यान्तरविषयाक्षेपी प्राणायाम करें। सब प्राणायामों का अभ्यास करने पर आप निश्चित रूप से ऊर्ध्वरेता हो जावेंगे। इस प्राणायाम की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। सब ऋषियों और विशेषतया पूज्यपाद महर्षि दयानन्द की कृपा है जो ऐसी विद्या इस गिरे हुए संसार को मिली है। इस प्राणायाम के प्रभाव से जहां स्वप्नदोषादि रोग दूर होंगे वहां शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल पराक्रम और जितेन्द्रियता की प्राप्ति होगी। इसका अभ्यास सब युवकों विद्यार्थियों तथा ब्रह्मचर्य प्रेमी स्त्री पुरुषों को करना चाहिये। यह वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन और परम औषध है। इसके अतिरिक्त पद्मासन, सिद्धासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्व पद्मासन, हलासन, शीर्षासन, योगमुद्रा आदि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आसन तथा उज्जायी, भस्त्रिका आदि प्राणायाम भी अति हितकारी होते हैं। यदि वीर्यविकार के कारण शरीर में जलन होती हो तो भस्त्रिक के स्थान पर शीतली प्राणायाम करना लाभदायक है। विचार शुद्ध पवित्र रखें, लालमिर्च, गुड़, शक्कर, प्याज, लहसुन आदि उत्तेजक पदार्थों का सेवन न करें। प्राणायाम में विशेष सफलता चाहने के इच्छुक नमक का सेवन भी छोड़ दें।

मलबद्धतानाशक प्राणायाम

भोजन में अति जलपान करने से, नितान्त शुष्क भोजन करने से, अति परिश्रम करने से, विष्टम्भी एवं गरिष्ठ भोजन करने से, शौच आदि के वेग को रोकने से तथा अन्य भोजन के नियमों का पालन न करने से उदरस्थ वायु कुपित होकर उदर में मल को सुखा देता है। जिसके कारण से शौच (पुरीष) नहीं निकलता अथवा बहुत देर प्रतीक्षा करने पर थोड़ा सूखा मल निकलता है। इसी को बुद्धिमान् कब्ज वा मलबद्धता कहते हैं। हमारी आंतों के भीतर छोटे-छोटे ग्राहक अंकुर लगे रहते हैं जिनका कार्य भोजन से रस खींचकर यकृत् में भेजना है। वहां जाकर यह रस रंजकपित्त से रंगा जाकर रक्त के रूप में परिन्नर्तित हो जाता है। जब ये ग्राहक अंकुर भोजन से रस ग्रहण कर लेते हैं तो अपानवायु द्वारा मलभाग मलाशय में चला जाता है और वहां से गुदा मार्ग द्वारा बाहर निकल जाता है। जिस मनुष्य को मलबद्ध रोग होता है उसकी आंतें मल को नहीं छोड़ती हैं, मल उन्हीं में चिपका रहता है, ग्राहक अंकुर अपना कार्य करते रहते हैं जिससे दूषित एवं दुर्गन्धित रस भी चूसकर यकृत् में भेज दिया जाता है। पुनः आगे की रक्त आदि सब धातुयें दूषित हो जाती हैं। मनुष्य नितान्त निस्तेज, उत्साह-हीन, दुर्बल बन जाता है, वास्तविक क्षुधा बन्द हो जाती है। भोजन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
से पूर्व कुछ क्षुधा प्रतीत होती है किन्तु भोजन में रुचि एवं स्वाद नहीं रहता। आयुर्वेद के अनुसार कब्ज अनेक रोगों की जननी है। आज भारत में करोड़ों मनुष्य इस रोग से पीड़ित हैं, अरबों रुपया कब्जनाशक औषधियों पर व्यय होता है। कब्ज का रोगी ब्रह्मचर्य पालन में तो सफल हो ही नहीं सकता। वैसे तो प्रत्येक प्राणायाम कब्ज को समूल नष्ट करने का सामर्थ्य रखता है। किन्तु कब्ज ही को दूर करने के लिए यहां एक विशेष प्राणायाम लिखते हैं। विधि इस प्रकार है—

सुख पूर्वक स्वस्तिक आदि किसी भी आसन से बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर जमाकर रखें। सर्वप्रथम पूरक प्राणायाम करें तथा वायु छाती में भरकर उदर में ले जावें। उदर को वायु से अधिकाधिक फुलादें, फिर रेचक करें। रेचक करने पर पेट को बिल्कुल सिकोड़कर पीठ के साथ मिला दें। मूलबन्ध एवं उड्डियान बन्ध ठीक प्रकार लगे हों, उसके बाद पुनः पूरक करें और उदर वायु से फुला दें तथा इसी प्रकार पुनः रेचक करके मूलाधार संकोच करें। इस प्राणायाम को २५ से १०० बार तक किया जा सकता है इसके अभ्यास से कुछ ही दिनों में आंतों में शक्ति आजाने से पुरानी से पुरानी कब्ज भी दूर हो जावेगी। इसके अतिरिक्त कब्ज को दूर करने के लिये उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, पश्चिमोत्तानासन, पादांगुष्ठासन, धनुरासन, हलासन, सर्वांगासन, न्यौली, शीर्षासन आदि आसनों का अभ्यास भी अति लाभप्रद होता है।

प्रतिश्यायनाशक प्राणायाम

मल मूत्रादि के वेग रोकने से, अजीर्ण (अपचन) होने से, अधिक बोलने से, क्रोध से, ऋतुओं की विपरीतता से, सिर पर धूप आदि की गर्मी से, अधिक जागने से, अधिक सोने से, वर्षा में भीगने से,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
शीत लगने से, ओस में सोने या घूमने से, ब्रह्मचर्य नाश से, भाप, धूआं एवं धूलादि से संचित कफ दूषित होकर प्रतिशाय (जुकाम) को पैदा कर देता है। जिससे मनुष्य को छींके आना, शिर भारासा ज्ञात होना, शरीर में जकड़न, अंगों का दुखना, रोमाञ्च होना, नाक से पानी आना अथवा नितान्त रुक जाना आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। यह रोग उदरविकार से सम्बन्ध रखता है। जब मनुष्य का प्रथम धातु रस दूषित होकर श्लेष्मा (कफ) का रूप धारण कर लेता है तो सिर में जाकर स्नायुओं का अवरोध कर लेता है, इस का नाम जुकाम है। इसके अतिरिक्त मुंह ढककर खिड़की, द्वार बन्द करके सोने से, अशुद्ध वायु के फेफड़ों में पहुंचने से भी जुकाम हो जाता है। प्राणायाम के अभ्यासी को प्रथम तो जुकाम होता ही नहीं और यदि कभी प्रमादवश हो जावे तो अति शीघ्र समाप्त हो जाता है। इस रोग में भस्त्रिका प्राणायाम परम औषध है। एक शुद्ध वस्त्र से नाक साफ करते जावें। प्राणायाम की उष्णता से सम्पूर्ण संचित कफ पिघलकर बाहर निकल जावेगा, उदर अग्नि प्रदीप्त होने से कफ बनना बन्द होकर रक्त बनने लगेगा। इस प्रकार एक दिन में ही जुकाम समाप्त हो जावेगा। जुकाम के अन्दर भोजन विष तुल्य होता है। अतः उपवास, जलनेति, उत्तानपादासन, पश्चिमोत्तानासन, हस्तपादांगुष्ठासन, पवनमुक्तासन विशेष लाभदायक सिद्ध होते हैं।

सिरदर्दनाशक प्राणायाम

सिर दर्द अति कष्टदायक रोग है। इसकी उत्पत्ति के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम उदर का विकृत होना, जब उदर में भोजन का परिपाक ठीक प्रकार नहीं होता तो वह दूषित हुआ रस कफ (नजला) रूप में परिवर्तित होकर वायु द्वारा प्रेरित किया हुआ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
सिर में जाकर सूक्ष्म नस नाड़ियों का अवरोध कर देता है जिसके कारण सिर भारी, आंखों में पानी आना, अति पीड़ा होना आदि लक्षण पैदा हो जाते हैं। सिर दर्द का दूसरा कारण अतिश्रम चिन्ता-क्रोध-ब्रह्मचर्य नाश, अति जागरण आदि विपरीत आचरण होते हैं। अतिश्रमादि से वात कुपित होकर सिर में अति पीड़ा पैदा कर देती है। शिर दर्द की चिकित्सा के लिये सर्वप्रथम रोग के कारण को दूर करना चाहिये। यदि उदरविकार से सिर दर्द हो तो जुकाम की चिकित्सा में लिखे आसन एवं प्राणायाम करने चाहियें तथा अतिश्रम आदि से होने पर जलनेति, प्रातः नासिका से जलपान एवं शीतली प्राणायाम लाभदायक रहता है।

श्वास (दमा)

श्वास वा दमा उदर की विकृति से ही होता है। जब किया हुआ भोजन ठीक प्रकार से नहीं पचता तो उदर की उष्णता से ऊपर उठता है, जो कि श्वास प्रणाली में संचित होकर श्वासमार्ग को रोक देता है जिसके कारण हृदय में पीड़ा, उदर में शूल, पेट का फूलना, मुख का फीकापन आदि लक्षण प्रकट होते हैं, आयुर्वेद में इसे महाव्याधि माना है। यह अतिभयंकर रोग है। इस रोग में रेचक-पूरक एवं समवृत्ति प्राणायाम विशेष लाभप्रद हैं। प्राणायाम करते समय अधिक शक्ति न लगाकर थोड़ा-थोड़ा निरन्तर अभ्यास करना चाहिये। इस रोग के लिये प्राणायाम ही सर्वश्रेष्ठ औषधि है। वैद्य डाक्टर आदि भी जब रोगी को अन्तिम अवस्था में देखते हैं तथा सभी औषधियां व्यर्थ हो जाती हैं तो गहरे एवं लम्बे श्वास लेने का ही परामर्श देते हैं जो कि एक प्रकार से प्राणायाम ही है। उदर को ठीक करने के लिये जो आसन हम पूर्व लिख चुके हैं वे इस रोग में भी लाभप्रद हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By:SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निद्रा न आने की चिकित्सा

पेट की कब्जी के कारण, ज्वरादि रोगों से, अधिक मानसिक श्रम चिन्ता से, चाय आदि नशीली चीजों से मनुष्य को निद्रा नहीं आती। जिसके कारण शिर भारी हो जाता है, शिर दर्द, चक्कर आना, अंगों का टूटना, आंखों में जलन, आलस्य आदि विकार उपस्थित हो जाते हैं। अनिद्रा दूर करने के लिये उदर की शुद्धि आवश्यक है। उदर को ठीक करनेवाले आसन उपयोगी हैं। सोते समय पूरक और रेचक करके सारे शरीर को शिथिल कर दें। मन को भृकुटि के मध्य स्थिर कर अन्धकार में विलीन कर दें। इस प्रकार यह रोग दूर हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त क्षय (तपेदिक), खांसी, अतिसार (दस्त), मूर्च्छा, रक्तविकार, वातविकार, नेत्रों की दुर्बलता, अजीर्ण, पेट दर्द, अर्श (बवासीर), अपस्मार (मृगी), उन्माद (पागलपन), कफ रोग, कण्ठ रोग आदि की चिकित्सा प्राणायाम एवं आसनों के द्वारा सफलतापूर्वक की जा सकती है जिसे बुद्धिमान् साधक प्राणायाम के तत्त्व को समझकर स्वयं करने में समर्थ हो सकते हैं।

इति पंचमोऽध्यायः।

प्राणायाम साधन में अत्यन्त सहायक—

आसनों के व्यायाम (सचित्र)

(ले० वेदव्रत शास्त्री आयुर्वेदाचार्य)

इसमें तीन दर्जन से अधिक आसनों का परिचय, उनके करने की विधि एवं लाभ समझाये गये हैं। प्रत्येक आसन का चित्र (फोटो) इस पुस्तक की अपनी विशेषता है। मूल्य १-२५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षष्ठ अध्याय

प्राणायामपूर्वक व्यायाम

वैसे तो प्राणायाम स्वयं ही पूर्ण व्यायाम है। इससे शरीर के प्रत्येक अवयव का श्रम हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रत्येक व्यायाम के साथ भी प्राणायाम का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राणायाम के अभाव में व्यायाम अपूर्ण ही नहीं अपितु हानिप्रद भी होता है। इसी कारण व्यायाम के प्रसिद्ध आचार्य प्रो० राममूर्त्ति इस विषय में लिखते हैं—"व्यायाम प्राणायाम के साथ करो, अर्थात् श्वास मुख से न लेकर नाक से लो और पूरक; कुम्भक रेचक करते हुये करो।"

लोग यह समझते हैं कि प्राणायाम तो योग का ही एक अंग है। इसका व्यायाम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसी भूल के कारण लोगों को व्यायाम से पूर्ण लाभ नहीं होता। प्राणायाम व्यायाम का प्राण है और इस का हमारे शरीर के साथ सीधा सम्बन्ध है। यह समझ लेना आवश्यक है। इसलिए थोड़ा खोलकर लिखा जाता है।

जब कोई व्यायाम आरम्भ करता है, तो उसके पुट्ठों वा मांसपेशियों में पीड़ा हो जाती है। इसका अधिक अनुभव उस व्यक्ति को होता है, जो प्रतिदिन व्यायाम नहीं करता। किन्तु एक दिन देखा-देखी या किसी के उत्साहित करने पर सौ-पचास बैठकें इकट्ठी ही लगा डालता है अथवा एकाध मील की दौड़ लगा लेता है। इससे उसकी रानें और पिंडलियां अकड़ जाती हैं और भरी-भरी प्रतीत होती हैं। उठने-बैठने में बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
जिन पुट्ठों से कभी कार्य नहीं लिया गया, ऐसे सुख (आराम) में रहनेवाले पुट्ठों के छोटे-छोटे भाग (रेशे) व्यायाम करने से टूट जाते हैं और यह टूटकर शरीर में इकट्ठे हो जाते हैं और इनसे सूजन उत्पन्न होकर कष्ट होता है। किन्तु प्रतिदिन व्यायाम वा परिश्रम के अभ्यास से वे ही भाग (रेशे) सुदृढ़ हो जाते हैं और टूटते नहीं अथवा बहुत कम टूटते हैं। क्योंकि हमारे रक्त में जो प्राणवायु है, वह इन टूटे हुए भागों (रेशों) की जीवनशक्ति (ओक्सीजन) श्वास द्वारा बाहर के शुद्ध वायु से हमारे अन्दर आती रहती है और प्रश्वास द्वारा टूटे हुए व्यर्थ भागों (रेशों) वा रक्त के मल आदि से मिलकर बना हुआ विषैला वायु (कार्बन) बाहर निकल जाता है यही कारण है कि व्यायाम करने के समय श्वास चढ़ जाता है और श्वास-प्रश्वासों की गति बढ़ जाती है। क्योंकि साधारण अवस्था में टूट-फूट कम होती है। इसलिए साधारण श्वास-प्रश्वास से कार्य चल जाता है। किन्तु व्यायाम करने से जब टूट-फूट अधिक बढ़ जाती है, तब इसको ठीक करने के लिए अधिक प्राणवायु चाहिए और अधिक प्राणवायु के लिए अधिक श्वास और प्रश्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ़ जाते हैं। जब व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ़ जाते हैं और प्राणवायु हमारे फेफड़ों में जाता है और रक्त के साथ मिलकर शरीर के कोने-कोने में व्याप्त हो जाता है, तो उस समय यह शरीर की उष्णता को पसीने के द्वारा बाहर निकालता है। इसलिए व्यायाम करने से हमें पसीना आता है। जिस समय हम कोई कठोर व्यायाम करते हैं, तब श्वास प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। कार्बन के ओसजन के साथ मिलने से जो रासायनिक क्रिया होती है, उससे शरीर की उष्णता भी बढ़ जाती है। यदि प्राण और अपान की टक्कर वा संघर्ष से उत्पन्न हुई उष्णता को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कम न कर दिया जाए तो ज्वर हो जाए। क्योंकि शरीर की उष्णता बढ़ जाने का ही नाम ज्वर है। इस अधिक बढ़ी हुई उष्णता को हमारा प्राणवायु श्वास प्रश्वास तथा पसीने के द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकाल फैंकता है। उष्णकाल में हम जल को ठण्डा रखने के लिए उसे मिट्टी के घड़े में भर देते हैं। ऐसा करने से घड़े के बाह्यभाग पर जो जल आ जाता है, वह उष्णवायु के साथ छूकर वाष्प बन जाता है। वाष्प बनाने के लिए जिस उष्णता की आवश्यकता होती है, उसको घड़े के जल से ले लेता है। इसी प्रकार जब व्यायामादि के कारण हमारे शरीर में उष्णता बढ़ती है, तब घड़े के समान हमारा शरीर भी पसीजने लगता है और पसीने के द्वारा शरीर में बढ़ी हुई उष्णता बाहर निकल जाती है और पसीने के साथ ही अनेक प्रकार के विजातीय मल (विष) जो अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं, सहज में ही जो शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इसलिए वेद भगवान् ने भी व्यायाम को परम आरोग्य का मुख्य साधन माना है—

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥

(अथर्व० कां ७२, सू० ४. मं० ४)

निर्बल करनेवाले शोषक रोगों को और सब राक्षसों अर्थात् सब रोगकृमियों को हम व्यायाम के द्वारा दबाते हैं वा नष्ट करते हैं।

पाठक ! इतना लिखने से समझ गये होंगे कि श्रम (थकान) को दूर करने के लिए, टूटे हुए पुट्ठों को जोड़ने के लिए अथवा उनमें नवजीवन लाने के लिए और व्यायाम से उत्पन्न हुए विष को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूर करने के लिए प्राणवायु को प्रविष्ट करना चाहिये। प्राणवायु का अधिक प्रवेश शीघ्र-शीघ्र श्वास लेकर अथवा गहरे श्वास लेकर ही किया जा सकता है। जिस प्रकार नदी का मार्ग भीड़ा (तंग) होने से उसकी धार व गति का वेग बढ़ जाता है उसी प्रकार हमें भी व्यायाम के समय शीघ्र श्वास लेना पड़ता है और हमारा श्वास फूल जाता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा श्वास न फूले, तो हमें गहरे श्वास लेने का स्वभाव डालना चाहिए। गहरा श्वास सारे फेफड़ों में जाता है। प्रायः लोगों को श्वास लेना नहीं आता। उनका थोड़ासा श्वास थोड़ेसे फेफड़ों में जाकर उलटा चला आता है। गहरे श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिये जिससे हमारे फेफड़े स्वस्थ और लचकीले हो जायें। व्यायाम में गहरे श्वासों का नाम ही प्राणायाम है। गहरा श्वास लेने के समय हमें मन की शक्ति के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक भाग में वायु पहुंचाने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यायाम के समय हमारी नासिका के दोनों छिद्र शुद्ध और खुले हुए होने चाहियें।। आसन, दण्ड, बैठक कोई भी व्यायाम आप करें सदैव प्राणायाम के साथ करें। यही हमारी प्राचीन शैली है। प्राणायाम वा गहरे श्वास लेने के महत्त्व को अब योरोप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी समझने लगे हैं और यही प्राणायाम की विधि (Deep breathing) के नाम से प्रसिद्ध है।

इंगलिस्तान के डाक्टर ऊस्टेस माइल्ज अपनी पुस्तक में श्वास लेने की विधि के विषय में लिखते हैं–

"पूर्ण श्वास लेने की विधि प्राचीन आर्य ग्रन्थों में लिखी है। श्वास सावधानी से लो अर्थात् यदि तुम प्राकृतिक रूप से भलीभांति श्वास लेना नहीं जानते तो अभ्यास करो। श्वास गहरा लेना चाहिए कि सम्पूर्ण फुफ्फुस भर जावें और फिर सम्पूर्ण श्वास

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाहर भी निकालना चाहिए। उत्तमरूप से श्वास लेने का अभ्यास बहुत गुणकारी है और एक ऐसी कला है जिसे मनुष्य को प्रतिक्षण पूर्ण करते रहना है, बुढ़ापे में जाकर इसे छोड़ा नहीं जा सकता। वह इसे मरते दम तक पूरा करता है और लाभ उठा सकता है। सहस्रों मनुष्य ऐसे हैं जो श्वास लेने की ठीक विधि को नहीं जानते। उत्तम प्रकार से एक दो वर्ष श्वास लेने का अनुभव कर लो, फिर तुम्हें स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि फुफ्फुस की वायु की मात्रा दुगुनी हो गई है।"

वे आगे लिखते हैं—"उत्तमविधि से श्वास लेना शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के लिए है। इससे स्वास्थ्य बढ़ता है, उत्तमरूप से श्वास लेने से रूप-रंग ठीक हो जाता है और मनुष्य का जीवन सुख-भोगने के योग्य हो जाता है और हार्दिक वा मानसिक विचार उत्तम हो जाते हैं। उत्तमरूप से श्वास लेने से धन और शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं हो पाती। इससे मनुष्य अपने शरीर और मन को वश में कर सकता है।"

वैसे तो कोई भी व्यायाम करें फुफ्फुस का व्यायाम भी साथ ही होता जाता है। क्योंकि सभी व्यायामों में श्वास शीघ्र-शीघ्र आता जाता है, इससे फुफ्फुस खूब बढ़ते और सिकुड़ते हैं। अच्छे से अच्छा वायु रक्त को शुद्ध करता है। रक्त का भ्रमण बढ़ता है और शरीर का मल (मवाद) बाहर निकलता है। कुछ मल तो स्वेद द्वारा निकल जाता है, कुछ व्यायाम की उष्णता से जल जाता है, कुछ रक्त के साथ मिलकर फुफ्फुस में आकर शुद्ध हो जाता है, कुछ श्वास मार्ग से बाहर निकल जाता है, कुछ मल मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। ये सब लाभ व्यायाम से होते हैं। किन्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्राणायाम वा गहरे श्वासों के अभ्यास के द्वारा रक्त और शरीर की शुद्धि और फुफ्फुस का व्यायाम अन्य सभी व्यायामों की अपेक्षा सैकड़ों गुना लाभदायक होता है। इसलिए अन्य धार्मिक नित्यकर्मों के साथ दैनिक प्राणायाम करने की आज्ञा प्राचीन शास्त्रों ने दी है। गहरे श्वासों के अभ्यास का नाम ही प्राणायाम है यह पहले ही बताया जा चुका है। अतः सदैव गहरे श्वास लेवें।

गहरे श्वास लेने की विधि का अभ्यास

किसी ऐसे शान्त और एकान्त स्थान में जहाँ का वायु शुद्ध और शीतल हो, जिसमें धूल या धुआँ आदि हानिकारक वस्तुएँ न मिली हुई हों, सिद्धासन वा किसी आसन में जिसमें आप सुखपूर्वक बैठ सकते हों, इस प्रकार बैठ जायें कि आपकी छाती, ग्रीवा (गला) और सिर तीनों एक सीध में रहें, मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) भी सीध में रहनी चाहिये। धीरे-धीरे नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकालें, जब तक छाती, आमाशय (पेट) रिक्त न हो जायें, श्वास को निन्तर निकालते रहें अर्थात् सारा वायु निकाल देना चाहिये। इस श्वास के बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे श्वास को भीतर लें और जब तब छाती और आमाशय भली-भान्ति न भर जाएं लेते ही रहें; इस श्वास के भरने की क्रिया को पूरक कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ-आरम्भ में रेचक और पूरक का अनेक बार अभ्यास करें। जब एक दो मास के अभ्यास के अश्चात् श्वास का निकालना और भरना भलीभान्ति आजावे तभी बाहर वा अन्दर श्वास के रोकने का अभ्यास करना चाहिए।

श्वास के बाहर वा अन्दर रोकने के अभ्यास का नाम ही कुम्भक है। यदि किसी की इच्छा आरम्भ में ही श्वास के रोकने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की हो तो थोड़ी देर रोकना चाहिए। रोकने का समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए; बलपूर्वक रोकने से हानि होती है। अभ्यास से बाहर और भीतर दोनों ओर श्वास के रोकने की अवधि वा (कुम्भक) का समय स्वयमेव बढ़ जाता है। रेचक वा पूरक का अभ्यास सीधे खड़े होकर, लेटकर, चलते हुए अथवा पश्चिमोत्तानासन में भी किया जा सकता है। व्यायाम करने से पहले एक दो वार भस्त्रिका प्राणायाम करने से बड़ा लाभ होता है, जिसकी विधि हम पहले चतुर्थाध्याय में लिख चुके हैं। इस प्रकार भस्त्रिका तथा गहरे श्वासों का किया गया यह अभ्यास फेफड़ों को स्वस्थ और लचकीला बना देता है। लचकीले फेफड़ों में श्वास वा प्राण की मात्रा अधिक आती है। जब हम एक बार में अधिक प्राण अन्दर भर लेंगे तो शीघ्र ही दूसरा श्वास लेने की आवश्यकता न होगी। इसी को गहरा वा उत्तम श्वास कहते हैं।

प्राणायामपूर्वक व्यायाम करने का विशद वर्णन ब्रह्मचर्य के साधन चतुर्थ भाग के पृष्ठ ११० से १२५ तक किया गया हैं। प्रो० राममूर्ति के दण्ड, सपाट बैठक आदि का सचित्र वर्णन वहां कर चुके हैं। दण्ड बैठक कवड्डी, आसन आदि सब प्रकार के व्यायाम रेचक पूरक कुम्भक पूर्वक करने चाहियें। इस प्रकार व्यायाम करने से अत्यधिक सफलता मिलेगी, जहाँ शरीर परिपुष्ट, सुन्दर, तेजस्वी बनेगा वहाँ बुद्धि, मन, मस्तिष्क, अन्तःकरण, इन्द्रियां आदि सभी आन्तरिक अवयव भी शुद्ध-पवित्र एवं परिपुष्ट वन जावेंगे, जिससे पूर्ण आदर्श ब्रह्मचारी बनने में सफलता मिलेगी। अतः सभी को प्राणायामपूर्वक ही व्यायाम करना उचित है।

इति षष्ठोऽध्यायः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

❀ ओ३म् ❀

ब्रह्मचर्य के साधन

(सप्तम-अष्टम भाग)

सत्सङ्ग-स्वाध्याय

लेखक—
श्री स्वामी ओ३मानन्द सरस्वती
श्री वेदव्रत शास्त्री

प्रकाशक—
हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर रोहतक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

सप्तम-भाग

* सत्सङ्ग *

विषय	पृष्ठ
१ भूमिका	९९
२ वेदोपदेश	१०१
३ वेद में दुष्टों की संगति का निषेध	१०३
४ वेद में सत्संग करने का विधान	१०४
५ सत्संग का अर्थ	१०६
६ सत्संग-महिमा	१०६
७ कुसंग-दोष	१०९
८ शिक्षा और कुसंग	११६
९ सत्संग के लाभ	११९
१० संग किस का करना चाहिये।	१२३
११ कुसंग के आधुनिक स्रोत	१२७

अष्टम-भाग

* स्वाध्याय *

विषय	पृष्ठ
१ स्वाध्याय की आवश्यकता	१३३
२ स्वाध्याय का अर्थ	१३८
३ स्वाध्याय की महिमा	१४०
४ स्वाध्याय का फल	१४३
५ स्वाध्याय का क्रम	१४७
६ स्वाध्याय और श्रावणी	१४९
७ स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य	१५१
८ स्वाध्याय किस का और क्यों ?	१५२
९ स्वाध्यायोपयोगी ग्रन्थ	१५५
१० आर्ष ग्रन्थों का महत्त्व	१५६
११ उपसंहार	१५७

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

सत्संग

[सप्तम भाग]

भूमिका

शुद्ध विचार, सात्त्विक आहार, व्यायाम, प्राणायाम, सत्संग स्वाध्याय तथा ईश्वरभक्ति ; ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए इनका श्रद्धा-पूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये । वीर्यरक्षा के ये मुख्य साधन हैं, इनका श्रद्धापूर्वक नियमित रूप से पालन करने वाला व्यक्ति ही ब्रह्मचारी रह सकता है, अन्यथा ब्रह्मचर्य का पालन करना या वीर्यरक्षा कर ऊर्ध्वरेता बन सकना असम्भव है।

पाठकवृन्द ! समय-समय पर उपरिलिखित साधनों पर हम प्रकाश डालते रहे हैं तथा इस प्रस्तुत पुस्तक में भी इन्हीं साधनों में से "सत्संग" और "स्वाध्याय" इन दो साधनों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। सामान्य दृष्टि से यह पुस्तक सभी नर-नारियों के लिये अत्युपयोगी है, किन्तु नवयुवक विद्यार्थी, ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणियों के लिये तो विशेषतया लिखा हो गया है । अतः उनको इसका बार-बार स्वाध्याय कर विशेष लाभ उठाना चाहिये।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि उत्तम तथा अधम विद्यार्थियों वा सज्जन और दुर्जनों में दलबन्दी(पार्टीबाजी)हो जाया करती है। कुछ भावुक नवयुवक किसी महापुरुष के सत्संग से अथवा उत्तम ग्रन्थों के स्वाध्याय से कल्याण मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर देते हैं, किन्तु दुष्ट नीच साथियों के दबाव से पुनः उसी पाप-पङ्क में फंस जाते हैं। क्योंकि जब कोई उन्नति करता है, सन्मार्ग पर चलता है तब निकृष्ट व्यक्ति उसकी उन्नति को सहन न कर सकने के कारण उसे पतित करने का यत्न करते हैं। चाणक्य ने कहा है—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या निर्धनानां महाधनाः।
व्रतिनः पापशीलानामसतीनां कुलाङ्गनाः॥

मूर्ख सदा विद्वानों से, निर्धन धनवानों से, पापी=दुराचारी सदाचारी पुरुषों से और कुलटा=दुश्चरित्र स्त्रियां पतिव्रताओं से सर्वदा द्वेष करती हैं। ये दुरात्मा स्वयं गड्ढे में से निकल नहीं सकते और दूसरे सदाचारी व्यक्तियों की उन्नति भी इन्हें सहन नहीं होती, अत एव सदा जलते-भुनते रहते हैं तथा उनको भी अपने साथ मिलाने का, पतित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। किन्तु पुरुषसिंह वे ही हैं जो इन दुरात्माओं का प्रतिवाद करते हुए अपने लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं। धीर वे ही हैं जो आपत्ति काल में भी अडिग रहते हैं, जिनका चित्त विकार उपस्थित होने पर भी अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं होता। कहा भी है—"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः"

इसलिये हे कल्याण मार्ग के पथिक! तू श्रद्धा से, धीरता से, वीरता से अपने पथ पर चलते जाना, सब विघ्न-बाधाओं को छिन्न-भिन्न करते हुए आगे ही आगे बढ़ते जाना, एक दिन तेरे लक्ष्य की पूर्ति अवश्य होगी, आनन्दमय कल्याणकारी प्रभु की प्राप्ति होगी और तू निहाल हो जायेगा, तेरी सम्पूर्ण साधनायें तथा यातनायें सफल हो जायेंगी। किन्तु कहीं मार्ग में भटक न जाना। सुख का मार्ग, प्रभु की प्राप्ति का मार्ग यही है, एकमात्र यही। "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"।

यदि कुछ नवयुवकों के लिये वा अन्धकार में भटकते हुए कल्याणेच्छुओं के लिए भी इस पुस्तक ने प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ओ३मानन्द सरस्वती

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदोपदेश

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैद ते न्यविशन्त केपयः ॥
(ऋ० १०।४४।६) (अथर्व० २०।९४।६)

(प्रथमाः) जो प्रथम कोटि के सर्वोत्तम पुरुष हैं (देवहूतयः) देवों का=दिव्य गुणों का आह्वान करनेवाले हैं, जिन्होंने अपने अन्दर विद्या, ब्रह्मचर्य, सदाचार, ईश्वरभक्ति आदि श्रेष्ठ गुणों को धारण किया है वे (पृथक् प्रायन्) अन्य साधारण मार्ग से पृथक् ही उत्तम मार्ग से अपने-अपने कर्मानुसार जाते हैं। वे (दुष्टराः) दुष्प्रापणीय (श्रवस्यानि) ज्ञानैश्वर्यों को (अकृण्वत) प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु (ये) जो (यज्ञियां नावं) इस उत्तम कर्म-रूपी यज्ञमयी नौका पर (आरुहं न शेकुः) नहीं चढ़ सके, अपनी निर्बलताओं के कारण शुभ कर्म नहीं कर सके (ते) वे (केपयः) कुत्सित आचरण करनेवाले दुष्ट पापी जन (ईर्मा एव) यहीं इसी लोक में (न्यविशन्त) नीचे ही नीचे गिरते जाते हैं।

कल्याण चाहनेवाले बन्धुओ ! इस संसार से पार कर सकने वाली नौका यज्ञमयी ही है। यज्ञ का अर्थ है "देवपूजा-सङ्गति-करण और दान।" देवपूजा—देवों के भी देव महादेव परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना और उसकी आज्ञानुसार अपने जीवन को उत्तम बनाना तथा विद्वानों की, माता पिता आचार्य तथा गुरुजनों की सेवा शुश्रूषा करना और सूर्य-चन्द्रमादि भौतिक देवों से भी यथोचित लाभ उठाना।

संगतिकरण--वेदशास्त्रवेत्ता उत्तम विद्वान् धार्मिक पुरुषों के पास जाकर उनके सत्संग से लाभ उठाना। वेदादि सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय करना। कुसंग से बचना।

दान—पात्र-कुपात्र, देश-काल का विचार कर श्रेष्ठ धार्मिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थानों में श्रद्धा-भक्ति से यथाशक्ति दान देना।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् जो जो श्रेष्ठ कर्म हैं वे सभी यज्ञ हैं। यदि हम इन यज्ञिय कर्मों का अनुष्ठान न करेंगे तो हम न केवल ऊपर ही नहीं उठ सकेंगे, किन्तु अपने मनुष्यत्व को भी खो बैठेंगे, हमें नीचे ही नीचे पशु-आदि निकृष्ट योनियों में जाना पड़ेगा।

देखो ! बहुत से 'देव-हूति' पुरुष देवलोक, पितृलोक, ब्रह्मलोक आदि दुष्टर=दुष्प्राप्य लोकों में पहुंच गये हैं, वे मनुष्यत्व से ऊपर उठकर शुभ कर्मों द्वारा देव हो गये हैं, उन्होंने अपने अन्दर दिव्य गुणों को धारण किया है और 'प्रथम' उत्कृष्ट=उत्तम ज्ञानी बने हैं।

दूसरी प्रकार के वे अभागे व्यक्ति हैं जो थोड़ासा स्वार्थ त्याग न करने के कारण, अपनी निर्बलताओं के कारण, उत्तम कर्मों को नहीं कर सके और यज्ञिय न होने के कारण संसार सागर को नहीं तर सके, अतः यहीं बन्धे पड़े हैं। ये 'केपि' कुत्सित-आचरणी लोग यहां=इस संसार में भी नीचे ही धंसते जा रहे हैं, अब इनका ऊपर उठना कठिन हो गया है।

यदि मनुष्य योनि पाकर भी हम स्वार्थ त्यागकर उत्तम कर्म न कर सके, कुत्सिताचरणी बनकर मनुष्यत्व को भी खो बैठे, तो पुनः हमारे कल्याण का अवसर कब आयेगा, यह कौन जानता है ? हम उस पाप-योनि चक्र से निकल कर कब पुनः मनुष्य योनि को प्राप्त कर सकेंगे, यह कौन बतला सकता है ?

इसलिये हमें इसी जन्म में यत्न करना चाहिये कि हम उत्तम कर्म कर देव बनें, प्रभु को प्राप्त करें, कम से कम इतना अवश्य करें कि जिससे हमारा पशुत्वादि योनियों में अधःपतन तो न हो।

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेद में दुष्टों की संगति का निषेध

महर्षि दयानन्द जी महाराज यजुर्वेद के भाष्य में लिखते हैं—"सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और स्वभाववाले मनुष्यों का निषेध करें, इसका उपदेश इस मन्त्र में किया है—

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं
रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ १।७॥

पदार्थ :—मुझ को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्षः) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम्) निश्चय करके निर्मूल करूं, तथा (अरातयः) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं, उनको (प्रत्युष्टाः) प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वा दुष्ट गुण विद्याविरोधी स्वार्थी मनुष्य और (निष्टप्तम्) (अरातयः) छलयुक्त होके विद्या का ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को(निष्टप्ताः)निरन्तर सन्तापयुक्त करूं। इस प्रकार करके (अन्तरिक्षम्) सुख को सिद्ध करनेवाले उत्तम स्थान और (उरु) अपार सुख को (अन्वेमि) प्राप्त होऊं ॥

भावार्थ– ईश्वर यह आज्ञा देता है कि सब मनुष्य अपने दुष्ट स्वभाव को छोड़कर, विद्या और धर्म के उपदेश से दूसरों के भी दुष्ट स्वभाव को छुड़वाकर अविद्या अधर्म आदि के दुष्ट व्यवहारों से पृथक् करना चाहिये, तथा उनको बहुत प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्यादि प्राणियों को विद्या धर्म पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ॥"

इस मन्त्र द्वारा परमात्मा ने मनुष्य को यह उपदेश कितने स्पष्ट शब्दों में दिया है कि अपनी दुष्टता को छोड़कर श्रेष्ठ बनो। दूसरे साथियों को भी श्रेष्ठ बनाओ। यदि दूसरे हमारे निकट रहनेवाले दुष्ट हैं, सदाचारी नहीं हैं, तो उनका भूल कर भी संग नहीं करना चाहिये, इसी में कल्याण है, यही उन्नति का मूल मन्त्र है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेद में सत्संग करने का विधान

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ।। (ऋ. ५।५१।१५।।)

(सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमा के समान हम सब स्वयं (स्वस्ति पन्थाम्) उत्तम कल्याणकारी मार्ग का (अनुचरेम) अनुसरण करें, और (पुनः) तत्पश्चात् (ददता) दानी (अघ्नता) अहिंसक=प्राणिमात्र का उपकार करनेवाले (जानता) ज्ञानी= विद्वान् सत्पुरुषों की (संगमेमहि) संगति करें, उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलें।

परमपिता परमात्मा ने कितना सुन्दर उपदेश दिया है कि हम नित्य प्रति नियमपूर्वक कल्याण मार्ग पर चलें, सत्यपथ से कभी विचलित न हों और इसके लिये हम दानी उदार परोपकारी विद्वान् पुरुषों का सत्संग करें।

कल्याण मार्ग पर चलने के लिए सूर्य और चन्द्रमा की उपमा दी गई है, इससे दो शिक्षायें मिलती हैं, प्रथम यह कि हम सूर्य और चन्द्रमा की भांति नियमित रूप से सन्मार्ग पर चलते रहें, कभी भी इस नियम को न तोड़ें। दूसरा यह कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा दिन-रात जनता को=प्राणिसमूह को प्रकाश का मार्ग दिखलाते हैं, अन्धकार को दूर भगाते हैं, ठीक इसी प्रकार हम भी अन्य लोगों का पथप्रदर्शन करें, अज्ञानान्धकार को ज्ञान-सूर्य बन कर नष्ट करें।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ।।
(अथर्व० १०।८।१५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
(पूर्णेन) पूर्ण के, उत्तम के साथ रहने से (दूरे वसति) सामान्य जनों से दूर रहता है और (ऊनेन) न्यून के=हीन के साथ रहने से भी (दूरे होयते) दूर गिर जाता है=पतित हो जाता है। (भुवनस्य मध्ये) सब लोक लोकान्तरों में एक (महद्यक्षम्) सब से बड़ा पूजनीय देव परमात्मा है (तस्मै) उसी के लिये राष्ट्रभृतः भरन्ति) राष्ट्र को धारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष बलि अर्पण करते हैं।

इस मन्त्र में उत्तम तथा अधम पुरुषों के संग का वर्णन करते हुए बतलाया है कि जो श्रेष्ठ पुरुषों का सत्संग करता है, उसका सम्मान होने के कारण वह अन्य साधारण लोगों से दूर हो जाता है=ऊंचा उठ जाता है, तथा नीच व्यक्ति का सहवास करने से भी दूर गिर जाता है=पतित हो जाता है।

यद्यपि दूर तो दोनों ही होते हैं किन्तु उत्तम का संग करने वाला आदरणीय और अधम का साथी निन्दनीय होता है। इसलिए जो उत्तम पुरुष हैं वे सब से महान् और पूजनीय देव परमात्मा की संगति करते हैं, उसी की स्तुति-प्रार्थना उपासना करते हैं।

"ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करनेवाले कार्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये, जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हों, सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार और दुष्टों को दण्ड देने के लिये उनका बन्धन करना चाहिये।...ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये।"

(यजुर्वेद १।२६ मन्त्र भाष्य)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्संग का अर्थ

'सत्संग' शब्द में षष्ठी या तृतीया तत्पुरुष समास है, सतां सगः 'सत्संगः' 'सद्भिर्वा संगः' सज्जन पुरुषों का या सज्जन पुरुषों से संग=समागम करना, सज्जन धार्मिक विद्वानों के मनोहर उपदेश सुनना और उन पर आचरण करना ब्रह्मचर्यादि उत्तम व्रतों का पालन करना, वेदादि सत्यशास्त्रों का स्वाध्याय करना, सत्य बोलना, ईश्वर विश्वास, ईश्वर भक्ति, सदाचार आदि जीवनोत्थान के उत्तमोत्तम साधनों का भी सत्संग में ही समावेश समझना चाहिये और कुसंग के शब्दार्थ इससे विपरीत समझें।

सत्संग महिमा

हमारे शास्त्र सत्संग की महिमा से भरे पड़े हैं, सभी ने सत्संग की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। वास्तव में सत्संग है ही ऐसा जिस की प्रशंसा करते-करते रुकने को जी नहीं चाहता, जिह्वा नहीं थकती और लेखनी भी लिखने से नहीं रुकती। किसी कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है—

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः॥

संसार में चन्दन को शीतल माना जाता है, चन्द्रमा की सौम्य किरणें तो उस से भी अधिक शीतलतर हैं, किन्तु चन्दन और चन्द्रमा से भी अधिक शीतलतम साधु-संगति=साधु-महात्माओं का सत्संग है।

सत्संगः परमं तीर्थं सत्संगः परमं पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्संगं सततं कुरु॥

सत्संग ही परम पवित्र तीर्थ है, सत्संग ही परम पद मोक्ष का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
साधन है इसलिये सब दुर्व्यसनों को छोड़कर सर्वदा सत्संग करना चाहिये ।

श्रीमच्छङ्कराचार्य जी लिखते हैं—

सत्संगत्वे निःसंगत्वं निःसंगत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चलत्वं निश्चलत्वे जीवन्मुक्तः ।।

सत्संग द्वारा विवेक ज्ञान हो जाने पर मनुष्य सांसारिक पदार्थों में न फंसकर निःसंग हो जाता है और संसार में न फंसने से मोह स्वयमेव दूर हो जाता है तथा मन की स्थिरता हो जाती है और जब मन ईश्वर भक्ति में स्थिर हो जाता है तब मनुष्य संसार सागर से तर जाता है ।

मलयाचलगन्धेन त्विन्धनं चन्दनायते ।
तथा सज्जनसंगेन दुर्जनः सज्जनायते ।।

जैसे मलयाचल चन्दन के पर्वत पर निकट का इन्धन भी चन्दन बन जाता है, उसमें भी चन्दन जैसी सुगन्ध आने लगती है इसी भांति सज्जनों की संगति से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं क्योंकि—

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ।।

महापुरुषों के संसर्ग से एक तुच्छ व्यक्ति भी उन्नति कर अत्युत्तम बन जाता है, जैसे वर्षा की एक छोटीसी बूंद कमल के पत्ते के संसर्ग से मोती के सदृश दिखलाई पड़ती है । यह जल बिन्दु समुद्र की सीप में गिरने से वास्तव में मोती ही बन जाता है। किन्तु तपे हुये लोहे पर गिर जाये तो उसका नाम मात्र भी शेष नहीं रहता, नष्ट हो जाता है। ठीक यही अवस्था सत्संग और कुसंग के विषय में समझें ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी हिन्दी के कवि ने भी कितना सुन्दर कहा है:—

सत्संग और कुसंग में बड़ा अन्तरा जान।
गान्धी और लुहार की देखो बैठ दुकान॥

आप किसी गान्धी=सुगन्धित तैल इतर आदि बेचनेवाले की दुकान पर जाकर बैठेंगे तो सब कुछ सुगन्धित हो जायेगा और पुनः एक लुहार के निकट जाकर बैठिये, वहां पर तप्त लोहे की चिनगारियां वस्त्र और शरीर को जला देंगी। सत्संग और कुसंग में यही भेद है। सत्संग उन्नति के शिखर पर चढ़ा देता है और कुसंग अवनति के गर्त में गिरा देता है।

एक तुच्छ कीट भी फूल के सत्संग से बड़े बड़े राजा महाराजाओं के शिर पर पहुंच जाता है, कांच=सीसा भी स्वर्ण के संग से सूर्य की भांति चमकने लगता है। मूर्ख भी पण्डित के संसर्ग में रहने से अति चतुर बन जाता है, निस्तेज भी तेजस्वी के सत्संग से स्वयं तेजःसम्पन्न हो जाता है, सूर्य के सम्पर्क से सीसे में भी जलाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है और वह वस्त्रादि को जला देता है। इसलिए नीतिकारों ने कहा है—"सतां हि संगः सकलं प्रसूते" तर्थात् सज्जन पुरुषों की संगति से सब कुछ मिल जाता है।

सत्संग की महिमा का कहां तक वर्णन करें, इसकी महिमा अपार है, इसीलिये किसी कवि ने दो ही शब्दों में कह दिया है—इसे सर्वदा स्मरण रखें—

यदि सत्संगनिरतो भविष्यसि-भविष्यसि।
अथ दुर्जनसंसर्गे पतिष्यसि-पतिष्यसि॥

यदि सत्संगी बनोगे तो बन जाओगे और यदि कुसंग में पड़ जाओगे, तो पतित हो जाओगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुसंग दोष

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे ।
पावको लोहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते ।।

दुर्जन के संसर्ग में रहने से पद पद पर मानहानि=अपमान सहन करना पड़ता है, शुद्ध पवित्र अग्नि को भी लोह के साथ घनों से पीटा जाता है। चणे के साथ घुन भी पीसा जाता है। सीता को चुराया रावण ने किन्तु दुष्ट के संसर्ग में होने के कारण समुद्र पर सेतु बांधा गया। यह लोकोक्ति है कि—"नीचाश्रयो हि महतामपमान-हेतुः" नीच का आश्रय लेने से या उसके निकट रहने से महापुरुषों को भी अपमान होता है।

सार यह है कि सम्पूर्ण दुराचार और विनाश के कारणों की जड़ कुसंगति ही है, अतः अपना कल्याण चाहनेवालों को, विशेषतया ब्रह्मचारियों को कुसंग से बचना चाहिये, अर्थात् अष्ट-मैथुन का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, आंखों से कभी भद्दी वस्तु सिनेमा, रामलीला, नाटक तथा अश्लील चित्रादि को न देखें, कानों से कभी अश्लील गाना, सिनेमा रागिणी आदि न सुनें, नासिका से किसी गन्ध पर मोहित न हों, पांवों से कुसंगति में न जायें, हाथों से किसी बुरी वस्तु को न छूयें और मन से उपरिलिखित विषयों का कभी भूलकर भी चिन्तन न करें। तात्पर्य यह है कि पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय तथा ग्यारहवां मन इन पर हमारा आधिपत्य होना चाहिये तभी हम कुसंग से बच सकते हैं।

एक बार भगवान् विष्णु ने राजा बलि से पूछा कि—तुम सज्जनों के साथ नरक में जाना पसन्द करोगे या दुर्जनों के साथ स्वर्ग में ? राजा बलि ने उत्तर दिया कि मैं सज्जनों के साथ नरक में जाना उत्तम समझता हूँ, क्योंकि जहां सज्जन जायेंगे वहां नरक भी स्वर्ग बन जायेगा और दुर्जन स्वर्ग को भी नरक बना

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देते हैं।" क्योंकि—

अणुरप्यसतां संगः सद्गुणं हन्ति विस्तृतम्।
गुणरूपान्तरं याति तक्रयोगाद् यथा पयः॥

दुर्जनों का थोड़ासा कुसंग भी विस्तृत गुणराशि को नष्ट कर देता है, जैसे कि थोड़े से तक्र=छाछ के संग से सैकड़ों गुणा अधिक दूध गुण और रूप में सर्वथा भिन्न हो जाता है। एक रत्ती विष से सम्पूर्ण भोजनसामग्री विषाक्त हो जाती है। और जहां पर दुर्जन ही दुर्जन हों वहां पर तो स्वर्ग की कामना करना खपुष्प तथा वन्ध्यापुत्र के तुल्य ही है। किसी कवि ने कितना स्पष्ट कहा है—

आनन्दमृगदावाग्निः शीलशाखिमद्द्विजः।
ज्ञानदीपमहावायुरयं खलसमागमः॥

दुष्टों की संगति आनन्दरूपी मृग को भगाने के लिये भयंकर दावाग्नि=जंगल की आग का कार्य करती है, शील=सदाचार रूपी वृक्ष को उखाड़ने के लिए मदोन्मत्त हाथी का कार्य करती है और विवेक ज्ञान रूपी दीपक को बुझाने के लिये प्रचण्ड आंधी का कार्य करती है। योगरसायन में कहा है—

असत्संगाद्गुणज्ञोऽपि विषयासक्तमानसः।
अकस्मात्प्रलयं याति गीतरक्तो यथा मृगः॥

कुसंग से जब मन विषयों के विष से मुक्त हो जाता है तब गुणवान् और विद्वान् व्यक्ति भी सहसा ही मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं जैसे कि वीणा के सुरीले राग के वशीभूत हुआ मृग=हरिण मारा जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—

बरू भल बास नरक कर ताता। न दुष्ट संग जनि देई बिधाता॥

घोर नरक में रहना अच्छा है, किन्तु परमात्मा किसी को दुष्टों की संगति न दे। क्योंकि मनुष्य भयंकर से भयंकर विपत्ति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
से भी पार हो सकता किन्तु दुष्टों के पंजे से छुटकारा पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

संसार में ऐसा कोन सा नीच कर्म है जिसको कुसंग से मनुष्य न सीखले। दुर्जन स्वयं तो नष्ट भ्रष्ट होता ही है किन्तु साथ-साथ अन्य अनेक होनहार बच्चों को भी ले डूबता है।

तुलसीदास जी के शब्दों में "को न कुसंगति पाय नसाई" ऐसा कौन है जो कुसंग में पड़कर 'उभयतो भ्रष्ट' न हो गया हो? इस कुसंग पिशाच के चक्र में आकर सहस्रों होनहार शीलसम्पन्न बालक-बालिकायें, नवयुवक और नवयुवतियां अपने जीवन से हाथ धो बैठीं। भयङ्कर जंगली पशुओं और सांपों के साथ रहना अच्छा है किन्तु कुसंग में पड़ना नहीं।

पं० विष्णु शर्मा पञ्चतन्त्र में लिखते हैं—

"वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः"

प्राण त्याग देना अच्छा है किन्तु नीच की संगति अच्छी नहीं। क्योंकि प्राण त्यागने पर दूसरा उत्तम शरीर कर्मानुसार मिल जायेगा, किन्तु कुसंग में तो लोक परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं, यह लोक तो प्रत्यक्षरूप से है ही नष्ट-भ्रष्ट और पाप कर्म करने से अगला जन्म भी उत्तम नहीं मिलता।

"जैसा संग वैसा रंग" के अनुसार सत्संग करने से मनुष्य श्रेष्ठ बन जाता है और कुसंग में पड़ कर अधम बना जाता है। संग का रंग अवश्य चढ़ता है, एक स्वच्छ भवन धूएं से काला बन जाता है, काला कोयला भी अग्नि के संयोग से धधकने लगता है, लता या घास में रहनेवाला कीड़ा और जन्तु भी तत्सदृश रंग का हो जाता है। कहा भी है—

असतां संगदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।
दुर्योधनप्रसंगेन भीष्मो गोहरणे गतः॥

दुर्जनों की संगति में रहने से सज्जन भी दुर्जन बन जाते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
हैं, उनकी भी वृत्तियां विकृत हो जाती हैं, महाभारत काल में दुष्ट दुर्योधन के संग में रहने के कारण भीष्म पितामह भी राजा विराट् की गौयें चुराने के लिये चले गये थे।

इसलिये विचार-शील सत्पुरुषों ने कहा है—

"भुजंगवद्वर्ज्यो बुधैर्दुर्जनः" बुद्धिमानों को चाहिये कि दुर्जन से सर्वदा सर्प की भान्ति पृथक् रहें। इनकी संगति करना तो दूर रहा, ऐसे दुष्ट पापियों के पड़ोस में रहना भी हानिप्रद है। इतना ही नहीं, राजर्षि चाणक्य ने तो दुर्जन को सर्प से भी भयंकर बतलाया है—

सपश्च दुर्जनश्चैव वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दशति काले दुर्जनस्तु पदे पदे॥ (चाणक्य नीति)

सर्प और दुर्जन में से सर्प ही अच्छा है, क्योंकि सर्प तो जब काल आकर उपस्थित हो जाता है तब काटता है किन्तु दुर्जन तो पद पद पर प्रहार करता है। सर्प, बिच्छू आदि किसी अवयव विशेष से प्रहार करते हैं किन्तु दुर्जन का तो एक-एक अंग विष से भरा हुआ होता है—

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायाश्च मस्तके।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वांगे दुर्जनस्य तत्॥

सर्प के दांत में, मक्खी के सिर में और बिच्छू के पूंछ में विष होता है किन्तु दुर्जन के सभी अंग विषाक्त हैं।

दुष्टों की मैत्री, वेश्या और लक्ष्मी ये तीन कितना ही यत्न किया जाये किन्तु स्थिर नहीं रहतीं। इसलिये विष्णु शर्मा ने पञ्चतन्त्र में कहा है—

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपराद्धंभिन्ना,
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् दुर्जनों की मित्रता आरम्भ में बहुत बड़ी होती है अर्थात् अति सुन्दर प्रतीत होती है किन्तु उत्तरोत्तर घटती ही जाती है, जैसे कि प्रातःकाल छाया बहुत बड़ी होती है किन्तु दोपहर तक कम होकर न्यूनतम रह जाती है और सज्जनों की मित्रता प्रारम्भ में नाममात्र ही होती है किन्तु दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। जिस प्रकार दोपहर के पश्चात् छाया उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

इसलिये दुर्जनों की संगति को प्रारम्भ में फूला-फला देखकर उसमें फंसना नहीं चाहिये, अपितु उसके भावी दुष्परिणामों को विचार कर सर्वथा पृथक् ही रहना चाहिये, इसी में कल्याण है।

किसी कवि ने कुसंग के फलों का कितना उत्तम चित्र खींचा है :—

पापं वर्धयते, चिनोति कुमतिं, कीर्त्यंगना नश्यति,
धर्मं ध्वंसयति, तनोति विपदं, सम्पत्तिमुन्मर्दति।
नीतिं हन्ति, विनीतिमत्र कुरुते, कोपं धुनीते समं,
किं वा दुर्जनसंगतिर्न कुरुते, लोक-द्वयध्वंसिनी॥

कुसंग पाप को बढ़ाता है, बुद्धि को मलिन कर देता है, कीर्ति को नष्ट करता है, धर्म का ध्वंस कर आपत्तियों के पहाड़ खड़े कर देता है और धन सम्पत्ति न्याय आदि का लोप हो जाता है। स्वभाव चिड़चिड़ा और क्रोधी बन जाता है, ऐसा कौनसा दुष्कर्म है जिसको कि इस लोक तथा परलोक का नाश करने वाली कुसंगति न करवाती हो।

न व्याघ्रः क्षुधयातुरोऽपि कुपितो, नाशीविषः पन्नगो
नारातिर्बलसत्त्वबुद्धिकलितो, मत्तः करीन्द्रो न च।
तं शक्नोति न कर्तुमत्र नृपतिः कण्ठीरवो नोद्धुरो
दोषं दुर्जनसंगतिर्विवनुते यं देहिनां निन्दिता॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूखा तथा क्रुद्ध हुआ शेर जिस कार्य को नहीं कर सकता, भयंकर विषधर सर्प जो हानि नहीं कर सकता और बुद्धि सेना आदि से बल सम्पन्न शत्रु तथा मदमस्त हाथी भी जो हानि नहीं पहुँचा सकता, वह भयंकर सर्वनाश मनुष्य का कुसंग में पड़ने से हो जाता है।

कुसंग में पड़ने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थचतुष्टय और लोक परलोक सब मिट्टी में मिल जाते हैं, मनुष्य जन्म पाकर भी पशु-पक्षियों से भी नीच गति हो जाती है। इसलिये कहा है—

न स्थातव्यं न गन्तव्यं क्षणमप्यधमैः सह।
पयोऽपि शौण्डिकीहस्ते मदिरां मन्यते जनः॥

अधम पुरुषों के पास एक क्षण भी उठना बैठना नहीं चाहिये, यदि कोई सज्जनपुरुष भी अकस्मात् किसी निन्दनीय स्थान पर चला जाता है तो लोग उसे भी वैसा ही समझने लगते हैं, जैसे कि कलाल (शराब बनाकर बेचनेवाले) के हाथ में शुद्ध पवित्र गोदुग्ध हो तब भी जनता उसे मदिरा (शराब) ही समझती है।

कुसंग के दो भेद हैं—प्रथम शारीरिक, द्वितीय मानसिक। शारीरिक कुसंग से पृथक् रहना सहज है, क्योंकि इसके लिये कुछ बाधायें प्रत्यक्ष रूप से हैं, अपने कुल की, माता-पिता की मान मर्यादा के भय से, या माता-पिता अथवा गुरुजनों के डर से अथवा लोक-लज्जा के कारण से ही मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से कुछ अंशों में कुसंग से बच जाता है, चोरी से भी अवसर मिलने पर ही कर सकता है किन्तु मानसिक कुसंग से बचना कठिन है। मनुष्य प्रतिक्षण उठता बैठता खाता-पीता यहां तक कि शयन काल में भी स्वप्न के द्वारा अपने विचारों को दूषित

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता रहता है। गन्दी पुस्तकें पढ़ना भी मानसिक कुसंग है।

कुछ भोले भाई यह विचारते हैं कि हम शरीर से तो कुछ करते हो नहीं, गन्दी पुस्तकें पढ़ने से अथवा अश्लील भावनाओं से हमारा क्या बिगड़ता है किन्तु ऐसा सोचने वाले भयंकर भूल करते हैं। मन से या कर्म से हम जैसा शुभाशुभ विचार या क्रिया करते हैं उस की वैसी ही अमिट छाप चित्त पट पर पड़ जाती है और पीछे वासना का रूप धारण कर सताती है। भगवान् श्री कृष्ण ने गीता के द्वितीय अध्याय में कहा है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

कुसंग में प्रथम मन में बुरे विचार उत्पन्न होते हैं और फिर मनुष्य का उन से संग हो जाता है अर्थात् वैसे स्थान या व्यक्ति के निकट पहुँच जाता है। संग से काम उत्पन्न होता है, किसी ने कहा भी है—"कामिनां कामिनीनाञ्च संगात् कामो भवेत्पुमान्" कामुक स्त्री-पुरुषों के संग से मनुष्य स्वयं भी कामी बन जाता है। जब उस कामना को पूर्ति नहीं होती तब क्रोध आ दबाता है और किंकर्तव्यविमूढ बना देता है, स्मरण-शक्ति काम नहीं देती, स्मरण-शक्ति के विकृत होने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, जिससे सर्वनाश हो जाता है, क्योंकि सारा संसार बुद्धि का ही खेल है। "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य" बलवान् वही है जिसकी बुद्धि सुस्थित है। बुद्धि गई तो सब कुछ गया। इस लिये कुसंग से मनसा वाचा कर्मणा पृथक रहना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिक्षा और कुसंग

बिना पढ़े-लिखों की अपेक्षा शिक्षित समुदाय कुसंग के चक्र में अधिक फंसा हुआ है, इसका कारण हमारी प्रचलित शिक्षा प्रणाली है। अशिक्षित व्यक्ति अज्ञान से या कुसंग से बुराइयों में फंस जाते हैं किन्तु इस शिक्षा-प्रणाली में बुराइयां सिखलाई जाती हैं। इसलिये हमारे शिक्षित वर्ग के आचार का स्तर नीचा होता जा रहा है।

प्राचीन काल में आर्षपाठविधि के अनुसार बालक गुरुकुलों में माता पिता और सांसारिक वातावरण से पृथक् जाकर ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्योपार्जन करते थे। सात-आठ वर्ष के बालक-बालिका को गुरुजनों के निकटतम सम्पर्क में छोड़ दिया जाता था। गुरु वा आचार्य का यह प्रधान कर्म था कि वह दिन रात (२४ घंटे) उनके आचार-विचार का ध्यान रखता था और विद्या भी ऐसी ही पढ़ाई जाती थी जिससे लोक परलोक दोनों सुधर जाते थे। पतित होने का ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) को अवसर ही नहीं मिलता था, इसीलिए यहां पर कपिल कणाद, जैमिनि, पतञ्जलि और राम कृष्ण तथा दयानन्द उत्पन्न हुये थे।

वर्तमान अनार्ष शिक्षा प्रणाली इससे सर्वथा विपरीत है। इस से मानव के स्थान पर दानव बनाये जा रहे है। वास्तव में इस शिक्षा प्रणाली की नींव ही लार्ड मैकाले की दूषित भावनाओं पर रखी हुई है। जिस भवन की नींव ही दूषित हो उससे आगे कल्याण की क्या आशा की जा सकती है।

चौबीस घंटों में से केवल चार पांच-घंटे पाठ्य पुस्तकों के पाठ रटवाकर अध्यापक अपना कर्त्तव्य पूरा समझ लेते हैं, माता पिता को तो कोई चिन्ता करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि वे अपने पुत्र को स्कूल में पढ़ने के लिये भेजकर सर्वथा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Jammu. Digitized by eGangotri

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
चिन्तामुक्त हो जाते हैं। विद्यार्थी के जीवन का ध्यान किसी को भी नहीं (सम्भवतः यह हमारे लिये छोड़ रखा हो)।

इस पाठविधि में विद्यार्थी के चरित्र निर्माण के लिये कोई स्थान नहीं है, आचार-विचार को भ्रष्ट करने के साधनों की भरमार है। कामुकता को उत्पन्न करने वाले अश्लील अनार्ष दूषित ग्रन्थ पाठ्यक्रम में रखे हुए हैं। जिनको पढ़कर ब्रह्मचारी रहना कठिन है। प्रथम तो १५ और २० वर्ष के बीच की अवस्था ही ऐसी है जिसमें न प्रकाश होता है न ही अन्धेरा। यदि इस अवस्था में विद्यार्थी को सन्मार्ग न दिखलाया जाये तो पतित होने की आशंका बनी रहती है। पतित होने का दूसरा साधन है दुश्चरित्र अध्यापक और विद्यार्थियों का कुसंग तथा विचारों को गन्दा करने के लिए अश्लील अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन। यदि कुछ न्यूनता रह भी जाये तो उसको सहशिक्षा (नवयुवक और नवयुवतियों का एक साथ मिलकर पढ़ना) तथा सिनेमा, नाच, गान आदि पूर्ण कर देते हैं जिससे विद्यार्थी का सदाचारी रहना असम्भव है। इसी के परिणामस्वरूप मैट्रिक करने तक ही लगभग सभी विद्यार्थियों का आचार भ्रष्ट हो जाता है। आगे चलकर कालेजों में तो एक प्रतिशत विद्यार्थी ऐसा नहीं मिल सकता जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट न हो गया हो।

जब विद्यार्थी बी० ए० की उपाधि लेकर लुट पिट-कर आता है तब उसकी ठीक वही अवस्था बन जाती है जो रस निकले हुये गन्ने की या निचोड़े हुये निम्बू की होती है। इस सम्पूर्ण दुष्परिणाम का कारण शारीरिक और मानसिक कुसंग है।

प्राचीन काल में आचार्य शिष्य को बनाता था। "तं रात्री-स्तिस्र उदरे बिभर्ति" (अथर्व ११।५।३) वेद के आदेशानुसार शिष्य की रक्षा उसी भांति करता था जिस प्रकार माता गर्भावस्था में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बच्चे की करता है। राम को किसने बनाया ? गुरुवर वसिष्ठ ने। कृष्ण को किसने बनाया ? ऋषि घोर आंगिरस ने। अर्जुन को किसने बनाया ? आचार्य द्रोण ने। दयानन्द को किसने बनाया ? गुरुवर विरजानन्द ने। किन्तु आज की शिक्षा प्रणाली में यह भार गुरुओं ने अपने कन्धों से उठाकर दर्जियों पर छोड़ दिया है। इसीलिए जो जैसा चाहता है वैसा ही दो-तीन घण्टे में दर्जी के घर जाकर बन आता है।

वेद ने ऐसे लोगों को 'ततनुष्टि' 'तनुशुभ्र' और 'कवासख' कहा है—

"अपापशक्रस्ततनुष्टिमूहति तनुशुभ्रं मघवा यः कवासखः।"
(ऋ० ५।३४।३)

जो ईश्वर भक्ति करता है, उत्तम मार्ग पर चलता है, उसको ईश्वर बढ़ाता है, शक्ति प्रदान करता है, किन्तु जो ततनुष्टि है, दिन-रात विषयों में ही फंसता जाता है, तनुशुभ्र=शरीर की ही सजावट बनावट में लगा रहता है और 'कवासख' अर्थात् जो कुत्सित संगति में रहता है, जिसके मित्र तथा साथी कुत्सित आचरणी हैं, उसको सर्वशक्तिमान् ऐश्वर्यशाली परमात्मा (अप अप ऊहति) नीचे ही नीचे गिराता रहता है, मिटा देता है, विनष्ट कर देता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के भयंकर दुष्परिणामों को देखकर इससे कोई भी भारतीय सन्तुष्ट नहीं है, राष्ट्रपति से लेकर छोटे से कर्मचारी तक सभी इसकी कटु-आलोचना करते हैं। हमारे सभी नेता समय समय पर कहते रहते हैं कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन होना चाहिये, किन्तु पता नहीं वे शुभ दिन कब आयेंगे जब दुराचार की जननी इस शिक्षा-प्रणाली का अन्त होगा और यह अतीत-शिक्षा-प्रणाली के रूप में परिणत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होगी। परमात्मा कृपा करे कि जिससे शीघ्र ही ये दुराचार के अड्डे तथा आचरणहीन क्लर्क बनाने के कारखाने बन्द हों और फिर से वही रामायण-महाभारतकालीन आर्ष शिक्षा-प्रणाली प्रचलित हो, जिससे हम भी वाल्मीकि तथा व्यास के स्वर में स्वर मिलाकर कह सकें—

"सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे शस्त्रविशारदाः"

तथा हमारे राष्ट्रपति भी राजा अश्वपति की भांति निःसंकोच होकर कह सकें—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

(छान्दोग्योपनिषत्)

सत्संग के लाभ

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिये तुला इक अंग।
तुले न ताहि सकल मिली, जो सुख लाभ सत्संग॥

सत्संग के लाभ अपार हैं, मनुष्य माया-मोह से छूट जाता है और उसके अन्दर विवेक ज्ञान का उदय हो जाता है जिससे सत्यासत्य का निर्णय कर सकता है। सन्मार्ग पर चलने की शक्ति मिलती है, यदि आलस्यवश कुछ ढीलापन आ जाता है तो वह सत्संग से दूर हो जाता है। गिरा हुआ व्यक्ति भी सत्संग पाकर ऊंचा उठ जाता है, बड़े-बड़े डाकू भी सज्जनों की शरण में आकर सुधर जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—"सठ सुधरहि सत्संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥"

सत्संग के लाभों का वर्णन एक संस्कृत के कवि ने कितना सुन्दर किया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

सत्संग से बुद्धि की मलीनता, मूढ़ता दूर हो जाती है, वाणी में सत्य का सिञ्चन हो जाता है अर्थात् मनुष्य झूठ को छोड़कर सत्य को ग्रहण करने लग जाता है जिससे सब पाप कर्म छूट जाते हैं, चित्त प्रसन्न रहता और संसार में उसकी कीर्ति फैल जाती है। इसलिये सत्संग से सभी शुभ गुण मनुष्य में आ जाते हैं।

सत्संग को पाकर सहस्रों भूले भटकों ने पुनः सन्मार्ग को ग्रहण किया है। ऐसे महापुरुषों के आपको अनेक उदाहरण मिलेंगे जिन्होंने केवल थोड़े से सत्संग से ही काया पलट दी है।

महर्षि दयानन्द जी ने पेशावर में सिपाही लेखराम को २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालने का उपदेश दिया था, महर्षि के ब्रह्मचर्य का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने पच्चीस के स्थान में ३६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया और आगे चलकर वही लेखराम धर्मवीरों की पंक्ति में अपना नाम अंकित करवा गया।

नास्तिक मुन्शीराम वकील बरेली में महर्षि दयानन्द जी के सत्संग में सम्मिलित हुआ था, वह उस समय सभी धर्मों से पराङ्मुख हो चुका था किन्तु महर्षि के उपदेशों का इतना गहरा प्रभाव हुआ कि वह नास्तिक मुन्शीराम के स्थान में ईश्वर का श्रद्धालु भक्त वीर सेनानी श्रद्धानन्द बन गया।

संवत् १९४० में जब महर्षि दयानन्द जी मृत्यु शय्या पर विराजमान थे तब उनके पास पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० गया। वह भी पहले ईश्वर पर विश्वास नहीं रखता था किन्तु महर्षि की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अन्तिम लीला को देखकर सदा के लिये सच्चा भक्त बन गया।

एक बार महर्षि दयानन्द जी को अमीचन्द ने एक गाना सुनाया। उसके गाने को सुनकर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा—"अमीचन्द तू है तो रत्न, किन्तु कीचड़ में पड़ा है।" इतना कहना था कि शराबी कबाबी और वेश्यागामी अमीचन्द सब पापों को छोड़कर सच्चा आर्य बन गया और अपना सम्पूर्ण जीवन आर्यसमाज के प्रचार कार्य में लगा दिया।

मथुरा की घटना है, एक बार महर्षि दयानन्द जी को पतित करने के विचार से विरोधियों ने एक वेश्या को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर भेजा। स्वामी जी समाधि लगाये बैठे थे, उनको देखकर वह वेश्या डर गई और वापिस लौट आई, किन्तु धूर्तों ने कुछ लोभ बढ़ाकर उसको पुनः भेजा। स्वामी जी का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने सब आभूषण उतार कर रख दिये और रोने लग गई। ऋषि की समाधि खुली तब आश्चर्यान्वित हुए।

अब वेश्या, वेश्या नहीं रही थी। ऋषि के पांवों पर गिरी और अपना अपराध सुनाकर क्षमा याचना की तथा आगे से पवित्र जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया। इसी प्रकार ऋषि के जीवन की और भी अनेक घटनायें हैं वे यहां पर विस्तार भय से नहीं लिखी जा सकतीं, उनके जीवन को पढ़कर ही सब का ज्ञान किया जा सकता है।

इसी प्रकार भगवान् बुद्ध के जीवन की भी ऐसी ही अनेक घटनायें हैं। एक बार उपदेश करते-करते वे लच्छी राज्य में जा पहुंचे, वहां पर 'अम्बापालिका' नाम की एक प्रसिद्ध वेश्या थी, वह भी भगवान् बुद्ध के उपदेश में बन ठन कर जा पहुंची, और हाव भावों से भगवान् बुद्ध को अपने वश में करना चाहा। वे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
थी समझ गये कि आज की सभा में सबसे बड़ा रोगी यही है, इसी की पहले चिकित्सा करनी चाहिये।

भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश प्रारम्भ किया कि "यह शरीर कितना अपवित्र है, इसकी आंख से ढीढ निकलती है, नाक से सिणक निकलता है, मुंह से लार टपकती है, इसी प्रकार पायु और उपस्थेन्द्रिय से शौच (टट्टी) और पेशाब आता है, यहां तक कि रोम रोम से स्वेद निकलता है किन्तु भोला मानव इतने पर भी इतराता है और अपने रूप यौवन पर फूला नहीं समाता। एक दिन आयेगा यह सब कुछ मिट्टी में मिल जायेगा..... ...इत्यादि" उपदेश हो रहा था, उस वेश्या पर भगवान् बुद्ध के हार्दिक उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उस वेश्या का हृदय पिघल गया और वह फूट-फूट कर रोने लगी, आंखों की स्याही से सम्पूर्ण मुख-मण्डल तथा वस्त्र मैले हो गये।

उपदेश के अन्त में वह वेश्या बुद्ध के पास गई और पांवों पर गिरकर क्षमा मांगने लगी। भगवान् बुद्ध समझ गये, इसके रोग की ठीक चिकित्सा हो गई है अत. उसको 'पुत्री' शब्द से सम्बोधन कर आश्वासन दिया और उसने भी आगे से उत्तम रीति से जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया।

इतना ही नहीं, उसने बुद्ध को भोजन के लिये निमन्त्रण दिया और वहां जाकर बुद्ध ने पुनः उपदेश दिया। उपदेश में उस पूर्वोक्त वेश्या की जो सखी सहेलियां थीं उन्होंने भी इस पाप कर्म को छोड़ने का व्रत ग्रहण किया। तत्पश्चात् उन सहस्रों वेश्याओं ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बौद्ध भिक्षुणी बनकर भगवान् बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया।

इसी प्रकार एक काकुदन्त नाम का बड़ा भारी विद्वान् था, उसको अपनी विद्या का बहुत अभिमान था, वह शास्त्रार्थ में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
पराजित कर बुद्ध को भी अपना शिष्य बनाना चाहता था। अपने सहस्रों शिष्यों सहित हाथी पर चढ़कर एक दिन वह काकुदन्त बुद्ध के पास शास्त्रार्थ करने के लिये गया। महात्मा बुद्ध के जीवन का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि बिना ही शास्त्रार्थ किये काकुदन्त बुद्ध का शिष्य बन गया।

इसलिए कहा है कि—

सम्भाषा दर्शनं स्पर्शः कीर्त्तनं स्मरणं तथा।
पावनानि किलैतानि साधूनामिति शुश्रुमः॥

साधु-महात्माओं के साथ भाषण करना, उनके दर्शन, स्पर्श, प्रशंसा और स्मरण करना भी कल्याणकारी है।

संग किसका करना चाहिये ?

संसार में देखा जाता है कि जो जैसा होता है वह वैसों से ही मित्रता करता है, उन्हीं के साथ उठता-बैठता और खाता-पीता है, महाराज भर्तृहरि जी लिखते हैं :—

मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति,
गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरंगैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः
समानशीलव्यसनेषु सख्यम्॥

मृग मृगों के साथ चलते हैं, गायें गायों के साथ और घोड़े घोड़ों के साथ रहते हैं, मूर्ख मूर्खों के साथ और पण्डित पण्डितों के साथ रहना पसन्द करते हैं, क्योंकि मित्रता उन्हीं की होती है जिनका आचार-विचार तथा व्यवहार मिलता है।

इसलिये बुद्धिमानों ने मनुष्य को परखने के लिए यह कसौटी बना ली है कि यदि तुम जानना चाहते हो कि देवदत्त कैसा है, तो उसके साथियों को, उससे सम्बन्ध रखनेवाले यार-दोस्तों को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
देख लो कि वे कैसे हैं, जैसे उसके साथी भले या बुरे हैं, वैसा ही देवदत्त भी है।

यह तो हुआ स्वाभाविक प्रवृत्ति के विषय में, किन्तु प्रयत्न से इससे विपरीत किया जाता है। एक भला मनुष्य भी दुर्जनों में बैठ कर दुर्जन बन सकता है, इसी प्रकार दुर्जन भी सज्जनों की शरण में आकर सज्जन बन सकता है क्योंकि—

हीयते मतिस्तात हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥

अपने से हीन व्यक्ति के संग में रहने से कोई लाभ नहीं अपितु स्वयं भी हीन-नीच बन जाता है अपने समान व्यक्ति के साथ रहने में भी कोई विशेष लाभ नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का संग करने से लाभ होता है स्वयं भी वैसा ही बन सकता है। इसलिए अपने से अधिक गुणवान् श्रेष्ठ पुरुषों तथा साधु महात्माओं के संग में रहना चाहिये।

सबसे उत्तम सर्वशक्तिमान् परमात्मा है, उसका सत्संग-स्तुति, प्रार्थना, उपासना नित्यप्रति अवश्यमेव करनी चाहिये। ईश्वर की भक्ति का फल महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव सदृश जीवात्मा के गुण कर्म, स्वभाव पवित्र हों जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।"

महात्मा गांधी जी लिखते हैं—

"जब आपकी विषय-वासनायें आपको घर दबोचने की धमकी दें तब आप अपने घुटनों के बल बैठ जायें और परमात्मा से सहायता के लिए पुकार लगायें। ईश्वर का नाम हमारा अमोघ सहायक है।"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब तक मनुष्य ईश्वर को सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् जान कर उसकी भक्ति नहीं करता, ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, तब तक पाप करने से नहीं रुक सकता। पाप कर्म सर्वदा छिपकर ही किया जाता है और मनुष्य सबको धोखा देकर एकान्त में पाप कर बैठता है। किन्तु उस सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक प्रभु से कभी कहीं नहीं छिप सकता। क्योंकि वह तो पहले ही सर्वत्र विद्यमान है। कुकर्म करते हुए जब भय, लज्जा आदि होते हैं तब मनुष्य इधर-उधर चहुँ ओर दृष्टि दौड़ाता है कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा। जब कोई दृष्टिगोचर नहीं होता तो निःशङ्क होकर पाप में प्रवृत्त हो जाता है। किन्तु उस मूढ को यह ज्ञान नहीं—"द्वौ संनिसद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः" अथर्ववेद ४।१८।२)।

दो व्यक्ति मिलकर कोई गूढ मन्त्रणा करते हैं उसको तीसरा सकल ब्रह्माण्ड का स्वामी वरुण प्रभु जानता है। इसलिए कभी भी ऐसी भूल नहीं करनी चाहिये। जो दूसरों को धोखा देता है ठगता है, वह वरुणदेव के द्वारा स्वयं ठगा जाता है, वरुण अपने पाशों से उसे तत्क्षण जकड़ कर बन्दी बना लेता है और मूढ पापी को पता तक भी नहीं चलता।

ईश्वर के पश्चात् तत्कृत वेदों का तथा वेदानुकूल शास्त्र स्मृत्यादि का स्वाध्याय द्वारा सत्संग करना चाहिये तथा जो ऋषि, मुनि, साधु, महात्मा और आप्त पुरुष हैं उनकी सगंति का लाभ उठाना चाहिये।

हमने अनेक स्थानों पर साधु-सन्तों से सत्संग करने के लिए निर्देश किया है। साधु-सन्तों से हमारा अभिप्राय वीतराग, निष्काम, स्वार्थ, छल, कपटादि से रहित महापुरुषों से है जो सर्वदा लोक-कल्याण में लगे रहते हैं। आजकल ऐसे भोजन-भट्ट भी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत हैं जो केवल अपना उल्लू सीधा करने के लिए ही वस्त्रादि संन्यासियों के चिह्नों को धारण कर पवित्र संन्यास आश्रम को भी कलंकित कर रहे हैं। केवल लिंग=चिह्न विशेष धर्म का कारण नहीं होता। मनु जी ने स्पष्ट लिखा है—"न लिंगं धर्म-कारणम्।"

धूर्त पाखण्डियों के चक्र में नहीं आना चाहिये, ये वे छद्मवेषी अधम पुरुष हैं जिनके विषय में चाणक्य ने कहा है—

"वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।"

प्राण त्याग करना उत्तम है किन्तु ऐसे धूर्त पाखण्डी पुरुषाधमों की संगति में नहीं रहना चाहिये।

जो वास्तव में सच्चे साधु हैं उनका आदर, सत्कार तथा सत्संग अवश्यमेव करना चाहिये। क्योंकि—

साधुसंगतयो लोके सन्मार्गस्य च दीपकाः।
हार्दान्धकारहारिण्यो भासो ज्ञानविवस्वतः॥

साधु-सन्तों का सत्संग इस संसार में सन्मार्ग को दिखलाने के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम करता है क्योंकि साधु महात्माओं का सत्संग हृदयरूपी गुहा से अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिए ज्ञान-सूर्य है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान, संग्राम[1] में शत्रुओं का पराजय, अच्छे अच्छे गुणों का ज्ञान, विद्वानों की सेवा, दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग..... और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सबके लिए सब सुखों को उत्पन्न

१—जीवन संग्राम में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं का पराजय करना चाहिये।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये।" (यजुर्वेदभाष्य १।१६)

सत्संग के विषय में इस वाक्य को सर्वदा स्मरण रक्खें—

"क्षणमिह सज्जनसङ्गतिरेका,
भवति भवार्णवतरणे नौका।"

सत्संग रूपी नौका क्षण भर में संसार सागर से पार तरने के लिये सहायक होती है।

कुसङ्ग के आधुनिक स्रोत

सिनेमा, रसकस, स्वांग, रामलीला, नाच-गाना आदि।

आज के युग में दूषित विचारधारा का सबसे अधिक प्रचार करनेवाले सिनेमा (चलचित्र) ही हैं। हमारी आचार-परम्परा, सभ्यता और संस्कृति पर कुठाराघात कर कामवासना का, विलासिता का तथा स्पष्ट रूप में दुराचार का दिग्दर्शन कर सम्पूर्ण वातावरण को विषय-विष से भर दिया है। इस दुष्ट पिशाच के चक्र में फंसकर लाखों-करोड़ों बालक-बालिका और नवयुवक तथा नवयुवतियाँ अपने चरित्र को भ्रष्ट कर चुके हैं और दिन-प्रतिदिन करते जा रहे हैं। इसी सिनेमा के परिणामस्वरूप सहस्रों नर-नारियों ने अपनी अमूल्य निधि यौवन को विषयाग्नि का इन्धन बना दिया है, लाखों परिवार उजड़ गये, किन्तु दुःख है कि आज भी इस पतन के भयंकर साधक सिनेमा को कला के आवरण से ढका जा रहा है। वास्तव में देखा जाये तो कला का नाम देकर देश के साथ गद्दारी की जा रही है। अनेक शताब्दियों में भी विदेशी शासक हमारे चरित्र की जो हानि नहीं कर सके उसको इस कला ने कुछ ही वर्षों में कर डाला। यदि इस कला का इसी प्रकार से स्वागत होता रहेगा तो भावी नवयुवकों की आचारहीनता पराकाष्ठा पर पहुँच जायेगी और सभ्यता एवं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृति को मुंह छिपाने को ठौर न मिलेगा।

भारत में सिनेमाघरों की संख्या ४००० के लगभग है, दो करोड़ (२,००००००) व्यक्ति प्रतिदिन सिनेमा देखते हैं। अकेले देहली शहर में २७००० व्यक्ति प्रतिदिन सिनेमा देखते हैं। एक ओर वे व्यक्ति हैं जिन को पेट भर रोटी भी सुलभ नहीं और दूसरी ओर देश का ८५ करोड़ रुपया व्यभिचार के प्रचार में व्यय किया जा रहा है। हमारी इतनी बड़ी धनराशि हमारे ही विनाश में लगाई हुई है और हम बैठे-बैठे 'घर फूंक तमाशा' देखते रहते हैं।

ब्रह्मचर्य को नष्ट करने के लिये सिनेमा सब से बुरी कुसगंति है, अथवा यों समझें कि सिनेमा ब्रह्मचर्य का सबसे प्रबल शत्रु है। सिनेमा देखने वाला सात जन्म में भी वीर्यरक्षा नहीं कर सकता। क्योंकि इस में कामुकता, शृंगार, असभ्य-परिहास, चुम्बन; आलिंगन, तर्जन, उत्तेजन, नग्न-नृत्य आदि की भरमार होती है। अधिकतर फिल्में नवयुवकों को यही पाठ पढ़ाती हैं कि किस भांति किसी भले घर की लड़की को भ्रष्ट किया जाये। पतन की इतनी पराकाष्ठा होगई है कि फिल्म देखनेवाले नवयुवक के पास अपनी सगी बहिन भी सुरक्षित नहीं समझी जा सकती।

जब किसी सिनेमा देखने वाले व्यक्ति से सिनेमा देखने के विषय में पूछा जाता है कि आप सिनेमा क्यों देखते हैं? तब उत्तर में वह कहता है—"सिनेमा इस युग की सर्वोत्तम कला है, जब कार्य करते-करते मन ऊब जाता है तो मन बहलाव के लिये सिनेमा अच्छा साधन है, बहुत सी फिल्में शिक्षाप्रद होती हैं जिन से उत्तमोत्तम शिक्षायें मिलती हैं, इसलिये सिनेमा देखने में हानि ही क्या है? लोग व्यर्थ ही निन्दा करते रहते हैं" इत्यादि अनर्गल प्रलाप प्रारम्भ कर देता है।

उपरिलिखित सभी हेतु हमारे विचार से हेत्वाभास हैं। सर्व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाश के साधन को कला कहना या मानना ही सब से बड़ी भूल है। यदि दुर्जनतोष न्याय से इसे कला भी मान लें, तो क्या सिनेमाघर कला सिखलाने के विद्यालय हैं? वहां चित्र दिखलाये जाते हैं, चित्रों के सम्भाषण और हाव-भावों से किसी कल्पित या ऐतिहासिक घटना का वर्णन किया जाता है। न कला की दृष्टि से सिनेमा के कार्यकर्त्ता सिनेमा दिखलाते हैं और न ही दर्शक देखते हैं। भद्दे गाने सुनकर शृङ्गार-रस से परिपूर्ण हाव-भावों से मन में कामवासना अवश्य अंकुरित हो जाती है और वह ब्रह्मचारी के पतन का कारण बन जाती है।

मनोरंजन का साधन मानकर सिनेमा देखना भी अज्ञान है। इसको मानसिक पतन का साधन अवश्य कहा जा सकता है, मनोरंजन का नहीं। सिनेमा देखने से मन की थकावट दूर नहीं होती, अपितु मन और भी निर्बल हो जाता है। सिनेमा के शृंगार-रस से परिपूर्ण वातावरण में सदाचार की जड़ कभी नहीं जम सकती। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने 'मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प' पुस्तक में लिखा है—"सादगी सदाचार की जननी और शृङ्गार व्यभिचार का दूत है।"

मनोबल का साधन सदाचार है, सदाचार के अभाव में सिनेमा देखने से मनोरंजन नहीं होता, किन्तु मद्य के नशे की भांति ऐसा प्रतीत होता है। पीछे मानसिक शक्ति का ह्रास और निर्बलता का पता लगता है।

इसके अतिरिक्त चलचित्रों के देखने से नेत्र-ज्योति मन्द हो जाती है, इसी के परिणाम-स्वरूप आज छोटे-छोटे बालक भी उपनेत्र (ऐनक) लगाये फिरते हैं। सिनेमा देखते समय सहस्रों व्यक्ति बन्द भवन के अन्दर घुसकर बैठ जाते हैं, जहां पर न सूर्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का प्रकाश है और न ही शुद्ध वायु का सञ्चार। ऐसी अवस्था में स्वास्थ्य भी चौपट हो जाता है।

लोग रात्रि के बारह बजे तक सिनेमाघरों में बैठे रहते हैं और प्रातःकाल आठ-नौ बजे तक पड़े सोते रहते हैं, ऐसे लोग स्वास्थ्य रक्षा तथा ब्रह्मचर्य-पालन तो क्या करेंगे, अपना जीवन निर्वाह भी पराश्रित होकर करते हैं।

फिल्मों को शिक्षाप्रद भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अच्छी से अच्छी फिल्म में भी साधारण जनता की वासना-तृप्ति के लिये कुछ न कुछ सामग्री अवश्य मिलेगी। यदि किसी फिल्म को शिक्षाप्रद भी मान लें, तब भी सिनेमा देखने का स्वभाव अवश्य हो जायेगा और वह पुनः सिनेमा देखने के लिये बाधित करेगा। सर्वदा शिक्षाप्रद ही फिल्में नहीं दिखलाई जातीं, विवश होकर गन्दी से गन्दी फिल्म देखनी पड़ेगी और उसका दुष्परिणाम आचार-भ्रष्टता सामने है ही। मेरे पास ऐसे पत्र सर्वदा आते रहते हैं जिनमें लुट-पिट कर भ्रष्ट हुये विद्यार्थी अपना रोना रोते हैं।

इसलिये तन, मन, धन और आत्मा सभी को चौपट करने वाले इस भयङ्कर कुसंग से विद्यार्थी, ब्रह्मचारी तथा अपने अमूल्य मानव जीवन से कुछ भी प्रीति रखनेवाले व्यक्ति को सर्वथा दूर रहना चाहिये।

इसी भांति सरकस, रासलीला, रामलीला, सांग, ड्रामा, नाटक, नाच-गानादि भी ब्रह्मचर्य को दूषित करनेवाले होने से सर्वथा त्याज्य हैं। महर्षि दयानन्द जी ने भी सत्यार्थप्रकाश में 'रामलीला' को 'रांडलीला' लिखा है और साथ-साथ नाच गानादि का भी सर्वथा निषेध किया है। क्योंकि ये ब्रह्मचर्यपालन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और विद्योपार्जन में बाधक हैं। कुसंग ब्रह्मचर्यपालन तथा विद्या-प्राप्ति का सबसे बड़ा विघ्न है। महर्षि दयानन्द जी ब्रह्मचारी के लिए सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—"जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न है उनको छोड़ देवें, जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्ट व्यसन जैसा मद्यादि[1] सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना....."इत्यादि।

इसी भांति सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम, बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्शादि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा पूर्णविद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह साहस, धैर्य, बल पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा।"

इसी प्रकार पठन-पाठन विधि में महर्षि दयानन्द जी ने

1—यहां पर आदि शब्द से अफीम, भंग, चण्डू, चरस ताड़ी बीड़ी सिगरेट, गांजा, सुलफादि सभी मादक द्रव्यों का निषेध समझना चाहिये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिखा है—"मुख्य करके सामवेद का गान वादित्र वादन पूर्वक सीख और नारद संहिता आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें, परन्तु भड़वे, वेश्या और विषयासक्ति कारक वैरागियों के गर्दभ शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।" (सत्यार्थ० समु० ३)

पाठकवृन्द ! महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जीवन को उत्तम बनाने के लिए तथा ब्रह्मचर्य पालन विद्योपार्जनादि के विषय में कितना स्पष्ट लिखा है। सभी मादक द्रव्य=नशे, सभी विषय एवं सभी प्रकार के कुसंग से पृथक् रहकर सर्वथा पवित्र तपस्वी जीवन बनाकर ही ब्रह्मचर्य पालन और विद्याध्ययन किया जा सकता है और कुसंग में फंसकर नशे तथा विषयों का सेवन करने से सर्वथा नष्ट हो जाता है, यह महर्षि के उपदेश से भली-भांति स्पष्ट हो गया है। अतः इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

—

जीवननिर्माण एवं समाज सुधार में सहयोग देने के लिये गुरुकुल झज्जर के सचित्र मासिक पत्र

* सुधारक *

के ग्राहक बनिये : वार्षिक शुल्क : ६ रु. मात्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

(अष्टम भाग)

स्वाध्याय

स्वाध्याय की आवश्यकता

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(महर्षि दयानन्द)

हम आर्य हैं वेद का पढ़ना-पढ़ाना हमारा परम धर्म है, इस परम धर्म का पालन करने के लिये हमें नित्यप्रति वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये। यदि हम प्रतिदिन स्वाध्याय न करेंगे तो अपने धर्म से च्युत हो जायेंगे, पशु बन जायेंगे, इतना ही नहीं सर्वथा नष्ट हो जायेंगे। क्योंकि यह नियम है कि जब धर्मी धर्म को छोड़ देता है तब वह नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ अग्नि को ले लीजिये, उष्णता अग्नि का धर्म है, जब तक उसमें उष्णता विद्यमान है तभी तक वह अग्नि है, किन्तु उष्णता धर्म के नष्ट हो जाने पर उसे अग्नि कोई नहीं कहता, वह राख के रूप में परिणत हो जाती है। ठीक यही अवस्था हमारी है, जब तक हम अपने धर्म का पालन करते हैं, प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय करते हैं, तब तक हम जीवित हैं, उन्नति के पथ पर अग्रसर हैं, हमारे अन्दर आर्यत्व=श्रेष्ठत्व स्थित है, अन्यथा हमारा आत्मा मर जाता है, पतित हो जाता है, आर्यत्व भी नष्ट हो जाता है। मनु जी लिखते हैं—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"वेदस्त्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न सन्त्यसेत्"

वेद त्याग अर्थात् वेदों का स्वाध्याय न करने से मनुष्य शूद्र बन जाता है। इसलिये वेदों का स्वाध्याय नहीं छोड़ना चाहिये

"अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥"

वेदों का स्वाध्याय न करने से अत एव आचारहीन हो जाने पर तथा आलस्य-प्रमादादि के घेर लेने पर लोगों को मृत्यु आ-दबोचती है। इसके विपरीत वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करने से, सदाचारी एवं आलस्य-प्रमादादि को छोड़ देने पर मृत्यु को भी मारा जा सकता है, मनुष्य उसके भय से मुक्त हो सकता है। वेद में लिखा है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" (अथर्व० ११-५-१९)

ब्रह्मचर्य=वेदाध्ययन, ईश्वरचिन्तन और वीर्य की रक्षा करने रूपी तप के द्वारा विद्वान् लोग मृत्यु को मार डालते हैं और यह स्वाध्याय यज्ञ भी ऐसा है कि जन्म से मृत्युपर्यन्त=आजीवन करना चाहिये। किसी आश्रम में एक का, किसी में दो का और किसी में पांचों यज्ञों का विधान हमारे शास्त्रकारों ने किया है, किन्तु स्वाध्याय-यज्ञ सभी आश्रमों में अनिवार्य है।

ब्रह्मचर्य मुख्यतया है ही वेदादि के अध्ययन के लिये, सब नहीं तो कम से कम एक वेद तो अवश्य ही पढ़ना चाहिये, तभी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का विधान है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहाश्रममाविशेत्॥ (मनु० ३-२)

चारों वेदों को या दो वेदों को अन्यथा न्यून से न्यून एक वेद को यथाक्रम=शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिषादि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदांगों के अध्ययन पूर्वक पढ़कर, गुरुणानुमतः' गुरु= आचार्य की आज्ञा लेकर ब्रह्मचारी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिये।

गृहस्थ में जाकर भी स्वाध्याययज्ञ नित्यप्रति करना आवश्यक है। समावर्तन के समय आचार्य अन्तेवासी को सावधान करता है—

"स्वाध्यायान्मा प्रमदः" स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" (तैत्तिरीयारण्यक शिक्षावल्ली ७।११)

हे शिष्य तू स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करना, स्वाध्याय और प्रवचन नित्य प्रति करते रहना।

इसी प्रकार तृतीय वानप्रस्थाश्रम भी तप और स्वाध्यायादि के लिए है। महर्षि मनु ने भी कहा है—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥
(मनु० ६।७)

वानप्रस्थी को चाहिये कि वह जितेन्द्रिय होकर सर्वदा स्वाध्याय करने में रत रहे, सांसारिक विषयों से इन्द्रियों का दमन कर, सब पर कृपादृष्टि रखता हुआ विद्यादि का दान करता रहे किन्तु प्रत्युपकार में किसी से कुछ न ले, इस प्रकार व्यवहार करे।

चतुर्थाश्रम संन्यास में सभी सांसारिक साधनों का निषेध करते हुए स्वाध्याय की आवश्यकता बतलाई है—

"संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्।"

संन्यासी सब सांसारिक कार्यों से विरत हो जाये किन्तु वेद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
के स्वाध्याय को न छोड़े, वह सन्यासी के लिए भी अनिवार्य है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास सभी आश्रमों में स्वाध्याय यज्ञ को शास्त्रकारों ने अत्यन्त आवश्यकता बतलाई है। अन्य सांसारिक कार्यों में अवकाश (छुट्टी) का भी विधान है, जैसा कि आजकल भी प्रचलित है किन्तु स्वाध्याय इतना आवश्यक है जितना कि श्वास प्रश्वास। जिस प्रकार श्वास प्रश्वास यावज्जीवन निरन्तर चलते ही रहते हैं, उसी भांति स्वाध्याय-यज्ञ भी नित्यप्रति अखण्डित रूप में चलता रहना चाहिये।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि॥
(मनु० २।१९३)

नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत् स्मृतम्।

वेदादि के पढ़ने स्वाध्यायादि नित्यकर्मों के करने में कभी अनध्याय नहीं होता, सर्वदा अध्याय ही रहता है, क्योंकि स्वाध्यायादि कर्म ही ब्रह्मयज्ञ कहलाते हैं, इस ब्रह्मयज्ञ का सभी आश्रमों में सभी वर्णों में सर्वदा सर्वत्र अनुष्ठान करना चाहिये।

यदि किसी कार्य विशेष (नौकरी आदि) के कारण स्वाध्याय में बाधा पड़ती हो तो उस कार्य को भी छोड़ देने का विधान है, किन्तु स्वाध्याय इतना आवश्यक है कि इसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

'सर्वान् सन्त्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः"

इसीलिये अपनी जीवन यात्रा को चलाने के लिये अन्य कार्यों को करते हुए स्वाध्याय भी नित्यप्रति अवश्य ही करना चाहिये। इसकी सर्वोत्तम विधि यह है कि अपने सभी कार्यों के लिये समय विभक्त कर लेना चाहिये, अपनी दिनचर्या स्वयं सुविधानुसार बनाकर तदनुसार चलना चाहिये, उसमें स्वाध्याय के लिये भी कुछ समय नियत कर लेना चाहिये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाध्याय के लिए प्रातःकाल का ही समय सबसे उत्तम है, महर्षि मनु ने भी यही निर्देश किया है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

(मनु० ४।६८)

प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर धर्म, अर्थ, शारीरिक क्लेश तथा उनके कारण और वेद के तत्त्व का चिन्तन करना चाहिये। इसलिए प्रत्येक नर-नारी को विशेषतया ब्रह्मचारी को प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर नित्यकर्मों से निवृत्त होकर शान्तचित्त हो वेदादि सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

आजकल लोगों में स्वाध्याय के प्रति अरुचि हो गई है। आधुनिक ढंग के व्यक्ति स्वाध्याय की कोई आवश्यकता ही नहीं समझते। इसीलिये दिन-प्रतिदिन स्वाध्याय का अभाव-सा होता जा रहा है और मानव समाज से मानवता मुंह छिपाकर भाग रही है तथा दानवता का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है। इस बढ़ती हुई दानवता को, दुराचार=व्यभिचार की बाढ़ को रोकने के लिये स्वाध्याय करना परमावश्यक है। स्वाध्याय के अभाव में हमारा यह भयंकर पतन हुआ है अतः पुनरुत्थान स्वाध्याय करने से ही हो सकेगा। इसलिए स्वाध्याय करने का सभी को व्रत लेना चाहिये और उसका नियमित रूप से पालन करना चाहिये। जिस प्रकार से शरीर के लिये भोजन आवश्यक है उसी प्रकार आत्मा के लिये स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है।

स्वाध्याय करने के विषय में अधिकतर लोग यही मिष बनाते हैं कि हमें स्वाध्याय के लिये (फुरसत) ही नहीं मिलती। किन्तु यह सर्वथा मिथ्या है, समय मनुष्य के अधिकार में है, दिन रात के २४ घण्टों में से कम से कम एक घण्टा स्वाध्यायार्थ अति सुगमता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से निकाला जा सकता है। उसी एक घण्टे के समय में यदि प्रतिदिन २० पृष्ठ भी किसी पुस्तक का अध्ययन किया जाये तो वर्ष के ३६५ दिनों में ७३०० पृष्ठ पढ़े जा सकते हैं, जीवन के इतने लम्बे समय में विचारिये कितने सहस्र ग्रन्थों का स्वाध्याय किया जा सकता है।

किन्तु हम अपने जीवन के अमूल्य समय को शरीर की बनावट सजावट, खेल-कूद और गप्प गोष्ठियों में व्यर्थ खो देते हैं या आलस्य और प्रमाद में पड़े-पड़े जीवन को वृथा गंवा देते हैं। किन्तु इसे सदा स्मरण रखें—जो व्यक्ति अपने समय को व्यर्थ खोता है, वह अपने जीवन को खोता है, क्षण-क्षण से जीवन बनता और बिगड़ता है। बुद्धिमान् वही है जो अपने समय का सदुपरोग करता है।

स्वाध्याय का अर्थ

सु या स्व उपपद में होने पर आङ् अधिपूर्वक अध्ययनार्थक 'इङ्' धातु से 'इङश्च' ३।३।२१ इस पाणिनीय सूत्र से घञ् प्रत्यय करने पर 'स्वाध्याय' शब्द सिद्ध होता है। 'सुष्ठु' आवृत्य अध्ययनं स्वाध्यायः' स्वमध्ययनं स्वाध्यायः' भलीभाँति आवृत्ति पूर्वक अध्ययन करना, या अपने लिये अथवा स्वयं अध्ययन करना। स्व शब्द के आत्मा, आत्मीय आदि अनेक अर्थ होने के कारण स्वाध्याय शब्द के भी विविध अर्थ हो जाते हैं।

योगदर्शन के व्यासभाष्य में स्वाध्याय शब्द का अर्थ महर्षि व्यास ने इस प्रकार किया है—"स्वाध्यायः—प्रणवादिपवित्राणां जपः मोक्षशास्त्राध्ययनं वा" (२।१ तथा २।३२ सूत्रभाष्ये) प्रणव =ओम् गायत्र्यादि का जप करना या मोक्षशास्त्र आध्यात्मिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रन्थ वेद, दर्शन, उपनिषदादि का पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है।

सभी कोषकारों ने स्वाध्याय शब्द को वेदाध्ययन शब्द का पर्यायवाची या समानार्थक माना है—

"स्वाध्यायः। वेदे। स्वाभिमतप्रणवादिमन्त्रजपे। ब्रह्मयज्ञे वेदाध्ययने। फलवदर्थावबोधपर्यन्ताध्ययने। उपनिषद्ग्रन्थावृत्तौ। मोक्षशास्त्राणामध्ययने। सु अतीव आवृत्य अध्ययनम्। स्वार्थमध्ययनं वा।" (शब्दार्थचिन्तामणिः)

"स्वाध्यायः। सुष्ठु आवृत्य अध्यायो वेदाध्ययनमिति।"
(शब्दकल्पद्रुमवृहदभिधानम्)

स्वाध्यायः स्याज्जपः" "द्वे वेदाध्ययनस्येति' तट्टीका।
(अमरकोषः)

"स्वाध्यायो जप इत्युक्तो वेदाध्ययनकर्मणि।"
(शब्दरत्नावली)

"द्वे आवृत्य वेदाध्ययने। सु सुकृताय आवृत्य अध्यायोऽधितिः स्वाध्यायः।" (भरतः)

"सम्यक् रूप से शास्त्रमात्र के अध्ययन को ही स्वाध्याय कहते हैं।" (हिन्दी विश्वकोष)

इस प्रकार सभी कोषकार स्वाध्यायशब्द का अर्थ वेद, दर्शन, उपनिषदादि शास्त्रों का अध्ययन करना, आत्मकल्याणार्थ अध्ययन करना, आत्मचिन्तन, ईश्वरभक्ति, प्रणवादिजप करना इत्यादि अर्थ करते हैं। उसी प्रकार 'स्वाध्यायी और 'स्वाध्यायवान्' शब्द भी विशिष्ट वेदाध्यायी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

स तूर्ध्वरेतास्तपसि प्रसक्तः, स्वाध्यायवान् वीतभयः कृतात्मा।
चचार सर्वां पृथिवीं महात्मा, न चापि दारान् मनसाप्यकाङ्क्षत॥
(महाभारत १।४०।१०)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यपालन आदि तप में लगा हुआ, भय शोकादि से रहित, ऊर्ध्वरेता और जितेन्द्रिय होकर महात्मा जरत्कारु सम्पूर्ण भूमण्डल पर भ्रमण करने लगा, उसने कभी मन से भी स्त्री आदि की इच्छा नहीं की।

इस प्रकार अश्लील, अनार्ष, भद्दे, उत्तेजक नाटक-उपन्यास, कहानी, सिनेमा, रागिणी, रामलीला, रासलीला आदि की किसी भी प्रकार की पुस्तक पढ़ लेना स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता, जो ऐसा समझते हैं वे भूल करते हैं। स्वाध्याय आत्मोन्नति का सर्वोत्तम साधन है, किन्तु इन नाटकादि के अध्ययन से उन्नति के स्थान में अवनति ही होगी।

कुछ सज्जन वृत्तपत्र (अखबार) पढ़कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, उनकी दृष्टि में यही स्वाध्याय है किन्तु वृत्तपत्र पढ़ने को स्वाध्याय समझना भी अज्ञान है। स्वाध्याय शब्द का अर्थ हम सप्रमाण ऊपर लिख चुके हैं और आगे चलकर स्वाध्याय करने योग्य ग्रन्थों का नामोल्लेख भी किया जायेगा, उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है, नाटक-उपन्यास और वृत्तपत्रादि पढ़ना कदापि नहीं।

स्वाध्याय की महिमा

हमारे शास्त्रों में स्वाध्याय की महिमा बहुत बतलाई गई है। वेद, स्मृति, उपनिषद्, दर्शन और ब्राह्मणग्रन्थों में स्वाध्याय के महत्त्व पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। स्वाध्याय के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए ही हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों ने हमारी जीवनचर्या में स्वाध्याय को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। देखिये पञ्च महायज्ञों में स्वाध्याय एक यज्ञ[1] है। योग के आठ

1. "स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः (शतपथ० ११।५।६।३)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अङ्गों में स्वाध्याय भी उपाङ्ग[2] है। मनु महाराज ने स्वाध्याय को सर्वोत्तम तप बतलाया[3] है और धर्म के, सप्तम लक्षण धी=विमल बुद्धि की प्राप्ति का साधन भी स्वाध्याय ही है। योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास जी ने लिखा है —

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

स्वाध्याय के द्वारा योग की ओर प्रवृत्त होकर योग से स्वाध्याय का चिन्तन करना चाहिये, स्वाध्याय तथा योगाभ्यास के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। छान्दोग्योपनिषत् के अन्त में भी लिखा है—

"आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते। न च पुनरावर्तते। (८।१५।१)

ब्रह्मचारी आचार्य-कुल से विधिपूर्वक वेद पढ़कर गुरु की सेवा शुश्रूषा आदि पूर्णतया करता हुआ समावर्तन संस्कार करके कुटुम्ब-गृहाश्रम में रहता हुआ, पवित्र स्थान में वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करता हुआ, अपने परिवार एवं जनता को धार्मिक बनाता हुआ, आत्मा में सब इन्द्रियों को स्थापित कर, तीर्थ स्थानों से अन्यत्र भी प्राणियों की हिंसा न करता हुआ, मरण पर्यन्त इस प्रकार का व्यवहार करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, तथा आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

---

२. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ (योग २।३२)
३. वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते।
ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडङ्गसहितस्तु यः ॥ (मनुस्मृति)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शतपथ ब्राह्मण का एक ब्राह्मण सम्पूर्ण स्वाध्याय की प्रशंसा का है—

"अथातः स्वाध्यायप्रशंसा। प्रियं स्वाध्यायप्रवचने भवतो युक्तमना भवत्यपराधीनोऽहरहरर्थान् साधयते सुखं स्वपिति परम-चिकित्सक आत्मने।

भवतीन्द्रियसंयमश्चैकारामता च प्रजावृद्धिर्यशो लोकपङ्क्तिः। प्रज्ञा वर्धमाना चतुरो धर्मान् ब्राह्मणमभिनिष्पादयति ब्राह्मण्यमति-रूपचर्या यशोलोकपङ्क्तिम्। लोकः पच्यमानश्चतुर्भिर्धर्मैर्ब्राह्मण-म्भुनक्त्यर्चया च दानेन चेज्यया चावध्यतया च।

शतपथ ब्रा० ११।५।६।१

अब स्वाध्याय की प्रशंसा=महिमा बतलाते हैं, 'स्वाध्याय और प्रवचन अत्यन्त प्रिय विषय हैं, शान्तचित्त से स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति स्वतन्त्रता से अपने कार्य सिद्ध करता है, आनन्द से रहता है, अपने हिताहित का ध्यान रखता है, संयमी, बुद्धिमान् और यशस्वी बन जाता है, बुद्धि की निर्मलता से स्वाध्यायशील व्यक्ति धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, सच्चा ब्राह्मणत्व, यथोचित आचार-व्यवहारवान् और लोगों का विश्वास-पात्र बन जाता है, सब ओर से उसे यथेष्ट सम्मान, धनादि प्राप्त होते हैं।

ये ह वै के च श्रमाः। इमे द्यावापृथिवीऽअन्तरेण स्वाध्यायो हैव तेषां परमता काष्ठा य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते तस्मात्स्वा-ध्यायोऽध्येतव्यः। (शतपथ ब्रा० का० ११ अ० ५ ब्रा० ६ क० २)

संसार में जितने भी कार्य हैं स्वाध्याय उन सब में श्रेष्ठ है, कठिन कार्य है, ऐसा जानकर जो स्वाध्याय करता है वह तत्त्व को जान लेता है। इसलिये स्वाध्याय करना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋग्वेद के ज्ञान सूक्त में स्वाध्याय की महिमा इस प्रकार बतलाई है—

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥
(ऋ० १०।७१।६)

(यः) जो व्यक्ति (सचिविदम्) परमेश्वर को प्राप्त कराने या उसका ज्ञान करवाने वाले (सखायम्) वेद के स्वाध्याय रूपी मित्र को (तित्याज) छोड़ देता है, (तस्य) उस व्यक्ति की (वाचि अपि) वाणी में भी (न भागो अस्ति) कुछ भजनीय= सेवनीय तत्त्व नहीं है। (यत् ईम् शृणोति) वह जो कुछ सुनता है (अलकम् शृणोति) सब मिथ्या ही सुनता है और (न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्) वह सुकृत के, पुण्य के मोक्ष के मार्ग को नहीं जान सकता। इसलिये परमसुख मोक्ष की प्राप्ति के लिये वेदों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

स्वाध्याय का फल

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक एक वर्ष तक शुद्ध एकाग्रचित्त होकर स्वाध्याय करता है उसको ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेदादि का ज्ञान अर्थात् ज्ञान कर्म उपासनादि का फल मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में मधु तथा पय का अर्थ ऋचा और घृत का अर्थ साम किया है[1]

ऋग्वेद और सामवेद में स्वाध्याय के फल का वर्णन करने वाले ६ मन्त्र हैं जिन में स्वाध्याय के नाना लाभों का विस्तृत

1—मधु ह वा ऋचः (११।५।७।५)
पय आहुतयो ह वा एता देवानां यदृचः (११।५।६।४)
घृतं ह सामानि (११।५।७।५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्णन किया है, उनमें से केवल ३ मन्त्र यहां उद्धृत किये जाते हैं—

पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
स सर्वं पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥
(ऋ० ८ । ६७ । ३१ ॥ साम० उ० अ० १० कं० ६)

पावमानी अर्थात् सब को पवित्र करनेवाली ईश्वर प्रदत्त एवं ऋषियों द्वारा सञ्चित ऋचाओं का जो अध्ययन करता है, वह पवित्र आनन्द रस का आस्वादन करता है ।

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान् समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥
(सा० उ० अ० १० ख० ६)

पावमानी ऋचायें इस लोक और परलोक दोनों को धारण करने में हमारी सहायक हों, देव=उत्तम विद्वान् या श्रेष्ठ इन्द्रियों द्वारा प्राप्त करवाई हुई ये ऋचायें हमारी शुभकामनाओं को पूर्ण करें ।

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छन्ति नान्दनम् ।
पुण्याँश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥
(साम० उ० अ० १० ख० ६)

ये पावमानी ऋचायें कल्याणकारिणी हैं, इनके द्वारा मनुष्य आनन्द को प्राप्त होते हैं, इन ऋचाओं का अर्थात् वेद का स्वाध्याय करनेवाला इस लोक में उत्तम भोग का उपभोग करता हुआ मोक्ष का अधिकारी बन जाता है ।

महर्षि पतञ्जलि ने स्वाध्याय का फल इस प्रकार लिखा है—
"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः" (योगदर्शन २–४४)

स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य इष्टदेवता=यथेच्छ शुभ गुण की प्राप्ति कर सकता है, कोई महापुरुष इस संसार में नहीं है किन्तु उसके ग्रन्थों का स्वाध्याय कर हम उस से, उसके विचारों से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सगंति कर यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। अत एव इस सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास ने लिखा है —"देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्तन्ते।" विद्वान् ऋषि महर्षि आदि स्वाध्यायशील के दर्शन=ज्ञान में आते हैं और इसके कार्य को सिद्ध कर सकते हैं अर्थात् उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय कर स्वाध्यायवान् व्यक्ति अपने कार्य को सिद्ध कर लेता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है—

"यद्यद्ध वायं छन्दस्यः स्वाध्यायमधीयते तेन तेन हैवास्य यज्ञक्रतुनेष्टम्भवति, य एवं विद्वान्स्वाध्यायमधीते, तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" (शतपथ० का० ११ अ० ५ ब्रा० ७ कं० १)

"स्वाध्यायशील मनुष्य जिस-जिस वेद का स्वाध्याय करता है उसको उस-उस वेद का वही फल मिलता है जो उस वेद से यज्ञ करने पर होता है, अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।"

जन्म से कोई ब्राह्मणादि नहीं होता किन्तु सब अपने-अपने गुण कर्मानुसार ही होते हैं। शूद्रकुल में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण बन जाता है और ब्राह्मणकुलोत्पन्न व्यक्ति शूद्र बन जाता है[1]। मनु महाराज लिखते हैं—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ (मनु० २।२८)

इस श्लोक का अर्थ ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखा है—

"(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने-पढ़ाने (व्रतैः) ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होमैः) अग्निहोत्रादि होम सत्य का ग्रहण

१—शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ (मनु० १०।६५)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मोपासनाज्ञान विद्या के ग्रहण (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने (सुतैः) सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ; बलिवैश्वदेव और अतिथियों के सेवन रूप पञ्चमहायगों और (यज्ञः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर किया जाता है। इतने साधनों के बिना ब्राह्मण शरीर नहीं बन सकता।"

ब्राह्मण अर्थात् सर्वोत्तम पुरुष बनने के लिए भी सर्वप्रथम स्वाध्याय की ही आवश्यकता है। जब हम अपने से अधिक विकसित, अनुभवी, वेद-शास्त्रवेत्ता ऋषि-महर्षि और विद्वानों के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं, अपने मन से उनके विचारों को ग्रहण करते हैं तब हमारी मानसिक शक्ति बढ़ती है, तदनुकूल आचरण करने से हम भी वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष बन सकते हैं। स्वाध्याय के लाभ कहाँ तक वर्णन किये जायें, केवल स्वाध्याय के ही बल पर एक साधारण व्यक्ति उच्चकोटि का विद्वान् बन सकता है। ऐसे सहस्रों उदाहरणों का इतिहास साक्षी है—

बरमौण्ट (अमेरिका) के एक मोची चार्लस सी फ्रास्ट ने अपनी आजीविका (नौकरी) के कार्य से प्रतिदिन एक घण्टा निकाल कर १० वर्ष तक एक घण्टा गणित के अध्ययन में लगाया। केवल उस एक घण्टे के स्वाध्याय के आधार पर उच्चकोटि का गणितज्ञ हो गया।

प० गुरुदत्त एम० ए० ने एम० ए० की उपाधि लेने तक ही साथ-साथ वैदिक ग्रान्थों का स्वाध्याय कर डाला और उसी गुरुदत्त एम० ए० ने महर्षि दयानन्द जी के देहावसान के पश्चात् सभी पाश्चात्यों के वेद सम्बन्धी सभी आक्षेपों का वह मुंहतोड़ उत्तर
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया जिससे वे अवाक् रह गये। पं० गुरुदत्त जी ने गुरुमुख से वेदवेदांगों का विधिपूर्वक अध्ययन नहीं किया किन्तु स्वाध्याय के ही कारण इतने उच्चकोटि के विद्वान् बन गये।

इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी महाराज, पं० चमूपति जी एम० ए०, पं० लेखराम जी महाराज तथा महात्मा नारायण स्वामी जी आदि सभी महापुरुषों के जीवनचरित्रों को पढ़िये, ये सभी महापुरुष स्वाध्याय के ही बल पर इतने उच्चकोटि के विद्वान् लेखक, वक्ता शास्त्रार्थमहारथी आदि बने थे और आजकल भी सैकड़ों ऐसे विद्वान् हमारी दृष्टि में हैं जिन्होंने स्वाध्याय के द्वारा ही सब कुछ प्राप्त किया है। किन्तु विस्तारभय से यहां पर अधिक नहीं लिखा जा सकता।

महात्मा गांधी जी ने लिखा है—

"अच्छी पुस्तकों के पास होने से हमें अपने भले मित्रों के साथ रहने की नहीं खटकती। जितना ही मैं पुस्तकों का अध्ययन करता गया उतनी ही मुझे उनकी विशेषतायें मालूम होती गईं। जिसे पढ़ने का शोक है, वह हर जगह सुखी रह सकता है।"

अतः स्वाध्याय के लाभों को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को स्वाध्यायशील बनना चाहिये।

स्वाध्याय का क्रम

स्वाध्याय का क्रम क्या है ? यह एक विचारणीय विषय है। यह तो हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि स्वाध्याय वेदादि शास्त्रों का पठन-पाठन ही कहलाता है। अन्य अनार्ष अश्लील ग्रन्थ तथा वृत्तपत्रादि का नहीं। प्राचीनकाल में वेदों को अधिगत करने के लिये आज की भांति नाना ग्रन्थों की आवश्यकता न थी, गुरु शिष्य को वेदार्थ बतला देता था और शिष्य उसे कण्ठस्थ कर लेता था, इसीलिये वेदों को श्रुति कहा जाता था। किन्तु कालान्तर में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब शक्ति का ह्रास होने लगा, शिष्य गरुमुख से वेदार्थ को समझने में असमर्थ होगये तब वेदांग आदि की रचना हुई। यास्काचार्य जी ने निरुक्त में लिखा है—

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः, तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत-धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे, बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः। वेदं च वेदांगानि च॥"

(नि० १।२०)

सृष्टि के प्रारम्भ में साक्षात्कृतधर्मा=वेदार्थ को साक्षात् करने वाले ऋषि हुए, उन्होंने वेदार्थानभिज्ञ लोगों को उपदेश के द्वारा वेदमन्त्रों का अर्थज्ञान करवाया। किन्तु कालान्तर में जब शिष्य उपदेश के द्वारा वेदार्थ जानने में असमर्थ होगए तब ऋषियों ने सुगमता से वेदार्थ को ग्रहण करवाने के लिये निघण्टु निरुक्तादि वेदांग उपांगों की रचना की।

किन्तु आज हमारे समक्ष एक और समस्या उपस्थित हो गई है, आजकल वेदवेदांगों के पठन-पाठन का ही लोप होता जा रहा है, प्रथम तो पढ़ने वाले ही नहीं मिलते और यदि कोई पढ़ना भी चाहता है तो पढ़ाने वाले बिरले ही मिलते हैं। ऐसी अवस्था में सुगम उपाय यही है कि जो जो ग्रन्थ, ऋषि महर्षि एवं आधुनिक धार्मिक विद्वानों के बनाये हुये हैं उनका स्वाध्याय करना चाहिये।

स्वाध्याय का क्रम अपनी योग्यता के अनुसार स्वयं ही निश्चित करना होगा, या किसी विद्वान् गुरु आचार्य आदि से पूछकर भी निश्चित किया जा सकता है। स्वाध्यायक्रम निश्चित करने के लिये योग्यता ही मानदण्ड है। यदि प्राथमिकशाला का बच्चा महाविद्यालय या विश्वविद्यालय की कक्षा में जाकर बैठेगा तो उसके पल्ले कुछ न पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार यदि साधारण अक्षर बोध वाला व्यक्ति वेद को पढ़ना चाहे तो नहीं पढ़ सकता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनु महाराज ने लिखा है—

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ।।

मनुष्य ज्यों-ज्यों शास्त्रों का परिशीलन करता जाता है त्यों-त्यों उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि होती जाती है और उसकी रुचि भी शास्त्रों के प्रति बढ़ती जाती है।

इसलिये योग्यतानुसार प्रथम छोटे-छोटे ग्रन्थों का स्वाध्याय कर उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिये। पूर्णतया कल्याण तब होगा जब महर्षि दयानन्द जी द्वारा निर्दिष्ट प्राचीन आर्षपाठविधि के अनुसार यथाविधि वेदादि शास्त्रों को पढ़ा जायेगा। जो आनन्द गंगोत्री का जल पान करने से मिलता है वह हुगली के गन्दे जल के पीने से किस प्रकार मिल सकता है ? अतः यथाविधि ही शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये किन्तु जो विधिपूर्वक वेद को पढ़ने में असमर्थ हैं उन्हें भी स्वाध्याय के द्वारा उन्नति=आत्म-कल्याण अवश्य ही करना चाहिये।

अक्षरबोध के पश्चात् महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, भीष्म पितामह, हनुमान्, स्वामी शङ्कराचार्य, ब्र० रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर 'आजाद', सरदार भगतसिंह आदि के जीवनचरित्रों का स्वाध्याय करना तदनन्तर इतिहास, धर्मशास्त्र, ऋषि दयानन्दकृत ग्रन्थ, वेदभाष्य आदि योग्यता के अनुसार पढ़ने चाहियें।

स्वाध्याय और श्रावणी

स्वाध्याय तथा श्रावणी पर्व का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चला आता है। मनुस्मृति में लिखा है—

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि ।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान् ।।
(अ० ४—९५)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रावणी या भाद्रपदमास की पूर्णिमा को यथाविधि उपाकर्म करके साढ़े चार मास तक वेदों का अध्ययन करना चाहिये।

कूर्म पुराण में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है—

उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।
अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः।
(उपविभाग अ० १३)

साढे चार मास तक ग्राम नगर आदि से पृथक् स्वच्छ स्थान में जाकर, एकाग्रचित्त और जितेन्द्रिय होकर वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य-स्मृति, बोधायन स्मृति, वसिष्ठस्मृति, वाल्मीकि रामायण तथा आश्वलायन-पारस्कर-लोगाक्षि आदि गृह्य-सूत्रों में भी श्रावण मास में वेदाध्ययन=विशेषतया वेद के स्वाध्याय का विधान मिलता है।

श्रावणी पर किया क्या जाता है? पुराने का त्याग नवीन का ग्रहण। पुराने जीर्ण यज्ञोपवीत, मेखलादि का विसर्जन और स्वाध्याय क्रम में परिवर्तन किया जाता है। श्रावण से पौष तक चार-पांच मास तक विशेषतया वेदों का स्वाध्याय किया जाता है और तदनन्तर वेदांगों का। श्रावणी के आने पर द्वितीय वर्ष पुनः पूर्ववत् वेदों का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया जाता है।

श्रावणी का विशेष महत्त्व वेदों के अध्ययन के ही कारण है। वेद सभी सत्य विद्याओं के मूल ग्रन्थ हैं, संसार की सभी विद्यायें सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल बीज रूप से वेदों में निहित हैं।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वार आश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥
(मनुस्मृति)

ब्राह्मणादि चारों वर्ण, ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रम अर्थात् सम्पूर्ण वर्णाश्रम धर्म, भूत, वर्तमान और भविष्यत् इन सब का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
ज्ञान वेद के अध्ययन से होगा । धर्म के चार लक्षण—(वेदः, स्मृतिः, सदाचारः, स्वस्य च प्रियमात्मनः) में वेद का सर्वप्रथम स्थान है, क्योंकि—(वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' मनु) वेद ही धर्म का उत्पत्ति स्थान है, अतः वेदविहित धर्म तद्विरुद्ध अधर्म समझना चाहिये ।

स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य

स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, वेदादि पवित्र ग्रन्थों का स्वाध्याय किये बिना मनुष्य के विचार शुद्ध नहीं रह सकते, बना संकल्प शुद्धि के ब्रह्मचर्य पालन या वीर्यरक्षा कर सकना सर्वथा असम्भव है । ब्रह्मचर्य पालन या वीर्यरक्षा के बिना सब कुछ थोथा है, निष्फल और निस्सार है । संसार में बिना वीर्यरक्षा किये कोई भी व्यक्ति किसी महान् कार्य के करने में सफल नहीं हुआ, जिन्होंने वीर्यरक्षा की वे सर्वत्र सफल ही सफल होते गये । निःसन्देह वीर्यरक्षा सफलता को कुञ्जी है, 'ब्रह्मचर्यं पुरुषार्थस्य साधनम्' ब्रह्मचर्य पुरुषार्थचतुष्टय=धर्म अर्थ काम और मोक्ष का साधन है । उपनिषद् भी कहती है—"यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" श्रेयोमार्गगामी जिस प्रभु की (मोक्ष की) कामना से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं ।

प्राचीन काल में स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य का बहुत मान था । तैत्तिरीयारण्यक में एक कथा आती है—

"भरद्वाज ने तीन आयु तक ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या पढ़ी, जब वह वृद्ध होकर मृत्यु शय्या पर पड़ा था तब इन्द्र ने उसके पास आकर कहा—भरद्वाज ! यदि तुम को चौथी आयु दी जाये तो उसका क्या करोगे ? भरद्वाज ने उत्तर दिया कि उस चौथी आयु में भी ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या पढ़ूंगा ।

ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचारी शब्द स्वयं बतला रहे हैं कि वेद पढ़ना
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों का स्वाध्याय करना ब्रह्मचारी का परम धर्म है। शब्द को तोड़ने-मरोड़ने की आवश्यकता नहीं, ब्रह्म का अर्थ है—ईश्वर वेद और ज्ञान; चर्य=चिन्तन अध्ययन उपार्जन, अतः ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ हुआ—ईश्वरचिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन। वेदों का स्वाध्याय करना ब्रह्मचर्य पालन में परम सहायक और अंग है। महात्मा नारायण स्वामी जी ने भी लिखा है—

"स्वाध्याय ब्रह्मचर्य का साधन है"

अष्टाध्यायी के भाष्यकार महर्षि पतञ्जलि जी लिखते हैं—"चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति, आगमनकालेन, स्वाध्याय-कालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति" (नवाह्निक १. १. १.)

अर्थात् चार प्रकार से विद्या की प्राप्ति भलीभांति होती है—आगमकाल=गुरुमुख से पढ़ना, स्वाध्यायकाल=पढ़े हुए का स्वय स्वाध्याय करना, पश्चात् उसका प्रवचन और व्यवहार=प्रयोग करना। इसी प्रकार विद्याप्राप्ति और ब्रह्मचर्य पालन के लिये स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे बिना स्वाध्याय किये ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं की जा सकती, उसी प्रकार बिना ब्रह्मचर्य पालन=इन्द्रियदमन किये स्वाध्याय भी भलीभांति नहीं किया जा सकता। स्वाध्याय काल में चित्त और इन्द्रियां विक्षिप्त हैं तो स्वाध्याय करने से विशेष लाभ नहीं होता, ऐसी, अवस्था में सब किया-कराया व्यर्थ हो जाता है। अतः इन्द्रिय दमन=ब्रह्मचर्य स्वाध्याय के लिये और स्वाध्याय ब्रह्मचर्य पालन के लिये आवश्यक है।

स्वाध्याय किस का और क्यों ?

"नास्ति वेदात्परं शास्त्रम्" वेद से बढ़कर अन्य कोई शास्त्र या ग्रन्थ नहीं है, "वेदश्चक्षुः सनातनम्" सनातन=सबसे प्राचीन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चक्षुः=ज्ञान-विज्ञान का नेत्र वेद ही है। बुद्धिपूर्वा वाक्यकृति-र्वेदे'(वै. ६।१) वेद का एक-एक वाक्य बुद्धिपूर्वक है, एक भी शब्द विपरीत नहीं। अतः स्वाध्याय वेदों का ही करना चाहिये। मनु जी ने लिखा है—

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परमं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

आलस्य और प्रमाद को छोड़कर नियत काल में नित्यप्रति वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये, क्योंकि यही परम धर्म है, शेष उपधर्म है। महर्षि दयानन्द जी ने भी वेदों के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने को परम धर्म बतलाया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि भी यही लिखते हैं —ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" अर्थात् सांगोपांग वेद का पढना और जानना ब्राह्मण का निष्कारण= स्वार्थादि से रहित धर्म है। यहाँ ब्राह्मण का ग्रहण सब वर्णों में मुख्य होने के कारण किया है अतः मनुष्य मात्र का ही वेदाध्ययन परम धर्म है।

वेद और वेदानुकूल अन्य ग्रान्थों का ही स्वाध्याय करना चाहिये। जो ग्रन्थ वेद-विरुद्ध हैं वे सर्वथा त्याज्य हैं।

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥म० १२।९५

जो ग्रन्थ स्मृति शाखादि वेदविरुद्ध हैं वे सब निष्फल और तमोनिष्ठ=अज्ञानान्धकाराच्छादित होने के कारण छोड़ देने चाहियें। वेदविरुद्ध ग्रन्थों के पठन से कोई लाभ नहीं, हानि ही होती है। महर्षि मनु और कूर्म-पुराण ने वेद के न पढ़नेवाले को मूढ़, शूद्र और समाज से बहिष्कृत बतलाया है।

अनार्ष, अश्लील, उपन्यास, नाटकादि को पढ़नेवाला कभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी ब्रह्मचारी या सदाचारी नहीं रह सकता। ऐसे शृङ्गार रस के दूषित ग्रन्थों का पढना अपने घर में स्वयं आग लगाना है, अश्लील ग्रन्थों के पढ़ने से ब्रह्मचारी भी व्यभिचारी बन जाता है, साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में पठन-पाठन विधि के अन्तर्गत संक्षेप से पाठ्य तथा अपाठ्य ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनमें से कुछ यहां भी लिखे खाते हैं, विशेष विवरण सत्यार्थप्रकाश और संस्कार विधि में पढ़ना चाहिये।

"अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो-जो नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह-वह जाल ग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा इत्यादि। ज्योतिष में शीघ्रबोध, मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायिकाभेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्त्वकौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र ग्रन्थ सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषा रामायण रुक्मिणीमंगलादि और सर्वभाषाग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे 'विषसम्पृक्तान्नवत्त्याज्या:' जैसे अत्युत्तम अन्न विष

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

स्वाध्यायोपयोगी ग्रन्थ

ऋग्, यजुः, साम, अथर्व चार वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थवेद ४ उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ६ वेदांग, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा, उत्तर मीमांसा (वेदान्त) ६ दर्शन अर्थात् उपांग, ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ४ ब्राह्मणग्रन्थ, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक १० उपनिषद्, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत इत्यादि सब ऋषि-मुनिकृत ग्रन्थ हैं इनमें भी जो-जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस-उस को छोड़ देना चाहिये, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

इन प्राचीन ग्रन्थों के अतिरिक्त ऋषि दयानन्दकृत वेदभाष्य सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका व्यव-हारभानु, आर्याभिविनय, गोकरुणानिधि, अर्योद्देश्यरत्नमालादि सभी ग्रन्थ तथा आधुनिक धार्मिक विद्वानों के उत्तमोत्तम ग्रन्थ, सिद्धान्त, राजनीति, समाजशास्त्र नागरिकशास्त्र, शिल्पविद्या आदि विषयों पर श्रेष्ठ अनश्लील ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये।

संसार के सभी महापुरुषों के जीवनचरित्र विशेषतया पठ-नीय हैं, इनके स्वाध्याय से जीवनोत्थान में विशेष सहायता मिलती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्षग्रन्थों का महत्त्व

आर्ष-ग्रन्थ सब सत्य सरलता के सांचे में ढ़ाले हैं।
जनजीवन को अमर बनाते, सौम्य-सुधा के प्याले हैं॥

आर्ष अनार्ष ग्रन्थ भी एक जटिल प्रश्न है, आर्ष क्या है और अनार्ष क्या? इसका साधारण उत्तर यही है—"ऋषिभिः प्रोक्तमार्षम्" जो जो ग्रन्थ ऋषियों द्वारा प्रोक्त=कथित या लिखित हैं वे सब आर्ष हैं। किन्तु आजकल ऋषियों के नाम से भी धूर्त स्वार्थियों ने अनेक पाखण्ड पोथे रच डाले हैं अतः इस परिभाषा को इस प्रकार समझें—"ऋषिभिः प्रोक्तमार्षम्, वेदानुकूलञ्चेत्" ऋषियों द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ आर्ष हैं, वे भी तभी जब कि वेदानुकूल हों, विरुद्ध नहीं। आर्ष-अनार्ष ऋषि अनृषि के विषय में विस्तारभय से यहां अधिक नहीं लिखा जा सकता, फिर कभी अन्यत्र लिखा जायेगा।

आर्ष-ग्रन्थों का महत्त्व क्या है और उनको क्यों पढ़ना चाहिये इस विषय में सुधारकाग्रणी महर्षि दयानन्द जी महाराज के ही वचन यहां उद्धृत किये जाते हैं—

"ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे, अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपात सहित है उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।"

"क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है? महर्षि लोगों का आशय, जहां तक हो सके वहां तक, सुगम और जिसके ग्रहण करने में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहां तक बने वहां तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना कोड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना।"

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

उपहसांर

पाठक वृन्द ! इस 'सत्संगस्वाध्याय' ग्रन्थमें सत्संग कुसंग के लाभ हानि महत्त्वादि तथा स्वाध्याय की आवश्यकता, स्वाध्याय का अर्थ, स्वाध्याय की महिमा, स्वाध्याय के लाभ, स्वाध्याय का क्रम इत्यादि सभी आवश्यक विषयों पर सप्रमाण प्रकाश डाला गया है किन्तु हमारे लिखने और आपके पढ़ लेने मात्र से ही कार्य पूर्ण नहीं हो जाता है, लिखना तभी सफल होता है जब तदनुसार आचरण किया जाता है, क्रिया करने से ही फलवती होती है, मिश्री शब्द के उच्चारण ले मुंह मीठा नहीं होता वा निर्मल (कतक) का नाम लेने से ही जल शुद्ध नहीं हो जाता। अतः गुण अवगुणों को विचार कर गुणों का ग्रहण एवं अवगुणों का त्याग कर देना चाहिये।

यदि किसी विषय को या कार्य को उत्तम जानकर स्वीकार कर लिया है, यदि वास्तव में उत्तम है तो उस अंगीकृत कर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिये, इसी में सफलता निहित है। भर्तृहरि जी ने लिखा है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

सब से निकृष्ट व्यक्ति वे होते हैं जो विघ्न-बाधाओं के भय से श्रेष्ठ कार्यों का प्रारम्भ नहीं करते, मध्यम कोटि के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ कर आपत्तियों से घबराकर बीच में ही छोड़ देते हैं किन्तु उत्तम पुरुष वे होते हैं जो सब विघ्न-बाधाओं को पार करते हुये अपने लक्ष्य की सिद्धि कर लेते हैं।

प्रभु ने हमें यह मनुष्ययोनि उन्नति करने के लिये दी है, अवनति के लिये नहीं, स्वयं वेद भगवान् कहता है—

"उद्यानं ते पुरुष नावयानम्" हे पुरुष तू उन्नति कर, उत्तम बन, उत्तरोत्तर कल्याण मार्ग का पथिक बनता हुआ, मोक्षानन्द को प्राप्त कर, 'नावयानम्' अवनति के गर्त में न गिर, देख ! कहीं तेरा अधः पतन न हो जाये। पहले से ही सावधान रहना अच्छा है, गड्ढे में गिरकर वैसा का वैसा निकलना कठिन हो जाता है। बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम अवनति की ओर एक भी पांव न रखकर सदा उन्नति ही करते जावें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

भोजन

[नवम भाग]

भूमिका

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्"

धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह पुरुषार्थचतुष्टय मानव जीवन का उद्देश्य है। इस पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि का मूलकारण आरोग्य है। शरीर यदि स्वस्थ नहीं है, रोगी है, तो पुरुषार्थचतुष्टय की तो क्या बात, शौच स्नानादि नित्य कर्मों का अनुष्ठान भी अलीभांति नहीं किया जाता। रोगी स्वयं दूसरों पर भार होता है, वह किसी की क्या सेवा या उपकार कर सकता है तथा क्या धर्म कमा सकता है। इसलिए शरीर की स्वस्थता को पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के लिए हमारे शास्त्रकारों ने सर्वप्रथम और मुख्य स्थान दिया है।

जीवन का चरम लक्ष्य, अन्तिम ध्येय मोक्षप्राप्ति ही है और उसकी प्राप्ति आत्मा इस शरीररूपी रथ पर सवार होकर करता है। यदि शरीररूपी रथ स्वस्थ और दृढ़ नहीं है तो मार्ग में ही जीर्ण शीर्ण हो जायेगा तथा आत्मा अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। आवागमन के चक्र से न छूटकर दुःखसागर में गोता लगायेगा। अतः आवश्यक है कि हमारा शरीररूपी रथ, जीवन यात्रा का साधन, स्वस्थ दृढ़ और सुगठित हो।

"आहारवैषम्यादस्वास्थ्यम्" (सु० सू० अ० ४६)

भोजन की विषमता से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। शरीर को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्थ और नीरोग रखने के लिए भोजन का सर्वप्रथम स्थान है, क्योंकि यह पांचभौतिक शरीर भोजन के द्वारा ही हृष्ट-पुष्ट और सुडौल होता है। शरीर का उपचय अपचय=वृद्धि और ह्रास भोजन पर ही निर्भर है। यदि शरीर को यथासमय उचित भोजन मिलता रहता है तो शरीर भी हृष्ट-पुष्ट और सुडौल बन जाता है अन्यथा स्वास्थ्य गिर जाता है।

भोजन जैसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण विषय की उपेक्षा करना अपने जीवन की उपेक्षा करना है, भोजन के विषय में अज्ञान रखना मानो अपने जीवन को अन्धेरे में रखना है। हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार-विवेचन किया है। किस पदार्थ के क्या गुण हैं और वह भी किस अवस्था में लाभ-दायक अथवा हानिप्रद हैं देश, काल और प्रकृति भेद से हमारे शास्त्रकारों ने भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों की पूर्ण मीमांसा की है इसलिए जब हमारा देश शास्त्रविहित भोजन करता था, तब संसार में सभी दृष्टियों से शिरोमणि था। किन्तु दुःख है कि आज हम शास्त्रों को भूल गये, इसलिए अनेक कुरीतियां भोजन के विषय में प्रचलित हो गई हैं। मद्य, मांस लहसुन, प्याज आदि अभक्ष्य पदार्थों का भी निःसङ्कोच होकर सेवन किया जाता है।

इसका मुख्य कारण यह है कि हम भोजन के मूल उद्देश्य को ही भूल गये, हमारा भोजन जीवन के लिए नहीं अपितु जीवन ही भोजन के लिए बन गया है। भोजन के परखने की कसौटी केवल जिह्वा ही रह गई है और यह पिशाचिनी इतनी लोलुप हो गई है कि इसने सर्वनाश ही कर डाला।

भोजन बिगड़ने और असंयमित होने से ब्रह्मचर्य पालन और संयमित जीवन का अभाव होता जा रहा है। विषयवासना, शृंगार और व्यभिचार की भट्टी इतनी प्रचड होकर धधक रही है कि इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
ऋषियों की पवित्र भूमि भारत को ही नहीं, अपितु समस्त विश्व को ही भस्मसात् कर देना चाहती है।

ऐसे विकट काल में यह छोटासा किन्तु सारगर्भित पुस्तक "भोजन" कुछ भी पथ-प्रदर्शन कर सका तो हमारा परिश्रम सफल है, देश का भविष्य उज्ज्वल है।

इस में भोजन सम्बन्धी अनेक भ्रान्तधारणाओं और प्रथाओं का खण्डन किया गया है। बहुतसी ऐसी बातें भी पाठक महानुभावों को मिलेंगी जो सर्वथा नवीन प्रतीत होती हैं, उन पर गम्भीरता से विचार करने से तत्त्वज्ञान होगा। हमने इसे यथाशक्ति उपयोगी और सुन्दर बनाने का यत्न किया है, हम अपने कार्य में कहां तक सफल हुए हैं यह तो पाठक महानुभाव ही बता सकेंगे।

वैशाख २०३४ वि०
मई १९७७ ई०

ओ३मानन्द सरस्वती
गुरुकुल झज्जर

——:o:——

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारा भोजन

प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ रहना चाहता है, रोगी रहना किसी को नहीं भाता। स्वास्थ्य और भोजन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। विचारशील मनुष्य तथा जातियां इसके महत्त्व को भलीभांति समझते हैं। हमारे प्राचीन पुरुष भोजन के महत्त्व से भलीभांति परिचित थे, अतः वे इस विषय में बड़े सावधान रहते थे। आज हम उनकी सन्तान भोजन के विषय में किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं रखते।

दैनिक आहार का हमारे स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, मन, बुद्धि और आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है यह तो हम कभी विचारने का कष्ट भी नहीं करते। शुद्धाहार से ही मनुष्य का सब कुछ बनता तथा मिथ्याहार से सर्वनाश हो जाता है। इस पर हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों ने गम्भीरता से विचार ही नहीं अपितु पूर्ण रूप से अनुभव किया था। इसी कारण उन्होंने अपनी खोज के आधार पर शुद्धाहार की बड़ी प्रशंसा की है। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

आहार के शुद्ध होने से अतःकरण अर्थात् बुद्धि आदि की शुद्धि होती है, बुद्धि के शुद्ध होने पर स्मृति दृढ़ वा स्थिर हो जाती है, स्मृति के दृढ़ होने पर सब (हृदय की) गांठे खुल जाती हैं अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन ढीले हो जाते हैं। अविद्या-अन्धकार मिटकर मनुष्य सब दासता की शृंखलाओं से छुटकारा पाता है और परम पद मोक्ष की ओर पग बढ़ाता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि शुद्धाहार से मनुष्य के लोक और परलोक दोनों बनते हैं। अतः योगिराज श्रीकृष्ण जी ने इसी भाव को गीता में निम्नलिखित प्रकार से प्रकट किया है—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (६-१७)

यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले, यथोचित कर्म करनेवाले, उचित मात्रा में निद्रा और जागरण करनेवाले का यह योग दुःखनाशक होता है अर्थात् युक्त आहार-विहार आदि के सेवन से मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं।

भोजन की आवश्यकता सभी प्राणियों को है, कीट पतङ्ग से लेकर सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य तक इसी भोजन के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं। इस युग के मनुष्य की सम्पूर्ण शक्ति इसी भोजन जुटाने में लगी हुई है। प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक "हाय भोजन हाय भोजन" करता हुआ दौड़ करता है। यही नहीं, आज मानव का जीवन मरण भी भोजन के लिये ही है। किन्तु हम भोजन क्यों करते हैं। इसका उचित उत्तर सहस्रों में से कोई विचारशील व्यक्ति ही दे सकता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसका उत्तर इस प्रकार दिया है—

आहारः प्रीणनः सद्योबलकृद्देहधारणः।
स्मृत्यायुःशक्तिवर्णौजःसत्त्वशोभाविवर्धनः॥ (भाव० ४-१)

भोजन से तत्काल ही शरीर का पोषण और धारण होता है, बल की वृद्धि होती है तथा स्मरणशक्ति, आयु, सामर्थ्य, शरीर का वर्ण, कान्ति, उत्साह, धैर्य और शोभा बढ़ती है। इससे सिद्ध हुआ कि—

"आहार हमारा जीवन है"।

क्योंकि भोजन से मनुष्य क्या सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा होती है अतः भोजन की आवश्यकता सभी प्राणधारियों को है अथवा यों कहिये कि प्राणिमात्र के जीवन का आधार खान पान है यदि हमें भोजन न मिले तो हमारा जीवित रहना असम्भव है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतः जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त प्रत्येक प्राणी जीवनधारणार्थ भोजन ग्रहण करता रहता है और इसी से जीवित रहता है। अतः सर्वप्रथम तथा सर्वोत्तम भोजन का महत्त्व हमारे जीवन में यही है, जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय से हमारा अन्धेरे में रहना कितनी आश्चर्य तथा मूर्खता की बात है। अपठित जिन्हें जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं, ऐसे लोग इस विषय में न जानते हों तो कोई बड़ी बात नहीं, किन्तु आज का शिक्षित समुदाय इस विषय में कोरा है यह बड़े दुःख की बात है। अशिक्षित भाई तो कुछ प्राचीन परम्परा से इस विषय में थोड़ा बहुत ज्ञान रखते भी हैं किन्तु बड़ी-बड़ी बी० ए०, एम० ए०, प्रभाकर और शास्त्री आदि डीग्रीधारी शिक्षितों में जीवन के आधार आहार जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के ज्ञान का अभाव हो तो ऐसी दयनीय अवस्था को देख अत्यन्त दुःख होता है और देश का निकट भविष्य उज्ज्वल दिखाई नहीं देता।

वैसे इतना ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी को है कि भोजन करने के पश्चात् बल उत्साह प्रतीत होता है, भूखे प्राणी में इसका अभाव देखने में आता है। यदि भोजन सर्वथा न किया जाये तो मृत्यु निश्चित रूप से दर्शन देती है, टाले नहीं टलती। यह शरीर के पचयिता अथवा प्रकृति का अटल नियम है। उचित एवं आवश्यक भोजन की प्राप्ति के बिना स्वास्थ्यरक्षा अथवा यों कहिये जीवनरक्षा नहीं हो सकती। इसीलिए स्वास्थ्यप्राप्ति तथा जीवनरक्षा के लिए भोजन का भी एक विशेष स्थान है। चरक शास्त्र में इसी विषय में कहा है—

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौ प्रतिष्ठिताः।
अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यते शाम्यतेऽन्यथा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

शरीर के अन्दर जो अग्नि है उसी के आश्रय से देह में प्राण

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha



स्थिर रहते हैं। यह अग्नि बल, आरोग्य और आयु को प्रतिष्ठित करनेवाली है अथवा यह कह सकते हैं कि अन्तरग्नि पर देह की स्थिति है। अन्न-पान रूपी ईन्धन से ही अन्तरग्नि स्थिर रहती है; इस अग्नि का दीपन और शमन भोजन से ही होता है। यह हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि अन्न-पान के सेवन से आयुपर्यन्त प्राण रहते हैं। इसी विषय में चरक शास्त्र में लिखा है—

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शविधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसञ्ज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्षफलदर्शनात्, तदिन्धना ह्यन्तराग्नेः स्थितिः, तत्सत्त्वमूर्जयति, तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं विपरीतमहिताय सम्पद्यते।

कुशल विचारशील पुरुष जो अन्न-पान (भोजन) विधिपूर्वक बनाया गया है, जो अच्छे वर्ण (रङ्ग) गन्ध रस तथा स्पर्शसंयुक्त है उसे प्राणियों अर्थात् मनुष्यादि देहधारियों के लिए प्राणतुल्य मानते हैं। क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि अन्न-पान से प्राणी के प्राण कार्य करते हैं। भोजन न करने से आयु क्षीण होकर मृत्यु हो जाती है। अन्न-पान से ही अन्तरग्नि स्थिर रहती है, अन्न और प्राणों को ही नहीं मन को बल मिलता है। जब भोजन यथोचित विधि से किया जाता है तो यह शरीर के वातादि (दोषों) का रस रक्त वीर्यादि धातुओं के व्यूह (संघात) को बनाने वाला है। जहां जिस धातु की न्यूनता होती है वहां उसकी भोजन पूर्ति करता है। बल देनेवाला, वर्ण (रंग) को निखरानेवाला, कान्तिदायक और इन्द्रियों को प्रसन्न तथा तृप्त करनेवाला है। विधि से विपरीत सेवन करने से हानिकारक सिद्ध होता हैं।

आहार से शरीर का विकास और वृद्धि

सभी प्राणी जिस समय जन्म लेते हैं, तत्काल इन्हें क्षुधा सताने लगती है। माता के गर्भ से बाहर आते ही मानव-शिशु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
तुरन्त ही रोने और बिलबिलाने लगता है और माता का स्तन जहां उसके मुख में आया तथा उसने दुग्धामृत का पान किया, वह तत्काल ही शान्तचित्त हो खेलने लगा वा सो जाता है। क्षुधा की निवृत्ति के साथ ही उसकी व्याकुलता भी भाग जाती है। सभी प्राणियों की ऐसी समानावस्था है।

इस दुग्धपान तथा भोजन के सेवन से सभी प्राणी क्षुधा के शान्त होते ही जहां शान्त हो जाते हैं, वहां इनके शरीर में कुछ ही दिनों में वृद्धि-विकास स्पष्टतया दिखाई देने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि जन्म के समय से लेकर युवावस्था तक मनुष्य ही नहीं प्रत्येक प्राणी के शरीर की वृद्धि तथा विकास प्रतिदिन के किए हुए भोजन से होता रहता है अतः हमारे शरीर की सम्यक्तया वृद्धि वा सम्पूर्ण विकास हमारे भोजन पर निर्भर है यदि हमें भोजन यथोचित रूप में न मिले तो शरीर का विकास भी रुक जायेगा। यदि भोजन सर्वथा न मिले तो विकास के स्थान में ह्रास तथा अन्त में शरीर का नाश ही हो जायेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि आहार जहां जीवन का आधार है वहाँ विकास वा वृद्धि का भी मुख्य कारण है किन्तु वह भोजन हितकर होना चाहिए। हितकर भोजन के बिना वृद्धि असम्भव है। चरक शास्त्र में लिखा भी है—

"हिताहारोपयोग एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति"

अर्थात् एक हितकर आहार का उपयोग ही पुरुष के शरीर की वृद्धि करता है। वैसे तो जो कुछ खाया जाता है वह आहार (भोजन) कहलाता। चरकशास्त्र में लिखा है "आहारत्वमाहारस्यै-कविधमर्थाभिदात्।" निगरण अर्थात् निगलने की क्रिया सभी आहारों में एक समान है। भिन्न-भिन्न भोजन की वस्तुओं में निगरण के समान होने से सबको आहार कहते हैं। "आहार्यते गलादधो नीयते इत्याहारः" गले से नीचे जो ले जाया जाता है उसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आहार कहते हैं। सभी आहार के द्रव्यों में आहारता होती है, किन्तु हमारे लिए हितकर आहार कौन से हैं यह जानने की वस्तु है। जो आहार शरीर की वृद्धि करे वह हितकर है, यह एक लक्षण तो कर दिया। आगे इसी विषय में लिखा है—

समाँश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमाँश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि, विपरीतमहितमिति, एतद् हिताहितलक्षणमनपवादं भवति। (चरकसूत्र० अ० २५)

अग्निवेश के पूछने पर भगवान् आत्रेय ने उत्तर दिया—जो आहार समावस्था में स्थित शरीर की वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, वीर्यादि धातुओं को प्रकृति अर्थात् साम्यावस्था में ही रखता है, दूषित नहीं होने देता और सुरक्षित रखता है। विषम (बिगड़े हुए) धातुओं को समावस्था में ले आता है अर्थात् सुधार देता है उस भोजन को हितकर कहते हैं। इससे विपरीत जो सम धातुओं को विषम कर (बिगाड़) दे, और विषम अवस्था में रखे अर्थात् बिगड़ी को बिगड़ी ही रहने दे उसको अहितकर समझना चाहिये। इस विषय में खोलकर आगे लिखेंगे। विषम और अहितकर भोजन करने से अरुचि, शारीरिक दुर्बलता, कण्डू, पामा, कुष्ठ आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। अङ्गावसाद तथा दोषों के प्रकुपित होने से उस उस देश के अनुसार ग्रहणी अर्श आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक भोजन

यह प्रत्येक मनुष्य का प्रतिदिन का अनुभव तथा डाक्टरों का अधिकांश में यही मत है कि ९९ प्रतिशत मनुष्य आवश्यकता से अधिक आहार ग्रहण करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हम सब जिह्वा के दास हैं। हमारी रसना (जिह्वा सदैव स्वादिष्ट भोजन के लिए लपलपाती रहती है। हम स्वाद के चक्कर में आकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही अधिक खा लेते हैं। पूज्य महात्मा गांधी जी इस विषय में लिखते हैं :—"हम लोग इतने पेटू होगये हैं कि हमारी जिह्वा सदा स्वादिष्ठ भोजन चाहती है। इसलिये हम लोग अपने मेहमानों को स्वादिष्ठ भोजन कराते हैं कि जब हम भी उनके यहां जावेंगे तो वे भी हमें वैसा ही भोजन करायेंगे। यदि हम अधिक खाने के पाप से बचना चाहते हैं तो हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम किसी भी दावत (विशेष भोजन) में भाग न लें। हमारे यहां जब कोई मेहमान (अतिथि) आजाये तो उन्हें स्वास्थ्य के नियमों का ध्यान रखते हुए खिलाना चाहिए।" किन्तु स्वभाव से यह स्वादुप्रिय मनुष्य स्वादिष्ठ भोजनों में जो क्षणिक सुख अनुभव करता है इसी सुख को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है और अपना सारा बहुमूल्य जीवन इस सुख की इच्छापूर्ति में गंवा देता है और यह सब भूल जाता है कि हमारा हित और कल्याण इन स्वादिष्ठ भोजनों से होनेवाला नहीं है। इसलिये मनुष्य पेटू बन जाता है। स्वास्थ्य, बल वीर्य, शक्ति, ब्रह्मचर्य, भाड़ में जायें किन्तु इस चटोरे पेटू मनुष्य को चटपटे और मीठे स्वादिष्ठ भोजन चाहियें। जिह्वा का संयम करनेवाले बहुत थोड़े व्यक्ति देखने में आते हैं। स्वादिष्ठ भोजन करना कोई पाप नहीं किन्तु स्वाद के कारण अधिक खाना तथा भोजन को स्वादिष्ठ बनाने के लिये नमक, मिर्च, मसाले, खटाई आदि हानिकारक पदार्थ डालकर भोजन को बिगाड़कर खाना तो महामूर्खता है। कविराज हरनामदास जी इस विषय में लिखते हैं "चूर्णों और चटपटी चीजों का चलन बढ़ गया है। बाबू लोग गोल गप्पे, इमली की चाट, भल्ले पकोड़ियां एक जगह बैठकर खा जाते हैं। लोगो! होश करो क्यों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते हो. ऐसी चीजें हाजमे को बिगाड़ती हैं और जीवन के सारे (वीर्य) को दुर्बल करती हैं और सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं रहने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देतीं। छोटे लड़के जो खटाई खाते हैं उन्हें युवावस्था से पहिले ही कामवासना की उमंग आने लगती हैं जिनकी आंखें खुली हैं वे ये सब बातें स्पष्ट रीति से देख रहे हैं अधिक क्या लिखूं। ऐसे दृश्यों को देखते हुये मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि हमारी निर्बलता हमारे रोग, हमारा बुढापा, एक सीमा तक खाने-पीने की गरीबी के कारण है। अतः भोजन में बड़ी सावधानता और संयम की आवश्यकता है।

—:०:—

भोजन में संयम

स्वास्थ्यप्रिय व्यक्ति वा ब्रह्मचारी न अधिक खाता है न न्यून; किन्तु शरीर के लिये जितना आवश्यक है ठीक उतनी ही मात्रा में खाता है। अधिक खाना सरल और सर्वथा उपवास करना भी सहज है किन्तु यथोचित (न न्यून न अधिक) खाना अधिक कठिन है। भोजन समतोलता रखना ही तो ब्रह्मचारी की सच्ची तपस्या है। यही भोजन का संयम है। 'मितभोजन स्वास्थ्यम्' यह सूत्र आया है अर्थात् मितभोजन अल्पाहार स्वास्थ्य के लिये हितकर है। अतिभोजन तो सभी ने वर्जित किया है किन्तु मिताहार की प्रशंसा प्रायः सभी लेखक और व्याख्याता करते हैं। किन्तु मनुष्य को विशेषता तो तब है जब वह शरीर को जितने भोजन की आवश्यकता है उतना ग्रहण करे, न अधिक न न्यून। यथोचित भोजन करना बहुत बड़ा संयम है और यह भोजन का संयम ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य आदि सभी शुभ कर्मों की आधारशिला है। भोजन में संयम करनेवाला मनुष्य कोई सहस्रों में एक दो होता है। और ऐसा ही संयमी पुरुष श्रेष्ठ सच्चे स्वास्थ्य का स्वाद लूटता है और ब्रह्मचर्य पालन में सफलता ऐसे ही सौभाग्यशाली व्यक्ति को प्राप्त होती है। अतिशात स्वप्नदोष के रोगी भोजन में संयम न होने के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण ही होते हैं। जहां भोजन कुछ अधिक स्वादु लगा संयम न होने के कारण पेट को ठोककर भर लिया। रात्री में पेट के भारी होने से स्वप्नदोष हो जाता है। फिर सारा स्वाद निकल जाता है रोता और पछताता है। कितने ही व्यक्ति अपनी इस भूल को समझते हैं किन्तु संयम न होने के कारण इसी प्रकार हानि उठाते रहते हैं। कुछ रोगी अज्ञानवश भी भोजन में अधिक खाने की भूल करते हैं। जब उन्हें पता चलता है तो अधिक भोजन करना छोड़ देते हैं और आहार-व्यवहार के संयम को धारण कर लेते हैं। नित्य युक्त आहार-विहार के बिना कल्याण सम्भव नहीं। अतः सभी तथा विद्यार्थियों के लिये युक्ताहारविहार का आदेश वा उपदेश ऋषियों ने किया है—"नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव" विद्यार्थी अर्थात् ब्रह्मचारी को नित्य युक्ति से आहार-विहार करते हुए विद्याग्रहण में यत्नशील होना चाहिये। मात्रा से न्यून आहार करने से बल, वर्ण, कान्ति, शक्ति, पुष्टि का नाश वा क्षीणता होती है, तृप्ति नहीं होती। उदावर्त आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, मनुष्य अतृप्त और अशान्त रहता है, वीर्य आदि धातुओं की वृद्धि नहीं होती, आयु घट जाती है। शरीर की आवश्यकतानुसार भोजन न करने से शरीर का सारभाग वीर्य, बल, ओज नष्ट हो जाता है। मन बुद्धि और इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास और नाश हो जाता है और ८० प्रकार के वातरोगों की उत्पत्ति होती है। अतः न्यून भोजन करना, स्वस्थ होते हुये उपवास करना आदि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं किन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि जहाँ आवश्यकता से न्यून भोजन शरीर को रोगी तथा क्षीण बनाता है वहां आवश्यकता से अधिक भोजन बल, वीर्य, ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य के लिये और भी अधिक घातक है। न्यून भोजन करना इतना अपराध नहीं जितना बड़ा घोर अपराध अधिक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
भोजन करना है। कम भोजन करने से शरीर की क्षति कुछ अधिक दिनों में होती है किन्तु अधिक भोजन करनेवाले को अपने अपराध का शीघ्र ही दण्ड मिलता है। अतः यहाँ संक्षेप से अधिक भोजन करने की हानियाँ लिखी जाती हैं।

——:o:——

अधिक भोजन से हानियाँ

मात्रा से अधिक खाने से आलस्य, भारीपन, पेट फूलना, पेट में गुड़गुड़ाहट आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं। महात्मा गाँधी जी लिखते हैं कि "अधिक खाने से बहुतों के पेट में वायुविकार पैदा हो जाता है, खट्टी डकार आती हैं, यह भोजन न पचने की पहिचान हैं। डाक्टर और वैद्य सभी का यह मत है"। पेट को ठूंस ठूंस कर भरने से विशूचिका रोग (हैजा) बहुत ही शीघ्र होता है और इन्फ्लुएञ्जा के होने की भी आशंका रहती है। अपचन, अजीर्ण, मलबन्ध, आनाह, संग्रहणी, बवासीर तथा स्वप्नदोष प्रमेहादि धातु सम्बन्धी रोग अधिक खाने वाले पेटू लोगों को ही होते हैं। मनुष्य प्रायः जितना खाते हैं उसका तीसरा भाग भी नहीं पचा सकते, जो भोजन नहीं पचता वह पेट में पड़ा रहकर रक्त को विषैला और दूषित बनाता और स्वप्नदोष अर्शादि असंख्य विकारों का जन्म देता है। प्राणशक्ति को द्विगुण कार्य करना पड़ता है, एक तो अधिक भोजन के पचाने में, दूसरा मल को बाहर निकालने में। अधिक खाने से राष्ट्र के अन्न और धन दोनों का अपव्यय होता है तथा रोग(दण्डरूप)भी प्रकृति देवी प्रदान करती है। धनी लोग इस दोष के अधिक दोषी हैं, वे कई निर्धन मनुष्यों का पालन जिससे हो जाये इतना अधिक अन्न प्रतिदिन बिगाड़ देते हैं। यह घोर अपराध है। अतः मात्रा से अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। इस विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ (मनु० अ० २-५७)

अति भोजन करने से स्वास्थ्यहानि तथा रोगों की वृद्धि होती है, आयु घटती है, व्याधि आदि के कारण अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, पुण्य का नाश और पाप की वृद्धि होती है, और अधिक खानेवाले की जनता में निन्दा भी होती है। ब्रह्मचारी को तो भूलकर भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। पेट ठोक ठोक कर अधिक भोजन करनेवाला सात जन्म भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन मध्याह्न से आधा होना चाहिये तथा सोने से दो या तीन घण्टे पूर्व ही भोजन करना चाहिए। दुग्ध तथा जलपान भी सोने से दो वा तीन घण्टे पूर्व ही कर लेना चाहिए। अतः अधिक भोजन नहीं करना चाहिये।

कवि भगवान्दास वामन जी इस विषय में लिखते हैं—

अधिक वायु के भरने से फुटबाल फटि जाय।
बड़ी कृपा भगवान् की पेट नहीं फटि जाय ॥१॥
यद्यपि न दीखत पेट फटा, फटत मनुज की देह।
रोग भयंकर होत है बने नरक को गेह ॥२॥

इसी विषय में "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" पुस्तक के प्रसिद्ध लेखक स्वामी शिवानन्द जी लिखते हैं—

"अधिक भोजन करनेवाला सात जन्म भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता क्योंकि जोर की आंधी जैसे पेड़ों को उखाड़ डालती है, वैसे कामदेव पेटू मनुष्य को पटक पटक कर मार डालता है। अधिक भोजन करने वाला पुरुष किसी हालत में वीर्य नहीं रोक सकता, उसका चित्त सदा विषय की ओर लगा रहता है। मन और तन दोनों रोगी बन जाते हैं, आयु घट जाती है और स्वार्थ व परमार्थ दोनों मटियामेट हो जाते हैं। यदि आपको वीर्यवान् या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आरोग्यवान् बनना है, स्वप्नदोष से और अकाल मृत्यु से बचना हो तो आपको अवश्य ही सादा मिताहारी बनना होगा।"

——:०:——

उत्तम भोजन से उत्तम सन्तान

इस विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज अपने ग्रन्थ संस्कार विधि में गर्भाधान संस्कार विषय पर लिखते हैं—

"उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है। इसलिए पति-पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिए बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वोषधि का सेवन करें। वे पुष्टिकारक सर्वोषधि ये हैं। दो खण्ड आम्बाहल्दी, दूसरी खाने की हल्दी, चन्दन, मुरा, कुष्ठ, जटामासी, मोरबेल, शिलाजीत, कपूर मुस्ता, भद्रमोथ, इन सब औषधियों का चूर्ण करके समभाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ उनकी दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़ी की मन्थनी ले मन्थन करके उसमें से मक्खन निकाल उसको ताय घृत करके उसमें सुगन्धितद्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटाँक भर पूर्वोक्त सर्वोषधि मिला सिद्ध कर घी हुये पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर और एक-एक माशा जायफल आदि मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में २२, २३ पृष्ठ संस्कारविधि में लिखे प्रमाणे आघारावाज्याभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ ३४ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिः) इत्यादि सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भ स्थापन क्रिया करनी हो उसके दिन में होम करके उसी घी को दोनों जने खीर या भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें। इस प्रकार पुष्टिकारक भोजन करके गर्भ स्थापन करें तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः' यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् आहार जो मद्य मांसादिरहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यह विद्या है। इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि नीचता और होने से कुल को वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है।"

गर्भाधान के समय स्त्री को सावधान रहने के लिए लिखते हैं—

"पुनः स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे, कोई मादक मद्यादि, रेचक हरीतकी (हरड़) आदि क्षार अतिलवण आदि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चर्श आदि, तीक्ष्ण अधिक लाल मिर्ची आदि स्त्री न खावे किन्तु घृत, दूध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि औषधि चावल, मिष्ट, दधि, गेहूं, उर्द, मूङ्ग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावे। युक्त आहार विहार सदा करे। दधि में शुंठी और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे जिससे सन्तान अति बुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वभाव वाली होवें।"

उत्तम सन्तान निर्माणार्थ पुंसवन संस्कार में महर्षि लिखते हैं—

"स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे, विशेषकर गिलय ब्राह्मी औषधि और शुण्ठी को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे, और शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक हरड़ें आदि न खावे, सूक्ष्म आहार करे, क्रोध, द्वेष

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रखे, इत्यादि शुभाचरण करे।"

भोजन का स्थान

भोजनालय- जिस स्थान पर बैठकर मनुष्य भोजन करे वह इतना शुद्ध, लीपा-पोता, धुला-धुलाया, हवादार और खुला होना चाहिये, जिससे आहार ग्रहण करते समय मन में कोई विकार न आये। उस समय भोजन करने वाले व्यक्ति का चित्त भोजनालय की स्वच्छता आदि से प्रभावित होकर सर्वथा शान्त और प्रसन्न रहना चाहिये। आहार-ग्रहण करते समय यदि चित्त में किसी प्रकार की गड़बड़ी वा अशान्ति हुई तो भोजन का पाचन कार्य भलीभांति न हो सकेगा। भोजन करते समय मानसिक विचारों का शरीरयन्त्र पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

जो लोग शुद्धि नहीं करते उनके भोजनालय में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं झूठी रकेबी तथा मांस खाने वालों के स्थान पर हाड़गोड़ आदि पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना। वह स्थान ऐसा बुरा प्रतीत होता है कि यदि कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वांत (वमन) होने की भी सम्भावना है। ऐसे दुर्गन्धयुक्त स्थान पर भोजन करने से शरीर और मन पर अच्छा प्रभाव कैसे पड़ सकता है? पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति के लिये महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिए।"

और कच्चे मकान में गाय के गोबर से चौका लगाने का महत्त्व यह लिखते हैं—

"गोमय (गाय का गोबर) चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता और न मलिन होता है। जैसे मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहाँ रसोई बनती है वहाँ भोजन करने से घी मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी कीड़ी और बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आवे हैं। यदि उस में झाड़ू लगवाने से शुद्धि न की जावे तो जानो पखानों के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिए प्रति-दिन गोबर मिट्टी झाड़ से सर्वथा शुद्ध रखना चाहिये।" इसी विषय में प्रश्न है "चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा है या बाहर बैठकर?" उत्तर देते हैं "जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान देखें वहाँ भोजन करना चाहिये।" इसी विषम में महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं—

भोक्तारं विजने रम्ये निःसंयाते शुभे शुचौ।
सुगन्धपुष्पर्चिते समे देशे च भोजयेत् ।४५८॥
(सूत्र स्थान अ० ४६)

एकान्त स्थान में, जहां पर लोगों का यातायात=आना जाना न हो, रमणीय, शुद्ध पवित्र तथा पुष्पादि से सुगन्धित, सम (जो उंचा-नीचा न हो, स्थान में बैठकर भोजन करना चाहिये। हमारे शास्त्रकारों ने भोजन, भोजन का स्थान और भोज्यपदार्थों की शुद्धता तथा पवित्रता पर अधिक बल दिया है, अतः भोजन के स्थानादि को घो-लीपकर सर्वथा शुद्ध रखना चाहिए। इसी में उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य निहित है।

भोजन से पूर्व तथा पश्चात् करने योग्य क्रिया

भोजन से पूर्व स्नान करने का महत्त्व हमारे प्राचीन पुरुषा विशेषतया मानते हैं। ग्रामीण लोगों पर इसकी अब तक छाप है। कितने ही भारतीय अशिक्षित ग्रामीण लोग बिना स्नान किये भोजन करना पाप समझते हैं। अतः अमावस संक्रान्ति आदि पर्वों पर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
तो न नहाने वाले लोग भी भोजन से पूर्व स्नान कर लेते हैं। यह प्रसिद्ध लोकोक्ति "सौ काम छोड़कर नहा" लोगों में कुछ व्यावहारिक रूप में प्रचलित है। संस्कृत के श्लोक का यह भाग—"शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्" भी यही सिद्ध करता है कि भोजन से पूर्व स्नान अवश्य ही कर लेना चाहिए।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं—"प्रथम स्नान इसलिए है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं इससे स्नान भोजन से पूर्व अवश्य करना।" आजकल पढ़े लिखे लोग भोजन तो चार पांच बार तक दिन में कर लेते हैं किन्तु स्नान जैसे आवश्यक कृत्य को दिन में एक बार भी नहीं करते। कितने ही ऐसे बाबू लोग इस भारत भूमि पर मिल जायेंगे जो सारे शीतकाल (जाड़े) में एक बार भी स्नान नहीं करते और बिस्कुट आदि तो बिना शौच से निवृत्त हुए ही बिस्तर पर उठते ही मंगवा लेते हैं किन्तु ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्यप्रेमी व्यक्ति को प्रतिदिन सब ऋतुओं में बिना स्नान किये भोजन नहीं करना चाहिये। यदि स्नान प्रातः सायं दोनों समय किया जाये तो और भी अच्छा है।

यथार्थ में भोजन के अधिकारी तो वे ही लोग हैं जो प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठ शौच, स्नान, प्राणायाम ईश्वरोपासना, यज्ञ व्यायाम आदि नित्यप्रति प्रातःकाल ही कर लेते हैं और इसी प्रकार सायंकाल भी सब नित्यकर्म करते हैं, भोजन की वेला में हाथ, पाँव और मुख को भलीभांति शुद्ध जल से धोकर स्वच्छ कर लेना चाहिए शुद्ध वस्त्र धारण कर भोजनशाला में जाकर कुश आसन पर बैठें, यदि गृहस्थ हो तो बलिवैश्वदेवयज्ञ करे तथा अपने आश्रित कुत्ते आदि प्राणियों को भी भोजन दे।

हमारे शास्त्रों में अतिथिसत्कार का महत्त्व अत्यधिक पाया जाता है। अथर्ववेद में आया है—श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
(१५।१०।२) यदि कोई अतिथि अपने घर आजाये तो अपना सौभाग्य समझकर उसका सत्कार करना चाहिए और "अशितवत्यतिथौ अश्नीयात्" (अ० ९-८-८) इस वेदाज्ञा के अनुसार गृहस्थ को अतिथि से पूर्व कभी भोजन न करना चाहिए। अतः अपने पूज्य-जनों साधु महात्मा अतिथियों को श्रेष्ठ भोजन से तृप्त करने के उपरान्त स्वयं प्रसन्नचित्त हो भोजन ग्रहण करना चाहिए।

भोजन करते समय बोलना या कोलाहल करना हमारी सभ्यता के विरुद्ध है। "वाग्यतस्तु भुञ्जीत" के अनुसार मौन होकर शान्तिपूर्वक भोजन करना चाहिए। अपने भाग्य और परिश्रम से जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये और अन्न की कभी निन्दा न करें।

भोजनोपरान्त तत्काल ही कठोर शारीरिक या मानसिक कोई भी कार्य करना या दौड़ना आदि हानिकारक है। शांतिपूर्वक शारीरिक या मानसिक साधारण कार्य किया जा सकता है। भोजन के पूर्व या पश्चात् कभी भी क्रोधादि के करने से भोजन विष बन जाता है। विलम्ब से पचता है अतः सावधान तथा शान्त रहना चाहिए।

भोजन करते समय सर्वप्रकार की चिन्ता शोक ईर्ष्यादि का परित्याग कर सर्वथा प्रसन्नचित्त रहने से भोजन भलीभांति पचता तथा शुद्ध रक्तादि धातुओं का निर्माण करता है और शरीर का ढंग बदलकर शरीर को हृष्ट-पुष्ठ स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है। है। इसके साथ भक्ष्याभक्ष्य का विचार अवश्य रखना चाहिए।

भक्ष्याभक्ष्य मीमांसा

प्राचीन काल में राजा अश्वपति की प्रतिज्ञा (न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः) कि "मेरे राज्य में कोई शराब पीने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

वाला व्यक्ति नहीं है। के अनुसार कोई भी मांस मदिरा आदि बुद्धिनाशक द्रव्यों का सेवन करने वाला नहीं था। सभी लोग अभक्ष्य को त्याग बल-बुद्धि वीर्य वर्द्धक, भक्ष्य पदार्थों का सेवन करते थे। किन्तु आज लोग अभक्ष्य पदार्थों को अपनाकर निज बल बुद्धि को खो बैठे। यहां तक कि निरामिषभोजी हरयाणा प्रान्त में भी आजकल मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अभक्ष्य और भक्ष्य पदार्थों के हानि लाभों को विचार कर अभक्ष्य पदार्थों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थों की परिभाषा ऋषि दयानन्द जी के शब्दों में निम्न प्रकार है:—

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजन आदि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि, बल, पराक्रमवृद्धि होवे और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि (चावलादि), गोधूम (गेहूं), फल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाकमेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करनेवाले हैं उन उन का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिए विहित हैं उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।"

(सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए अपने भोजन में सुधार कर आहार-विहार करना चाहिए।

उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी को अपना उच्छिष्ट-झूठा भोजन न दे और न किसी के भोजन के बीच स्वयं खावे अर्थात् एक थाली में एक से अधिक नर-नारियों को भोजन नहीं करना चाहिए। अधिक भोजन भी अभक्ष्य है। और हाथ पैर धोये बिना कहीं इधर उधर न जावे। कुछ एक भाई सम्भव है यह प्रश्न करें कि 'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्' इसका क्या अभिप्राय है? इसका अभिप्राय यह है कि गुरुजी के भोजन करने के पश्चात् जो भोजन पृथक् शुद्ध-पवित्र रखा हुआ है उस भोजन को शिष्य करे। और इससे दूसरी शिक्षा यह भी मिलती है कि गुरुजी के भोजन करने के पश्चात् ही शिष्य को भोजन करना चाहिए।

क्या शहद का भी उपयोग नहीं करना चाहिए वह भी तो मक्खियों का उच्छिष्ट है और क्या दूध भी नहीं पीना चाहिए वह भी बछड़े का झूठा है इसका उत्तर ऋषि दयानन्द जी महाराज के शब्दों में इस प्रकार है:—"शहद कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है, परन्तु वह बहुत सी औषधियों का सार ग्राह्य(ग्रहण करने योग्य है); बछड़ा अपनी मां के बाहर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता, इसलिए उच्छिष्ट परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मां के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दूध दोहना चाहिए।"

(सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

साथ और उच्छिष्ट खाने में यह एक भारी दोष है कि एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति की प्रकृति और स्वभाव नहीं मिलता। प्रकृति और स्वभाव भेद होने से एक दूसरे के रोग एक दूसरे को लग जाते हैं। जिस प्रकार से (कुष्ठी) कोढ़ी व्यक्ति के साथ भोजन करने से अच्छे मनुष्य का रक्त भी बिगड़ जाता है। इसलिये उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभक्ष्य पदार्थ

वर्जयेन्मधु मांसञ्च (मनु० २।७७)

मधु और मांस का सेवन करना वर्जित है। संस्कृत साहित्य में मधु शब्द प्रायः दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रथम शहद, द्वितीय शराब। यहां मधु शब्द से शराब अर्थ करना चाहिए, शहद नहीं। मधु और मांस का निषेध मनु महाजाज ने इसलिए किया है कि यह दोनों मदकारी हैं और भी जितने गाञ्झा, अफीम, चरस आदि नशा करने वाली वस्तुयें हैं उन सब का सेवन वर्जित समझना चाहिए। क्योंकि 'बुद्धि लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते'।

(शार्ङ्गधर अ० ४-श्लो० २१)

जो द्रव्य बुद्धि का नाश करनेवाला है अर्थात् जितनी भी वस्तुयें नशा पैदा करती हैं वे सब बुद्धिलोपक होने से अभक्ष्य हैं।

शराब

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥

(मनु० ११।९४)

शराब तीन प्रकार की होती है। प्रथम जो गुड़ के द्वारा बनाई जाय वह गौडी, दूसरे जो आटे से बनाई जाये वह पैष्टी, तीसरे जो मधुक वृक्षों के फूलों से बनाई जाये वह माधवी कहलाती है। जैसी एक वैसी ही सारी हैं अतः तीनों प्रकार की शराब वर्जित हैं।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्रह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥

(मनु० ११।९३)

शराब अन्नों का मल है और मल, पाप कहलाता है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (शूद्र भी) सुरापान न करे।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मांस

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥
(मनु० ५।४८)

प्राणियों की हिंसा किए बिना मांस की उपलब्धि नहीं होती। प्राणियों का मारना सुखदायक नहीं। अतः माँस खाना सर्वथा निषिद्ध है। मांसभक्षी लोग 'अहिंसा परमो धर्मः' का उल्लङ्घन कर महापापी बनते हैं।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥
(मनु० ५।४५)

जो अहिंसक प्राणी अर्थात् गाय, मुर्गी, बकरी, बकरा, मछली आदि को अपने सुख के लिए मारता है वह इस लोक में तो क्या परलोक में भी सुख को प्राप्त नहीं होगा।

आजकल लोग मछली और अण्डे के खाने को मांस भक्षण में नहीं गिनते। किन्तु-

मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान् विवर्जयेत् । (मनु० ५।१५)

मछली को खानेवाले 'सर्वमांसादः' अर्थात् सभी का मांस खानेवाले कहलाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जिसने मछली का मांस खा लिया, उसने सबका मांस खा लिया अतः मछली का मांस खाना नितान्त निषिद्ध है।

माँस, मदिरा आदि के अतिरिक्त—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥ (मनु० ५।५)

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को लशुन;

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
शलगम, प्याज, कवक (साँप की क्षत्री) और मलिन, विष्ठा, मूत्र आदि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूल आदि नहीं खाने चाहियें।

लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवांस्तथा।
शेलुं गव्यञ्च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥(मनु० ५।६)

वृक्षों के लाल व श्वेत सभी प्रकार के गोन्द, शेलु-निसौड़ा और गौ का खीस भी वर्जित है।

ब्रह्मचारियों के लिए अभक्ष्य पदार्थ

पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का उपदेश करता है कि—

मांसरूक्षाहारमद्यादिपानं च वर्जय॥१५॥

(संस्कारविधि-वेदारम्भ प्रकरण)

हे ब्रह्मचारिन् तू मांस, रूखा भोजन और शराब आदि का सेवन मत कर। और—

अत्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व॥१६॥

(संस्कारविधि-वेदारम्भ प्रकरण)

अति खट्टा अमली आदि, अति तीखा लालमिर्च आदि, कसेला हरड़े आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर। अतः ब्रह्मचारियों को चाहिए कि उपर्युक्त सब पदार्थों को त्याग कर जीवन को उदात्त बनावें।

ब्रह्मचारी को लाल मिर्च, सफेद, काली, हरी कोई भी मिर्च खानी तो क्या खाने के लिए छूनी भी नहीं चाहिए।

'घृतौदनं तेजस्कामः' अर्थात् जो तेजस्वी बलवान् होना चाहे उसे घृत चावल आदि सात्विक पदार्थों का सेवन करना चाहिए। ऋषि दयानन्द जी ने इस विषय में लिखा है—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना-पिलाना भी चाहिए। (सत्यार्थ० तृतीय समुल्लास)

और—"जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार से भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें।" (सत्यार्थ० द्वितीय समुल्लास)

अचार, मुरब्बे, चटनी, मसाले, खट्टे, चटपटे मसाले युक्त भोजन ब्रह्मचारी को भूलकर भी नहीं करने चाहिएं। वैसे ही गृहस्थों के लिए भी हानिकारक हैं।

सभी मनुष्यों को चाहिए कि बल, बुद्धि, पराक्रमवर्धक त्रिदोषनाशक, ब्रह्मचर्य के लिए हितकारक सात्त्विक द्रव्यों को ही अपने भोजन में स्थान दें और जितने भी पदार्थ मांस मदिरादि बुद्धिनाशक एवं देश के लिए भी अहितकारक हैं उनको सर्वदा के लिए छोड़ दें। क्योंकि—

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशुशोधनैः॥
(मनु० ११।१६०)

जो अपने आपको पवित्र रखना चाहता है उसे चाहिए कि वह अभक्ष्य पदार्थों का सेवन कभी न करे। यदि कोई अज्ञानवश अभक्ष्य पदार्थ खाया भी जावे तो ज्ञान होने पर वमन आदि के द्वारा निकाल देवे। वा कोई आत्मा की पवित्रता के लिए प्रायश्चित्त अवश्य करे।

विरुद्ध भोजन

बहुत से भोज्य पदार्थ ऐसे हैं कि जो पृथक्-पृथक् खाने से तो लाभ करते हैं, परन्तु यदि उनको मिलाकर अथवा एक के पश्चात्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
दूसरा पदार्थ खाने से लाभ के स्थान पर हानि करते हैं। ऐसे पदार्थ नीचे लिखे जाते हैं।

१. दही को गरम रोटी अथवा किसी भी गरम पदार्थ के साथ न खाना चाहिए। पानी मिला दूध और घी खना हानिकारक है। छाछ, दही अथवा बेलगिरी में से किसी के साथ केला खाना हानिकारक है। बराबर-बराबर घी तथा मधु या जल और मधु मिलाकर खाना मानो विष को खाना है। कांसी, ताम्बा या पीतल के पात्र में कई दिन का रखा हुआ घी, तेल या कुछ समय का रखा हुआ दूध, मक्खन, खटाई, दही अथवा छाछ और दूध के साथ सिरका, शक्कर, काँजी, नमक, इमली, अखरोट, निम्बू अथवा जामुन खाना हानिकारक है, किसी भी उष्ण पदार्थ के साथ शीतल शर्बत ककड़ी तरबूज अथवा खीरा नहीं खाना चाहिये। कांजी या सिरका के साथ तिल हानिकारक है। तेल और बेसन अर्थात् तेल के पकौड़े नहीं खाने चाहियें। भूख को बन्द करते हैं, मेदा को खराब करते हैं। तेल की बनी हुई और घी की बनी हुई चीजें साथ-साथ खाना हानिकारक है। गन्ना और मसूर की दाल साथ-साथ नहीं खानी चाहिये। मूली या खरबूजे के साथ मधु, दूध में गुड़, खरबूजा एक साथ नहीं खाना चाहिए। घी चिकनी मिठाई खटाई खीरा फूट, ककड़ी, तरबूज, खरबूज तथा नाशपाती के ऊपर पानी, शरबत या दूध की लस्सी पीना बहुत हानिकारक है।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भोजन

सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है और सभी प्राकृतिक पदार्थों को इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। भोजन भी सात्त्विक राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार का है। मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ अपनी-अपनी रुचि और स्वभाव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के कारण विभिन्न है। जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है वह उसी प्रकार के भोजन को पसन्द करता है। श्रीकृष्ण जी गीता में लिखते हैं—"आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः" अर्थात् सभी मनुष्य अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार तीन प्रकार के भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं, सात्त्विकवृत्ति के लोग सात्त्विक भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं, राजसवृत्ति के लोग राजसिक भोजन को उत्तम मानते हैं, इसी प्रकार तमःप्रधान व्यक्ति तामस भोजन में रुचि रखते हैं।

सात्त्विक भोजन

आयुःसत्त्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविर्वधनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
(गीता १७।८)

आयु, बल, आरोग्य सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले तथा रसीले, चिकने, स्थिर (देर तक ठहरनेवाले) एवं हृदय के लिए हितकारी भोजन सत्त्वगुणी मनुष्यों को प्रिय होता है। अर्थात् जिस भोजन के सेवन से आयु, बल वीर्य आरोग्य आदि की वृद्धि हो, जो सरस चिकना (घृतादियुक्त), चिरस्थायी और हृदय के लिए हितकारी हो वह भोजन सात्त्विक है।

सात्त्विक-पदार्थ

गाय का घी, दूध, गेहूं, जौ, चावल, मूंग, मोठ, उत्तम फल, पत्तों के शाक, काली तोरई, घोया (कद्दू) आदि मधुर, शीतल, स्निग्ध, सरस शुद्ध पवित्र और शीघ्र पचनेवाले तथा ओज एवं कान्तिप्रद पदार्थ हैं वे सात्त्विक हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजसिक भोजन

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
(गीता १७।९)

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, दाह-जलन पैदा करनेवाले तथा दुःख, शोक और रोगों को बढ़ानेवाले भोजन रजोगुणी व्यक्तियों को प्रिय होते हैं।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीखे, रूखे और दाहकारक--नमक, मिर्च, इमली मसाले आदि से युक्त भोजन राजसिक हैं और इसके सेवन से मनुष्य की वृत्ति चंचल हो जाती है, नाना रोगों से ग्रस्त होकर व्यक्ति विविध दुःखों का उपभोग करता है और शोक सागर में डूब जाता है।

राजसिक पदार्थ

नमक, मिर्च, मसाला, हींग, गाजर, चणा, उड़द, करेला, सरसों, तैल में पके हुए पदार्थ, मांस, मछली, कछुआ, अण्डा, शराब, चरस, चण्डू, काफी, कोकीन आदि मादक-द्रव्य तथा उष्ण रूक्ष, गृष्ठ, भारी देर में पचनेवाले सभी पदार्थ राजसिक हैं।

तामसिक भोजन

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥
(गीता १७।१०)

बहुत देर के बने हुऐ, नीरस=शुष्क, दुर्गन्धयुक्त, बासी, उच्छिष्ट=झूठे और बुद्धि को नष्ट करनेवाले भोजन तमःप्रधान व्यक्ति को प्रिय होते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो अन्न गला सड़ा, बहुत विलम्ब से पकाया हुआ दुर्गन्धित उच्छिष्ट और कृमि कीटों से अपवित्र किया हुआ तथा रसहीन हो वह तामसिक है। इस प्रकार के भोजन के सेवन से सब प्रकार के रोग हो जाते हैं, स्वास्थ्य और आयु क्षीण हो जाते हैं, बुद्धि, मन तथा आत्मा इतने मलिन हो जाते हैं, कि उनको अपने हिताहित और धर्म कर्म का भी ध्यान नहीं रहता। अत एव तमोगुणी व्यक्ति मलिन, आलसी प्रमादी और अकर्मण्य होकर पड़े रहते हैं। तामसिक भोजन किसी भी व्यक्ति के लिये उपयुक्त नहीं, सर्वथा सर्वदा त्याज्य है।

तामसिक-पदार्थ

गले सड़े दूषित बासी अन्न फल आदि, भैंस का दूध और घी, भिण्डी, काशीफल, लहशुन, प्याज, शलगम आदि कफवर्द्धक, बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाले दुर्गन्धयुक्त और भारी पदार्थ हैं वे सब तामसिक हैं।

भोजनसम्बन्धी आवश्यक नियम

१. जिस प्रकार भौतिक अग्नि ईंधन के बिना बुझ जाती है इसी प्रकार भूख लगने पर भोजन न करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, रक्तादि धातुओं का शोषण तथा शरीर कृश हो जाता है।

२. भोजन निश्चित समय पर करना चाहिये, असमय में भोजन करने से नाना व्याधियां और मृत्यु तक हो जाती है।

३. भोजन समय के व्यतीत हो जाने पर खाली पेट में वायु जठराग्नि को मन्द कर देती है, तत्पश्चात् किया भोजन कठिनता से पचता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४. भोजन के गुण दोषों को ध्यान में रखते हुए दिन में केवल दो ही बार भोजन करना चाहिए।

५. अधिक उष्ण या बहुत देर से बना बासी भोजन नहीं खाना चाहिए।

६. सायंकाल का भोजन सोने से दो तीन घण्टे पूर्व अवश्य ही कर लेना चाहिए। दोपहर से सायंकाल की भोजन की मात्रा आधी होनी चाहिए।

७. कम भोजन से सन्तुष्टि नहीं होती, बल और शरीर क्षीण हो जाते हैं। इसी प्रकार अधिक भोजन से भी आलस्य, प्रमाद, अफारा, भारीपन आदि हो जाते हैं अतः दोनों ही त्याज्य हैं।

८. मित भोजन ही स्वास्थ्य का मूलमन्त्र है।

९. अजीर्ण हो जाने पर पथ्य हो या अपथ्य कुछ भी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि अजीर्ण में भोजन करना दुःखदायक है।

१०. अकेला स्वादु भोजन का सेवन न करे, अपने आश्रित सेवक सम्बन्धियों को उसमें सम्मिलित करना चाहिए।

११. परस्पर विरुद्ध भोजन एक साथ खाने से लाभ के स्थान में हानि अधिक होती है।

१२. भोजन के कम से कम एक घण्टा पूर्व और एक घण्टा पश्चात् पानी पीना चाहिए।

१३. भोजन में जल नहीं पीना चाहिए, यदि भोजन रूक्ष हो तो थोड़ी मात्रा में पीना उचित है।

१४. व्यायाम के तत्काल पश्चात् भोजन करना अथवा भोजन के पश्चात् तत्काल व्यायाम करना बहुत हानिकारक है।

१५. भोजन में शुद्धता की अत्यधिक आवश्यकता है।

१६. भोजनोपरान्त मुख को कुल्लादि से शुद्ध कर लेना चाहिये और दांतों में फंसे अन्नकणों को तिनके आदि से युक्तिपूर्वक पृथक्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर देना चाहिये।

१७. ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन अत्यन्त हल्का होना चाहिये, यदि हो सके तो केवल दुग्धाहार ही करे।

१८. भोजन खूब भूख लगने पर करना चाहिये, स्वाद भोजन में नहीं, भूख में है।

१९. जिन पदार्थों में से स्नेहभाग निकाल लिया गया है, उनका सेवन नहीं करना चाहिये।

२०. एक वस्त्र धारण कर भोजन नहीं करना चाहिये।

२१. शैय्या पर बैठकर, लेटकर, आसन पर रखकर या हाथ में लेकर भोजन करना शिष्टाचार के विरुद्ध है।

२२. किसी के भी साथ एकपात्र में भोजन नहीं करना चाहिए। कुल्ला किये बिना झूठे हाथ इधर उधर नहीं घूमना चाहिये।

२३. गीले पाँव करके भोजन करना चाहिये, ऐसा करने से आयु बढ़ती है।

२४. सुश्रुत के मतानुसार भोजन के पश्चात् शतपद घूमकर बाँई करवट लेट जाना चाहिए। भावमिश्र के मतानुसार ८ श्वास सीधे, १६ दाहिनी करवट और ३२ श्वास बाईं करवट लेटकर लेने चाहियें।

२५. सर्वदा एक ही प्रकार के पदार्थ नहीं खाने चाहियें, बदल-बदल कर भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है।

२६. भूख में पानी पीने से जलोदर हो जाता है और प्यास में भोजन करने से गुल्मरोग हो जाता है, अतः प्यास में पानी तथा भूख में भोजन करना उचित है।

२७. भोजन के पूर्व जल पीने से जठराग्नि मन्द होती है, भोजन के पश्चात् जल पीने से कफ बढ़ जाता है और भोजन के

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बीच में अधिक जल पीने से भोजन भलीभांति नहीं पचता।

२८. पेट के दो भाग अन्न से तीसरा भाग जल और चौथा भाग वायु से भरना चाहिये अर्थात् पेट को ठूंस ठूंस कर अन्न से नहीं भरना चाहिये।

२९. भोजन खूब चबा-चबा कर खाना चाहिये, इससे भोजन शीघ्र पचता है तथा शरीर का अङ्ग बन जाता है बिना चबाये जल्दी-जल्दी किया हुआ भोजन रोगों को बढ़ाता है ध्यान रहे दांतों का कार्य आँतों से नहीं लेना चाहिये।

३०. फल तथा सभी शुष्क (जो द्रव न हों) पदार्थों को भोजन करने वाले के दाहिनी ओर तथा दूध जल आदि द्रव पदार्थों को बांई ओर रखना चाहिये।

३१. भोजन करते समय पहले मधुर रस का सेवन करना चाहिये, बीच में खट्टे और लवण रस का तथा अन्त में शेष चरपरे कटु कषैले रसों का सेवन करना उचित है।

३२. यदि भोजन में फल हों तो पहले अनार खाना चाहिये, फिर रोटी, चावल शाकादि और अन्त में दूध या छाछ आदि द्रव पदार्थों का सेवन करना चाहिये क्योंकि शास्त्र में पहले घन (सख्त), बीच में मृदु (नर्म) और अन्त में द्रव पदार्थों के सेवन का विधान है।

भोजन में लवण और क्षार

लवण और क्षार

क्षार के विषय में चरकशास्त्र में लिखा है—"दृष्टिशुक्रघ्नः क्षारः" क्षार दृष्टि अर्थात् आंखों की देखने की शक्ति और वीर्य अर्थात् ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरक में "क्षारः पुंस्त्वोपघातिनाम्" अर्थात् पुरुष की पुंस्त्वशक्ति का नाश करनेवाले पदार्थों में सब से अधिक पुंस्त्वनाशक क्षार है। मनुष्य की ब्रह्मचर्यशक्ति वा वीर्य का सबसे अधिक नाश क्षार करता है।

क्षार क्या वस्तु है, इस विषय में—'क्षरणात्क्षारः" क्षरण करने से क्षार कहाता है यह त्वचा, मांस आदि को उतार देता है, अतः इसे क्षार कहते हैं। चक्रपाणि के मत में नीचे जाने की क्रिया को क्षार कहते हैं। दोषों को अपने स्थान से हिला देना, यह भी क्षरण का अभिप्राय हैं। वैसे क्षार अनेक रसवाले द्रव्यों यव, सज्जी, अपामार्ग, मूली, सुहागा आदि से तैयार किया जाता है। इसमें कटु लवण आदि अनेक रस होते हैं।

क्षार सभी लगभग रूक्ष, उष्ण और तीक्ष्ण होते है। अतः वीर्य को पतला करके नाश करने वाले होते हैं। ब्रह्मचर्यप्रेमी व्यक्ति को इन का सेवन नहीं करना चाहिए। औषध में क्षार का सेवन करना भी पड़ जाए तो किसी चतुर वैद्य की सम्मति से करना चाहिए। जहां क्षार कुछ रोगों को दूर करता है वहां इसमें वीर्य नाश करनेवाला भयङ्कर दोष भी है, अतः ब्रह्मचारी को सदैव इससे बचकर रहना चाहिये। मानवगृह्यसूत्र में "उपनयनप्रभृति व्रतचारी (ब्रह्मचारी) स्यात्" इत्यादि नियम बतलाते हुए लिखा है कि "न मधुमांसे प्राश्नीयात् क्षारलवणे च ॥" (पुरुष १ ख० १-सू० १२) ब्रह्मचारी मद्य मांस और क्षार तथा लवण का सेवन न करे।

गोभिल गृह्यसूत्र में लिखा है—"क्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व"। स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि में इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है—"क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमाल-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घोटादि द्रव्यों का सेवन मत कर।" वेदारम्भ संस्कार में ब्रह्मचारी के लिए लिखा है कि तीन दिन तक क्षार लवणरहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे।" अतः ब्रह्मचारी के लिए लवण क्षार का परित्याग उसकी ब्रह्मचर्य साधना में सहायक है।

लवण से हानियां

चरक शास्त्र में लवण के दोष इस प्रकार लिखे हैं–"लवणो रसो गुरुः स्निग्ध उष्णश्च···पित्तं कोपयति, रक्तं तर्षयति, मोहयति, मूर्च्छयति, तापयति, दारयति, कुष्णाति मांसानि, प्रगालयति कुष्ठानि, 'विषं वर्धयति', शोफान् स्फोटयति,पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुणद्धि, वलीपलितखालित्यमापादयति, अपि च लोहितपित्ताम्लपित्तविसर्पवातरक्तविचर्चिकेन्द्रलुप्तप्रभृतीन् विकारानुपजनयति।

लवण रस भारी स्निग्ध और उष्ण होता है, लवण-रस वा नमक का उपयोग पित्त को कुपित करता है, रक्त में अत्यधिक गति को उत्पन्न करता, प्यास लगाता, मोह को पैदा करता,मूर्च्छा तथा सन्ताप को उत्पन्न करता है। फाड़ता है, माँसों को कुरेद देता है, कुष्ठ को गलाकर गिरा देता है, विष को बढ़ाता है, शोथों को फोड़ देता है, पुंस्त्व को नष्ट करता है, इन्द्रियों को क्षीण करता है, मनुष्य को बुड्ढा कर देता है, शरीर में झुर्रियां पड़ जाती हैं, बालों को सफेद और गंजा कर देता है। रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त आदि रोगों को उत्पन्न करता है। लवण को सुश्रुत में भी खुजली, शोथादि रोगों को उत्पन्न करनेवाला तथा पुंस्त्व और इन्द्रियों की शक्ति का नाशक लिखा है।

जिस प्रकार आजकल नमक का सेवन लोग करते हैं वह तो सर्वथा ही अनुचित है। सब्जियों में ऊपर से नमक डालकर, फलों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के साथ भी नमक, यहां तक कि सेव तरबूज आदि मीठे फलों के साथ भी नमक खाते हैं, नमक मिले हुए दलिये आदि में दूध मिला कर खाते हैं, ऐसे लोगों पर दया आती है। ऐसे लोग ब्रह्मचर्य की तो क्या रक्षा करेंगे ? नमक के सेवन से लोग कुष्ठादि भयंकर रोगों में फंस जाते हैं। नमक के कारण अधिक खा जाते हैं, अधिक खाने से अपचन (कब्ज) हो जाता है और कब्ज से वीर्य नाश हो जाता हैं। क्योंकि कब्ज=मलबन्ध ब्रह्मचर्य का परम शत्रु है। भोजन का अपना स्वाद क्या है यह तो नमक खाने वाले जानते ही नहीं, क्योंकि नमक के स्वाद से अन्य स्वाद नष्ट हो जाते हैं। अधिक नमक खानेवाले प्रायः जिह्वालोलुप=चटोरे होते हैं अतः वे पेटू बन जाते हैं। पेटू मनुष्य का ब्रह्मचर्यनाश सर्वनाश हो जाता है। भोजन खाने का जो उद्देश्य स्वास्थ्य, बल वा शक्ति बढ़ाना तथा जीवनरक्षादि है वह नमक खाने से सर्वथा समाप्त हो जाता है अतः बाह्य अप्राकृतिक नमक का परित्याग ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य-प्रेमी के लिए हितकर है।

जितनी आवश्यकता लवणरस की शरीरनिर्माण स्वास्थ्य-रक्षणादि के लिए है उतना नमक शाक भाजी, फल आदि भोज्य पदार्थों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। अतः शाक भाजी फलादि सेवन अपनी प्रकृति के अनुसार यथोचित मात्रा में प्रतिदिन करना चाहिये, जिससे शरीर की आवश्यकतानुसार लवणरस की पूर्ति हो सके, और बाहर का नमक खाकर ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य का नाश नहीं करना चाहिये। क्योंकि नमक में जो पाचनादि कुछ गुण लिखे हैं वहां इसे ब्रह्मचर्य का शत्रु भी तो लिखा है—'पुंस्त्वमुपहन्ति' ब्रह्मचर्य का नाश करके मनुष्य की पुंस्त्व शक्ति को नष्ट करता है अर्थात् लवण का सेवन मनुष्य को नपुंसक (नामर्द) बनाता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लवण-रस से लाभ तथा बाह्य लवण से हानियां

लवणरस का सेवन हम सभी प्रतिदिन भोजन में करते हैं। डाक्टर लोग इसको शरीर के लिए हितकारी कहते हैं, अतः अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

निम्नलिखित लाभ बतलाते हैं :—

१—नमक से हड्डियों तथा शरीर का निर्माण होता है।

२—पाचनशक्ति में नमक सहायता करता तथा रक्त को शुद्ध करता है।

३—नमक के सेवन से मुख की लालाग्रन्थियां अधिक कार्य करती हैं, लार अधिक मात्रा में उत्पन्न करती हैं।

४—लवण की सहायता से यकृत् पित्त बनाने का कार्य करता है।

५—भोजन को पचाने के लिए जो हमारे आमाशय में पाचक-रस बनता है वह लवण के सहयोग से ही बनता है।

चरक शास्त्र में लवण रस के गुण इस प्रकार लिखे हैं—"लवणो रसः पाचनः क्लेदनो दीपनश्च्यावनश्छेदनो भेदनः तीक्ष्णः सरो विकास्यधःस्रंस्यवकाशकरो वातहरः स्तम्भसंघातविधमनः सर्वरसप्रत्यनीकभूत आस्यमासावयति कफं विष्यन्दयति···। अर्थात् लवणरस पाचन, गीला करनेवाला, दीपन, स्राव करनेवाला, छेदन, भेदन, रेचक, सन्धिजोड़ों के बन्धनों को खोलनेवाला, कोष्ठों में रुके हुये मलों को बिना पकाये नीचे की ओर ले जानेवाला, वात और कफ को हरनेवाला, स्तम्भ (जकड़ना), बन्ध (कब्ज) दोषों के संघात का नाशक और सम्पूर्ण रसों का शत्रु है अर्थात् यदि नमक या लवण रस किसी भोज्य पदार्थ में अधिक होजाये तो किसी अन्य रस का स्वाद नहीं आता है। मुख ने लाला और कफ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
को बहाता है। (मार्गान् विशोधयति) मार्गों को शुद्ध करता तथा शरीर के अवयवों को मृदु नरम करता है (रोचयत्याहारम्) आहार में रुचि करता है। प्रायः लोग इसको स्वाद के कारण ही अधिक खा जाते हैं। ये लवण रस के लाभ बतलाये हैं, जो नमक प्रतिदिन ऊपर से डालकर खाया जाता है उसमें ये गुण व लाभ नहीं हैं।

लवण इस शरीर के लिए अत्यन्त उपयोगी है अतः भगवान् ने लवणरस सबसे अधिक उत्पन्न किया है। प्रायः सभी खाद्य पदार्थों में लवणरस पाया जाता है। फल तथा शाक सब्जियों में स्वाभाविक रूप से लवणरस वा प्राकृत नमक अधिक पाया जाता है। अतः कन्द मूल, फल, शाक भाजी, के खाने को स्वास्थ्य रक्षार्थ अधिक महत्त्व दिया है। जो लोग शाकभाजी नहीं खाते वे प्रायः रोगी देखे जाते हैं। फलों में मिश्रित जो लवण पाया जाता है वह शरीर के लिए बहुत लाभकारी है। इस स्वाभाविक लवण की ही प्रशंसा प्राचीन शास्त्र तथा आधुनिक वैद्य और डाक्टर करते हैं। जो भोजन में ऊपर से बनावटी सांभर, समुद्र आदि का नमक खाते हैं वह हानिकारक है, उसकी आवश्यकता भी नहीं है। वास्तव में हमारी आवश्यकता के अनुसार लवणरस हमें भोज्य पदार्थों से स्वयमेव प्राप्त हो जाता है अतः यह आवश्यक नहीं कि भोजन पकाते समय लवण डाला जाये या खाते समय ऊपर डालकर खाया खाये। लवणरस की प्रशंसा के कारण लोगों में नमक मिलाने की प्रबल प्रथा चली हुई है, यह अनावश्यक और हानिकारक है। स्वाद के कारण लोग नमक सेवन आवश्यकता से अधिक मात्रा में करके हानि उठा रहे हैं। अतः ऊपर से नमक डाल कर अथवा भोजन में पकते समय डालकर खाने की प्रथा को बन्द करना ही हितकर है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भोज्य पदार्थों में विद्यमान स्वाभाविक लवण रस ही हमारे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त है। तथा यह बात भी भलीभांति समझ लेनी चाहिये कि जहां कहीं लवण का लाभ अथवा उपयोग लिखा है यह सांभर, विड, सौंचर और समुद्र नमक तो कदापि नहीं लेना चाहिये, वहां सेंधा नमक का प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है। यह वैद्यों के लिए संकेत है—"लवणं सैन्धवं प्रोक्तम्" जहां कहीं प्रयोग में लवण लिखा हो तो सेंधा नमक ही लेना चाहिये। चरक शास्त्र में भी "सैन्धवं लवणानां श्रेष्ठतमं पथ्यम्' लवणों में सबसे श्रेष्ठ सेंधा नमक पथ्य माना है। सेंधा नमक खनिज है, अर्थात् खान से निकलता है। इसकी खान पाकिस्तान में रह गई, अब सेंधा नमक के नाम से बाजार में बिकता है। दुर्भाग्य से असली सेंधा नमक तो औषध निर्माण के लिए भी नहीं मिलता, प्रतिदिन खाने के लिए कहां से आये? सांभर नमक का सेवन तो अत्यन्त हानिकारक है। ब्रह्मचर्य रक्षा की दृष्टि से तो सभी नमक बहुत हानिकारक हैं।

लवण पर ब्र० रामप्रसाद जी का अनुभव

नमक के विषय में ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' जो फांसी के तख्ते पर देश की स्वतन्त्रता के लिए हंसते-हंसते झूल गये, लिखते हैं—

"सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था इसी कारण कभी-कभी स्वप्नदोष हो जाता था। तब किसी सज्जन के कहने से हमने नमक खाना छोड़ दिया, केवल उबाल कर शाक या दाल से एक समय भोजन करता। मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया, केवल थोड़ासा दूध ही रात्रि को पीने लगा। मिर्च खटाई तो दूर रहा भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक के न खाने से शरीर के सब दोष दूर हो गये। और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया, सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

लवण पर महात्मा गांधी का अनुभव

महात्मा गांधी जी लवण के विषय में लिखते हैं—

"मसाले के विषय में जो कहा गया है वही नमक के विषय में भी कहा जा सकता है। कितने ही इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे, किन्तु यह एक अनुभव सिद्ध बात है इङ्गलैंड में एक स्कूल है, जिसका यह मत है कि नमक मसाले से अधिक हानिकारक है, जो शाक हम लोग खाते हैं उसमें आवश्यकता अनुसार नमक का भाग विद्यमान है। अतः ऊपर से नमक मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता से अधिक नमक हमारे शरीर के पसीने द्वारा या और किसी दूसरे प्रकार से बाहर निकल आता है। प्रकृति ने आवश्यकतानुसार सभी खाद्य पदार्थों में नमक का भाग छोड़ रखा है। एक लेखक का कहना है कि लवण खून को विषैला बना देता है। वह यह भी कहता है कि जो लोग सर्वथा लवण नहीं खाते उनका खून इतना स्वच्छ होता है कि सांप के विष का भी प्रभाव उन पर कुछ नहीं पड़ता। हम नहीं कह सकते कि यह कहां तक सत्य है। किन्तु अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूं कि दमा जैसे बहुत से रोग नमक छोड़ देने से शीघ्र ठीक हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि इसके छोड़ने से किसी की कुछ हानि होती नहीं देखी गई, किन्तु उन्हें कुछ लाभ ही होता है। मैंने स्वयं दो वर्ष से नमक छोड़ दिया है उसका परिणाम मुझे जरा भी नहीं अखरता। बल्कि कुछ अंशों में मुझे लाभ ही हुआ है। अब मुझे पहले के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
समान बार-बार जल नहीं पीना पड़ता। यदि कोई मनुष्य नमक छोड़ दे तो कुछ दिन तक उसे अड़चन प्रतीत होगी। किन्तु यदि वह अपने धैर्य को स्थिर रखेगा तो थोड़े ही दिनों में उसे बहुत लाभ हो सकता है।

लवण पर महात्मा नारायण स्वामी जी का मत

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज अपनी 'योगरहस्य' पुस्तक में लिखते हैं "नमक यदि न खाया जाये तो अधिक अच्छा है, अन्यथा थोड़ी मात्रा में खाया जा सकता है" अतः यदि अभ्यासी नमक का सर्वथा परित्याग कर दे तो उनके लिए अधिक हितकर है।

लवण पर टण्डन जी का अनुभव

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने हरद्वार में अपने एक भाषण में कहा था—"कि मानव भोजन में ऊपर से नमक मिलाकर खाना व्यर्थ ही नहीं किन्तु अनर्थकर भी है. उतना नमक मनुष्य को शाकादि में मिल जाता है जितने की उसे आवश्यकता है। ऊपरी नमक हानिकारक है।" टण्डन जी ने तर्कबल से विषय पुष्ट किया और उदाहरण में अपने आपको उपस्थित (पेश) किया। वे दीर्घकाल से नमक नहीं खाते, किन्तु इस प्रयोग से उन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। टण्डन जी ऊपरी नमक को एक हल्का विष मानते हैं। उन्होंने वैद्यों तथा डाक्टरों से अनुरोध किया कि वे इस विषय पर विचार करें।

लवण पर मेरा अनुभव

४० वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो गया, तभी से मैंने नमक खाना छोड़ रखा है। उसके कुछ काल पश्चात् मेरे अन्य कई मित्रों ने भी नमक का परित्याग कर रखा था। उनमें से कुछ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो कुछ वर्ष पीछे खाने लग गये और कोई कोई ऐसे भी हैं, जिन्होंने छोड़ने के पीछे नमक को खाने के लिए स्पर्श भी नहीं किया। हमारे गुरुकुल (झज्जर) में २२ वर्ष से कोई भी ब्रह्मचारी नमक ऊपर से डालकर या शाक भाजी पकते समय भी डालकर नहीं खाता। जो शाक-भाजी में स्वाभाविक लवण होता है वही हम खाते हैं, सैंधादि कोई भी नमक भोज्य पदार्थ के रूप में सेवन नही करते। इसका मुख्य कारण यही है कि मेरा यह निश्चय है कि ब्रह्मचारी को अपने साधना काल में नमक नहीं खाना चाहिये, अतः मैं स्वयं भी नहीं खाता तथा हमारे ब्रह्मचारी भी नहीं खाते।

नमक छोड़ने का प्रभाव स्वास्थ्य पर कैसा पड़ता है यह हमारे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को देखने से ही पता चलता है। विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भारत के सभी शिक्षणालयों से सामन्यतया अच्छा ही हो सकता है खराब तो किसी रूप में है ही नहीं। खुजली तो आज तक किसी को हुई ही नहीं। फार्मी गन्ना चूसने के कारण कभी-कभी एक दो विद्यार्थियों को दाद अवश्य हुए हैं, वे साधारण औषध के सेवन से चले गये। आंख किसी की कभी नहीं दुखती। फोड़े फुन्सी आदि रक्त-सम्बन्धी विकार भी नहीं होते। प्यास सामान्य लोगों की भांति हमें नहीं सताती। हमारे यहाँ जब नया बालक प्रविष्ट होता है तब कुछ दिन तो उसे हमारा बिना नमक का शाक-दाल अच्छा नहीं लगता। किन्तु थोड़े दिन में उसका अभ्यास हो जाता है और भोजन को रुचि करके खाने लगता है तब उसका शरीर तथा स्वास्थ्य उन्नति करने लगते हैं। रक्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है, मुख की लाली शरीर का लाल रंग तथा चर्मरोगों का सर्वथा अभाव इसके अकाट्य प्रमाण हैं। यही नहीं चरक शास्त्र तथा महात्मा गाँधी जी का यह कथन है कि नमक खाने से सर्प आदि विषैले जन्तुओं का विष शीघ्र और अधिक हानि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता है। जो नमक नहीं खाते उन पर सर्प आदि का विष बहुत न्यून हानि करता है अथवा करता ही नहीं, यह मेरा अनेक वर्षों का प्रत्यक्ष अनुभव है। मुझे तथा मेरे अनेक ब्रह्मचारियों को सर्प ने काटा है किन्तु बहुत ही आश्चर्य की बात है कि प्रत्यक्ष रूप से तो अनेक ब्रह्मचारियों पर नाम-मात्र भी सर्प के काटने का प्रभाव नहीं दिखाई दिया। किसी-किसी पर नाममात्र का प्रभाव हुआ, वह औषध-उपचार से एक-दो दिन में ठीक हो गया। किन्तु जो व्यक्ति नमक का सेवन करते हैं ऐसे भी मेरे कई साथियों को सर्प ने काटा। उनको सर्प के काटने से पर्याप्त हानि तथा कष्ट उठाना पड़ा।

लगभग २० वर्षों से मैं सर्प-विष की चिकित्सा कर रहा हूं। आस पास के ग्रामों से प्रतिवर्ष सर्प के दंशित रोगी आते ही रहते हैं। इस शुष्क प्रान्त में बिना फण के पित्तप्रकृति के (Vapur) सर्प अधिकतर घुरेड़िये चित्तकोड़ियादि हैं जो पर्याप्त विषैले होते हैं। चिकित्सा समय पर तथा यथोचित नहीं होती तो मृत्यु भी हो जाती है। इसी प्रकार के सर्पों ने हमारे ब्रह्मचारियों को काटा था। उन पर तो नाममात्र का प्रभाव हुआ, अथवा सर्वथा प्रभाव भी नहीं हुआ।

जब कोई सर्प का काटा रोगी चिकित्सार्थ गुरुकुल में आता है तब औषधोपचार के साथ उसका नमक मसाला आदि सब छुड़वा देते हैं तथा गोघृतादि सात्त्विक पदार्थों का सेवन विशेषतया करवाते हैं। नमकादि के छुड़वाने से चिकित्सा शीघ्र तथा सरलता से हो जाती है। इसी प्रकार तृषा, दाह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, कुष्ठ, शोथ, गञ्ज, दाद, खुजली, आदि सब चर्मरोग, नेत्ररोग, दन्तरोग, बालों का सफेद होना, नपुंसकता अर्थात् ब्रह्मचर्य का नाश, स्वप्नदोष और धातु-प्रमेह आदि रोगों को नमक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
का सेवन जन्म देता और बढ़ाता है। नमक के छोड़ने से उपर्युक्त रोग कम हो जाते हैं, कई तो सर्वथा चले ही जाते हैं। यह अनुभव मैं अनेक वर्षों से कर रहा हूं। ब्रह्मचर्य के लिए नमक कितना हानिकारक है यह काकोरी के शहीद ब्र० रामप्रसाद जी के लेख को पढ़कर पाठक समझ ही गये हैं।

नपुंसकता को जन्म देने वालों में नमक सबसे बढ़कर है यह चरक शास्त्र के अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है। क्योंकि रूक्ष और तीक्ष्ण प्रकृति के नमकादि जितने भी पदार्थ हैं ये वीर्यादि धातुओं को पतला करते हैं। इससे स्वप्नदोष, वीर्य का मूत्र में निकलना आदि प्रमेह रोग हो जाते हैं। अतः स्वास्थ्यप्रेमी तथा ब्रह्मचारियों को नमक का सेवन कदापि भूलकर भी नहीं करना चाहिये। यदि दुर्भाग्यवश किसी को औषधादि के रूप में वा किसी अन्य कारण से नमक का प्रयोग करना भी पड़े तो सैन्धा नमक का ही सेवन, वह भी थोड़ी मात्रा में करना चाहिये। चरकशास्त्र के अनुसार "सैन्धवं लवणानाम्" सब नमकों में सैन्धव नमक ही पथ्य है, अर्थात् कम हानिकारक है। किन्तु ब्रह्मचारी को नमक से सर्वथा बचना चाहिये। सैन्धे नमक की जहाँ खाने की आज्ञा है, वह केवल इसलिए कि जो कोई रोगी आदि लवण खाना चाहे अथवा कोई गृहस्थ नमक बिना न रह सके तो वह बहुत थोड़ी मात्रा में सैन्धा नमक का सेवन कर सकता है। इससे कुछ कम हानि होगी क्योंकि 'लवणं सैन्धवं नोष्णम्' चरक में लिखा है। सभी लवण उष्णवीर्य होते हैं केवल सैन्धव लवण उष्णवीर्य नहीं। तीक्ष्णता और रूक्षता का दोष इसमें भी है। अतः नमक सेवन से बचना ही ब्रह्मचारी के लिए कल्याणकारी है।

—०—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूध

गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि अनेक पशुओं का दूध प्रयोग में लाया जाता है, किन्तु गोदुग्ध ही सर्व-श्रेष्ठ और अमृत है। महाभारत में आया है—"अमृतं वै गवां क्षीरम्" (अनु० अ० ६६।४६) अर्थात् गोदुग्ध ही वास्तव में अमृत है।

हमारे शरीर के लिए दूध की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि बच्चे को दूध यथोचित मात्रा में नहीं मिलता तो उसके शरीर का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। वैसे तो दूध सभी अवस्थाओं में श्रेष्ठ और पथ्य है किन्तु वृद्धि-अवस्था में १६ वर्ष से ४० वर्ष तक नवयुवकों के लिए अत्यावश्यक है। "क्षीरमोजस्करं पुंसाम्" तथा "पयसा वर्धते तनुः" के अनुसार दूध से बल, वीर्य, ओज, कान्ति और शरीर की वृद्धि होती है। अतः प्रतिदिन के भोजन में दूध का अपना विशेष स्थान है।

दूध सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण भोजन है। डाक्टरों के मतानुसार इसमें विटामिन ए. बी. डी. जी. होते हैं। दूध में सभी पोषक एवं जीवनीय तत्त्व विद्यमान हैं अतः केवल दुग्धाहार से ही शरीर का पूर्ण विकास हो सकता है। संसार में इसके तुल्य अन्य कोई पदार्थ नहीं जिस पर जीवन निर्वाह या शरीर का विकास किया जा सके। गोमाता की यह अद्वितीय देन है। धन्वन्तरीय निघण्टु में गोदुग्ध के गुण इस प्रकार लिखे हैं :—

पथ्यं रसायनं बल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः।
आयुष्यं पुंस्त्वकृद्वातरक्तविकारनुत् ॥१६४॥
(सुवर्णादि पष्ठो वर्गः)

गोदुग्ध पथ्य=सब रोगों वा अवस्थाओं में सेवन करने योग्य रसायन, बलकारक, हृदय के लिए हितकारी, मेधा (बुद्धि) को

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनाने वाला आयु को बढ़ाने वाला, पुंस्त्वशक्ति अर्थात् वीर्यवर्द्धक, वातनाशक और रक्तपित्त के विकारों को दूर करनेवाला है।

दूध को हमारे शास्त्रकारों ने "सद्यः शुक्रकरं पयः" तत्काल वीर्य-वर्द्धक लिखा है, इसी प्रकार चरक सुश्रुत आदि सभी आयुर्वेदीय ग्रन्थों में गोदुग्ध की महिमा और गुण बतलाये हैं। आजकल गोवंश की रक्षा नहीं की जाती, उसके स्थान पर भैंसों को पाला जाता है और उन्हीं का घी दूध आदि सेवन किया जाता है, किन्तु भैंस का दूध हानिकारक है।

गाय और भैंस के दूध की तुलना

१. गाय का दूध मधुर, स्निग्ध, शीतल, वात-पित्त-कफ नाशक, फेफड़े के लिये लाभकारी, क्षय रोग को दूर करनेवाला तथा नस और नाड़ियों को स्निग्ध करनेवाला है। अस्थिमार्दव (Reckets) से क्षीण होनेवाले बालक के लिये गाय का दूध अमृत के समान प्राणवर्द्धक है। जिन बालकों के नेत्रों की ज्योति क्षीण हो गई है या जो रक्तक्षय या पाण्डु रोग से पीड़ित हैं उनके लिये भी यह अत्यन्त उपकारी औषध है। बराबर सेवन करने से सभी व्याधियां दूर होती हैं एवं बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता। धारोष्ण पीने से अमृततुल्य है, यह दो घण्टे में पचता है।

२. भैंस का दूध उपर्युक्त कई रोगों के लिए तो बिल्कुल निकम्मा है तथा कई रोगों पर कुछ लाभकारी है भी, तो बहुत कम मात्रा में। यह मधुर, भारी, गर्म, वीर्यवर्धक, चिकना, कफ और वायुकारक, आलस्य पैदा करनेवाला, मन्दाग्नि तथा भूत की व्याधियों को बुलानेवाला है। धारोष्ण जहर है, नौ घण्टे में पचता है। पीने से नींद सताती है। अनिद्रारोग में औषध रूप में दिया जाता है। उसमें बड़ी गर्मी रहती है, इसलिए भैंस के दूध आदि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
पदार्थों के गुण शीघ्र ही शरीर से बाहर हो जाते हैं और देर तक शरीर में शक्ति को नहीं रख सकते।

३. गौ के दूध में विटामिन ए. डी. बहुत अधिक होते हैं। गौ तेज धूप में गोचर भूमि में चरकर अपने दूध को सूर्य किरणों द्वारा उपयोगी बनाती है और भैंस धूप में नहीं चर सकती।

४. गोदुग्ध में आयोडीन और केरोटीन होते हैं जो भैंस के दूध में नहीं होते। कैरोटीन ही विटामिनों के गुणों को सुरक्षित रखता है।

गाय के दूध के स्नेह पदार्थ में जहाँ यह २० यूनिट है वहां भैंस के दूध के स्नेह पदार्थ में २ यूनिट से भी कम है। गाय के दूध को उबालने पर उसकी मलाई में जो पीला रंग आता है वह इस कैरोटीन पदार्थ के कारण ही आता है। भैंस के दूध में यह पदार्थ नहीं हैं इसलिए उसका नवनीत (मक्खन) घी एकदम सफेद होता है।

५. गोदुग्ध का प्रोटीन अधिक आसानी से पच जाता है, वीर्यवर्धक है और त के रोगों को भगानेवाला है। एक से दो घण्टों में पच जाता है। पुरुषार्थ, शान्ति चुस्ती, लानेवाला सात्त्विक आहार है.

६. गौ का दूध दैवी और भैंस जा दूध आसुरी है। काम, क्रोध, लोभ, राग द्वेष, आलस्य, मन्दाग्निकारक, गरम, भारी, मन्दबुद्धि, तामसी आहार है।

अंग्रेजी में एक कहावत है—Cow milk and honey are the root of beauty) (गोदुग्ध और मधु सौन्दर्य के मूल कारण हैं) डाक्टरों का यह मतभेद है कि धारणा-शक्ति को तीव्र बनाने तथा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसको टिकाये रखने में यह बहुत सहायक है। किन्तु वह गुण भैंस के दूध में नहीं है।

गोदुग्ध

वलदायक, आयुवर्धक, शीतल, कफ और पित्त के विकारों को शान्त करता है, हृदय के लिए हितकारी, रुचिकारक, वुद्धि तथा अत्यधिक वीर्यवर्द्धक, स्वादु, रसायन और जीवनीय है, आंखों के लिये हितकारी तथा रस और पाक में मधुर है।

महिषी दुग्ध

भैंस का दूध गाय के दूध से भारी, शीतल और स्निग्ध होता है। महाभिष्यन्दी, निद्रा आलस्य और प्रमादजनक, जठराग्नि को मन्द करनेवाला और वलदायक है किन्तु भैंस का दूध कामोद्दीपक है अतः ब्रह्चारी के लिये विशेष हानिकारक है।

अजापयः [बकरी का दूध]

वकरी के दूध के गुण भी लगभग गाय के दूध से मिलते हैं यह विशेषतया कृश शरीरवाले दुवले पतले व्यक्तियों के लिए हितकर है श्वास, कास, रक्तपित्त और त्रिदोपनाशक है।

अविकपयः (भेड़ का दूध)

भेड़ का दूध मधुर, स्निग्ध, गुरु, पित्त और कफकारक हे केवल वात व्याधियों में पथ्य है। स्थूलता और प्रमेहनाशक है।

उष्ट्रीपयः (ऊंटनी का दूध)

रूक्ष, उष्ण, कुछ लवण, लघु और स्वादु है, वात और कफ के रोग, गुल्मोदर, शोफ, अफारा, कृमि, कुष्ठ, बवासीर और विषनाशक है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हस्तिनीपयः [हथिनी का दूध]

भारी, बलदायक, स्निग्ध, अतिशीतल, मधुर नेत्रज्योतिवर्धक तथा शरीर को अत्यन्त दृढ़ करनेवाला है।

अश्वापयः [घोड़ी का दूध]

खट्टा, नमकीन, दीपन, लघु, बल-कान्तिदायक और श्वास तथा वातनाशक है।

गर्दभीपयः [गधी का दूध]

मधुर, अम्ल, रूक्ष और दीपन है। श्वास कास नाशक तथा बच्चों के सभी रोगों को दूर करता है।

मानुषीपयः [स्त्री का दूध]

मधुर, शीतल, लघु, स्निग्ध, तृप्तिकारक, दीपन, बलवर्द्धक, जीवन, नेत्रों के लिये हितकारी, रक्तपित्त तथा नेत्र-पीड़ा को नष्ट करता है। नस्य लेने और आँखों में डालने के लिए पथ्य है।

घृत

दूध की भांति घी का भी भोजन में अपना विशिष्ट स्थान है। घी के अभाव में भोजन में स्वादिष्टता और स्निग्धता नहीं आती। घी के संयोग से सभी भोज्य पदार्थ उत्तम, स्वादिष्ट और बलदायक हो जाते हैं। "आयुर्वै घृतम्" के अनुसार घी से आयु बढ़ती है और वेद में आया है "घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व" (यजु० १२—४४) अर्थात् घी से शरीर की वृद्धि होती है।

महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज ने गोघृत के गुण इस प्रकार लिखे हैं:—

शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निबलायुःशुक्रचक्षुषाम्।
बालवृद्धप्रजाकान्तिसौकुमार्यस्थिराथिनाम् ॥१४५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम् ।
विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम् ।
चक्षुष्यं बल्यमग्र्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम् ।१४६।
(धन्वन्तरीय निघण्टौ षष्ठो वर्गः)

अर्थात्—गाय का घी बुद्धि, स्मरणशक्ति, मेधा (धारणावती बुद्धि), अग्नि (जाठराग्नि), बल, आयु, वीर्य, नेत्रज्योति, बालक-बूढे, प्रजा (सन्तान), कान्ति (तेज) तथा सौकुमार्य (युवावस्था) की स्थिरता के लिए हितकारी व लाभदायक है। गाय का घी पाक में मधुर और शीतल है। वातरोगों, पित्तरोगों तथा सब प्रकार के विषों (जहरों) को नष्ट करनेवाला है। क्षतक्षीण (निर्बल), परीसर्प रोग तथा शस्त्र और अग्नि से पीड़ितों के लिये लाभदायक है। चक्षु के लिए हितकारी अर्थात् नेत्रज्योतिवर्धक और सबसे अधिक गुणवाला है। सुश्रुत शास्त्र में भी गोघृत के गुण इसी प्रकार लिखे हैं।

श्री नरहरि जी राजनिघण्टु में लिखते हैं:—गाय का घी, वातश्लेष्महारक, श्रमनिवारक, हृदय को हितकारी व शरीर को स्थिरता देने वाला है। और यह भी लिखते हैं कि:—

गव्यं हव्यतमं घृतं बहुगुणं भोग्यं भवेद्भाग्यतः ।।२०४।।
(राजनिघण्टौ पंचदशो वर्गः)

गौ का घी हव्यतम अर्थात् हवन के लिए सर्वश्रेष्ठ और बहु-गुणयुक्त है, यह बड़े सौभाग्यशाली मनुष्यों को ही खाने को मिलता है। यथार्थ में गोपालक ही शुद्ध गोघृत का सेवन करते हैं। शालि-ग्राम निघण्टु में गाय के घृत के गुण यों लिखे हैं:—

गाय का घी अमृत के समान गुणकारी और रसायन है तथा सब घृतों में उत्तम है। यही प्रशंसनीय है। भावप्रकाश निघण्टु में भी गोघृत को इससे भिन्न, कुरूपतापाय तथा राक्षस-नाशक, मंगल-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
रूप रसायन, सुन्दर, सम्पूर्ण घृतों में उत्तम बताया है।

इसी प्रकार दही, तक्र (छाछ) आदि भी स्वास्थ्यरक्षा के लिए उत्तम हैं। दही और तक्र के सेवन से पाचन प्रणाली अपना कार्य सुचारू रूप से करती है; पेट के सभी विकार नष्ट होकर उदर निरोग रहता है। निघण्टुकार ने लिखा है कि—'न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्' अर्थात् तक्र का सेवन करनेवाला कभी रोगी नहीं होता।

फलाहार

दुग्धाहार के पश्चात् दूसरा नम्बर फलाहार का ही है। कुछ लोग फलाहार को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं किन्तु इसमें मलभाग अधिक होने से सर्वश्रेष्ठ दुग्धाहार ही है। फलाहार दुग्धाहार से हीन तथा अन्न से उत्तम है। फलों में बल वीर्य, कान्ति और ओज को बढ़ाने की शक्ति कूट कूटकर भरी हुई है। फलाहार से सत्त्वशक्ति की वृद्धि होती है, मन की चंचलता नष्ट होती है और स्वास्थ्य भी अत्युत्तम हो जाता है। फल ताजा और पके हुये एवं जो दूषित न हों वे ही उपादेय हैं। जो फल गुणों की दृष्टि से उत्तम हैं उनको प्रकृति के अनुसार सोच-विचार कर ग्रहण करना चाहिये।

अञ्जीर

अञ्जीर का फल अत्यन्त शीतल है, रक्तपित्त को तत्काल दूर करता है। पित्त और शिर के विकारों में प्रथम पथ्य है तथा नाक से रक्त गिरने (नकसीर) में विशेष लाभदायक है। इसका सेवन ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्यप्रेमियों के लिए अत्यन्त हितकर है, प्रचुर मात्रा में सेवन करना चाहिये।

शहतूत

पक्के शहतूत गुरु, स्वादु, शीतल, वात-पित्त-नाशक हैं और कच्चे भारी, सारक, खट्टे, उष्ण और रक्त-पित्त कारक होते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थोड़ी मात्रा में इसका सेवन करना चाहिये, खांसी, जुकाम, गले के रोगों के लिए हितकर है।

आंवला

आंवला किंचित् कटु, खट्टा, मधुर, शीतल, हल्का, दाह, पित्त, वमन प्रमेह, शोष, अरुचि रक्तपित्त, आध्मान, मलबद्धता को नष्ट करता है। केशों के लिए हितकारी, रसायन, जरा और त्रिदोषनाशक है—खट्टेपन से वात का, मधुरता और शीतलता से पित्त का तथा कषैलापन और रूक्षता से कफ का नाश करता है।

सूखा आंवला कटु, अम्ल, तिक्त, मीठा, कषैला, केश और नेत्रों के लिये हितकारी और वीर्यवर्धक है। तृषा, मेद, विष और त्रिदोष नाशक है। केवल आंवला की खटाई ही ऐसी है जो हानि नहीं करती।

अंगूर

अंगूर सर्वश्रेष्ठ फल है, यह रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, शीतल मधुर, स्निग्ध है। स्वर और आंखों के लिए हितकारी, वात, रक्त-पित्त, ज्वर, श्वास, वमन, कामला, दाह, तृषा आदि का नाश करता है। इसी प्रकार दाख और किशमिश भी लाभदायक हैं। अंगूर यदि खट्टा हो तो रक्तपित्त को करता है। इसे यथेच्छा सेवन करना चाहिये।

आम

पका हुआ आम सुगन्धित, मधुर, स्निग्ध, अत्यन्त पुष्टिकारक, रुचिकारी, वातनाशक, हृदय के लिए हितकारी, शीतल, भारी, मलरोधक, प्रमेहनाशक, वर्ण को उज्ज्वल करनेवाला, तृषा, वात तथा श्रमनाशक, बल वीर्य, मांस और कफ को बढ़ाता है। आम के साथ दूध का सेवन अत्यन्त लाभप्रद है। दूध के साथ आम चूसने से बल वीर्य की अत्यन्त वृद्धि करता है, लघु, वात-पित्त-नाशक और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
शीघ्र पचता है। आम खट्टा होता है तथा बिना दूध के हानि करता है।

कच्ची आम्बियां कषैली खट्टी वात और रक्तपित्तकारक होती हैं। इसी प्रकार कच्चा बड़ा आम भी अत्यन्त खट्टा, रूक्ष, त्रिदोषकारक तथा रुधिर के रोगों को बढ़ाता है। अतः इनका सेवन नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी के लिए कच्चे आम की खटाई अत्यन्त हानिकारक है।

अमरूद

अमरूद स्वादु, कषैला अत्यन्त शीतल, वातपित्तनाशक, कफकारक, वीर्यवर्धक और रुचिकारक है। इसका यथोचित सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। किसी को यह कब्ज करता है तथा दस्त भी लगा देता है।

केला

केला स्वादिष्ट, शीतल, पाक में मधुर, वीर्यवर्धक, पुष्टिकारक, रुचिप्रद, मांस को बढ़ानेवाला, क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग और प्रमेहनाशक है। केले की जड़ कृमिनाशक है। सुखाकर कच्चे फलों का चूर्ण उत्तम पौष्टिक पदार्थ है। पुरानी खांसी में केले का शर्बत उत्तम है। किसी-किसी को कब्ज करता है।

सेव

सेव वातपित्तनाशक, पुष्टिकारक, कफवर्धक भारी, शीतल, रुचिकारक और वीर्यवर्धक है। रस और पाक में मधुर है। खूब रक्त बढ़ाता है। इसका सेवन हितकारी है।

नारंगी

यह मीठी, खट्टी, भारी अति कठिनता से पचनेवाली, वीर्यवर्धक और वातनाशक है। खट्टी नरंगी अत्यन्त उष्ण होती है। नारंगी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कब्जकारक, खट्टी और उष्ण होने से ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है, अतः उपादेय नहीं। मीठे सन्तरे थोड़ी मात्रा में सेवन कर सकते हैं।

नासपाती

नासपाती भारी, वीर्यवर्धक मधुर और त्रिदोषनाशक है। संस्कृत में इसका एक नाम "अमृतफल" भी है। यह अच्छा फल है।

निम्बू

निम्बू उष्ण, पाचक, दीपन, खट्टा, त्रिदोषनाशक, नेत्रों के लिए हितकारी, अतिशय रुचिकारी, कटु कषैला, हल्का होता है। कफ, वात, वमन, खांसी, कण्ठरोग, क्षय, विषूचिका, आमवात, गुल्म और कृमियों को नष्ट करता है। पका हुआ निम्बू गुणों में श्रेष्ठ होता है, ये कागजी निम्बू के गुण हैं। ब्रह्मचारी के लिए निम्बू हानिकारक है, चाहे वह कागजी ही क्यों न हो।

मीठा निम्बू या शर्बती निम्बू-मधुर, भारी, वात, पित्त, सर्पविष रक्तविकार, शोथ, वमन, अरुचि तथा तृषा को नष्ट करता है। कफसम्बन्धी रोगों को दूर करता है। बलदायक और पुष्टिकारक है।

कागजी निम्बू और शर्बती निम्बू में केवल पत्तों का ही भेद हैं। कागजी के पत्ते छोटे और शर्बती के पत्ते कुछ बड़े होते हैं।

बिजौरा निम्बू स्वादिष्ट, खट्टा, दीपन, हल्का, रक्तपित्त, कण्ठ और जिह्वा को शुद्ध करता है। हृदय के लिए हितकारी, श्वास, खांसी अरुचि तथा तृषा को नष्ट करता है।

कागजी शर्बती (मीठा निम्बू), जम्बीर (बिजौरा निम्बू), चकोतरा, नारंगी, सन्तरा, बिहारी आदि अनेक भेद निम्बू के हैं।

इमली

कच्ची इमली अत्यन्त खट्टी, उष्ण, मलरोधक, वातनाशक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अग्निदीपक, रक्तपित्त, कफ और रक्त को दूषित करती है। अतः स्वास्थ्य एवं ब्रह्मचर्य के प्रेमी को इसका सर्वथा सेवन नहीं करना चाहिए। संस्कारविधि वेदारम्भ संस्कार में महर्षि दयानन्द जी ने ब्रह्मचारी के लिए "न अति खट्टा अमली आदि" लिखते हुए इमली खाने का निषेध किया है। दक्षिण भारत में इसके खाने का प्रचार बहुत है, वह हानिप्रद होने से सर्वथा त्याज्य है।

सिंघाड़ा

सिंघाड़ा जलीय फल है। यह शीतल, स्वादिष्ट, भारी ग्राही और वीर्यवर्धक है, वात तथा कफ कारक है, रक्तविकार और दाह को नष्ट करता है।

कालिन्द (तरबूज)

तरबूज शीतल, ग्राही, पित्त, दृष्टि और वीर्य को नष्ट करता है। पकने पर उष्ण, खारी, पित्तकारक, वात और कफ को नष्ट करता है। इसका सेवन ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है।

पपीता (एरण्ड खरबूजा)

पका हुआ पपीता, मधुर, रुचिकारक, भारी, मलरोधक, कफकारी, वीर्यवर्धक, वात और उन्माद रोगों को नष्ट करता है। पाचन प्रणाली को ठीक रखने में सहायक है। इसमें रोग के कीटाणुओं को छिन्न-भिन्न करने की शक्ति है।

खजूर

खजूर, गुरु, शीतल, हृदय के लिए हितकारी और तृप्तिकारक है। रस और पाक में मधुर, कफकारक तथा रक्तपित्त को जीतने वाली है। बलवीर्य वर्द्धक, कोठे की वायु, ज्वर, अतिसार, कास, श्वास आदि को दूर करती है। यह अधिकतर पश्चिमीय देशों में होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खरबूजा

खरबूजा—बलदायक, मूत्रकारक, कोठे को शुद्ध करनेवाला, भारी, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्द्धक, अतिस्वादिष्ट, वात तथा पित्तनाशक है।

बाडिम (अनार)

अनार तीन प्रकार का होता है, मीठा, मीठा और खट्टा तथा केवल खट्टा। मीठा अनार-त्रिदोष नाशक, तृषा, दाह, ज्वर, हृदय-रोग, कण्ठ और मुख रोगों को दूर करता है। तृप्तिकारक, वीर्य-वर्धक, हल्का, कुछ कषैला, मलरोधक, स्निग्ध, मेधाजनक और बलवर्धक है। श्रम, अरुचि और निर्बलता को दूर करता है।

मीठा और खट्टा अनार दीपन करनेवाला; रुचिकारी, कुछ पित्तकारक और हल्का होता है।

खटा अनार वात कफ नाशक, पित्तकारक, अग्निदीपक और हल्का होता है।

अनारदाना—रुचिकारक, हृदय को प्रिय, दाह और तृषा का शमन करता है। अनार के फूल नाक से रक्त आने को रोकते हैं और इसका वल्कल कृमिनाशक, मलरोधक और रक्तातिसार को दूर करता है।

नारीकेल (नारियल)

नारियल का जल स्निग्ध स्वादिष्ट, बलदायक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, बस्तिशोधक, पित्त और पिपासा को नष्ट करता है।

साधारण नारियल स्वादु, पाक में मधुर, भारी, दुर्जर (कठिनता से पचनेवाला, मदकारक, पित्तनाशक, कृमिवर्द्धक, जठराग्नि को मन्द करता है और कामदेव के बल को बढ़ाता है अतः ब्रह्मचारी इसका सेवन न करे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बादाम

बादाम चिकना, गरम, वीर्यवर्धक, भारी और वातनाशक है। बादाम की गिरी वीर्यवर्धक, बलदायक, कफकारक और वात पित्त नाशक है। रक्तपित्त के रोगी के लिये ठीक नहीं। बादाम की गिरी को सायंकाल भिगोकर प्रातःकाल दूध या जल के साथ घोटकर पीने से शरीर और मस्तिष्क की खुश्की तथा उष्णता दूर होती है, बल-वीर्य की वृद्धि होती है। बादाम का सेवन ब्रह्मचारी को इसी प्रकार करना चाहिए अन्यथा उष्ण होने से हानिकारक है।

शाक

आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार पत्ते, फूल, फल, नाल, कन्द और संस्वेदज भेद से होने वाले छः प्रकार के शाक हैं। प्रायः सभी शाक विष्टम्भी कब्ज करनेवाले तथा भारी होते हैं। रूखे, बहुत मल-कारक अपानवायु तथा मल को निकालने वाले होते हैं। पत्ते की अपेक्षा पुष्प, पुष्प की अपेक्षा नाल, नाल की अपेक्षा फल, फल की अपेक्षा कन्द और कन्द की अपेक्षा संस्वेदज शाक उतरोत्तर भारी होते हैं।

"शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगाः" सर्वप्रकार के शाकों में रोग का निवास रहता है। इसी की पुष्टि चाणक्य ने भी की है—"शाकेन रोगा वर्धन्ते" शाक से रोग बढ़ते हैं। शाक का अधिक मात्रा में सेवन हड्डियों का भेदन, नेत्र ज्योति, बुद्धि, स्मरणशक्ति, वर्ण, रक्त और वीर्य का नाश करता है। और भी अनेक हानियां द्रव्य गुण जाननेवाले विद्वान् बतलाते हैं।

शाकों में क्षार नमक का भाग अधिक होता है, और इनके अधिक सेवन से शरीर में क्षार नमक का भाग अधिक होने से स्वप्नदोष, प्रमेह आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। अधिक मात्रा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
में शाक नहीं खाना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सावाले शाकों का सेवन अधिक बतलाते हैं किन्तु यह शास्त्रविरुद्ध है। जहां शाकों में गुण होते हैं वहां गुणविशेष भी होते हैं। अपनी प्रकृति आदि को विचारकर थोड़ी मात्रा में शाक (सब्जी) का सेवन करना चाहिये। गुण-दोष विचार कर पदार्थों का सेवन करने से ही स्वास्थ्य रक्षा, बल, बुद्धि, आयु, तेज कान्ति आदि की वृद्धि होती है। अतः जो शाक अधिक लाभदायक हैं और हानि कम करते हैं उन्हीं को चुन-कर कुछ विस्तार से लिख रहा हूँ। जो निषिद्ध तथा हानिकारक शाक हैं उनकी सूची इस प्रकरण के पीछे दी है। पाठक लाभ उठावें।

पत्र-शाक

चणे का शाक

चणे का शाक दुर्जर कब्ज करनेवाला, कफ तथा वात के रोगों को बढ़ानेवाला, खट्टा और विष्टम्भकारक है, अतः गुणकारी नहीं होता। पित्तनाशक है तथा दांतों की सूजन को दूर करता है।

मटर का शाक

मटर का शाक मलभेदक, हल्का स्वादु, शीतल, कषैला, पुष्टिप्रद वातकारक, कफ और पित्तनाशक होता है। इसका सेवन स्वास्थ्य के लिये अच्छा है।

कसौंदी के पत्तों का शाक

कसौंदी के पत्तों का शाक रुचिकारक वीर्यवर्धक, खांसी, विष और रक्तविकारनाशक है, वात और कफ के रोगों को दूर करता है, पाचक तथा कण्ठशोधक है। उष्ण होने से सेवन नहीं करना चाहिये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेथी

मेथी के पत्तों का शाक बनाकर लोग खाते हैं, यह कषैली, चरपरी, उष्ण और रूक्ष होती है। वात और कफ के रोगियों को इसका औषध रूप में सेवन करने से लाभ होता है। स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य प्रेमी को दैनिक भोजन में इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

सरसों का शाक

सरसों का शाक स्वभाव से ही अहितकर=हानिकारक होता है। इसमें मलभाग अधिक होता है, पोषक-तत्त्व नाममात्र को ही होता है। निघण्टुकार ने "शाकेषु निन्दितम्" सब शाकों में निन्दित बतलाते हुए लिखा है कि सरसों का शाक चरपरा, मल-मूत्र को अत्यधिक बढ़ाने वाला, भारी, पाक में खट्टा, जलन करनेवाला, गरम, रूखा और त्रिदोषकारक है। यह स्वादु होते हुए भी हानिकारक है, अतः इसका सेवन सर्वथा नहीं करना चाहिये।

चौलाई का शाक

चौलाई का शाक हल्का, मधुर, शीतल, रूक्ष रुचिकारक अग्निदीपक, पित्त, कफ तथा रक्त दोषों को हरनेवाला, मल मूत्र को निकालनेवाला सब प्रकार के विषों का नाश और पेट के सभी विकारों को दूर करता है। डाक्टरों के मतानुसार इसमें विटामिन सी० बहुत होती है।

चौलाई प्रायः सभी प्रान्तों में तथा सभी ऋतुओं में पाई जाती है। आर्द्रभूमि में तथा वर्षा और शीत काल में चौलाई अधिक होती है। यह समूह के साथ पाई जाती है, इसका क्षुप एक बालिस्त से लेकर डेढ़ हाथ तक देखने में आता है। इसका क्षुप अनेक शाखाओं वाला झाड़ी के समान किन्तु कोमल होता है। इसके फल छोटे-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोटे गुच्छाकार तथा बीज अत्यन्त छोटा और काले रंग का होता है।

चौलाई का एक भेद और है जिसे पानीघ तण्डुलीय तथा कञ्चर भी कहते हैं। यह जलीय प्रदेश में अधिक पाया जाता है। यह हल्की, कड़वी, रक्तपित्तनाशक और वात रोगों को नष्ट करती है।

चौलाई की जड़ गरम, कफनाशक, स्त्रियों के रज को रोकने वाली तथा रक्तपित्त और प्रदर रोग को नष्ट करती है। इसी प्रकार अन्य अनेक रोगों में चौलाई का उपयोग किया जाता है।

पालक

पालक का शाक बादी करनेवाला, शीतल, कफकारक, भेदक, भारी, विष्टम्भजनक तथा मद (नशा), श्वास, रक्तपित्त और विष-नाशक है। रुधिर के विकारों को शान्त करता है। उदर के सभी रोगों को दूर करता है। डाक्टरों के मतानुसार पालक में चूना, लोहा, आयोडीन, क्लोरीन, गन्धकादि नमक आवश्यकता से अधिक मिलते हैं। इसमें जीवनीयतत्त्व (विटामिन सी०) बहुत मात्रा में विद्यमान है। पालक का सेवन भोजन में प्रतिदिन किया जा सकता है। सब ऋतुओं तथा सब स्थानों में होता है।

पोदीना

पोदीना रोचक, मधुर, गुरु, हृदय के लिए लाभप्रद और सुख-दायक है। कफ, कास. मद, अग्निमान्द्य, विसूचिका, संग्रहणी, अतिसार, जीर्णज्वर और कृमिनाशक है। इसके सेवन से वात और कफ के दोष दूर होते हैं, रक्त को खूब शुद्ध करता है। जठ-राग्नि को तीव्र करता है। हैजे के दिनों में सेवन करने से हैजा नहीं होता। प्यास को बुझाता है। आंखों के लिए हितकारी है। घर में कोई शाक बनाया जाये, इसके पत्ते भी डाल लेने चाहियें। इसमें विटामिन ए. पर्याप्त मात्रा में मानते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बथुआ

बथुआ का क्षुप रक्त तथा हरित पत्र होने से दो प्रकार का होता है। बथुवे का क्षुप (पौदा) एक हाथ से लेकर चार हाथ तक ऊंचा होता है। छोटे बथुवे के पत्ते मोटे, चिकने तथा हरे रंग के होते हैं और बड़े बथुवे के पत्ते बड़े और पुष्ट होने पर लाल रंग के हो जाते हैं। बथुआ अधिकतर जौ और गेहूं के खेतों में उत्पन्न होता है। यह शीतकाल तथा गर्मी के आरम्भकाल में भारत के सभी प्रान्तों में पाया जाता है, इसके फूल छोटे-छोटे तथा हरे होते हैं, उनमें काले रंग के छोटे बीज निकलते हैं। बथुवे में एक प्रकार का क्षार होता है। डाक्टर इसमें "सी" विटामिन बहुत मात्रा में मानते हैं।

बथुवे के गुण

वास्तुकं तु मधुरं सुशीतलं क्षारमीषदम्लं त्रिदोषजित्।
रोचनं ज्वरहरं महार्शसां नाशनं च मलमूत्रशुद्धिकृत्॥

(राजनिघण्टु)

वास्तूकद्वितीयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्॥
सरं प्लीहास्रपित्तार्शःकृमिदोषत्रयापहम्॥

(भावप्रकाशः)

दोनों ही प्रकार का बथुआ स्वाद में मधुर, खारी, पाक में चरपरा, थोड़ा अम्ल और सुशीत होता है। यह रुचिवर्धक, हल्का, दीपन पाचन करनेवाला, बल वीर्य को बढ़ानेवाला, प्लीहा (तिल्ली), रक्तपित्त ज्वर सब प्रकार का अर्श (बवासीर) और कृमि रोगों का नाश करनेवाला है। तीनों दोषों को जीतने वाला और रेचक अर्थात् मल-मूत्र की शुद्धि करनेवाला है। इससे पेट की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्धि खूब होती है। एक रोगी को मलबन्ध (बन्धा) हो गया, सब औषधियां निष्फल हो गईं। उस रोगी ने किसी के कहने से बथुआ उबाल छान कर पर्याप्त मात्रा में बथुवे का जल पी लिया, इसी से उसका बन्धा टूट गया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और रोगी बच गया।

वास्तूकोऽग्निकरो रसे च मधुरः पित्तापहश्चाक्षुषः,
स्निग्धो वातविनाशनः कृमिहरः पित्तादिदोषापहः।
वर्चोमूत्रविशोधनः प्रथमतः, श्लेष्मामयानां तथा,
शाकानामपि चोत्तमो लघुतरः पथ्यः सदा प्राणिनाम् ॥

(शालिग्राम निघण्टुः)

बथुआ जठराग्नि को दीप्त करनेवाला, रस में मीठा, पित्तनाशक नेत्रों के लिये हितकारी, स्निग्ध, कृमिनाशक, पित्तादि दोषों को नष्ट करनेवाला, मल-मूत्र शोधक, शाकों में उत्तम और हल्का तथा कफ के रोग वाले मनुष्यों के लिए सदैव हितकारी है।

चरक शास्त्र ने बथुवे में "भिन्नवर्चस्तु वास्तुकम्" मल को भेदन करनेवाला गुण अन्य शाकों की अपेक्षा विशेष माना है।

लाल बथुआ [चिल्ली]

सक्षारः कृमिजित् त्रिदोषशमनः सन्दीपनः पाचनः
चक्षुष्यो मधुरः सरो रुचिकरो विष्टम्भशूलापहः।
वर्चोमूत्रविशोधनः स्वरकरः स्निग्धो विपाके गुरु-
र्वास्तूकः सकलामयप्रशमनश्चिल्ली तदेवोत्तमा ॥ (सुषेण)

लाल बथुआ, क्षारयुक्त, कृमिनाशक, त्रिदोषशमन करनेवाला, दीपन, पाचन, नेत्रों के लिए हितकारी, सारक, रुचिकारक, विष्टम्भ (कब्ज) और शूलनाशक, मल मूत्र शोधक, स्वर को उत्तम करनेवाला स्निग्ध, पाक में भारी, सब प्रकार के रोगों को शांत करनेवाला है और यह सबसे उत्तम है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिल्ली वास्तुकतुल्या च क्षारयुक्ता श्लेष्मपित्तनुत्।
प्रमेहमूत्रकृच्छ्रघ्नी पथ्या च रुचिकारिणी। (राजनिघण्टु)

चिल्ली (लाल बथुआ) बथुवे के समान गुणवाली है। क्षारयुक्त, कफ, पित्त, प्रमेह नाशक, मूत्रकृच्छ्रनिवारक, पथ्य और रुचिकारक है।

वास्तुकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसां हितम्॥ (ह० स०)

बथुआ मधुर, हृदय को हितकारी तथा वातपित्त और बवासीर रोगवालों के लिए हितकारी है।

पुष्पों के शाक

केले के फूलों का शाक

स्निग्ध, मधुर, कसैला, भारी, शीतल, वातपित्त, रक्तपित तथा क्षय को नष्ट करता है। थोड़ी मात्रा में सेवन करना चाहिये।

सहोंजने के फलों का शाक

चरपरा, तीक्ष्ण, गरम होता है, ब्रह्मचर्य प्रेमियों को नहीं खाना चाहिये। किन्तु सूजन, कृमि, वात, कफ, विद्रधि, तिल्ली तथा गुल्म रोगों को सेवन करने से दूर करता है। अतः उपरोक्त रोगग्रस्त रोगियों को सेवन करना चाहिये।

सेमल का फूल

रस पाक में मधुर कसैला शीतल भारी ग्राही वातकारक और कफ तथा पित्त को नष्ट करनेवाला है। देवियों के दुःसाध्य प्रदर को इस के फूलों का शाक घृत में पकाकर सेंधा नमक डालकर खिलाने से नष्ट करता है।

फलों का शाक

कुष्माण्ड

मिठाई के पेठे का नाम कुष्माण्ड है। इसका शाक पुष्टिकारक,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
वीर्यवर्धक, भारी, पित्त तथा रक्तविकार, रक्तपित्त तथा वात रोगों का नाश करता है। कच्चा पेठा शीतल और पित्तनाशक है। मध्यम पेठा कफकारक है, पका हुआ पेठा कुछ शीतल, स्वादु, खारी, अग्निदीपक, हल्का, वस्ति को शुद्ध करनेवाला तथा मानसिक रोग अपस्मार (मृगी), उन्मादादि (पागलपन) को दूर करता है। सब दोषों को जीतनेवाला होता है। ये गुण मिठाई के पेठे के हैं। इसका कुष्माण्डावलेह बनता है, जो असाध्य नकसीर आदि रक्तपित्त के रोगों की रामबाण औषध है। जो बाजार में पेठा बिकता है जिसका शाक प्रायः सभी लोग बाहुल्य से खाते हैं इसमें उपरोक्त गुण नहीं हैं। कुछ विद्वान् तो इसको तामसिक तथा ब्रह्मचर्य के लिये हानिकारक मानते हैं।

पेठा

बाजारी पेठे में मल भाग अधिक होता है, शरीर का पोषक तत्त्व सार भाग नाममात्र ही होता है। वायु रोगों को बढ़ाता है। पेट में आनाह (अफारा) आदि रोग पैदा करता है। जठराग्नि को मन्द करता है। अतः बाजारी शाकवाले पेठे का सेवन नहीं करना चाहिए। मिठाई वाले पेठे का शाकादि बनाकर सेवन करना लाभदायक है किन्तु लोग इसे केवल मिठाई बनाने के लिए समझते हैं, शाक बनाकर नहीं खाते यह भारी भूल है।

महाकोशातकी [घीया तोरई]

वायु के रोगों को तथा रक्तपित्त को शान्त करती है। इसका शाक अच्छा होता है।

राजकोशातकी [तोरई]

शीतल, मधुर, कफ तथा वातकारक, पित्तनाशक, अग्निदीपक, और श्वास, ज्वर, कास और कृमि के रोगों को नष्ट करती है। यह हल्की होने से सभी प्रकार के रोगियों के लिये पथ्य है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पटोल [परवल के फल]

यह फलों के शाकों में सर्वोत्तम है। यह गरम, हल्का, पाचक, स्निग्ध, अग्निदीपक और हृदय के लिए हितकारी है। खांसी, कृमि, रक्तविकार तथा त्रिदोष सम्बन्धी रोगों का विनाशक है। यह वीर्यवर्धक ब्रह्मचारियों तथा स्वास्थ्यप्रेमियों के लिए बहुत ही अच्छा शाक है। बंगाल, बिहार आदि प्रदेशों में अधिक होता है।

डिण्डिश [टिण्डा]

टिण्डा वा ढेंढस रुचिकारक, मलभेदक (दस्तावर) बहुत शीतल, वातकारक, रूक्ष, मूत्रवर्धक है, कफ तथा पथरी रोग को नष्ट करता है। सामान्यतया यह अच्छा शाक माना जाता है।

अलाबू [घीया]

हृदय को प्रिय, पित्त तथा कफनाशक, भारी, वीर्यवर्धक, रुचिकारक और धातु को पुष्ट करनेवाली होती है।

कर्कटी [ककड़ी]

कच्ची ककड़ी शीतल, रूखी, ग्राही, मधुर, भारी, रुचिकारक और पित्त को नष्ट करती है। पक्की ककड़ी तृषा (प्यास) अग्नि और पित्तकारक है।

शिम्बी [सेम]

रस तथा पाक में मीठी, शीतल, भारी, बलदायक, दाहकारक, कफकारक, वात और पित्त को नष्ट करती है।

बैंगन—अत्यन्त गर्म होता है। इसका सेवन अर्श,(बवासीर), प्रमेह, स्वप्नदोष आदि रोगों को उत्पन्न करता है। ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्यप्रेमी को इसका भूलकर भी सेवन नहीं करना चाहिये। केवल एक बार तथा थोड़ी मात्रा में खाने से ही वीर्यनाश करता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शोभाञ्जनफल [सोंजने की फली]

स्वादु, कसैली, कफ पित्त को नष्ट करती है। शूल, कोढ़, क्षय, श्वास तथा गुल्म नाशक और परम अग्नि दीप्त करनेवाली होती है। मनुस्मृति में शैग्रव-सोञ्जने के फलादि खाने का निषेध किया है।

कन्द-शाक

आलू

आलू का शाक बहुत अधिक मात्रा में तथा सभी देशों में खाया जाता है। परन्तु इसके गुण दोषों के विषय में बड़ा भ्रम है। चरक शास्त्र में आलू के विषय में लिखा है "आलूकः कन्दानां प्रकृत्यैव अहिततमानामाहारविकाराणाम्" सब कन्दों में आलू स्वभाव से ही सबसे अधिक अहितकर अर्थात् हानिकारक है। जिस आलू की प्रशंसा करता करता आधुनिक डाक्टर तथा शिक्षित समुदाय नहीं थकता वही हमारे ऋषियों की दृष्टि में कन्दों में सबसे अधिक हानिकारक शाक है। प्राचीन काल में पर्वतों पर जंगली रूप में यह उत्पन्न होता था, इसकी खेती कोई नहीं करता था। न ही शाक रूप में इसका व्यवहार होता था। लगभग दो सहस्र वर्ष हो गये तब से यह खेतों में बोया जाने लगा और आज तो यह मानव समाज के भोजन का महत्त्वपूर्ण अङ्ग बन गया है। स्कूल, कालिज, गुरुकुल, पाठशाला, पुलिस, सेना, होटल, होस्टल (छात्रावास) सबकी पाकशालाओं में एकमात्र इसका शासन दिखाई देता है। इसके स्वादु और स्थायी (टिकाऊ) होने के कारण यह हमारा प्रिय भोज्य पदार्थ बन गया है। इसके दोषों का किसी को भी ध्यान नहीं। आंखों पर पट्टी बांधकर इसके गुण दोष विचार बिना सारा मानव-समाज इसको खाने पर तुला हुआ है। संक्षेप में इसके विषय में लिख रहा हूं विस्तार-पूर्वक कभी स्वतन्त्र लेख ही लिखूंगा।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आयुर्वेद शास्त्रों के मतानुसार—

आलुकं शीतलं सर्वविष्टम्भि मधुरं गुरु।
सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्षपित्तनुत्।

आलु शीतल, मधुर, रूक्ष, शुष्क, पचने में भारी व दुर्जर आलस्य कारक, विष्टम्भी मलको रोककर तथा कठिन करके कब्ज करने वाला, मल मूत्र को बढ़ानेवाला तथा कामोद्दीपक अर्थात् कामवासना को बढ़ानेवाला है। यूनानी मत में भी वह प्रथम श्रेणी का शीतल तथा रूक्ष है। पक्वाशय (मेदे) को बिगाड़ता तथा आनाह (अफारा) करता है। कुछ के मत में खून को खराब करता तथा खुजली उत्पन्न करता है। वायु और कफ को कुपित करता है यह इतना रूक्ष (खुश्की) करने वाला होता है कि यदि इससे द्विगुण मात्रा में घी इसके साथ खाया जाये तब भी यह खुश्की ही करता है। खुश्की के कारण मलबन्ध (कब्ज) करता है तथा इस से स्वप्नदोष प्रायः होने लगता है अतः इसके खानेवाले गर्म समझने लगते हैं। वैसे यह शीतल और शुष्क है। दो चार दिन लगातार खाने से स्वप्न-दोष वीर्य-नाश आदि कुपरिणाम प्रत्यक्ष दीखने लगते हैं। इसके सेवन से जुकाम खांसी तथा श्वास तक हो जाता है। इसके रूक्ष होने से मस्तिष्क में रूक्षता बढ़ाता है, जुकाम स्थायी रहने लगता है। आंखों को बहुत हानि पहुंचती है। स्वास्थ्यप्रेमी व्यक्ति तथा ब्रह्मचारी को तो भूलकर भी सेवन नहीं करना चाहिये। सभी प्रकार के आलुओं में ये दोष पाये जाते हैं। निरन्तर आलू के सेवन से गठिया रोग के दर्शन होते है। यह मूत्रनलिका में जलन उत्पन्न करता है अतः सूजाक, आतशिक और मूत्रकृच्छ्र के रोग इसके सेवन से होते हैं। ग्रीष्मकाल में आलू के सेवन से बहुत अधिक हानि होती है। जिनको कोष्ठबद्धता कब्ज का रोग है उनको आलू अधिक हानि करता है। पित्त, वात तथा रक्त सम्बन्धी रोगों में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आलू के सेवन से उल्टे परिणाम देखने में आते हैं। यदि इसके रूक्षता के दोष को दबाने के लिये घृत का सेवन इसके साथ अधिक किया जाये तो इसके सेवन से चर्बी अधिक बढ़ती है और पेट भी अधिक बड़ा हो जाता है। इसके गुण तो नाममात्र ही इस प्रकार के हैं, जैसे विषाक्त दूध. है तो दूध किन्तु विष मिला हुआ है अतः इसका सेवन भोजन के रूप में सर्वथा नहीं करना चाहिये।

मूली

मूली दो प्रकार की होती है। एक छोटी, संस्कृत में इसे लघु-मूलक कहते हैं। यह चर्परी, गरम, रुचिकारक, हल्की, पाचक, त्रिदोषनाशक, स्वर को उत्तम करनेवाली, ज्वर, श्वास, नासिकारोग, कण्ठरोग तथा नेत्ररोगनाशक है। दूसरी बड़ी मूली, रूक्ष, गरम, भारी और त्रिदोष को करनेवाली है। यदि घृत आदि में पकाकर खाई जावे तो त्रिदोष नाशक है। मूली अन्य भोजनों को पचाती है किन्तु स्वयं कब्ज करती है। बवासीर के रोगी के लिये मूली का शाक अमृत के समान लाभदायक है। यकृत् तथा तिल्ली के रोगी के लिये भी लाभदायक है।

मूली के पत्तों का शाक पाचक हल्का रुचिकारक और गरम है। घृत से भुना हुआ त्रिदोषनाशक और बिना भुना हुआ कफ तथा पित्त कारक है।

गाजर

गाजर तीक्ष्ण, मधुर, तिक्त, गरम, अग्नि दीपन करनेवाली, हल्की, ग्राही और रक्तपित्त, बवासीर, संग्रहणी, कफ तथा वात-सम्बन्धी रोगों का नाश करती है। काली गाजर सबसे अच्छी होती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में लोह होता है अतः जिगर को शक्ति देती है तथा जिगर सम्बन्धी सभी रोगों को दूर करती है। खून को खूब बढ़ाती है। निर्बलों का तो यह सेव कहलाती है। इसे खानेवाले

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शीतकाल में लाल हो जाते हैं। वैसे राजसिक है अतः रजोगुण की वृद्धि अवश्य ही करती है। डाक्टरों के मतानुसार इसमें लगभग सारे विटामिन मिलते हैं। यह कच्ची खाने पर भी अच्छा लाभ करती है। यह चमड़े को सुन्दर बनाती तथा रक्त को शुद्ध करती है। स्वास्थ्य के लिए इसका शाक अच्छा होता है।

गोभी

गोभी का शाक बहुत खाया जाता है। इसके दोषों से लोग परिचित नहीं हैं। यह फूल गोभी गाँठ गोभी और पत्र गोभी के भेद से तीन प्रकार की होती है। फूल गोभी तथा गांठ गोभी ये दोनों स्वादिष्ट, मधुर, शीतल, बड़ी देर से पचनेवाली तथा वायु के रोगों को उत्पन्न करती हैं। पेट के सभी रोगों को उत्पन्न करती हैं। अजीर्ण तथा कब्ज करना इनका सर्वप्रथम कार्य है। अतः ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्यप्रेमी व्यक्ति को इनका शाक नहीं खाना चाहिये।

पत्र गोभी भी भारी तथा शीतल है और वायु करती है। मलबन्ध (कब्ज) को दूर करती है। इसमें यही गुण है कि यह पेट की शुद्धि कर देती है। यदि किसी को गोभी खानी हो तो पत्र गोभी ही खानी चाहिये। कुछ लोग इसे अच्छी सब्जी (शाक) मानते हैं। डाक्टरों के मतानुसार इसमें ए, बी, सी, डी, ई, विटामिन पाये जाते हैं।

गृञ्जन (शलगम)

गृञ्जन शब्द हमारे शास्त्रों में तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—१. गाजर, २. शलगम और ३. लहसुन। किन्तु मुख्यतया गृञ्जन का प्रयोग शलगम अर्थ में ही हुआ है, इसके नाम और गुणों को देखकर यही सिद्ध होता। जो लोग गृंजन का मुख्यार्थ गाजर करते हैं यह उनकी भ्रान्ति है। महर्षि मनु ने मनुस्मृति के पांचवें

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अध्याय में "लशुनं गृंजनं चैव पलाण्डुं कवकानि च" कहते हुये लहशुन, शलगम, प्याज आदि दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को ही अभक्ष्य बतलाया है, गाजर को नहीं।

राजनिघण्टु में श्री नरहरि ने गृंजन के पर्यायवाची शब्द ये लिखे हैं :—

गृंजनं शिखिमूलं च यवनेष्टं च वर्तुलम्।
ग्रन्थिमूलं शिखाकन्दमुक्तं डिण्डीरमोदकम् ॥५५॥
(राजनिघण्टौ चतुर्थो वर्गः)

यहां पर दिये गये सभी नामों से गृंजन का अर्थ शलगम प्रकट हो रहा है। शिखिमूल और शिखाकन्द उसे कहते हैं जिसकी मूल में शिखा हो और जो शिखावाला कन्द हो। इसी प्रकार वर्तुल गोल भी शलगम ही होती है। यवनेष्ट=यवनों को प्रिय, क्योंकि वे अधिकतर लहसुन, प्याज, शलगम आदि दुर्गन्धित पदार्थों को अधिक पसन्द करते हैं। डिण्डोरमोदक नाम से भी लड्डू जैसी आकृति प्रतीत होती है जो कि शलगम की ही होती है।
इसके गुण :—

गृंजनं कटुकोष्णं च कफवातरुजापहम्।
रुच्यं च दीपनं हृद्यं दुर्गन्धगुल्मनाशनम् ॥५६॥
(राजनिघण्टौ चतुर्थो वर्गः)

गृंजन, कटु, उष्ण, कफ तथा वात के रोगों को नष्ट करती है, रुचिकारी, दीपन, हृदय के लिए हितकारी दुर्गन्धयुक्त और गुल्म नाशक है। इसमें दुर्गन्धयुक्त बतलाने से स्पष्ट ही हो गया कि यह शलगम ही है क्योंकि शलगम में दुर्गन्ध आती है तथा गाजर में नहीं आती। यदि लहसुन और प्याज का अर्थ किया जाये तो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि मनु जी ने जहां गृंजन का निषेध किया है वहां पर साथ साथ पलाण्डु और लशुन का भी ग्रहण किया है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दकल्पद्रुम ने तो सर्वथा ही भ्रम दूर कर दिया है—"गृंजनम् क्ली। मूलविशेषः। शलगम इति ख्यातः।" गृंजन को लौकिक भाषा में शलगम नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा लिखा है।

"वैजयन्ती कोषकार ने गृंजन की पलाण्डु की दश जातियों में गणना की है।

फरुण्डश्च पलाण्डुश्च लक्षार्कश्च परारिका।
गृंजनो यवनेष्टश्च पलाण्डोर्दशजातयः।२०७।
(भूमिकाण्डे वनाध्यायः)

वास्तव में यह पलाण्डु (प्याज) की ही जातिविशेष है, इसका आकार सर्वथा प्याज से ही मिलता जुलता है और इसमें भी प्याज की भांति दुर्गन्ध आती है। अतः गृंजन का मुख्यतया अर्थ शलगम ही है, और इसका सेवन करना हानिकारक है तथा मनुस्मृति के अनुसार यह अभक्ष्य पदार्थ है।

रक्तालु (शकरकन्दी)

शकरकन्दी शीतल, मधुर, भारी, कफ तथा वात कुपित करने वाली, वीर्यवर्धक, पित्तनाशक, तृप्तिकारक, दाद, शोथ, प्रमेह, व्रण, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों का नाशकरनेवाली, बलकारक, पुष्टिजनक, स्वादु कन्द शाक है। इसका सेवन ब्रह्मचारी को लाभदायक है। अपनी पाचनशक्ति को ध्यान में रखते हुये यथेच्छ सेवन करना चाहिये।

जिमिकन्द

अग्निदीपक, रूखा, कसैला चरपरा, विष्टम्भी, विशद, रुचिकारक, हल्का तथा कफ और अर्श (बवासीर) रोग का नाशक है। तिल्ली तथा गुल्म को इसका शाक नष्ट करता है। अनेक रोगों को यह नष्ट करता है अतः सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते" सम्पूर्ण कन्द शाकों में जिमिकन्द श्रेष्ठ समझा जाता है। किन्तु यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उष्ण तथा रूक्ष होने से ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है। अतः ब्रह्मचारी तथा सामान्य मनुष्यों को शाक के रूप में इसे नहीं खाना चाहिये। इसके अतिरिक्त दाद, रक्तपित्त, कोढ तथा खुजली आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

कदलीकन्द

केले का कन्द शीतल, बलदायक, केशों को उत्तम बनाने वाला, अम्लपित्त को नष्ट करनेवाला, अग्निकारक, मधुर और अग्निवर्धक होता है।

मानकन्द

मानकन्द शीतल, हल्का सूजन तथा रक्तपित्तनाशक है।

बिदारीकन्द

बिदारीकन्द पित्तकारक, उष्ण, बलदायक, चरपरा कड़वा, रसायन, आयु, वीर्य तथा अग्निवर्धक है। प्रमेह कुष्ठ कफ तथा वात विनाशक है।

कसेरू दोनों प्रकार के शीतल, मधुर, भारी, वीर्यवर्धक, कफ-वर्धक, पित्त, रक्त के रोगों तथा दाह रोगों को नष्ट करता है।

रतालू

अरुई मलस्तम्भक, भारी, जड़, स्निग्ध है अतः कब्ज करती है और कठिनता से पचती है। पच जाये तो बलकारक है। घृत में पकाकर खाने से कफनाशक तथा रुचिप्रद है। तीव्र जठराग्नि वालों को थोड़ी मात्रा में ही खाना चाहिये। कब्ज होने पर लाभ के स्थान पर हानि ही करता है।

कमलकन्द

इसे शालुक भी कहते हैं। यह वीर्यवर्धक, भारी, दुर्जर, पाक में मधर, दुग्धवर्धक, वात तथा कफकारक, ग्राही, रूक्ष, पित्त, दाह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
तथा रक्तविकार को दूर करनेवाला है। भारी होने से थोड़ी मात्रा में सेवन करना चाहिये।

मूंगफली

मूंगफली अत्यन्त गर्म कन्द है। इस का सेवन ब्रह्मचारी तथा गृहस्थी सभी के लिए हानिकारक है। यह वीर्यसम्बन्धी प्रमेह स्वप्नदोषादि रोगों को उत्पन्न करती है। इसमें तैल अधिक है अतः हानिकारक है। तैल तथा तैलयुक्त पदार्थ केवल बादाम ही श्रेष्ठ है, शेष सभी हानिकारक हैं।

संस्वेदज शाक

संस्वेदज, भूमिच्छत्र, शिलन्धि, कवक, साँप की छत्री, छतौना आदि इनके नाम हैं। यह वर्षा ऋतु में पृथ्वी, गोबर, लकड़ी और वृक्षादि में उत्पन्न होते हैं। ये सभी शाक शीतल, दोषयुक्त, पिच्छिल, भारी और वमन, अतिसार, ज्वर, तथा कफसम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करते हैं। अतः इनको खाना मूर्खता है और रोगों को निमन्त्रण देना है। इन निन्दित शाकों का सेवन भूलकर भी नहीं करना चाहिये। हमारे पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) से आये हुये भाई इनका सेवन करते हैं। उन्हें इनका परित्याग कर देना चाहिये। मनु जी ने भी इनका निषेध अभक्ष्य कह कर किया है।

निषिद्ध शाक

कन्द—कच्चा, बिना ऋतु में उत्पन्न हुवा, पुराना, रोगयुक्त, दीमक आदि कीड़ों का खाया हुवा, अग्नि आदि से दूषित, अत्यन्त जीर्ण, रूखा घृत आदि में न पकाया हुवा, निकृष्ट भूमि में उत्पन्न हुवा, कठिन, अत्यन्त कोमल, अत्यन्त शीतल, सर्प आदि से दूषित,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अति सूखा हुवा कन्द नहीं खाना चाहिये। किसी-किसी का तो यहां तक मत है कि मूली को छोड़कर कोई भी कन्द नहीं खाना चाहिये। 'नाश्नीयान्मूलकं विना' किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं। मनु जी ने निम्न शाकों को अभक्ष्य लिखा है।

लशुन, शलगम, प्याज और सर्प की छत्री को अभक्ष्य बतलाया है। इसी प्रकार जो अन्न शाकादि मल, मूत्र, अथवा दुर्गन्ध युक्त खाद से उत्पन्न होते हैं वे कभी भी नहीं खाने चाहियें। ये पदार्थ ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य और बुद्धि आदि के नाश करने वाले हैं अत अपना कल्याण चाहनेवाले विचारशील व्यक्तियों को इनका सेवन भूलकर भी नहीं करना चाहिये क्योंकि यह तामसिक पदार्थ हैं।

अन्न

"अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः" के अनुसार अन्न ही प्राणाधार है। क्षुधा की शान्ति और जीवननिर्वाह के लिये अन्न का सर्वप्रथम स्थान है। नये और पुराने अन्न के भी गुण भिन्न भिन्न होते हैं। नया अन्न अभिष्यन्दी (नेत्र रोग=आंखों का दूखना आदि) और भारी होता है। एक वर्ष तक अन्न नया रहता है, दूसरे वर्ष तक पुराना और गुणकारी होता है। इसके पश्चात् अन्न नीरस और गुणहीन होता जाता है। पुराने होने पर सभी अन्न भारीपन को छोड़कर हल्के हो जाते हैं। जो अन्न अधिक गुणकारी और सात्विक हैं वे ही स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य की दृष्टि से उत्तम है।

गेहूँ

गेहूं मधुर, स्निग्ध, भारी, अतिशीतल वात-पित्त नाशक, कफ-कारक, बलदायक, वीर्य तथा आयु को बढ़ानेवाला, सन्धानकारक, शरीर को स्थिर रखनेवाला, वर्ण को सुन्दर करनेवाला, रुचि-कारक, किंचित् रेचक और सर्वोत्तम भोजन है। डाक्टर लोग इसमें

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ए.बी.जी. विटामिन और ७५॥ प्रतिशत शक्कर तथा ११ प्रतिशत प्रोटीन मानते हैं।

जौ

जौ शीतल, मधुर, कषैला, बलदायक, मेधा, अग्नि और वीर्य को बढ़ाने वाला, स्वर तथा वर्णकारी, अत्यन्त वायु कारक, पीनस, श्वास, कास, प्रमेह, तृषा, मेद कण्ठ तथा त्वचा के रोगों का नाशक है। रक्त और पित्त को शान्त करता है।

चावल

चावल—शीतल मधुर वीर्यवद्धक, बलदायक, पित्तनाशक, कफवर्द्धक मेधा के लिए हितकारो और अल्पमल लानेवाले हैं।

साँठी चावल, मधुर शीतल हल्का, मल को बांधनेवाला, स्निग्ध, कोमल, त्रिदोषनाशक और ज्वर को नष्ट करता है। यह सबसे उत्तम होता है।

चणा

चणा शीतल, मधुर कषैला, रूक्ष, विष्टम्भी, कुष्ठ, कफ, पित्त और वीर्यनाशक है तथा घी के साथ खाने से त्रिदोषनाशक होता है।

नवीन मतानुसार चणे को बलदायक और बाजीकरण माना जाता है किन्तु प्राचीन आयुर्वेद के मतानुसार चणा पुंस्त्वनाशक अर्थात् वीर्य को नष्ट करनेवाला है। महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत में—

"चणकाः पुंस्त्वनाशनाः" (सूत्रस्थान अ० ४६ श्लोक ३२) लिखते हुए चणे को पुंस्त्वनाशक बतलाया है और इसी प्रकार धन्वन्तरि जो महाराज ने अपने निघण्टु में भी (कफास्रपित्तपुंस्त्व-घ्नाश्चणका वातला हिमाः) चणे को पुंस्त्वशक्तिनाशक लिखा है। अतः ब्रह्मचारी के लिये चणे का सेवन हानिप्रद है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जुआर ✓

जुआर भारी, मलरोधक, शीतल, रूक्ष रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ट, तृषा, पित्तनाशक और रुधिर के विकारों को शान्त करती है। राजनिघण्टु में जुआर (पशूनामबलप्रदम्) पशुओं के लिए बलकारक नहीं होती) ऐसा लिखा है।

बाजरा

बाजरा उष्ण रूक्ष बल कान्तिदायक अग्निदीपक, वात कफ नाशक, पित्त प्रकोपक, दुर्जर=कठिनता से पचनेवाला वीर्यनाशक और स्त्रियों की कामशक्ति को बढ़ाता है। दूध, दही, आदि के साथ सेवन करने से इसकी उष्णता कुछ न्यून हो जाती है।

मूंग

मूंग शीतल, मधुर, हल्का अग्निदीपक, स्वादु, कफ पित्त के विकारों को शान्त करनेवाला, कुछ वातकारक, नेत्रों के लिए हितकारी, किंचित् रेचक और पथ्यतम है।

मूंग, मोठ, मसूर, अरहर, उड़द, चणा आदि की दाल बनाकर खाई जाती है, किन्तु इन सब में मूंग की ही दाल उत्तम है। धन्वन्तरीयनिघण्टु में मूंग को "सूपश्रेष्ठः" अर्थात् दाल के लिये सर्वोत्तम बतलाया है। सुश्रुत के मतानुसार मूंग और मसूर को छोड़कर शेष सभी आध्मान=अफारा करनेवाले हैं। ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारकाः।

मोठ [वनमुद्गाः]

मोठ के गुण भी मूंग के समान ही होते हैं, विशेषतया ज्वर-दाह हरने वाला है।

उड़द

उड़द, भारी, गरम, स्निग्ध, मधुर, वातनाशक, कफ, चर्बी,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मांस और वीर्य को बढ़ाता है। तृप्तिकारक, बृंहण, और विशेषतया इसके सेवन से माताओं के स्तनों में दूध बढ़ता है। यह उष्ण, गरिष्ठ पित्तकारक और राजसिक है, इसका सेवन अल्पमात्रा में करना चाहिये जिनकी जठराग्नि तीव्र है वे ही इसका सेवन कर सकते हैं, मन्दाग्नि वाले व्यक्ति को इससे सर्वथा बचना चाहिये।

मसूर

मसूर—मधुर, शीतल, रूक्ष, संग्राही, कफ पित्तनाशक और वायु के रोगों को बढ़ाती है, मूत्रकृच्छ्र को दूर करती है।

अरहर

अरहर—शीतल, रूक्ष, वातकारक, कफ, पित्तनाशक है तथा वात को भी अधिक प्रकुपित नहीं करती। चर्बी, कफ, रक्तपित्त आदि में अरहर का सेवन हितकर है। घी के साथ सेवन करने से त्रिदोषनाशक है।

महाकाय (मक्का)

मक्का—शीतल, विष्टम्भी, रूक्ष, वातकारक, कफ पित्त नाशक और तृप्त करनेवाली है। कच्ची मक्का रुचि और पुष्टि-कारक है।

मांस-भक्षण

आमिष कहिये या मांस, दोनों का अभिप्राय एक ही है। मांस वह पदार्थ है जिसकी प्राप्ति बिना प्राणिहिंसा के नहीं हो सकती, इसलिए "अहिंसा परमो धर्मः" के अनुसार धार्मिक मानवसमाज में मांस भक्षण का प्रतिषेध सदा से रहा है।

"अमन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम्" जिस पदार्थ के भक्षण से मनुष्य रोगी हो जाये वह आमिष कहलाता है। कैंसर, कोढ, गर्मी के समस्त रोग, दांतों का गिर जाना इत्यादि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भयंकर रोग मांस भक्षण से हो जाते हैं।

प्राचीन भारत में "घृतं वै बलम्" "दुग्धं वै बलम्" जिस समय घी और दूध को साक्षात् बल समझकर प्रयोग में लाया जाता था उस समय मानव स्वास्थ्य उन्नति के शिखर पर था, सौ वर्ष से पहले मरना अकालमृत्यु और पाप समझा जाता था, तीन तीन चार चार सौ वर्ष तक की आयु का भोग करते थे। मानव की आयु का माध्यम सौ वर्ष से कम न था। परन्तु आज भारत में मानव की आयु का मध्यम २७ वर्ष है। यह सब मांसभक्षण का ही परिणाम है।

इतना भी तब है जब कि मांस के साथ अन्न तथा घी दूध आदि का भी प्रयोग करते हैं। यदि केवल मांस का ही मानव को प्रयोग कराया जाए तो मानव जीवन असम्भव है।, क्योंकि मानव का स्वाभाविक भोजन मांस नहीं है।

कहा जाता है कि भारत तो उष्णप्रधान देश है यहां का जल वायु भले ही मांसभक्षण के विपरीत हो परन्तु इङ्गलैंड, अमेरिका आदि शीतप्रधान देशों में मांसभक्षण अनुकूल रहेगा। इसलिए लोगों ने मांस को अपनाया।

परिणाम सामने है, शीतप्रधान देशों के जीवन का भी ह्रास हो रहा है। उनकी आँखे बिल्ली जैसे दिखाई देती हैं, कैंसर, कोढ आदि उपरोक्त रोगों के ग्रास हों रहे हैं, जब रोग बढ़े तो बुद्धिमान् लोगों ने अन्वेषण करना प्रारम्भ किया।

लन्दन वैजोटैरियन एसोसियेशन की सेक्रेट्री कुमारी एफ० ई० निकल्सन ने १० सहस्र बच्चों को निरामिषभोजन कराया और दूसरी ओर लन्दन काउन्टी कौंसिल द्वारा एक दूसरे भोजनालय में उतने ही बच्चों को मांस सहित भोजन कराया। ६ मास के उपरान्त दोनों दलों के बच्चों की परीक्षा डाक्टरों द्वारा की गयी। यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
जानकर प्रसन्नता होगी कि निरामिषभोजी बच्चों का स्वास्थ्य अधिक अच्छा रहा। उनका भार अधिक निकला, उनके पुट्ठे सुदृढ़ थे तथा चमड़ा अधिक स्वच्छ था।

अब लन्दन काउन्टी कौंसिल की प्रार्थना पर और उसी की देख रेख में लन्दन वेजीटेरियन ऐसोसियेशन द्वारा लन्दन के निर्धन से निर्धन निवासियों को सहस्रों की संख्या में निरामिष भोजन दिया जाता है।

कहा जाता है कि मांसभक्षण से सैनिकों का स्वास्थ्य ठीक रहता हैं, लड़ने की शक्ति आती है इसलिए सेनाओं में मांस का प्रयोग किया गया परन्तु अन्वेषण करने पर परिणाम विपरीत निकला है अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् श्री प्रो० शिटेएडन पी० एच० सी० सी० एल० डी० डो० ने निम्न प्रयोग किया है।

अमेरिकन सिपाहियों के साधारण दैनिक भोजन में ७५ औंस ठोस भोजन रहता है। इस ७५ औंस में २२ औंस कसाइयों के यहां का मांस होता है। इन सिपाहियों तथा व्यायाम करने वालों का भी भोजन का परिमाण एक प्रकार से सारे का सारा मांस तथा ठोस वस्तुओं का कुछ अंश भी निकाल कर केवल ५१ औंस कर दिया गया। नौ मास तक उन्हें इस भोजन पर रखा गया। यद्यपि इस भोजन में परिवर्तन करने से पहले उनके शरीर का पूर्ण विकास हो चुका था और देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि अब इससे अधिक शक्ति इन में नहीं आयेगी परन्तु पुनरपि नवें मास के अन्त में उनमें पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति आगई और उनका स्वास्थ्य भी पहले से कहीं अच्छा होगया। यन्त्र के द्वारा ठीक ठीक नापने से पता चला कि उनकी शक्ति में लगभग ५०% वृद्धि हुई तथा वह सरलता से अधिक ठोस काम करने लगे। उनमें अधिक प्रसन्नता आगई तथा उनके स्वास्थ्य में उन्नति हुई और जब उनको इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
बात की स्वतन्त्रता दे दी गई कि वे चाहे तो अपना पिछला भोजन प्रारम्भ कर सकते हैं तो उनमें से किसी ने भी पहला मांसवाला भोजन करना स्वीकार न किया। यदि उपरोक्त प्रोफेसर साहब कम किए हुए भोजन के स्थान में दूध २५ औंस बढ़ा देते तो परिणाम बहुत ही बढ़िया होता।

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन शाक-सब्जी दूध-घी और अन्नादि ही है। मांस नहीं। क्योंकि मनुष्य के शरीर की बनावट ही ऐसी है। मांस जिन पशु पक्षियों का भोजन है उन्हें परमात्मा ने नुकीले दांत तथा पंजे, ऐसे दिए हैं जो शीघ्रता से मांस में घुस सकें, साथ ही मांसभक्षी पशु जीभ से चपर चपर करके पानी पीता है। उसे भागते हुए पसीना भी नहीं आता। उत्पत्ति के समय उसके बच्चे की आँखे बन्द होती हैं। बिना सिखाये वह अपने भक्ष्य पशु पर आक्रमण कर देता है। बिल्ली का बच्चा फल को उठाकर भले ही मुंह में देले, आक्रमण करने का साहस रखता है। मनुष्य का बच्चा नहीं।

मनुष्य की भोजननलिका बहुत लम्बी होती है, जिसमें मांस जैसा गिरिष्ट पदार्थ बड़ी कठिनता से पचता है। पचाने के लिए शराब पीनी पड़ती है। कहा जाता है कि जो मांस खाता है वह शराब अवश्य पीता है।

मांसभोंजी पशु की भोजननलिका छोटी होती है। उस में मांस शीघ्र पच जाता है।

मनुष्य के उदर में कौन पदार्थ कितने समय में पचता है उसकी तालिका निम्न है।

नाम	अवस्था	पचने का समय
१ चावल	उबला हुआ	१ घण्टा
२ सेव	पका हुआ	१॥ "

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३ जौ	,, ,,	२ ,,
४ आलू	भुना हुआ	२। ,,
५ रोटी		३। ,,
६ दूध	गर्म	२ ,,
७ बकरे का मांस		३ ,,
८ शोरबा		३। ,,
९ मुर्गी का मांस		४ ,,
१० मछली		४। ,,
११ सुअर का मांस		५ ,,
१२ गाय का मांस		५॥ ,,

गेहूं चावल आदि अन्न. फल, दूध, घी. आदि पदार्थों पर ही मनुष्य का जीवन है, इन्हें यह बिना पकाये भी उपयोग में ला सकता है। विज्ञान यह बतलाता है कि पकाने या ऊपर से नमक मिर्च आदि डालने से पदार्थ की शक्ति कम होती है, इसलिए प्राकृतिकता इसी में है कि जिस रूप में पदार्थ हो उसी रूप में प्रयोग में लाया जाये। परन्तु मांस बिना पकाये मनुष्य प्रयोग में नहीं ला सकता। इसलिये सिंह, भेड़िया, कुत्ते और बिल्ली को मांसभक्षी कहा जा सकता है जो अपने आप मारकर ताजा मांस खाते हैं, मनुष्य को नहीं।

शक्ति की दृष्टि से मांस की स्थिति निम्नतालिका से ज्ञात हो जायेगी—

पदार्थ	प्रोटीन	चरबी	कार्बोज	खनिज	जल
गेहूं	११.४७	२.०४	७०.९०	३.१४	११.८३
गेहूं का आटा	१०.७	१.१	७५.४	०.५	+
गेहूं का मैदा	७.९	१.४	७६.४	०.५	+
गेहूं का चोकर	१६.४	३.५	४३.६	६	१२.५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मसूर की दाल	२५.४७	३.०	५५.७३	+	+
मूंग	२३.६२	२.६९	५३.४५	+	+
उर्द	२२.३३	१९.५	५५.०६	+	+
अरहर	२१.७०	२.५	४५.०६	+	+
बादाम	२४.००	५४.००	१०.०	३०	६.०
मूंगफली	२७.५	४४.५	१५.७	२.५	७ ५
गाय का दूध	३.५	४.००	३.५	०७.५	८७.२५
भैंस का दूध	६.११	७.४५	४.१७	०.८७	८१.४०
बकरे का मांस	१८.००	५.४	+	१.०	७६.७
गाय बैल का मांस	२०.००	१.५	०.६	१.२	७६.७
मुर्गे का मांस	२२.७	४ १.	१.३	१.१	७४.४
अंडे की जरदी	१६.१२	३१.३९	+	१.०१	५१.३

आजकल यह युक्ति दी जाती है कि जहाँ पर माँस के अतिरिक्त कुछ प्राप्त ही न हो सके वहां फिर क्या किया जाये ? रूस का टण्ड्रा प्रान्त है वहां कुछ उत्पन्न ही नहीं होता। हरिण को मारकर उसके मांस से ही निर्वाह वहां के लोग करते हैं। परन्तु परमात्मा ने जहां मनुष्य को उत्पन्न किया है वहां उसके खाने के लिए खाद्य पहले उत्पन्न कर दिया है। टण्ड्रा में भी हरिण जब नदी तालाबों पर जमी हुई काई से अपना निर्वाह कर सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं कर सकता ?

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० गुरुदत्त एम० ए० एक बार रोगी हो गए, डाक्टरों ने परामर्श दिया कि यदि गुरुदत्त जी मांस खा लें तो बच सकते हैं। पं० गुरुदत्त जी ने उत्तर दिया कि यदि मैं मांस खाने पर अमर हो जाऊं, पुनः मरना ही न पड़े तो विचार कर सकता हूं। डाक्टर चुप हो गये।

अंग्रेजी भाषा के ख्यातनामा साहित्यकार बर्नाडाशाह ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मांस का परित्याग कर दिया था। वह माँसों वाले सहभोजों में संमिलित नहीं होते थे। डाक्टरों ने उनसे कहा कि माँस न खाओगे तो मर जाओगे। उन्होंने कहा मुझे परीक्षण कर लेने दो यदि मैं न मरा तो तुम निरामिषभोजी बन जाओगे। वर्नाडाशाह लगभग १०० वर्ष की आयु के होकर मरे और मरते समय तक स्वस्थ बने रहे। उन्होंने एक बार कहा था मेरी स्थिति बड़ी गम्भीर है, मुझ से कहा जाता है कि गोमांस खाओ तुम जीवित रहोगे। मैंने अपनी वसीयत लिख दी है कि मेरे मरने पर अर्थी के साथ विलाप करती हुई गाड़ियों की आवश्यकता नहीं। मेरे साथ बैल, भेड़ें, गायें, मुर्गे और मछलियां रहेंगी, क्योंकि मैंने अपने साथी प्राणियों को खाने की अपेक्षा मरना अच्छा समझा है। हजरत नूह की किश्ती को छोड़कर यह दृश्य सबसे अधिक उत्तम और महत्त्वपूर्ण होगा।

माँस मनुष्य को रोगी करनेवाला अभक्ष्य पदार्थ है। मनुष्य को इससे सदा दूर रहना चाहिए।

अण्डा

अण्डा भी माँस में ही सम्मिलित है किन्तु कुछ लोग अण्डे को मांस से पृथक् मानने लग गये हैं और कहते हैं कि अण्डे में जीव नहीं होता अतः इसको खाने तथा भक्ष्यपदार्थ मानने में कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यदि थूक-खकार मल-मूत्रादि के खाने से उत्पन्न होनेवाला अण्डा भी भक्ष्य पदार्थ है तो फिर संसार में अभक्ष्य पदार्थ ही क्या रह गया ?

"अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च" (मनु०) के अनुसार हमारे शास्त्रकारों ने गन्दगी से उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थों को अभक्ष्य ठहराया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अण्डे में जीव न मानना भी बुद्धिसंगत नहीं। जब मुर्गी अण्डज है। अण्डे से बच्चा उत्पन्न होता है तो उसमें जीव क्यों नहीं? अण्डा खानेवाले स्वार्थियों ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए मिथ्या युक्तियां देनी प्रारम्भ कर दी हैं। यदि दुर्जनतोष न्याय से अण्डे में जीव न भी माना जाये तो क्या सभी निर्जीव पदार्थ भक्ष्य हैं। यों तो मल-मूत्र भी इसी श्रेणी में आजायेगा। जीव का होना या न होना भक्ष्य पदार्थ का लक्षण नहीं।

हमारे शास्त्रों में माँसभक्षण का सर्वथा निषेध है। महर्षि मनु लिखते हैं—"वर्जयेन्मधुमांसञ्च" मद्य और मांस सर्वथा छोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार राजर्षि चाणक्य ने "मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् (चाणक्य राजसूत्र ५६२)" सभी मनुष्यों के लिए मांस-भक्षण अनुचित बतलाया है। भोज्य-पदार्थों का वेद भगवान् ने कितना स्पष्ट निर्देश किया है:—

"अजीजन ओषधीर्भोजनाय" (ऋ० ५। ८३। १०) अर्थात् भोजन के लिए जौ, गेहूं, चावल आदि औषधियां (औषधयः फल-पाकान्ताः मनु०) उत्पन्न की हैं। अतः उन्हीं का सेवन करना चाहिये।

अण्डा खाने के पक्ष में एक यह भी युक्ति दी जाती है कि इसमें प्रोटीन है। प्रोटीन की अधिक आवश्यकता केवल वृद्धि-अवस्था में ही होती है अर्थात् तीस चालीस वर्ष तक। साथ ही वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि मांस की प्रोटीन मनुष्य के शरीर के लिए उपयुक्त नहीं दूध, दही, छाछ, गेहूं, चना, मटर और दालों में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन होती है और यही शरीर के लिए उपयुक्त है।

विटामिन (जीवनीय तत्त्व) की दृष्टि से भी अण्डे को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। गोदूध में ए० बी० डी० जी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विटामिन विद्यमान हैं। अंगूर, गेहू, चना, लोभिया, हरे मटर आदि में ए० बी० सी० डी० विटामिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस प्रकार निरामिष भोजन से ही मानव को सभी जीवनीय तथा पोषकतत्त्व और खनिज पदार्थों की यथोचित प्राप्ति हो जाती है, फिर मांस मछली और अण्डे आदि अभक्ष्य पदार्थों को खाकर अपने तन-मन तथा आत्मा को दूषित करना महामूर्खता और पाप है।

अधिक दुःख की बात तो यह है कि अहिंसा का ढोल पीटने-वाली सरकार भी माँस मछली अण्डे आदि का प्रचार कर रही है। मत्स्य उत्पादन बढ़ाओ, मुर्गियां पालो, जिससे अण्डे अधिक मिल सकेंगे इत्यादि प्रचार सरकार की ओर से किया जा रहा है। लाखों रुपया इस कार्य में नष्ट किया जा रहा है। मत्स्यपालन योजना बनाई जा रही है। मुर्गी विकास केन्द्रों की स्थापना और मुर्गी-प्रदर्शनियों का उद्घाटन हो रहा है। अभी ८ जनवरी को बम्बई में मुर्गी-प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय कृषिमन्त्री श्री पंजाबराव देशमुख ने बतलाया कि—

"आगामी द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ७० लाख रु० की लागत से विभिन्न क्षेत्रों में १४० मुर्गी विकास केन्द्र स्थापित किए जायेंगे। सरकार ने सम्प्रति १५ केन्द्रों के खोलने की स्वीकृत प्रदान की है।"

राज्याधिकारियों अथवा जनता के प्रतिनिधियों को चाहिए कि वे इस जघन्यप्रवृत्ति को रोकें। राष्ट्रहित के लिए राज्य को चाहिए कि वह प्रचार के स्थान में इस पर प्रतिबन्ध लगावे। आशा है अधिकारी महानुभाव इस ओर ध्यान देंगे और खाद्य समस्या को सुलझाने के लिए प्राचीन साधन का उपयोग करेंगे जिसका उपनिषद् में निर्देश है —

"अन्नं बहु कुर्वीत"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मद्यपान

अङ्गरेजी सभ्यता ने भारत को मांस भक्षण के साथ ही दूसरी भयङ्कर वस्तु प्रदान की है वह मद्य (शराब) है। इससे मनुष्य का शरीर, मस्तिष्क और आत्मा तीनों ही बिगड़ जाते हैं। गत महायुद्ध में जहां एक करोड़ प्राणी युद्ध के द्वारा नष्ट हुए और डेढ़ करोड़ महामारी के द्वारा मरे वहां दो करोड़ प्राणी शराब के द्वारा नष्ट हुए।

प्राचीन भारत में शराब पीने की प्रथा नहीं थी। सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत पर्यन्त दश बीस, सौ, पचास नहीं, लाखों शताब्दियों तक धार्मिक मानवसमाज का खान पान अच्छा रहा। सब सात्त्विक आहार और पान करते थे। परन्तु महाभारत के उपरान्त वैदिक शिक्षा के अभाव में शराब आदि की प्रथा चली महात्मा बुद्ध ने शराब के विरोध में लोकमत को उभारा, उन्होंने कहा—

वेश्या और सुरापान दोनों ही त्याज्य हैं। वेश्या धन का और सुरा परिवार का हरण करके मनुष्य को ऐसा बना देती है कि उसका मूल्य शून्य जितना भी नहीं रह जाता। मनुष्य समाज के कल्याण के लिए नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से इस अभिशाप का अन्त होना ही चाहिए। उन्होंने मनुष्यों को सम्बोधन करते हुए कहा कि मनुष्यो! तुम सिंह के सम्मुख जाते हुए भयभीत न होना यह पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के नीचे शिर झुकाने से भयभीत न होना, यह बलिदान की कसौटी है। तुम पर्वत शिखर से तालाब में कूद पड़ने से भयभीत न होना, यह तप साधना है। तुम दहकती हुई अग्नि-ज्वालाओं से विचलित न होना, यह स्वर्ण परीक्षा है। परन्तु सुरा देवी से सदैव भयभीत रहना, क्योंकि यह पाप और अनाचारों की जननी है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने राजाओं को चेतावनी दी कि जिस राजा के राज्य में सुरा देवी आदर पावेगी, वह राज्य काल वेदि परं नष्ट होगा, वहां न औषधि उपजेगी, न अनाज होगा, न वृद्धि होगी, यह महा-हिंसा है।

कौटिल्य ने अपने समय में मद्य को बन्द करा दिया था और मद्य की दुकानों पर ऋतुओं के अनुकूल भोजन रखवा दिये थे। भोजन पात्रों को सुगन्धित फूलों से ढकवा दिया था। जो व्यक्ति उस भोजन को करता था वह मद्य को छोड़ देता था। उस समय सुरापान बन्द हो गया था। यह निषेध सैकड़ों वर्षों तक रहा। ६२९ ई० में चीनी यात्री हुआनस्यांग भारत आया और १६ वर्ष तक भारत में रहा, उस समय मद्यपान भारत में न था, यहां तक कि औरंगजेब के समय में भी सुरापान न था। प्रसिद्ध फ्रान्सीसी डाक्टर बर्नियर ने, जो औरङ्गजेब के समय भारत में आया था और पर्याप्त समय तक भारत में ठहरा था, उसने लिखा है कि देल्ली में शराब की एक भी दूकान न थी।

अङ्गरेज भारत में आये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी शराब पीते थे। कम्पनी ने मद्यपान को प्रोत्साहन दिया, दिन प्रतिदिन प्रचार शराब का बढ़ने लगा। ताड़ी के वृक्षों पर टेक्स लगा दिया गया। शराब बनाने और बेचने के लिए ठेके दिए जाने लगे जिससे ठेकेदार शराब का प्रचार करें। कम्पनी के इस प्रोत्साहन का भारी प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को देखते हुए एकबार स्व० केशवचन्द्र सेन ने कहा था कि १० शिक्षित बङ्गालियों में से ९ छिपकर शराब पीते हैं। सन् १८८८ ई० में लन्दन के हाउस आफ कामन्स में शराब पर बहस हुई, तो मिस्टर केनी ने भारतवासियों का पक्ष लेते हुए अङ्गरेज सरकार की नीति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की तीव्र आलोचना की थी। उन्होंने शराब सम्बन्धी सरकार की दूषित नीति के सम्बन्ध में कहा था कि यदि सरकार अपनी आय को प्रति दशवें वर्ष दुगुणी करने की वर्त्तमान नीति को स्थिर रखेगी तो भारत ३० वर्ष में पृथ्वी तल पर एक पक्का शराबी देश हो जायेगा।

शराब से पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है। नीचे से शरीर पीला पड़ने लगता है परन्तु देखने में चेहरा लाल दिखाई देता है। सनक और दीवानापन (पागलपन) को लाती है। श्वास और दमे की बीमारी को उत्पन्न करती है। कलेजे गुर्दे तथा आमाशय और रक्तस्नायुओं को भीतर ही भीतर सुखा देनेवाली है। अस्वाभाविक रीति से रोगजन्तुओं को शरीर के भीतर प्रविष्ट कर देती है। जिससे शरीर के अवयव और ज्ञानतन्तु बिगड़ जाते हैं, निमोनियां श्वास, तपेदिक, शोष आदि संघातक रोग उत्पन्न होने लगते हैं और पीढ़ियों तक चलते रहते हैं। आक्सीजन के प्रचार को रोककर चर्बी को बढ़ाती है। नसों और पुट्ठों की छोटी सेलों को नष्ट करके उनका बढ़ना रोक देती है।

योरोपवाले भी शराब के दुष्परिणामों का अनुभव करने लगे हैं। वहां के हस्पतालों में शराब का औषधि के रूप में अधिकता से प्रयोग होता था। चीर फाड़ के उपरान्त प्रायः हस्पतालों में बराण्डी हृदय की उत्तेजना के लिए प्रयोग में लाई जाती थी, परन्तु अब इसका प्रयोग बन्द कर दिया है।

आस्ट्रेलिया में सन् १८९१ में एक सहस्र पौण्ड से अधिक की शराब एक हस्पताल में प्रयोग में लाई गयी थी। उसी हस्पताल में सन् १९१४ ई० में ४ पौण्ड मूल्य की शराब प्रयोग में लाई गई।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक तथा मेडीसन रिसर्च शन एसोसियेशन के प्रधान श्री डा० हार्वी बेली ने शराब के विषय में अन्वेषण किया है। उन्होंने एक मत से स्वीकार किया है कि शराब कोई पौष्टिक पदार्थ नहीं है। यह एक निरा विषैला पदार्थ है। इसलिए ह्विस्की और ब्राण्डी दोनों ही औषधि को श्रेणी से अलग कर दी गयी है।

प्रसिद्ध डाक्टर लेथेवे की परिभाषा में "जो खाद्य पदार्थ जीवित शरीर की नशों की चेतन शक्ति को नष्ट करता है अथवा जीवन का ह्रास करता है" वह विष है।

पर्याप्त समय हो गया ब्रिटेन और भारत के डाक्टरों ने मिलकर निम्न विज्ञप्ति निकाली थी।

१—वैज्ञानिक दृष्टि से यह निश्चय होगया है कि शराब कोकिन अफीम और अन्य-मादक द्रव्य विष हैं।

२—भारत जैसे गर्म देश में इनका थोड़ा भी प्रयोग स्थायी रूप में हानिकारक है।

३—बहुत दशाओं में शराब सन्तान के लिये हानिकारक है।

४—प्लेग मलेरिया और क्षय को रोकने में शराब व्यर्थ है।

५—यही बात अन्य नशों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

"यथा राजा तथा प्रजा" के सिद्धान्त के अनुसार राजा पर अपने तथा प्रजा के सब प्रकार के रक्षण का उत्तरदायित्व होता है। अलाउद्दीन खिलजी ने जब अपनी अवनति और गिरावट का कारण शराब ही को अनुभव किया तो उसने सब के सामने अपनी शराब से भरी हुई सुराही को भूमि पर फेंक दिया और महल के समस्त मूल्यवान् प्याले तथा सुराहियों को सबके सामने लुढ़का दिया और शराब बन्दी का नियम लागू कर दिया। पीनेवाले को कड़ा दण्ड दिलवाया। यहां तक कि भूमि में गढ़े खुदवाकर शराब न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोड़ने वालों को गडवा दिया। परिणाम सामने है, मद्यपान मिट गया था। आज भी हमारी सरकार के कर्मचारी और जनता के प्रतिनिधि धारासभाओं तथा लोक सभा के सदस्य यह समझें कि शराब बड़ी बुरी वस्तु है, देश के उत्थान में शराब बाधक है तो तत्काल शराब बन्द हो सकती है। कतिपय प्रान्तों ने विचार किया है, वे बधाई के पात्र हैं। शराब संसार के गुरुराज भारत के माथे पर कलंक, राम कृष्ण दयानन्द और गांधी के नाम को धब्बा लगानेवाली है। इसका जितना भी शीघ्र बहिष्कार हो श्रेयस्कर होगा*।

तम्बाकू

तम्बाकू के पौधे का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। कहा जाता है कि तम्बाकू पीने की प्रथा पहले चीन में थी परन्तु अनुसन्धान करने पर प्रतीत हुआ कि चीन में पहले यह प्रथा नहीं थी इसलिए भारत ही क्या ? समस्त एशिया में तम्बाकू का किसी को ज्ञान न था।

तम्बाकू की खेती सर्वप्रथम अमेरिका में प्रारम्भ हुई। सन् १६०७ ई० में जेम्सटाऊन विरगिनिया कोलोनी में तम्बाकू बोया गया। आठ वर्ष तक इसका विस्तार किया गया और १३ वर्ष के उपरान्त सन् १६२० ई० में तम्बाकू व्यापार की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु बन गयी। उस समय यह अद्भुत सी वस्तु प्रतीत होती थी। व्यापारिक दृष्टि से इसका भारी प्रचार किया गया। समाचार पत्रों में इसका विज्ञापन किया गया। नवीन समाचार पत्र इसके प्रचार के लिए निकाले गये। विक्रय साहित्य बटवाया गया। परिणाम

---

*अधिक ज्ञान के लिये हमारी "पापों की जड़ अर्थात् शराब" पुस्तक पढ़ें, जो पृथक् प्रकाशित की हुई है। मूल्य २५ पैसे।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
सामने है, तम्बाकू संसार में सर्वत्र फैल गया।

तम्बाकू का सबसे बड़ा प्रचारक जार्ज वाशिंगटन हिल था। इसने करोड़ों रुपये तम्बाकू के विज्ञापन पर स्वाहा कर दिये। सुप्रसिद्ध लेखक माइक गोल्ड ने जार्ज वाशिंगटन हिल के विषय में "इस विलक्षण बुद्धि वाले सिग्रेट के पक्षपाती ने अपने देश के लिए एक लाख झूठ बोले" नाम के लेख में लिखा है कि जार्ज वाशिंगटन हिल एक मदोन्मत्त अद्भुत लड़का था।

सन् १८१७ ई० में उसने अमेरिका को विश्वास दिलाया और कहा कि देश का स्वास्थ्य, धन और प्रसन्नता केवल सिग्रेट व्यवहार और उसी के व्यापार पर निर्भर है और वह चालाक लड़का अपने इस युक्तिपूर्वक कार्य में बहुत अधिक सफल हुआ। क्योंकि अमेरिका में ही सिग्रेट की खपत प्रतिवर्ष तीन अरब रुपये से बढ़कर तीन सौ अरब तक बढ़ गयी।

इसी प्रकार जार्ज वाशिंगटन हिल ने स्त्रियों में भी तम्बाकू का भारी प्रचार किया। अविवाहित लड़कियों या उन विवाहित लड़कियों के लिये जो अपने पतियों से पृथक् रहना चाहती थीं, उन सब में हिल ने यह नारा लगाया कि प्रियतम पति के बिना किसी भी छाप की सिग्रेट को पीने से आनन्द का अधिक भास होगा तथा स्वास्थ्य और सौन्दर्य भी बना रहेगा। पहले स्त्रियां तम्बाकू के व्यसन से दूर रहती थीं, परन्तु हिल की चाल सफल हुई। स्त्रियां भी तम्बाकू का प्रयोग करने लगीं। परिणाम यह हुआ कि स्त्रियां भी विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त रहने लगीं।

वैफेलो विश्वविद्यालय द्वारा दिये गए डाक्टरों के एक सहभोज में जौन्स हो पार्कन्स के श्री डा० विलियम रेन होफ ने बताया कि स्त्रियों में फुफ्फुस के कैंसर या मर्कट के रोग के पीड़ित पर्याप्त रोगियों की वृद्धि हुई है और भविष्य में पर्याप्त दिखाई देती है।
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्योंकि इधर इस स्थान में स्त्रियां भी तम्बाकू का यथेष्ट व्यवहार करने लग गयी हैं।

तम्बाकू महानशीली वस्तु है। मानव के लिए यह महाहलाहल विष है, परन्तु मनुष्य इसकी ओर ध्यान नहीं देता। तम्बाकू में—

१—निकोटाईन	२—प्रसिक एसिड
३—कार्बन मोनोकसाईड	४—पीरोंडाईन
५—एमोनिया	६—कार्बोलिक एसिड
७—सल्फटन हाईडरोजन	८—मथीलीमाईन
९—मार्शसगे	१०—निकोलाईन
११—ल्यूरी डाईन	१२—कोली डाईन
१३—पारेवोडाईन	१४—कोरी डाईन
१५—रूपी डाईन	१६—वीरो डाईन
१७—पाई रोल	१८—फीर्मिक बोलडी हाइड
१९—फरफरोल	

यह १९ विष है। इनमें चार पांच तो महाभयङ्कर विष हैं।

डाक्टर गाथ का कहना है कि निकोटाईन इतना भयानक विष है कि इसकी एक बून्द भी उदर में पहुंच जाये तो तत्क्षण मनुष्य का प्राणान्त हो जाये। प्रयोग करके देखा गया है कि निकोटाईन की आधी बूंद से बिल्ली और एक बूंद से कुत्ता मर गया और आठ बूंदों से एक घोड़ा केवल आठ घंटों में मर गया।

"मेलसेन्स" का कथन है कि सवा तोले तम्बाकू के धुएं में इतना निकोटाईन है कि जिससे मनुष्य का प्राणान्त हो सकता है।

तम्बाकू का धुआँ गले की नसों से होकर मस्तिष्क और जिगर की ओर फैल जाता है। मस्तिष्क में गर्मी को उत्पन्न कर देता है। स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। पढ़ने को मन नहीं चाहता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
पीनेवाले का मस्तिष्क-ज्वर हो जाता है। जब तक धुआं मस्तिष्क में न जाये—आराम नहीं पड़ता। डा० गोर्जस का कथन है कि तम्बाकू अध्ययन का बन्द द्वार है। तम्बाकू पीनेवाले विद्यार्थी और अध्यापकों का ड्राईङ्ग खींचते समय हाथ कांपने लगता है। दृष्टि में भी महान् अन्तर हो जाता है। जिस कमी को ऐनक लगाकर भी पूरा नहीं किया जा सकता। ऐनक चाहे दो लगा दी जायें परन्तु उतना नहीं दीख पाता। रोगों की अभिवृद्धि हो रही है। मृत्यु की संख्या बढ़ रही है। केवल एकवर्ष की अवस्था में ही २५ प्रतिशत बालक कराल काल के कवल बन रहे हैं। शेष ७५ बालक भी १०० वर्ष तक की आयु तक पहुँच जाते हैं यह बात भी नहीं है। इनमें से भी केवल ३५ प्रतिशत ही बालक ऐसे हैं जो ३० वर्ष तक की आयु तक पहुंचते हैं। कहीं पर क्षय रोग है, तो किसी को कैंसर हो गया है। कोई अन्धा हो गया है तो कोई एनक लगा रहा है।

विद्यार्थियों का स्वास्थ्य बिगड़ना तो एक कलंक है। विद्यार्थी जीवन तो मस्ती का जीवन है। प्रथम अवस्था में ही रोगों का शिकार होना मृत्यु को निमन्त्रण देना है। यदि हमारे विद्यार्थी सुख सम्पन्नता का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, यदि वह भावी भारत की उज्ज्वलता के प्रतीक बनना चाहते हैं तो तम्बाकू से दूर रहें। इसे हलाहल विष समझें। हलाहल विष ही नहीं उससे भी अधिक घातक, क्योंकि विष तो तत्क्षण प्राण ले लेता है, और यह व्यक्ति को सड़ा सड़ा कर मारता है। स्कूल के ४०० छात्रों की परीक्षा लीगई, जिनमें २०० छात्र सिग्रेट बीड़ी पीनेवाले थे और २०० छात्र तम्बाकू का सेवन नहीं करते थे। परीक्षा में निम्न परिणाम निकला:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रोग	सिग्रेट पीनेवाले	सिग्रेट न पीनेवाले
१. धैर्यहीन	१४	१
२. ऊंचा सुनना	१६	१
३. स्मरणशक्ति का ह्रास	१२	१
४. बुरी आदतें	१३	२
५. ओछे व्यवहार	१३	१
६. शारीरिक निर्बलता	१३	२
७. चरित्र हीनता	१४	०
८. मानसिक दुर्बलता	१५	१
९. गुण्डापन	१६	०
१०. रात्रिगामी	१	१
११. वस्त्रों की मलीनता	१२	५
१२. गन्दे	११	१
१३. कार्यपराङ्मुख	१०	०
१४. निम्नश्रेणीवाले	२८	३
१५. कोई उन्नति नहीं	७८	२
१६. अधिक आयुवाले	१८	२
१७. असत्यवादी	९	०
१८. कामचोर	१७	०
१९. धीरे धीरे बोलने वाले	१८	६

ऊपरलिखित उन्नीस दोषों में सिग्रेट पीनेवाले छात्रों की भारी संख्या है और न पीनेवाले छात्रों की संख्या नगण्य है। यह थोड़ीसी संख्या भी इसलिये समझिये कि इनके माता पिता सिग्रेट पीते होंगे।

ज० रिचर्डसन का कथन है कि जिन के माता-पिता तम्बाकू का सेवन करते हैं उनकी सन्तान अवश्य ही मानसिक और शारीरिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
दुर्बलताओं का शिकार होगी।

एक प्रतिष्ठित चिकित्सक की सम्मति है कि मैंने आज तक एक भी ऐसा तम्बाकूसेवी माता-पिता नहीं देखा जिसकी सन्तान का स्नायु-मण्डल निर्बल न हो, उनका मस्तिष्क भी दुर्बल होता है।

मस्तिष्क में निर्बलता उसमें विभिन्न प्रकार के रोग, अनिद्रा, आँखों के आगे तिरमिरे से दिखाई देना, अन्धापन, हृदय की धड़कन, कार्य में निरुत्साह, आलस्य, मुखदर्द, दांतों का गिरना, अपचन, गठिया का दर्द, गले का रोग, कान में फोड़े आदि रोगों की देन तम्बाकू ही है। यकृत्, मूत्राशय के रोग विभिन्न प्रकार के होते हैं। फ्रांस के सुप्रसिद्ध डाक्टर जी० सेन ने ९ से १५ वर्ष तक की आयु वाले तम्बाकू सिग्रेट बीड़ी आदि का धूम्रपान करनेवाले बालकों का निरीक्षण किया, इन बच्चों का रक्तप्रवाह क्षीण हो चुका था और हृदय का रोग हो चुका था, पाचनशक्ति बिगड़ गई थी और इन्हें अलकोहल (मद्य) पीने की इच्छा होती थी, बारी का ज्वर आने लग गया था, रक्त के लाल परमाणु नष्ट हो गये थे। नासिका से रक्त गिरता था, रात्रि को भरपूर निद्रा नहीं आती थी और मुंह का स्वाद बिगड़ गया था। डाक्टर ने इन बच्चों से तम्बाक छुड़ाया और वे केवल ६ मास के उपरान्त स्वस्थ हो गये।

प्रो० रोफ ने म्युनिआयर्स के कैंसर इन्स्टीच्यूट में हजारों रोगियों की परीक्षा करके बतलाया कि इनमें बहुत ही बड़ी संख्या में फेफड़े गले मुंह और श्वास नाली के कैंसर के रोगी ८० प्रतिशत तम्बाकू का प्रयोग करते थे।

तम्बाकू का प्रभाव सन्तान की उत्पत्ति पर भी पड़ता है। परिणामस्वरूप तम्बाकूसेवी पुरुष के वीर्य के सन्तान उत्पत्ति करनेवाले कीटाणु मरे हुए पाये गये हैं। कितने ही विचारशील पुरुषों का अभिमत है कि तम्बाकू शराब से अधिक हानिकर है।
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् का कथन है कि यदि शैतान की ओर से घोषित किया जाये कि मानव जाति को जो वस्तु सबसे अधिक हानि पहुंचाती है वह कौनसी है, उसे पारितोषिक दिया जायेगा, तो यह अधिक सम्भव है कि तम्बाकू शराब को हरा दे।

जिस पदार्थ को पशु भी न खाये उसका सेवन मनुष्य करे यह लज्जास्पद है। मानव विवेक से काम ले *।

चाय

तम्बाकू के उपरान्त यदि किसी वस्तु का अधिक प्रचार हुआ है तो वह पदार्थ चाय ही है। चाय भारत ही क्या समस्त संसार का उत्तम पेय पदार्थ बना हुआ है। स्टेशनों की दीवारों पर, सार्वजनिक चौराहों पर, हस्पतालों और दुकानों पर, बस मोटर और ट्राम्बों पर, तथा समाचारपत्रों के पृष्ठों पर "चाय भारत का सर्वोत्तम पेय" शीर्षक विज्ञापन लिखा रहता है। किसान, मजदूर, राजा, रंक, दुकानदार, स्त्री पुरुष, बाल, वृद्ध इत्यादि सब को चाय पीने से स्फूर्ति आती है। चाय गर्मी में ठण्डक तथा सर्दी में गर्मी पहुंचाती है। ज्वर को रोकती है। बुढ़ापे को दूर भगाती है, शरीर में नवजीवन का संचार करती है, थकावट को दूर करती है, मस्तिष्क को ताजा करती है इत्यादि अनेक प्रकार की असत्य बातों का प्रचार किया जाता है।

लाखों रुपये प्रचार तथा विज्ञापन पर व्यय किए जाते हैं, विक्रयसाहित्य बांटा जाता है गाँव-गाँव तथा कस्बों और शहरों में ग्रामोफोन पर गाने सुना-सुनाकर चाय का प्रचार करते हैं। चाय बनाना सिखाते हैं। प्रचार समितियां चाय बनाकर बिना मूल्य के

* विशेष ज्ञान के लिए हमारी "हमारा शत्रु अर्थात् तम्बाकू" पुस्तक पढ़ें। मूल्य ३५ पैसे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्याले पिलाती हैं। इसी प्रकार बाजे बजाकर चाय का विज्ञापन किया जाता है। चाय का प्रचार नमूने की चाय बिना मूल्य के देकर चाय पीने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।

चाय का वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता है। कहा जाता है कि चाय की जन्मभूमि चीन है। भारत में भी चाय आसाम, बंगाल, बिहार, मद्रास, पंजाब, उत्तरप्रदेश, मैसूर, त्रावनकोर, कोचीन में उत्पन्न होती है। भारत और लंका संसार में ६० प्रतिशत चाय उत्पन्न करनेवाले देश हैं। भारत में अंग्रेजों ने ही चाय की उत्पत्ति को प्रोत्साहन दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने चाय के सारे बागों को अपने हाथ में ले लिया था। आज भी चाय का धन्धा विदेशी पूंजीपतियों के हाथों में है। भारत प्रतिवर्ष २५ करोड़ रुपये की चाय विदेशों, मुख्यतः ब्रिटेन को भेजता है। लगभग ६० करोड़ की जनसंख्यावाले भारत में चाय की कितनी खपत होती होगी इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लगभग २ सेर चाय सन् १६६४ ई० में इंगलैंड के तत्कालीन सम्राट् चार्ल्स द्वितीय को भेंट की थी। महारानी क्रैथरीन को यह चाय बहुत ही पसन्द आई। परिणाम स्वरूप इंगलैंड में इसका शीघ्र ही प्रचार होगया।

चीन में चाय का प्रचार बहुत पहले से था परन्तु योरोप में इसका प्रचार सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में हुआ। तदुपरान्त इसका प्रचार बढ़ता ही जाता है। विज्ञापन के युग में अभी और भी इसका प्रचार बढ़ेगा ही। भारत के ग्रामों में भी चाय दूध के स्थान पर स्वागत समारोह पर दी जाने लगी है। सहभोज और सहपान के स्थान पर "टी पार्टी" नाम लोक-विख्यात हो चला है।

"दुग्धं वै बलम्" "दूध ही बल है" पर विश्वास करनेवाला भारतीय चाय के पीछे दौड़ा जा रहा है। वास्तव में दूध के अभाव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में ही चाय ने सिर उठाया है। नगरनिवासी यह समझते हैं कि हमें तो विशुद्ध दूध प्राप्त होना कठिन है, वह क्रीम निकाला हुआ दूध पानी होता है। उसमें भी ऊपर का पानी मिला होगा, वह भी पर्याप्त महंगा पड़ता है। एक चाय का कप तीस पैसे में आता है उतने दूध के लिए एक रुपया व्यय करना पड़ता है और वह भी विशुद्ध नहीं होता। चाय से थोड़े समय के लिए मस्तिष्क में चेतनता तो आती है, इसलिए चाय पीने लगे हैं। ग्रमीण भी नगरवालों का अनुकरण करने लगे हैं। विवाह आदि समारोहों पर दूध के लिए क्यों पैसे व्यय किये जायें, थोड़ी चाय से ही काम चलाते हैं परन्तु वह यह नहीं समझते कि चाय पीकर हम अपने स्वास्थ्य से खिलवाड कर रहे हैं।

चाय एक प्रकार से वृक्षों की सूखी हुई पत्तियां होती हैं। यह पत्तियां झाड़ी पर लगती हैं। चाय उष्ण कटिबन्ध की पैदावार है। इसकी पैदावार के लिये ढालू भूमि तथा अधिक गर्मी तथा अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। भारत के पहाड़ी प्रदेश जहां पर वर्षा अधिक होती है, भूमि ढालू है, चाय बहुत अधिक उत्पन्न होती है। इसकी झाड़ियां पांच सात फीट ऊंची होती हैं। एक बार लगाने पर चार पांच वर्ष में चाय की पत्तियां आने लगती हैं और पच्चीस तीस वर्ष तक लगातार चाय की पत्तियां आती रहती हैं। पत्तियां तोड़कर छाया में सुखाने तथा कड़ाही में भूनने के लिये मजदूरों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। जहां पर मजदूर न हों चाय की पैदावार अधिक नहीं की जा सकती।

चाय की पत्तियां विभिन्न प्रकार की होती हैं। लुशाई और कच्छार की पत्तियां एक फीट लम्बी होती हैं। आसाम की चाय की पत्तियां ६ इंच तक लम्बी होती हैं। चाय मादक द्रव्य है, इसके पीने से हल्का नशा होता है। तीन विष होते हैं—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थीन, टेनिन, वोलेटाइन तेल इनमें से थीन एक तीव्र क्षार है। ज्ञानतन्तुओं के संगठन पर इसका बहुत ही उत्तेजक और विषैला प्रभाव पड़ता है। चाय के पीने से जो एक हल्कासा आनन्द प्रतीत होता है वह इसी क्षार का प्रभाव है।

टेनिन एक तीव्र कब्ज (अजीर्ण) करनेवाला पदार्थ है जिससे पाचन शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाती है उदर में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। नसों का सूज जाना। रक्त का इकट्ठा हो जाना आदि। पुनः आपरेशन की आवश्यकता पड़ने लगती है।

वोलेटाइन तेल में निद्रा को नष्ट कर देने की शक्ति है जिसके कारण से नेत्रों के अनेकों रोग हो जाते हैं। दूध घी के प्रयोग के समय में भारत में ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने १०० वर्ष से अधिक आयु का उपभोग किया है, और आंखों की ज्योति ठीक अवस्था में रही है। कभी आंखे दुखी भी नहीं हैं, परन्तु चाय के समय पांच पांच छः छः वर्ष की अवस्थावाले बालकों की आंखों पर चश्मे [उपनेत्र] फिट करने पड़ते हैं। यह सब चाय महारानो की कृपा कही जा सकती है।

कहा जाता है कि बुढ़ापे में चाय स्फूर्ति को लाती है। परन्तु यह केवल भ्रांति है। यह विक्रेताओं का झूठा प्रचार है। वृद्धावस्था में चाय पीनेवालों को निद्रानाश, कम्पन, मस्तिष्क की गड़बड़ और हृदय की धड़कन आदि रोग हो जाते हैं।

कहा जाता है कि चाय में गर्म पानी तो पेट में जाता है जो लाभकर होता है। परन्तु पानो के साथ विष भी तो जाता है जो नशा करता है और विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। इस विषमय नशे को उत्पन्न करनेवाले पेय पदार्थों में ही मानव की आयु का ह्रास हो रहा है।

चाय भी ऐसा ही पदार्थ है जिसकी आदत पड़ जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आज घर-घर में चाय के पात्र मिलेंगे, लाखों रुपये कप प्लेटों पर व्यय हो रहा है। आदत ऐसी पड़ती है कि दो आने प्रतिदिन कमाने वाला मजदूर भी जब तक एक प्याला चाय का नहीं पी लेता शान्ति नहीं होती।

बुद्धि और स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाले पदार्थों का प्रयोग एकदम बन्द कर देना चाहिये। झूठे विज्ञापनों के प्रचार की ओर सरकार का ध्यान भी जाना चाहिये, वास्तविकता के विपरीत विज्ञापन नहीं होना चाहिये।

चाय के साथ-साथ कोको, कहवा, काफी का भी प्रचार है। यह चाय से अधिक नशा करते हैं और चाय की तरह व्यवहार में लाये जाते हैं।

कोको में एक क्षार थियोक्रोमाइन होता है यह हृदय को धड़कन और मस्तिष्क की शक्ति पर बुरा प्रभाव डालता है।

कहवे में काफिन नामक एक विष और अधिक होता है जो ७५% होता है, यह कड़वा विष है। यह हृदय गति को सुस्त कर देता है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में "यह पदार्थ राष्ट्र को डुबाने के लिये काफी उद्योग कर रहा है। इसने सहस्रों स्त्री पुरुषों की क्षुधा उड़ादी है। यह गरीबों का फालतू खर्च है।"

अफीम, गांझा, सुलफा आदि

अफीम भी एक मादक द्रव्य है। भारत में यह पर्याप्त रूप में उत्पन्न होती थी, भारत लगभग सात आठ करोड़ रुपये की अफीम चीन को भेजता था, किन्तु चीन से समझौता हो जाने के कारण अफीम भेजना बन्द हो गया है, इसलिये अफीम की उत्पत्ति को प्रोत्साहन नहीं रहा है, पुनरपि उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मध्यभारत के मालवा प्रदेश के राज्यों में थोड़ी सी उत्पन्न होती है।

अफीम के सेवन से अजीर्णता बढ़ती है, पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है, श्वास रोगों, दमा आदि को उत्पन्न करती है। बुद्धि को मन्द करती है, मस्तिष्क की, शक्ति को नष्ट करती है और चिड़चिड़ेपन को उत्पन्न करती है। शरीर को सुखाती है।

तम्बाकू का सेवन बुरा है, परन्तु मनुष्य उसे छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है, परन्तु अफीमची का अफीम छोड़ना बड़ा कठिन है। साधारण और सरल काम नहीं है। अफीम खाने की आदत पड़ जाने पर बुरी दशा हो जाती है। जब तक अफीम न मिल जाये तब तक संसार में कुछ नहीं सुहाता। अफीमची के स्नायुमण्डल सदा के लिए निर्जीव हो जाते हैं। अफीम मस्तिष्क को मन्द करके ज्ञान-तन्तुओं को मूर्च्छित कर देती है। जब मस्तिष्क चेतनाहीन हो जाता है, तब श्रवणशक्ति स्वरेन्द्रिय और दृष्टि पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति ३ माशा अफीम प्रतिदिन खाता हो और उसे ३ माशा के स्थान पर २ माशा अफीम दे दी जाये तो वह और एक माशा या एक माशा से अधिक लेने के लिये छटपटायेगा। यदि चार माशा अफीम दे दी जाये तो बड़े चाव से खा जायेगा। हां यदि बिलकुल ही बन्द कर दी जाये, एक माशा भी न दी जाये तो हताश होगा और बेचैन हो जायेगा।

कहा जाता है कि अफीम बच्चों को शक्ति प्रदान करती है, युवकों को नष्ट करती है और बुड्ढ़ों को सहारा देती है परन्तु यह सब बातें बुद्धि से परे की हैं। अधिकतर स्त्रियां जो खेतों या कारखानों में काम करती हैं वे अपने बच्चों को अफीम देकर सुला देती हैं, अफीम के नशे से बच्चा दो चार घण्टे तक चुपचाप पड़ा रहता है। परन्तु परिणाम बड़ा घातक होता है। अधिकतर बच्चों के जिगर खराब हो जाते हैं, बच्चे सूख जाते हैं और वह

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विभिन्न रोगों के कारण अकाल में ही कराल काल कवल बन जाते हैं। उपरोक्त बड़ी भयानक बुरी प्रथा है। बुद्धिमती स्त्रियों को इससे दूर रहना चाहिए।

यह ठीक है कि किन्हीं रोगों में अफीम औषध का काम देती है। बढ़ते हुए सांघातिक लक्षणों को रोकती है। विशेषकर दर्द की वेदना को दूर करने में सहायक वस्तु है।

पूर्वीय देशों में अफीम का प्रचार बढ़ने का कारण पश्चिमी देशों के व्यापारी ही हैं। इन्होंने पूर्वीय देशों में अफीम आदि मादक द्रव्यों का व्यवसाय करके इनके महत्त्व को बढ़ा दिया है पुनरपि अफीम की अधिक बढ़ोतरी का कारण अफीमचियों का संघ ही है। अफीमची लोग परस्पर इसका प्रचार करते हैं। अफीम की आदत नहीं छूटती यह बात तो नहीं है, कोई छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है परन्तु अफीम छोड़ने के लिए बड़ी भारी मानसिक शक्ति की आवश्यकता है।

अफीमची किसी बात को निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता, उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। ब्रिटिश सरकार यदि अपनी सेना में किसी को अफीम का सेवन करते देख लेती थी तो उसे तत्काल नौकरी से हटा देती थी, क्योंकि उसकी सेवा संदिग्ध समझी जाती थी।

अफीम के साथ ही साथ गांजा, सुल्फा आदि भी नशा उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं। इन सबसे दूर रहना चाहिए। यह सब मनुष्य के लिए अभक्ष्य और अपेय पदार्थ हैं।

मीठा और मिठाई

ईख की खेती भारत में प्राचीन काल से चली आई है, भारत में गन्ना और गन्ने का रस दैनिक प्रयोग में लिया जाता है। आज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
कल देशी गन्ने के अतिरिक्त कई प्रकार के बीज बना लिए गए हैं, परन्तु इन सब में देशी गन्ना ही अच्छा होता है। अतः देशी गन्ने को चूसने और रस पीने के काम में लिया जा सकता है।

गन्ने से ही गुड़ शक्कर, खाण्ड और चीनी तैयार की जाती है। गांवों में गुड़ और शक्कर का व्यवहार बहुत अधिक होता है। चीनी की मिलों का देश में प्रचार होने लगा है। शहरों में चीनी अधिकतया प्रयोग में लाई जाती है।

गुड और शक्कर में उष्णता अधिक होने से ब्रह्मचारी और स्वास्थ्य प्रेमियों को इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। देशी गन्ने को चूसने के काम में ब्रह्मचारी ले सकते हैं। खांड और चीनी अपेक्षाकृत गर्म नहीं होती अतः इनका प्रयोग गृहस्थ लोग साधारण रूप में कर सकते हैं। इनसे भी अच्छा मीठा मिश्री का होता है।

चाहे किसी प्रकार का भी मीठा हो बहुत थोड़ी मात्रा में भोजन के रूप में ग्रहण करना चाहिये। मीठे का प्रयोग करने से पेट और दांतों की अनेक प्रकार की बीमारियां पैदा हो जाती हैं। इनका प्रभाव तात्कालिक मालूम नहीं होता परन्तु अधिक आयु में स्पष्ट प्रतीत होता है। ५० वर्ष की आयु से ऊपर गुड़ और शक्कर का प्रयोग साधारण रूप में किया जा सकता है। जिन पदार्थों के खाने से उष्णता उत्पन्न होवे उन पदार्थों का ग्रहण ब्रह्मचारी लोग भूलकर भी न करें।

बाजारों में अनेक प्रकार की मिठाइयां तैयार की जाती हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होती हैं। राह चलते लोग मिठाइयों की सजी हुई दुकानों को देखकर खरीदते और खा लेते हैं परन्तु इसका कुपरिणाम रोगों के रूप में भोगना पड़ता है। गृहस्थ लोग विवाह संस्कार आदि विशेष अवसरों पर घरों में भी मिठाइयां तैयार करवाते और खाते हैं। यद्यपि बाजारू मिठाई से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह मिठाई शुद्ध और अच्छी होती है परन्तु इसका प्रयोग भी अल्प मात्रा में करना चाहिये। खमीर उठाकर जो मिठाई बनाई जाती है उसका खाना तो स्वास्थ्य को नष्ट करना ही समझो।

मिठाइयों का लोभ लवण की भांति व्यापक तो नहीं है परन्तु अवसर होने पर अधिक मात्रा में मिठाई को खा लेने से हानि की कम सम्भावना नहीं होती।

मधु (शहद) का मीठा औषधियों का सार होने से ग्राह्य है, परन्तु यह भी उचित मात्रा में खाना चाहिये और सर्वदा नहीं। ऐसे ही खजूर आदि से भी मीठा बनता है जो कि अन्य मीठों की भांति ही प्रयोग में लेना ठीक होता है।

सार यह है कि ब्रह्मचारियों और स्वास्थ्य के अभिलाषियों को इसके लोभ से बचना चाहिये।

उपसंहार

बुद्धि और विवेक से काम लेना मानव का धर्म है, जो-जो पदार्थ सात्विक लाभकारी और भक्ष्य हैं उनका ही सेवन करना चाहिये, शेष सभी हानिकारक पदार्थों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये जिससे शरीर हृष्ट-पुष्ट होकर मानव अपने चरमलक्ष्य मोक्ष या ईश्वर तक पहुँचने में समर्थ हो सके। मानवीय देह की इसी में सफलता है।

मुद्रक : जय्यद प्रेस, दिल्ली
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य के साधन

निद्रा

[दशम भाग]

निद्रा क्या है

सभी प्राणी मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति इत्यादि निद्रा के बिना जीवित नहीं रह सकते। अथवा इस प्रकार कहिये जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज सभी प्रकार के प्राणी शयन करते हैं। कुछ जीव-जन्तु तो अपने जीवन काल का आधे से अधिक समय सोने में ही व्यतीत करते हैं। यहां तक कि सब प्राणियों में श्रेष्ठ कहा जाने वाला मनुष्य भी अपने जीवन का चौथाई अथवा तिहाई काल सोने में ही लगाता है और कोई कोई कुम्भकर्णी प्रकार के निद्रालु मनुष्य तो जीवन का आधा वा इससे भी अधिक समय शयन में ही खाते हैं। इतने पर भी कितना आश्चर्य है कि सोते सभी हैं किन्तु निद्रा यथार्थ में क्या है ? इसे जानने वाले बहुत ही विरले व्यक्ति हैं।

हमारे ऋषियों ने सभी तत्त्वों को यथार्थ रूप से समझा है और समझकर प्राणियों के कल्याणार्थ उपदेश किया है। तत्त्ववेत्ता यथार्थ ज्ञान के साक्षात् करने वाले महर्षि धन्वन्तरि जी ने अपने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत के शारीर स्थान में लिखा है—

हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम्।
तमोभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनम् ॥ ३४॥

हे सुश्रुत ! मनुष्यों की चेतना का स्थान हृदय अर्थात् मस्तिष्क कहा जाता है उस मस्तिष्क के तम से आक्रान्त वा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आच्छादित होने पर मनुष्यों अथवा सभी प्राणियों को निद्रा आ दबाती है। अतः महर्षि जो इसी को स्पष्ट करने के लिए पुनः लिखते हैं—

निद्राहेतुस्तमः सत्त्व बोधने हेतुरुच्यते।
स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते ॥३५॥

निद्रा का मूल कारण तमोगुण है और जागरण में सत्त्वगुण मूल कारण है अथवा स्वभाव को ही निद्रा का श्रेष्ठ कारण माना गया है। अर्थात् सभी प्राणियों को जो निद्रा स्वभाव से आती है, वह श्रेष्ठ कहलाती है। प्रत्येक प्राणी के स्वभाव में तमोगुण रहता ही है। उसके कारण वह निद्रा देवी की गोद में चला जाता है। ऋषियों ने तमोगुण की उत्पत्ति कफ से मानी है। "तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च" (चरक सूत्र अ० २१ श्लोक ५७) में यह लिखा है कि जब जब कफ की वृद्धि होती है तब निद्रा महारानी के डेरे लग जाते हैं। जैसे भोजनोपरान्त कफ की वृद्धि होती है तभी निद्रा भी आ धमकती है। इसी प्रकार कफज्वरादि में भी निद्रा अधिक आती है। यह जीवात्मा जो कभी सोता नहीं, केवल इन्द्रियों के तमोगुण के कारण इसका मनादि ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियों से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है और इन्द्रियों से सम्बन्ध टूटने पर विषयों का ग्रहण भी नहीं करता, तब हम जीवात्मा को जो कभी नहीं सोता उसे सोया हुआ कहते हैं। तमोगुणयुक्त मन से आत्मा "भूतात्मा स्वपतः प्रभुः" सब का स्वामी भूतात्मा सोया हुआ कहलाता है। किन्तु यथार्थ बात यह है कि यही आत्मा है जो सोते हुए भी जागता रहता है।

निद्रा की आवश्यकता

यथार्थ बात यह है कि जब प्राणी कार्य करता-करता इतना श्रान्त हो जाता है कि इसका हृदय, मस्तिष्क और शरीर सभी कार्य

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने में असमर्थ हो जाते हैं उस अवस्था में तमोगुण से व्याकुल हुई ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को पुनः स्वस्थ होने के लिए भगवान् पूर्ण विश्राम अर्थात् निद्रा दान करके अपने प्रिय पुत्रों अर्थात् सभी प्राणियों को अनुगृहीत करता है। महर्षि धन्वन्तरि ने इस प्रकार लिखा है—

करणानां तु वैकल्ये तमसाऽभिप्रवर्धिते।
अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते ॥३७॥

तमोगुण के कारण इन्द्रियों में विकलता बढ़ने से न सोता हुआ भी जीवात्मा सोया हुआ कहा जाता है। चरक संहिता में भी इसी प्रकार से लिखा है—

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

जब मनुष्य के मन में क्लान्ति आ जाती है और कर्मेन्द्रियां थक कर अपने विषयों से निवृत्त हो जाती हैं, तब मनुष्य को निद्रा आ जाती है अर्थात् वह पूर्ण विश्राम करने के लिए अपने स्वभावानुसार सभी कार्यों का परित्याग कर निद्रा माता की गोद में चला जाता है। मनुष्य ही नहीं सभी प्राणियों की यही अवस्था समझें। बृहदारण्यकोपनिषद् में निद्रा वा सुषुप्ति का इस प्रकार वर्णन किया है।

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष हैतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानमादाय य एषोन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते तानि यदा गृह्णात्यथ हैतत्पुरुषः स्वपिति नाम तद् गृहीत एव प्राणी भवति गृहीता वाग्गृहीतं चक्षु-र्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मनः।

तब अजातशत्रु ने कहा जिस अवस्था में यह पुरुष अथवा विज्ञानमय पुरुष सो जाता है, उस अवस्था में वागादि इन्द्रियों के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामर्थ्य को बुद्धिके साथ ही लेकर जो यह हृदयान्तर्वर्त्ती आकाश= ब्रह्म है उसमें सोता है तब इस पुरुष का नाम स्वपिति और अवस्था का नाम सुषुप्ति होता है उस समय घ्राण गन्ध को नहीं ले सकता, न वाणी बोल सकती, न चक्षु देख सकता, न श्रोत्र सुन सकता और न मन सङ्कल्प कर सकता है। भावार्थ यही है कि जीवात्मा मनादि सभी इन्द्रियों—शरीर को पूर्ण विश्राम देने के लिए इन सब से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है और बाह्य जगत् से सर्वथा नाता तोड़ कर प्रभु से नाता जोड़ लेता है। इसी का नाम निद्रा वा सुषुप्ति है। इसका वर्णन और विस्तार से इसी उपनिषद् में किया है।

"अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्य च न वेद हितानाम-नाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिप्रत्य-वसृज्य पुरीतति शेते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीम आनन्दस्य गत्या शयीतमेवैष एतच्छेते। १९।

बृहदारण्यकोषनिषद्।

जब वह पुरुष सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है, तब किसी बाह्य विषय को नहीं जानता किन्तु परमात्मा के साथ मिल जाता है अर्थात् हितानामक बहत्तर हजार नाडिया जो हृदय देश से पुरीतत को प्राप्त हैं उनके द्वारा जाग्रत विषयाकार बुद्धि से इन्द्रियों को हटाकर उसी पुरीतत देश में इस प्रकार शयन करता है जैसे कोई बालक, महाराज अथवा महाब्राह्मण निर्भय होकर सोता है।

पाठक समझ गए होंगे कि निद्रा देवी की गोद में क्या राजा वा रंक, क्या धनी का निर्धन, क्या विद्वान् वा मूर्ख, क्या वृद्ध वा बालक, क्या कुंजर वा कीड़ी सभी एक समान हो जाते हैं। कार्य करते २ जो थकावट वा निर्बलता प्राणियों में जाग्रतावस्थादि में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आ जाती है वह निद्रा वा प्रभु की गोद में आकर पूर्ण हो जाती है। पुनः उसी शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, सामर्थ्य, आदि से अपनी गोद में सुलाकर निद्रा रूपी सूची भरण (इन्जैक्शन) द्वारा परिपूरित कर देता है। कोई भी पाठक यह सन्देह कर सकता है कि यदि हम कुर्सी वा शय्या पर चुपचाप लेट जायें तो इससे भी शरीरादि को विश्राम मिल जाता है, निद्रा की ही क्या विशेषता है। यह उचित है कि किसी सीमा तक तो कुछ विश्राम इस प्रकार लेटने से भी मिल जाता है किन्तु यह पूर्ण विश्राम नहीं कहला सकता क्योंकि इसमें हमारी चक्षु, नासिका, कर्ण तथा हमारा मन सब अपने कार्य में लगे होते हैं। यथार्थ में पूर्ण विश्राम सुषुप्ति से ही मिल सकता है क्योंकि निद्रा में सदैव कार्य करनेवाले शारीरिक अंग तथा इन्द्रियों को भी किसी न किसी मात्रा में सबको विश्राम मिल जाता है। हृदय की गति जो हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है, वह भी निद्रा में जाग्रतावस्था की अपेक्षा मन्द अर्थात् धीमी हो जाती है। इस प्रकार हृदय को भी कुछ विश्राम मिल जाता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार अर्थात् अन्तःकरणचतुष्टय को भी पूर्ण विश्राम सुषुप्ति में ही मिलता है। इसीलिए जहां प्रभु ने दिन कार्य के लिए बनाया, वहां सुषुप्ति के लिए रात्रि को बनाया यदि रात्रि दिन के पश्चात् विश्रामार्थ न आए तो कैसा भयानक दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाये इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

निद्रा की उत्पत्ति के कारण

तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च, मनः शरीरश्रमसम्भवा च।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा॥
(चरक, सूत्र० अ० २१ श्लोक० ५७)

निद्रा तमोगुण तथा कफ से उत्पन्न होती है, मन और शरीर के परिश्रम से निद्रा आती है, तथा विषादि सेवन से, चोटादि बाह्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण से, रोग में भी निद्रा उत्पन्न होती है। और रात्रि में स्वाभाविक निद्रा उत्पन्न होती है, इसी का नाम भूतधात्री है।

निद्रा के भेद

महर्षि धन्वन्तरि इस विषय में निम्न प्रकार उपदेश देते हैं। 'निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति।' निद्रा दो प्रकार की होती है, जो स्वभाव से ही सब प्राणियों को आती है।

(१) वैष्णवी, जिस प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक और सब का पालन-पोषण करता है इसी प्रकार निद्रा सभी प्राणियों को प्राप्त और विष्णु परमात्मा के समान उचित समय पर उचित मात्रा पर ली हुई पालन और पोषण करनेवाली है चरकशास्त्र में इसी के विषय में 'रात्रिस्वभावप्रभवा मता या तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति निद्राम्।' अर्थात् जो रात्रि में स्वभाव से उत्पन्न होती है उसको भूतधात्री कहते हैं। प्राणिमात्र को माता वा धाय के समान दूध पिलाकर पुष्ट करनेवाली अथवा धारण-पोषण करने वाली 'वैष्णवी' निद्रा कही जाती है।

(२) पाप्मा अर्थात् जो पाप है, अधर्म है. हानिकारक है। इसी के विषय में चरक शास्त्र में इस प्रकार कहा है —"तमोभवामाहुरधस्य मूलं शेषः पुनर्व्याधिषु० निर्दिशन्ति" अर्थात् तमोगुण की अधिकता से जो निद्रा होती है अथवा शरीर की व्याधि-रोगों में जो आवश्यकता से अधिक होती है और हानिकारक होती है, यह दिन और रात तम की प्रधानता से प्राणियों को अधिक मात्रा और अनुचित समय पर आनेवाली सर्वथा हानिकारक है, विनाशकारी है, घातक है। अतः इसे पाप्मा कहा है। यह जब अधिक बढ़ जाती है तो इस के विषय में महर्षि धन्वन्तरि कहते हैं —"तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan
निद्रा संभवति अनवबोधिनी, सा प्रलयकाले, तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति" जब संज्ञावह (चेतना देनेवाले) स्रोतों में तम की प्रधानता वाला कफ पहुंच जाता है, तब तामसी निद्रा की उत्पत्ति होती है। इस में प्राणी जागता नहीं। इसी प्रकार की निद्रा प्रलयकाल में होती है। जिसके आने पर पुनः प्राणी न जागे यह अनवबोधिनी निद्रा प्रलयकाल अथवा मृत्युके समय आती है। तामसिक निद्रा वाले रात दिन सोते रहते हैं, जैसे तामसिक सिंह और भैंस। ऐसे ही कुम्भकर्णी निद्रा वाले तमोगुणी मनुष्य नाम के पशु भी शयन करते हैं।

अनिमित्त जब जागने वा सोने का कोई कारण नहीं होता बिना ही कारण के रजोगुण की अधिकता वालों को नींद आती है। जब रजोगुणी प्राणी कार्यलीन रहता है, तब निद्रा नहीं आती, जब खाली होता है तब तुरन्त ही निद्रा आ जाती है। इसी के विषय में सुश्रुत में कहा है "रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं" रजोगुणी प्राणी को अनिमित्त निद्रा आती है। प्रायः रजोगुणी व्यक्तियों को हम सदा ही ऊंघते देखते रहते हैं। सतोगुणी व्यक्तियों अथवा प्राणि को "सत्त्वभूयिष्ठा नामर्धरात्रे" उचित समय अर्थात् आधी रात को निद्रा आती है। क्या ऐसे भी प्राणी हैं जिनको निद्रा नहीं आती ? इस विषय में सुश्रुत में लिखा है "क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलानां मनःशरीराभितापवतां च नैव, सा वैकारिकी भवति ॥३३॥ क्षीण कफवाले, वातप्रधानतावाले, मानसिक और शारीरिक दुःख में पीड़ित व्यक्तियों को निद्रा नहीं भी आती। यह 'कारिको→विकारों से उत्पन्न होने वाली निद्रा कहलाती है। यह विकार वा रोग शारीरिक भी हो सकते हैं तथा मानसिक भी हो सकते हैं, जैसा कि पहले लिख चुका हूँ। इस विषय में महाभारत में भी एक श्लोक इस प्रकार आता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan | Kosha

अभियुक्तं बलवता दुर्बलहीनसाधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥
प्रजागर पर्व १३ श्लो० ३३ अ०

विदुर ने धृतराष्ट्र को कहा—राजन् जिसका बलवान् के साथ विरोध हो गया हो, उस साधनहीन दुर्बल मनुष्य को, जिसका सब कुछ हर लिया है उसको, कामी तथा चोर को रात में नींद नहीं आती। यहां निद्रा के न आने के कारण मानसिक विकार ही बताये हैं। इन्हीं में से एक दो कारणों के कारण धृतराष्ट्र को निद्रा नहीं आती थी। विकारग्रस्त अथवा व्याधि-पीड़ित रोगी के लिये महापुरुषों ने निद्रा को माता के समान कहा है। जिसको निद्रा उचित रूप से आती हो और क्षुधा ठीक लगती हो, उसे वैद्य डाक्टरों की क्या आवश्यकता है अर्थात् वह रोगी नहीं स्वस्थ है। जिसको किसी प्रकार का विकार नहीं है उसे ठीक समय पर अवश्य निद्रा आती है। कहा भी है—

ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः।
निद्रासन्तोषतृप्तस्य स्वकालं नातिवर्तते ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचारी अथवा सदाचारी है, विषय भोग से निःस्पृह है और सन्तोष से तृप्त है उसको समय पर निद्रा नाश के कारण निम्न प्रकार से लिखे हैं।

कायस्य शिरसश्चैव विरेकश्छर्दनं भयम्।
चिन्ता क्रोधस्तथा धूमो व्यायामरक्तमोक्षणम् ॥५५॥

शिर और शरीर का विरेचन (जुलाब), वमन, भय, चिन्ता, क्रोध, धूवां, बहुत अधिक परिश्रम अर्थात् शक्ति से अधिक व्यायाम जिससे सारा शरीर बहुत बुरी प्रकार से श्रान्त हो जाय और रक्त-मोक्षण (खून निकलवाने) से निद्रा नाश होता है। इसी प्रकार—

उपवासोऽसुखा शय्या, सत्वोदार्यतमो जयः।
निद्राप्रसंगमहितं वारयन्ति समुत्थितम् ॥५६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् उपवास, स्नान, सेवा, (बिस्तर वा शयन स्थान) तमोगुण क्षीण हो जाए और उस पर विजय पाकर जिस व्यक्ति में सत्त्वगुण की अधिकता हो जाती है उसकी निद्रा का नाश हो जाता है। अथवा सात्विकवृत्तिप्रधान निद्रा को जीत लेता है जैसे अर्जुन ने भी तपस्या करके निद्रा को जीत लिया था। अतः वह "गुडाकेश" निद्रा का स्वामी (विजेता) कहलाया। इन कारणों से निद्रा दूर भाग जाती है। अतः—

एत एव च विज्ञेया निद्रानाशस्य हेतवः।
कार्यकालो विकारश्च प्रकृतिर्वायुरेव च ॥५७॥

उपरिलिखित कारणों के साथ कार्य में लगे रहना जैसे पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने किया था। वृद्धावस्था, रोगविशेष, स्वभाव तथा वात वा वायु वृद्धि आदि भी निद्रा नाश के कारण माने जाते हैं। अब पाठक भलीभांति निद्रा के हेतु तथा निद्रानाश के कारणों को समझ गए होंगे, इनकी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

निद्रा किस को नहीं आती

कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यकरस्य च।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च।

दरिद्र, पराधीन, परस्त्री और पराये धन में आसक्त अर्थात् जार व्यभिचारी और चोर को क्या कभी सुख की नींद आ सकती है?

सुख की निद्रा

सुखं स्वपित्यनृणवान् व्याधिमुक्तश्च यो नरः।
सावकाशस्तु यो भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न शङ्कितः॥

जिसके ऊपर किसी प्रकार का ऋण नहीं, जो व्याधिमुक्त (रोगरहित) है, जो आवश्यकतानुसार पर्याप्त भोजन करता है और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

जो स्त्री में आसक्त नहीं अर्थात् ब्रह्मचारी है, सब देवियों को माता बहन समझता है, वह सुख की नींद सोता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Vyaan Kosha

निद्राजनक योग

यदि किसी भी कारण किसी व्यक्ति की निद्रा का नाश हो तो वह निम्न शास्त्रीय उपाय करे—

अभ्यंगोत्सादनं स्नानं शाल्यन्नं सदधिक्षीरं स्नेहो—मनः सुखम् ।५२।
मनसोऽनुगुणा गन्धाः शब्दा संवाहनानि च ।
चक्षुषस्तर्पणं लेपः शिरसो वदनस्य च ।।५३।।
स्वास्तीर्णशयनं वेश्मसुखं कालस्तथोचितः ।
आनयन्त्यचिरान्निद्रां प्रनष्टा या निमित्ततः ।।५४।।

शरीर पर तेलादि का मर्दन, उबटन लेप, स्नान शालि चावल दही दूध घृतादि स्नेह, मन को सुख देनेवाले कर्म, मनमोहक सुगन्धित द्रव्य, श्रोत्रप्रिय मधुर शब्द शरीर का मसलना तथा दबाना, नेत्रों का सन्तर्पण और मस्तिष्क पर सुगन्धित लेप, शिर पर जल की धारा डालना, सुखदायक शयनस्थान वा बिष्टर (बिस्तर), घर का सुख, समुचित शयन काल यह सब शीघ्र निद्रा लाने के उपाय हैं। जिन्हें निद्रा न आती हो, उनका यह रोग उपर्युक्त उपायों से नष्ट हो सकता है।

अधिक निद्रा को दूर करने के उपाय

पतले कृशकाय व्यक्ति की अपेक्षा स्थूलकाय अधिक मेद (चर्बी) वाले व्यक्ति को अथवा तमोगुणी व्यक्ति को अधिक निद्रा आती है। वह कार्य करने में असमर्थ हो जाता है तथा अन्य कई कारणों से भी किसी किसी को अधिक निद्रा सताती है। इसे दूर करने के सुश्रुत में यह उपाय लिखे हैं—

निद्रातियोगे वमनं हितं संशोधनानि च ।
लङ्घनं रक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलनानि च ।।४७।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निद्रा के अति योग में वमन, संशोधन, लंघन (उपवास), रक्तमोक्षण (खून निकालना) तथा मन को व्याकुल करने वाले साधन उत्तम हैं।

निद्रा का अर्थ

निद्रा शब्द निन्दि वा निदि धातु जो कुत्सित अर्थ में है इससे 'निन्देर्नलोपश्च' (उणादि २।१७) सूत्र ले नलोप तथा रक् प्रत्यय करने पर निद्रा शब्द की सिद्धि होती है। शयन, स्वाप, स्वप्न, सुषुप्ति आदि इसके पर्यायवाची शब्द हैं।

कालाग्नी रुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी।
सर्वलोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु॥ (तन्त्र)

पौराणिक भाई इसके कालाग्नि, रुद्रपत्नी, (शिवजी की पत्नी पार्वती) सिद्ध योगिनी आदि निद्रा के पर्यायवाची और नाम मानते हैं। रात को योग द्वारा सर्वप्राणियों को आच्छन्न किये रहती है।

महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में इसे चित्त की एक वृत्ति माना है जो उपासक को उपासना में बाधक के रूप में तंग करती है। क्योंकि तम वा अज्ञान ही निद्रावृत्ति का आलम्बन है। अतः जब अन्धकारमय वा अज्ञानमय निद्रावृत्ति का उदय वा प्रभाव होता है तब सत्त्वगुण, जो ज्ञान का प्रकाशक है वह सर्वथा तमोगुण के निद्रारूप अज्ञान से दब जाता है अत उस समय ज्ञान का अभाव होने से उपासक निद्रा वृत्ति के वशीभूत हो जाता है और उसकी साधना बिगड़ जाती है, अतः निद्रा शब्द की कुत्सित अर्थ में सिद्धि की है। क्योंकि यह चित्तवृत्ति अन्य प्रमाण आदि वृत्तियों के समान योगी वा साधक के जब तक सर्वथा वश में नहीं आती अथवा यह समझिये कि जब तक निद्रावृत्ति का सर्वथा निरोध नहीं होता, तब तक साधक की समाधि वा योग सिद्ध नहीं होता और बिना योग की सिद्धि के ब्रह्मप्राप्ति, आनन्द की अनुभूति, सब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुःखों से छुटकारा अर्थात् परमपद मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये तमोगुण युक्त निद्रा को शास्त्रों ने पाप्मा वा पाप कहा है। और वैयाकरणों ने "या निन्दति यया वा सा निद्रा शयनं वा" कुत्सित अर्थ में इसकी सिद्धि की है। निद्रा अज्ञान की पराकाष्ठा है किन्तु निद्रा में किसी विषय का ज्ञान नहीं रहता यह उचित नहीं। उस समय अज्ञान विषय का ज्ञान वा अनुभूति रहती है। इसीलिये निद्रा-भंग होने पर निद्रा की अनुभूति वा ज्ञान अवश्य रहता है अत एव उठने पर "मैं बड़ी सुख की मीठी नींद सोया" अथवा "निद्रा अच्छी नहीं आई, स्वप्न ही आते रहे" इत्यादि अज्ञानरूपी निद्रावृत्ति का स्मरण करते हैं।

इस तमोगुण से उत्पन्न अज्ञानरूपी निद्रावृत्ति का निरोध करने के लिए ही ब्रह्मचारी, योगी, तपस्वी, तप, त्याग, अभ्यास वैराग्य आदि अनेक प्रकार के साधनों में अपना अमूल्य समय एवं शक्ति लगाते हैं। क्योंकि इस तमोगुणी निद्रावृत्ति को जीते बिना मनुष्य का कल्याण नहीं। निद्रा आदि वृत्तियों का निरोध करने के विषय में योगदर्शन में विस्तार से लिखा है। एतज्ज्ञानार्थ योग-दर्शन का स्वाध्याय करें तथा पूर्ण लाभ उठाने के लिए वहां पर वर्णित साधनों का अभ्यास करें।

निद्रा का महत्त्व

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीबता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥
(चरक सूत्र० अ० २१ श्लोक ३४)

सुख और दुःख पुष्टि और कृशता, बल और निर्बलता वृषता (पुंस्त्व) तथा क्लीबता (नपुंसकता), ज्ञान और अज्ञान एवं जीवन और मरण यह सब गुण दोष निद्रा के अधीन हैं।

सुखादि श्रेष्ठ फल उचित काल और मात्रा में सेवित निद्रा से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्राप्त होते हैं तथा दुःखादि दुष्ट फल अनुचित काल वा मात्रा में सेवित निद्रा के फल हैं।

निद्रा के शुभ वा अशुभ फल के विषय में चरक में लिखा है-

अकालेऽतिप्रसङ्गाच्च न च निद्रा निषेविता।
सुखायुषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा ॥३६॥
सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धिरिवागता ॥३७॥

(चरक सूत्र० अ० २१)

अनुचित समय पर सेवित, बहुत अधिक मात्रा में ली हुई, सर्वथा न ली हुई निद्रा मनुष्य के सुख और आयु को काल रात्रि की भांति नष्ट कर देती है और वही निद्रा युक्तिपूर्वक उचित काल में तथा उचित मात्रा में सेवन की जाये तो जैसे योगी पुरुष सिद्धि को प्राप्त होकर सत्य बुद्धि (ऋतम्भरा प्रज्ञा) को प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार समुचित रीति से निद्रा सेवन करनेवाला मनुष्य सुख और दीर्घायु को प्राप्त होता है।

ब्रह्मचारी को दिन में न सोने का उपदेश

वेदारम्भ संस्कार में पिता का अपनी सन्तान को ब्रह्मचर्य पालनार्थ उपदेश है। उस में २२ शिक्षाएं दी हैं। दिवा शयन-निषेध के विषय में भी उपदेश है। पिता कहता है—'ब्रह्मचार्यसि असौ' दिवा मा स्वाप्सीः' अर्थात् हे पुत्र "तू आज से ब्रह्मचारी है अतः दिन में शयन कभी मत कर।" यह उपदेश गोभिल गृह्यसूत्र में आया है। वैसे सामान्यरूप से ब्रह्मचारी ही क्या सभी के लिए दिन में सोने को हानिकारक समझ कर निषिद्ध और अधर्म माना है। महर्षि धन्वन्तरि इस विषय में सुश्रुत में निम्न प्रकार से लिखते हैं—

"विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम, तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोष-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकोपश्च, तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवांगमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवन्ति।" (सुश्रुत शरीर० अ० श्लोक ३८)

दिन में सोना एक विकार (दोष) है। दिन में सोने से अधर्म (पाप) होता है। वात, पित्त, कफ सभी दोष कुपित हो जाते हैं, और दोषों के कुपित होने से कास (खांसी), श्वास (दमा), प्रतिश्याय (जुकाम), शिर में भारीपन, अंगों का टूटना, अरुचि, ज्वर, जठराग्नि की दुर्बलता आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दिन सोने के लिए नहीं जागरण अथवा कार्य करने के लिए है।

रात्रि में जागरण से हानियाँ

"रात्रावपि जागरितवतां वातपित्तनिमित्तास्त एवोपद्रवा भवन्ति।" (सुश्रुत शरीर० अ० ४ श्लोक ३८)

रात्रि में जागने से भी वात पित्तजन्य उपरिलिखित कास श्वासादि रोगों को उत्पत्ति होती है। अतः रात्रि में जागरण और दिन में शयन दोनों ही वर्जित हैं। सामान्य नियम यही है, किसी विशेष अवस्था में इस के अपवाद हैं। महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं—

"सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात्"

सभी ऋतुओं में दिन में सोना वर्जित है। केवल ग्रीष्म (गर्मी) ऋतु में दिन बड़े होते हैं अतः किन्हीं विशेष अवस्थाओं में और विशेष व्यक्तियों के लिए दिन में शयन की आज्ञा दी है ब्रह्मचारी के लिए तो ग्रीष्म काल में भी दिन में सोना सर्वथा वर्जित है। इस विषय में सुश्रुत में लिखा है—

"प्रतिषिद्धेष्वपि तु बालवृद्धस्त्रीकर्शितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रान्तानामभ्यक्तवतां मेदःस्वेदकफरसरक्तक्षीणा-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
नामजीर्णिनां च मुहूर्तं दिवास्वप्नमप्रतिषिद्धम्"।

(शरीरस्थान ४।३८)

दिन में सोना निषिद्ध है यही नियम है, इस के अपवाद ये हैं :—छोटा बालक (शिशु), वृद्ध (७० वर्ष से अधिक आयु का), व्यभिचार के कारण ब्रह्मचर्य नाश से हुआ कृश (निर्बल) व्यक्ति, यक्ष्मा का रोगी, किसी भी कारण से क्षीण, मद्यपान करनेवाले पापी, वाहन (घोड़े आदि की सवारी), यान (रथ, रेल, गाड़ी आदि) यात्रा व परिश्रम से थके हुये, भोजन करनेवाले (भूखे), मेद (चर्बी) स्वेद, कफ, रक्त रसादि से क्षीण हुए केवल रोगी मनुष्य के लिए दिन में मुहूर्त भर बहुत(थोड़ी देर) सोने की आज्ञा शास्त्रों ने दी है, रोगादि के कारण विवशतावश। अतः यह निषेध में अपवाद है। राजनिघण्टु आदि ग्रन्थों में मुहूर्त्त को दिन और रात के बीसवें भाग के समान अर्थात् दो घड़ी वा ४८ मिनट माना है, अतः किसी भी अवस्था में चाहे कोई कितना ही श्रान्त वा रोगी हो यदि ग्रीष्म काल में भी दिन में ४८ मिनट वा दो घड़ी से अधिक सोवेगा तो हानि उठायेगा। ब्रह्मचारी के लिए महर्षि दयानन्द जी अपने ग्रन्थ संस्कार विधि में निम्न प्रकार से लिखते हैं—

"दो दण्ड से अधिक सोना वर्जित है। रात को यदि जगे हो तो जितने समय जगे हो उस से आधे समय तक ही दिन में शयन करना चाहिये। नहीं तो विकार (रोगों की उत्पत्ति) होती है, और दिन में सोनेवाले को कभी सुख और दीर्घायु की प्राप्ति नहीं होती। जो निद्रा को वश में कर लेते हैं। वह सुखी हो दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।

चरकशास्त्र में सुश्रुत के समान ही दिवा-शयन से सब दोषों का कुपित होना माना है और गर्मी में भी कुछ व्यक्तियों के लिए दिन में निद्रा लेना सर्वथा वर्जित किया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेदस्विनः स्नेहनित्याः श्लेष्मलाः श्लेष्मरोगिणः।
दूषीविषार्ताश्च दिवा न शयीरन् कदाचन।

जो मनुष्य मेद (चर्बी) वाले घृतादि स्नेह सेवन करनेवाले, कफप्रधान प्रकृतिवाले, कफ के रोगवाले, दूषीविष से पीड़ित हों उन को किसी काल में भी दिन में नहीं सोना चाहिए। दिन में सोने के कुछ और अधिक दोष चरक शास्त्र में लिखे हैं—

स्मृतिबुद्धिप्रमोहाश्च संरोधः स्रोतसां ज्वरः।
इन्द्रियाणामसामर्थ्यं विषवेगप्रवर्तनम् ॥४८॥
भवेन्नृणां दिवास्वप्नस्याहितस्य निषेवणात्।
तस्माद्धिताहितं स्वप्नं बुद्ध्वा स्वप्यात् सुखं बुधः ॥४९॥

दिवाशयन से स्मृति और बुद्धि का नाश, स्रोतों का अवरोध, ज्वर, इन्द्रियों में निर्बलता, यदि कभी स्थावर वा जंगम (सर्प आदि के दंश का विष) हो तो उस के वेग की प्रवृत्ति से उद्भव हो जाते हैं। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि निद्रा के विषय में उचित-अनुचित, हित-अहित का ज्ञान करके दिवाशयन से दूर रहे।

दिन में शयन वेदाज्ञा के विरुद्ध

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे।
(अथर्ववेद ७।१३।२)

जो सूर्योदय के पश्चात् अथवा दिन में सोता है, उस सोनेवाले के तेज को उदय होता हुआ सूर्य हर लेता है, जैसे कि अपने शत्रुओं के तेज को एक तेजस्वी पुरुष हर लेता है। जो सूर्योदय के पश्चात् वा दिन में सोयेगा तो स्वप्नदोषादि विकारों से उस सोनेवाले का ब्रह्मचर्य नष्ट हो जायेगा, और वीर्यहीन व्यक्ति में तेज वा ओज फिर कहां से आयेगा। जब तेज ही नहीं तो तेजहीन व्यक्ति का जीवन संसार में निरर्थक ही है। अतः वेद की आज्ञा मानकर दिन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
में ब्रह्मचारी क्या किसी भी व्यक्ति को नहीं सोना चाहिए।

निद्रा नाश के कारण

सुश्रुत में निद्रानाश के कारण निम्न प्रकार से लिखे हैं—

निद्रनाशोऽनिलात् पित्तान्मनस्तापात् क्षयादपि।
सम्भवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैः प्रशाम्यति ॥४२॥

वायु और पित्त के कुपित होने से वा अधिकता से, मन के सन्ताप से, रसादि धातुओं की क्षीणता से, चोट आदि के लगने से नींद नहीं आती अर्थात् इन विपरीत कारणों से निद्रा नहीं आती। इनको दूर करने से निद्रा आ जाती है।

निद्रा के उपाय

निद्रानाशेऽभ्यंगयोगो मूर्ध्नि तैलनिषेवणम्।
गात्रस्योद्वर्तनं चैव हितं संवाहनानि च ॥४३॥

निद्रा न आती हो तो शरीर पर तेल की मालिश, सिर पर विशेष रूप से तैल का मर्दन, अङ्गों पर उबटन करना, शरीर का संवाहन अर्थात् दबाना आदि उत्तम उपाय हैं। अन्य उपाय चरक के समान ही हैं, विशेष यह लिखा है—

द्राक्षासितेक्षु द्रव्याणामुपयोगो भवेन्निशि ॥४५॥
शयनासनयानानि मनोज्ञानि मृदूनि च।
निद्रानाशे तु कुर्वीत तथाऽन्यान्यपि बुद्धिमान् ॥४६॥

रात्रि में द्राक्षा, मिश्री, ईख आदि द्रव्यों का उपयोग करे। शय्या आसन एवं सवारी कोमल और मन के अनुकूल बनाये। जिसको निद्रानाश का रोग हो वह यह तथा अन्य उपाय बुद्धि से विचार कर करे।

भोजन के पश्चात् शयन

शयन से दो तीन घण्टे पहले भोजन करना चाहिये और एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रहर रात्री के बीतने पर निद्रा लेना उचित माना है। आठ वा दश बजे के मध्य सोकर दो वा चार बजे के बीच में जागना उचित है। रात्रि के आठ वा दश बजे के समय की अपेक्षा प्रातःकाल का दो से चार बजे का समय अधिक उपयोगी हुआ करता है। भारतीय ही नहीं, योरोप के विद्वानों का भी यही मत है।

मध्यरात्रि से पूर्व की निद्रा के महत्त्व के विषय में एक पाश्चात्य विद्वान् जार्ज हर्बट लिखते हैं—

"One hours sleep before midnight is worth three afterwards."

अर्थात् आधी रात से पूर्व की एक घण्टे की निद्रा उसके पश्चात् की तीन घण्टे की निद्रा के समान है। इस में कारण स्पष्ट है, रात्रि का समय दिन भर कार्य करने के कारण श्रान्ति (थकावट) का समय है और प्रातः काल का समय रात्रि भर निद्रा द्वारा विश्राम के पश्चात् होता है। मनुष्य का शरीर हृदय और मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ स्फूर्तियुक्त (तर व ताजा) होते हैं। अतः रात्रि में आठ और नौ बजे के मध्य सो जाना चाहिये और प्रातःकाल दो और चार बजे के मध्य उठ जाना चाहिये। शिशु तथा बालक छः से सात घण्टे तक सो सकते हैं। किन्तु किशोर और युवकों के लिए छः घण्टे सोना पर्याप्त है।

निद्रा-त्याग

चार दण्ड रहते निद्रा का त्याग करें—प्रातःकाल ४ बजे से पूर्व। रात्रि में शीघ्र सोने से ही प्रातःकाल शीघ्र उठ सकता है। रात्रि में ९ वा १० के मध्य सोने और ३ वा ४ के मध्य उठने से मनुष्य ब्रह्मचारी, दीर्घायु और श्रीमान् बनता है।

Early to bed and early to rise, makes a man healthy wealthy and wise.

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी विद्वान् ने अंगरेजी भाषा में यह उचित ही लिखा है :— उचित समय पर शयन अर्थात् दस बजे से पूर्व और उचित समय पर जागरण अर्थात् ४ बजे से पूर्व मनुष्य को स्वस्थ, ऐश्वर्यशाली और चतुर बनाता है। प्रथम गुण जो स्वास्थ्य है उसको प्राप्ति पर सब गुण प्राप्त हो जाते हैं। शास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है—

"उत्थाय च पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।" (मनु) मनु जी के इस श्लोक का उद्धरण देते हुए महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं "जब पिछली प्रहर रात्रि रहे तब उठ शौच और सावधान होकर परमेश्वर का ध्यान अग्निहोत्रादि नित्य कर्म करे। इसी प्रकार चतुर्थ समुल्लास में लिखते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेन्। (मनु०) रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे आवश्यक कार्य धर्मार्थ का अनुचिन्तन ईश्वर का ध्यान करे। भाव सब का यही है ३ वा ४ बजे के बीच में उठ जाये और दस बजे से पूर्व ही शयन करे।

निद्रा का स्थान

शुचौ देशे विविक्ते तु गोमयेनोपलिप्तके।
प्रागुदकप्लावने चैव संविशेत्तु सदा बुधः॥

दुर्गन्ध रहित, शुद्ध वायु वाला, प्रकाशमय शुद्ध पवित्र एकान्त स्थान जो गोमय से लिया हुआ हो, विष्टर भी शुद्ध पवित्र ऋतु के अनुकूल हो तो निद्रा बहुत शीघ्र और अच्छी आती है।

मांगल्यं कुम्भं च शिरःस्थाने निधापयेत्।
वैदिकैर्गरुडमन्त्रै रक्षां कृत्वा स्वपेत्ततः॥

सोने से पूर्व सिराहने की ओर एक जलपूर्ण पात्र रखना चाहिये तथा वैदिक मन्त्रों का जाप करके सोना मंगलप्रद है।

कहां सोना निषिद्ध है

शून्यालय, निर्जन घर, श्मशान, वृक्ष के नीचे, चतुष्पथ,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

महादेवगृह, पथरीली भूमि, धान्य, गौ, विप्र, देवता और गुरु के ऊपर शयन करना वर्जित है। इसके अतिरिक्त भग्नशयन, अशुचि, दुर्गन्धयुक्त शुद्ध-वायु रहित आर्द्र वस्त्र में, नग्नावस्था, खुले शिर से, खुले मैदान में तथा चैत्य वृक्ष के तले शयन वर्जित है।

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

शयन समय शिर किस ओर करें

अपने घर में पूर्व की ओर मस्तक करके सोना चाहिए। आयुष्कामी व्यक्ति दक्षिण की ओर मस्तक रखकर सोवे। प्रवास में पश्चिम की ओर मस्तक करना चाहिए। उत्तर दिशा में मस्तक करके सोना अत्यन्त हानिकारक है। पूर्व की ओर सिराहना करके सोने से धन प्राप्ति, दक्षिण की ओर आयु-वृद्धि, पश्चिम की ओर करने से प्रबल चिन्ता और उत्तर की ओर मस्तक करने से मृत्यु होती है। मुर्दा शरीर (शव) का शिर अन्त्येष्टि संस्कार के समय वैदिक रीत्यनुसार उत्तर दिशा में ही करते हैं।

यह इसका सूचक है कि उत्तर में शिर करने से आयु घटती है तथा शीघ्र मृत्यु होती है।

बिस्तर

ओढने के वस्त्र शुद्ध हल्के तथा बिछाने के कड़े (सख्त) सादे और स्वच्छ होने चाहियें।

शयनकाल में एक लंगोट ही ब्रह्मचारी अथवा सभी को रखना चाहिए। अच्छी निद्रा के लिए शरीर पर अधिक वस्त्र धारण करना उचित नहीं। वस्त्र से मुख ढक कर नहीं सोना चाहिये।

गोभिल गृह्यसूत्र में लिखा है तू ब्रह्मचारी है अतः तेरे लिए "उपरिशय्यां वर्जय" उपरिशय्या वर्जित है। खाट, शय्या, पलंग आदि पर कभी नहीं सोना। भूमि में शयन करना "भूमौ शय्या" भूमि वा धरती माता की गोद में शयन करने का आदेश शास्त्रों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का ब्रह्मचारी के लिए है। व्याकरण में "स्थण्डिलशायी" उदाहरण बहुत प्रसिद्ध है।

ब्रह्मचारी की खाट, चारपाई वा पलंग पर शयन करने की बात तो दूर रही, बैठने तक का शास्त्रों ने निषेध किया है। क्योंकि खाट पलंग आदि गृहस्थियों के लिए हैं। जिसे ब्रह्मचर्य की साधना करनी हो उसे सोना तो दूर रहा, चारपाई पर बैठना भी नहीं चाहिए। अष्टाध्यायी के 'खट्वा क्षेपे' (२।१।३५) सूत्र पर पतञ्जलि महाभाष्य में इस प्रकार लिखते हैं—

"कः क्षेपो नाम ? अधीत्य स्नात्वा गुरुभिरनुज्ञातेन खट्वाऽऽरोढव्या य इदानीमतोऽन्यथा करोति, स उच्यते—खट्वाऽऽरूढोऽयं जाल्मः। नातिव्रतवान्।

इसका अर्थ महर्षि दयानन्द जी निम्न प्रकार से करते हैं "अध्ययनसमाप्तिमकृत्वा गुरोराज्ञां त्यक्त्वा च यो गृहस्थाश्रमाविशति तस्य खट्वारूढ इति नाम।" क्षेप का निन्दा अर्थ है।

धर्म शास्त्रों का यह नियम है कि विद्या को यथावत् पढ़कर गुरु की आज्ञा के अनुसार लिखित नियम से स्नान करके समावर्तन संस्कार कर के गृहस्थ आश्रम में जाना चाहिए। जो कोई इस से उल्टा अर्थात् विद्या पूरी न हो और गुरु की आज्ञा भी न हो और गृहस्थाश्रम में जाता है, उस को खट्वारूढ़—सर्व प्रकार से निन्दा करने योग्य कहते हैं।

प्राचीन काल की यह पद्धति थी कि विद्यास्नातक होने के पश्चात् गुरु की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में स्नातक प्रवेश करते थे और गृहस्थ में प्रवेश के पश्चात् ही खाट, चारपाई, पलंग आदि पर बैठने वा शयन करने की शास्त्रीय आज्ञा मिलती थी क्योंकि खाट वा पलंग गृहस्थ की वस्तु थी। ब्रह्मचारी सदैव भूमि पर आसन शयन आदि करता था। ब्रह्मचारी के लिए खाट वर्णा की, न सेवन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने योग्य वस्तु थी। खाट पर सोना तो दूर की बात थी, उस पर बैठने से भी सर्प के समान दूर से बचता था क्योंकि खाट गृहस्थी के लिए ही थी और अब भी गृहस्थी की ही वस्तु है।

जो आचार्य की आज्ञा के बिना ही गृहस्थी बनता अथवा गृहस्थ की वस्तु खाट का बैठने वा सोने के लिए सेवन करता है "धिक्कार है ऐसे नीच को" यह शास्त्र की दृष्टि में बहुत बड़ा नीच कर्म है। अतः ब्रह्मचारी को आचार्य की आज्ञा के बिना कभी गृहस्थी नहीं बनना चाहिए और न ही गृहस्थ की वस्तु खाट आदि का सेवन करना चाहिए।

खाट पर शयन क्यों निषिद्ध है ?

खाट वा पलंग रस्सियों निवार लोहे की जाली आदि के बने होते हैं। वे कितने भी सख्त हों कुछ न कुछ लचक ढीलापन उन में रहता ही है। पुराने होने पर सभी ढीले हो ही जाते हैं। इन पर सोने वालों की कमर की रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) सीधी नहीं रह सकती। मेरुदण्ड सभी का शयन समय ही नहीं जागृतावस्था में भी सीधा रहना चाहिए। मेरुदण्ड के सीधा रहने से ही प्राणायाम की सिद्धि, फुप्फुस (फेफड़ों) का स्वस्थ सुन्दर सुदृढ़ होना, वृद्धावस्था में भी कमर का न झुकना आदि लाभ होते हैं। अतः ब्रह्मचारी क्या, अपना कल्याण चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को खाट पलंग आदि झंझट से बचना चाहिए। खाट आदि में खटमलादि से जो कष्ट होता है वह पृथक् रहा। इसी कारण भारत के कितने ही प्रान्तों में लोग खाट आदि का प्रयोग नहीं करते हैं।

निद्रा से पूर्व

हाथ पांव शिर आदि धोना, विष्णु का स्मरण—वैष्णवी निद्रार्थ मन्त्रों का उच्चारण एवं ओ३म् का जाप करते हुए शयन करना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

निद्रा से पूर्व मल मूत्र त्याग करके सोवे। जब तक अच्छी निद्रा न आये व्यर्थ बिछौने पर नहीं लेटना चाहिये। थोड़ी सी दौड़ अथवा कोई हल्का व्यायाम करने तथा ईश-भजन से निद्रा शीघ्र आ जाती है। रात्रि का भोजन हल्का अर्थात् मध्याह्न के भोजन से आधा होने से निद्रा ठीक आती है। रात्रि के भोजन और निद्रा में २ घण्टे का अन्तर न्यून से न्यून होना चाहिये। यदि इस से अधिक ढ़ाई तीन घण्टे हो तो और भी अच्छा है। स्वप्नदोष से बचने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

घुटने तक पैर तथा हाथ और शिर शीतल जल से धोकर सोने से स्वप्नदोषादि विकार भी नहीं सताते तथा निद्रा भी ठीक आती है। स्वप्नदोष के रोगी को पहिले अण्डकोष पर्याप्त शीतल जल से भलीभाँति धोकर गीला करने से तथा मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग पर शीतल जल की धार छोड़ने से स्वप्नदोष आदि विकारों से छुटकारा पाने में सहायता मिलती है।

निद्रा लेते समय दीपक आदि जलता हुआ नहीं छोड़ना चाहिये। किसी विशेष अवस्था के अतिरिक्त उसे शान्त कर देना श्रेयस्कार है। दीपक की विषैली वायु कार्बन से हानि होती है, दीपक का प्रकाश निद्रा में बाधक होता है।

ब्रह्मचारी वा किसी भी व्यक्ति को सीधा-औंधा (उल्टा) मुंह को नीचे कर के नहीं सोना चाहिए। एक करवट, वह भी दाईं करवट सोना अच्छा है। जिसके उदर में विकार रहता हो वह वाम करवट सोये सीधा व उल्टा न सोये। मेखला की गांठ जो पीठ के पीछे होती है, वह इस में कुछ सहायक है।

निद्रा का समय

नययुवकों को ६ घण्टे से अधिक शयन नहीं करना चाहिये। ९ वा १० बजे सो कर ३ वा ४ बजे उठ जाना चाहिये। प्रातःकाल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आंखें खुलने पर बिस्तर पर नहीं पड़े रहना चाहिये। निद्रा टूटने पर बिस्तर तुरन्त छोड़ देना चाहिये। जिसे निद्रा को जीतने की इच्छा हो वह सायंकाल अन्न खाना छोड़ देवे। ५ से ७॥ या ८ बजे तक जितना भी पहले कर सके थोड़ा सा गोदुग्ध का पान कर लेवे और आठ, नौ बजे के मध्य में सो जावे। फिर २ तथा ३ बजे के बीच उठ जावे।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

इसका अर्थ निम्न प्रकार से है—

रात्रि के चौथे पहर अथवा चार घड़ी रात से उठे, आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे, कभी अधर्म का आचरण न करे।

अतिशयन और अतिजागरण निषिद्ध है

अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय। गोभिलगृह्य सूत्र में पिता वेदारम्भ संस्कार के समय अपने पुत्र को ब्रह्मचारी बनाते समय उपदेश देता है "तू ब्रह्मचारी है अतः तू अधिक निद्रा तथा अधिक जागरण कभी मत कर"। यह दोनों ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक हैं।

हयानामिव जात्यानामर्द्धरात्राधिशायिनाम्।
न हि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति॥

(याज्ञवल्क्य शिक्षा)

अर्थ—जिस प्रकार उत्तम जाति के घोड़ों का स्वभाव आधी रात्री से भी अधिक समय अर्थात् एक प्रहर २॥ या ३ घण्टे का सोने का होता है, उसी प्रकार सच्चे विद्यार्थी वा ब्रह्मचारी के नेत्रों में निद्रा चिरकाल तक नहीं ठहरती अर्थात् अच्छा विद्यार्थी अल्पकाल तक सोता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचारी सदैव अकेला सोवे

एक शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥

(मनुस्मृति २।१८०)

मनु जी का यह श्लोक महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में दिया है। अर्थ इस प्रकार है—सर्वत्र एकाकी (अकेला) सोवे, वीर्य स्खलित (नाश) कभी न करे, जो कामना से वीर्य स्खलित कर दे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य व्रत का नाश कर दिया।

शिशु, बालक, किशोर और युवक किसी भी अवस्था का ब्रह्मचारी हो, सभी अवस्थाओं में पृथक् पृथक् ही सोना चाहिए। किसी के भी साथ सोने से अच्छे से अच्छे बालक भी मिट्टी में मिलते देखे गए हैं। अतः दो वा इस से भी अधिक को मिल कर एक बिस्तर पर किसी अवस्था में भी नहीं सोना चाहिए। किसी के साथ मिलकर शयन करने से हानि ही हानि है, लाभ कोई नहीं। मिल कर शयन करने से स्पर्श, एक दूसरे का दुर्गन्ध, उष्णता आदि की हानि तो अवश्य होती है। अतः किसी भी अवस्था में अपने से बड़े वा छोटे किसी के भी साथ ब्रह्मचारी क्या किसी को भी नहीं सोना चाहिए।

घर में माता पिता सगे भाइयों और सगी बहिनों को एक चारपाई वा एक बिस्तर पर सुला देते हैं। इन बालकों के एक साथ सोने से क्या हानि हो सकती है, इस की वे कल्पना भी नहीं कर सकते। इस का परिणाम ब्रह्मचर्य नाश अथवा सर्वनाश है, अतः सर्वदा अकेले ही शयन करने में कल्याण है, इस लिए इस नियम का बड़ी दृढ़ता से पालन करना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्यार्थी की श्वान निद्रा

काकचेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणम्॥

विद्यार्थी के पांच लक्षण काक के समान चेष्टा, बगुले के समान ध्यान, कुत्ते के समान निद्रा, मिताहार और गृह से विरक्ति माने हैं।

विद्यार्थी और ब्रह्मचारी संस्कृत-साहित्य में पर्यायवाची हैं, कहा भी है—

"विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात्"

विद्या प्राप्ति के लिए ब्रह्मचारी होना चाहिए अर्थात् ब्रह्मचारी ही यथार्थ में सच्चा विद्यार्थी होता है।

शयन से पूर्व और पश्चात् ईश-स्मरण

उपनिषद् में लिखा है—

"स्वप्नान्तं जागरितान्तंचोभौ येनानुपश्यति। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।" अर्थ— निश्चय से जो व्यक्ति शयन अर्थात् निद्रा की समाप्ति पर प्रातःकाल और जागरित अवस्था की समाप्ति अर्थात् शयन के समय रात्रि को श्रद्धापूर्वक सावधानी से उस महान् सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान करता है, वह किसी प्रकार के दुःख चिन्ता तथा शोक को प्राप्त नहीं होता है।

इस लिये इन दोनों समयों में सामान्यतया सभी मनुष्यों को और विशेषतया ब्रह्मचारी को उस परम पालक ओ३म् का अवश्यमेव उपरोक्त प्रकार से स्मरण करना चाहिये जिस से जागरित अवस्था से अतिरिक्त निद्राकाल के समय स्वप्न अवस्था में भी ब्रह्मचारी के शुद्ध पवित्र विचारों के कारण यदि स्वप्न आयें तो पवित्र ही आयें क्योंकि जागरित अवस्था में तो बहुत से युवक जैसे तैसे ही वीर्य रक्षा करने में सफल हो जाते हैं। किन्तु शयन-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
काल में कुत्सित विचारों के कारण स्वप्नदोषादि विकारों से पीडित होकर ब्रह्मचर्य नाश से हानि उठाते हैं। जागरित अवस्था की अपेक्षा निद्राकाल में ब्रह्मचारी के लिये और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता है अतः ब्रह्मचारी की वृत्ति वा विचार शयन से पूर्व सर्वथा सात्त्विक तथा पवित्र रहें और इन्हीं के कारण स्वप्न अवस्था में भी यदि स्वप्न आयें तो वे भी सात्त्विक और पवित्र हों इस के लिए यही आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति विशेषतया ब्रह्मचारी को शीतल जल से हाथ, पैर, मुख इत्यादि धोकर ऋषियों के आदेशानुसार निम्नलिखित शिव-संकल्प सूक्त के पवित्र वेदमन्त्रों का अर्थ सहित श्रद्धापूर्वक उच्चारण वा जप करना चाहिये।

शयन से पूर्व पठनीय मन्त्र

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ।१।

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर दूर (उत्, एति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्मविषयक इच्छावाला (अस्तु) हो ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का संग करके अनेकविध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं जो जागृतावस्था के विस्तृत व्यवहार वाला है वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है। जो वेग वाले पदार्थों में अति वेगवान् ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्तक मन को वश में करते हैं, वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत्त कर सकते हैं।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वान्! जब आपके संग से (येन) जिस (अपसः) सदा कर्म धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि वा धर्म संयुक्त व्यवहार व योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञान सम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाला (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यक्षम्) पूजनीय वा संगत एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करना रूप मन (शिवसंकल्पम्) धर्मेष्ठ (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना सुन्दर विचार विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें ॥२॥

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन्! आपके जताने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेषकर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत्) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (च) और लज्जादि कार्यों का हेतु (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तः

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
करण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशकरूप (यस्मात्) जिससे (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधन रूप मन (शिव-संकल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखनेवाला (अस्तु) हो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूप वृत्तिवाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला, प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है, उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो ॥३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (येन) जिस (अमृतेन) नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) होनेवाला (सर्वम्, इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है (येन) जिस से (सप्तहोता) सात मनुष्य होता वा पांच प्राण छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात लेने देने वाले जिस में हों वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञानस्वरूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योगयुक्त चित्त शिव-संकल्पम् मोक्षरूप संकल्पवाला (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! जो चित्त योग्याभ्यास के साधन और उपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल का ज्ञाता सब सृष्टि का जानने वाला कर्म उपासना और ज्ञान का साधक
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है उसको सदा हो कल्याण में प्रिय करो ॥४॥

यस्मिन्नृच साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

पदार्थः— (यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते हैं वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) साम वेद (यजूंषि) यजुर्वेद स्थित हैं (यस्मिन्) जिस में (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्व पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचार रूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ।.५॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये, जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिस में सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मन शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

पदार्थः— (यत्) जो मन (सुषारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान् (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर ते चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को(नेनीयते) शीघ्र इधर उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रस्सियों से (वाजिनः) वेगवाले घोड़ों को सारथि वश में करता वैसे नियम में रखता (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्थारहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेगवान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मंगलमय नियम में इष्ट (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः— इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं । जो मनुष्य जिस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
पदार्थ में आसक्त है, वही बल से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे प्राणियों को ले जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिसके अनुकूल वर्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी, जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है, वह मन मनुष्यों को वश में रखना चाहिए ॥६॥

(यजुर्वेद अ० ३४ महर्षि दयानन्द कृतभाष्य से उद्धृत)

अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमन्दिषीमहि ।
रक्षणोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ यजु०

पदार्थ : (अग्ने) जो अग्नि (प्रबुधे) जगने के समय (सुजागृहि) अच्छे प्रकार जगाता वा जिस से (वयम्) जग के कर्मानुष्ठान करनेवाले हम लोग (सुमन्दिषोमहि) आनन्दपूर्वक सोते हैं जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होके (नः) प्रमादरहित हम लोगों की (रक्ष) रक्षा तथा प्रमादसहितों को नष्ट करता और जो (नः) हम लोगों के साथ (पुनः) बार बार इसी प्रकार (कृधि) व्यवहार करता है, उसको युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिए ।

भावार्थ :—मनुष्यों को जो अग्नि, सोने, जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उसका युक्ति से सेवन करना चाहिए ।

(यजुर्वेद अ० म० १४ महर्षि दयानन्द कृत भाष्य से उद्धृत)

प्रातःकाल प्रार्थना के मन्त्र

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

अर्थ :—हे ! स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमेश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त (प्रातः) (मित्रावरुणा)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिस ने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं, और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः) (सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्वरोगनाशक जगदीश की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं, वैसे प्रातः समय तुम लोग भी किया करो ॥१॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

अर्थ :—(प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने और (यः) जोकि सूर्यादि लोकों को (विधर्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारण कर्त्ता (यं चिद्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित्) दुष्टों का भी दण्डदाता और (राजा) सबका प्रकाशक है, (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूँ, और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको (आह) उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूँ उस मेरी उपासना किया करो और मेरी आज्ञा में चला करो, जिस से तुम लोग सदा उन्नतिशील रहो, इस से (वयम्) हम लोग उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं ।२॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

अर्थ—हे (भग) भजनीय स्वरूप (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
हारे (भग) सत्याचरण करने हारों को ऐश्वर्य दाता आप परमेश्वर (नः) हम को (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये और उसके दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये, हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (वः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रकट कीजिये, हे (भग) आप की कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत मनुष्य वाले (प्र स्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥३॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

अर्थ—हे भगवान् ! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इस समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता, उत्तमता को प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त शक्तिमान् (स्याम) होवें, (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देने हारे ! (सूर्यस्य) सूर्य लोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥४॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥

अर्थ—हे (भग) सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर, जिस से (तम्) उस (त्वा) आपकी (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुर एता) अग्रगामी और आगे-आगे सत्य कर्मों में बढ़ाने हारे (भव) हूजिये और जिस से (भग एव) ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीयदेव (अस्तु) हूजिये, (तेन) उसी हेतु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
से (देवाः वयं) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्यसम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन और धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें ॥५॥ (संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण से उद्धृत)

इन मन्त्रों की विशेष व्याख्या यजुर्वेदभाष्य अध्याय ३४ के मन्त्र ३४ से ३८ तक तथा ऋग्वेदभाष्य के मण्डल ७ के सूक्त ४१ में देख सकते हैं।

निद्रा के नियमों के विषय में स्वामी श्रद्धानन्द जी निम्न प्रकार से लिखते हैं—

शयन और जागरण के विषय में एक बात का अवश्य स्मरण रखना चाहिये यदि बिस्तर पर लेटने के पश्चात् निद्रा तुरन्त न आवे तो देखो कि आपने शयन से पूर्व हाथ पैर इत्यादि धोये थे या नहीं, यदि न धोये हों तो हाथ पैर और मुख धोकर अंगोछे से पूंछ डालो। यदि इतना करने पर भी नींद न आवे तो पांच मिनट भ्रमण करके लेट जाओ फिर निद्रा आजाएगी। यदि कभी इस पर भी नींद न आवे तो बिस्तर पर लेट कर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगो और चारों ओर से मन को हटा कर अपना मन ओ३म् के जप में लगा दो उसी समय निद्रा आ जायेगी। वे निद्रा न आने का द्वितीय कारण यह लिखते हैं। "यदि शयन से पूर्व सायंकाल का भोजन पचाने के लिए न्यून से न्यून ढाई घण्टे न दिये जायें तो निद्रा भली प्रकार से नहीं आ सकती। अतः सब आर्य घरानों में सायंकाल के भोजन का समय सात बजे से आठ बजे तक होना चाहिये। इस नियम का पालन करने से घर के सभी स्त्री और पुरुष रोगों से बचे रहेंगे। शयन के इस नियम के साथ जागरण का भी यह नियम होना चाहिये कि जब प्रातः नींद खुले उसी समय उठ कर बैठ जाओ। प्रातः जागते हुए बिस्तर पर लेटे रहने से बुरी प्रकार के दूषित स्वप्न दिखलाई देते हैं और मन में बड़ा कोलाहल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
होता है। शरीर का मन के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यदि शरीर स्वस्थ और स्फूर्ति युक्त न हो तो मन भी प्रमादी और आलसी रहता है। यदि कभी निद्रा घण्टा आध घण्टा पूर्व भी खुल जाये तो बिस्तर पर बैठ कर ईश स्मरण करके अपने नित्य कर्म में लग जाओ।" स्वा० श्रद्धानन्द जी ने इस विषय में गृहस्थियों का कर्त्तव्य इस प्रकार लिखा है—

"शयन करने के समय से पूर्व प्रत्येक माता का यह धर्म है कि अपने सब बच्चों के हाथ पाँव मुंह धोकर उनसे ईश्वरोपासना के मन्त्रों का उच्चारण करवाके सन्तानों को पहले से ही शिक्षा दी जावे कि वे शयन से पूर्व सभी बड़े बूढ़ों को श्रद्धापूर्वक नमस्ते करें। इसके पश्चात् माता देवी के चरण स्पर्श कर नमस्ते करें। माता प्रेम पूर्वक उनको आशीर्वाद देकर सुला देवे।"

"गुरुकुलों में भी ब्रह्मचारियों को अपने गुरुओं व अध्यापकों तथा अपने से अन्य बड़े व्यक्तियों और अपने से बड़े सहपाठियों से भी परस्पर नमस्ते कहने में कभी संकोच व आलस्य न करें।" स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज अभिवादन के महत्त्व पर इस प्रकार लिखते हैं—

"मुझे अभिवादन बड़ों को नमस्ते कहने के विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द का उपदेश है कि गृहस्थी स्त्री पुरुष जब जब दिन में मिलें तब-तब ही नमस्ते पूर्वक अभिवादन करें। इस नियम का पालन आर्यसमाज में बहुत ही न्यून किया जाता है। कारण यही प्रतीत होता है कि जिन पुरुषों को बाल्यकाल से अभिवादन करने का स्वभाव न हो उन को बड़ी आयु में परस्पर एक दूसरे को सत्कार के नियम सिखलाना बूढे तोते को पढ़ाने से कम कठिन नहीं है। मेरा यह आशय नहीं कि बड़ी आयु में शिक्षा हो नहीं सकती, मैंने कुछ आर्य ऐसे देखे हैं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिन्होंने बड़ी आयु में सत्कार के नियम सीखे हैं। किन्तु जिन बालकों को छोटी आयु से ही अभिवादन की शिक्षा दी जायेगी तो बड़ी आयु होने पर दूसरे का उचित मान और सत्कार करना उनका स्वाभाविक गुण हो जाता है। इससे असंख्य लाभ होते हैं। मनु महाराज लिखते हैं।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।

अर्थात् अभिवादन करना जिसके स्वभाव में ही हो और प्रतिदिन वृद्ध पुरुषों की सेवा करे उसकी आयु विद्या यश और बल सदैव बढ़ते रहते हैं। मनु जी के इस कथनानुसार अभिवादन ही एक मोहिनी मन्त्र है जिस के द्वारा सभी उत्तम गुण वश में हो सकते हैं। अभिवादनशील पुरुष कठोर से कठोर पुरुष को मोम के समान नम्र बना देता है। इस समय जो नास्तिकता की लहर चल रही है उसका मुख्य कारण हमारी सन्तानों का अभिवादनशील न होना ही है। इस समय के युवकों तथा प्रौढों (अधेड़ों) के अभिमान की आधार शिला बाल्यावस्था में ही रखी जाती है जिस को यह लोग स्वात्माभिमान (Self respect) समझते हैं। यह बहुत बड़े प्रकार का अभिमान और आत्मश्लाघा ही है निष्कर्ष यह है कि आबाल वृद्ध वनिता सभी के लिए अभिवादनशील होकर प्रतिदिन अपने बड़ों को नमस्ते करना तथा उन की सेवा करना एक अत्यन्त आवश्यक धर्म है। अतः सबको परस्पर एक दूसरे को नमस्ते करके ही सोना चाहिये। ब्रह्मचारियों को अभिवादनशील और नित्यंवृद्धोपसेवी अवश्य ही होना चाहिए इसी में उनका कल्याण और शोभा है।

शयन के लिए क्या शय्या आवश्यक है ?

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

इस विषय में स्व० श्रद्धानन्द जी ने लिखा है —"गृहस्थ स्त्री

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
पुरुष तो भले ही निवाड़ के पलंग वा बाण सूतली की बनी हुई शय्या को (खाट को) शयन के लिए कार्य में ला सकते हैं किन्तु उन के लिए भी खिंची हुई कठोर शय्या ही लाभदायक हो सकती है। किन्तु अविवाहित (ब्रह्मचारी) बालक बालिकाओं को कभी भी ढीले लचकदार और नरम गदेलों पर न सुलावें। दस वर्ष की आयु के पश्चात् तो सदैव कठोर तख्त व बिस्तर पर ही सुलाना चाहिए, इस से वीर्य रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। मैं जानता हूं कि इस समय आर्यों के १०० शिक्षा पाने योग्य बालकों में दो ही ऐसे होंगे जिन्हें गुरुकुल में नियम पूर्वक प्रविष्ट हो शिक्षा का अवसर मिला है। नहीं तो आर्य गृहस्थियों की सन्तान घर पर रह कर ही स्कूलों और कालिजों में शिक्षा ग्रहण कर रही है उनके लिए भी इन उत्तम नियमों का पालन बहुत लाभदायक हो सकता है।

महर्षि दयानन्द जी ने पलंग, चारपाई सभी प्रकार की शय्याओं पर सोना वर्जित किया है। उन्होंने तो ऋषियों के इस वाक्य 'उपरि शय्यां वर्जय' का उद्धरण देकर ब्रह्मचारियों को यही आदेश दिया है कि सदैव भूमि पर शयन करें। ब्रह्मचारी रामप्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

"इसके बाद मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा। इस से तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। मैं ने उस में उल्लिखित ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों का पालन करना आरम्भ कर दिया। मैं एक कम्बल को तख्त पर बिछा कर सोता और प्रातः काल चार बजे से शय्या त्याग कर देता।"

वे इसी विषय में दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

"सोना सदैव खुली हवा में चाहिए। बहुत मुलायम चिलकने बिस्तर पर न सोवे। जहां तक हो सके तख्त पर कम्बल या गाढे की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
चद्दर बिछा कर सोवे। अधिक पाठ करना हो तो साढे नौ या दस बजे सो जावें। प्रातःकाल ३॥ या ४ बजे उठकर कुल्ला करके और शीतल जलपान करके और शौच ने निवृत्त हो पठन-पाठन तथा व्यायामादि करें।"

"शयन से पूर्व ब्रह्मचारी का उदर (पेट) तथा मसाना (मूत्राशय) शुद्ध, मलमूत्र रहित होने चाहियें। मलमूत्र का त्याग सांयकाल शयन से पूर्व अवश्य करना चाहिये। इसमें ब्रह्मचारियों को कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। जहाँ अनुभवी विद्वानों ने शयन से पूर्व हाथ पैर और शिर को शीतल जल से धोने पर जोर दिया है वहां शीतल जल से मूत्रेन्द्रिय का स्नान शयन से पूर्व करना आवश्यक ठहराया है। स्वप्नदोषादि विकारों से बचने के लिए यह आवश्यक भी है। इन भयंकर विकारों से बचने के लिये ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल इसी विषय में इस प्रकार से सावधान करते हैं—

"स्वच्छ वायु का सेवन कर संध्या समय भी शौच अवश्य जावें। थोड़ा सा ध्यान करके हल्का सा भोजन करलें। यदि हो सके तो रात्रि के समय केवल दुग्ध पीने का अभ्यास डालें या कुछ खा लिया करें। स्वप्नदोषादिक व्याधियां केवल पेट के भारी होने से ही होती हैं। जिस दिन भोजन भलीभांति नहीं पचता उसी दिन विकार हो जाता है या मानसिक भावनाओं की अशुद्धता से निद्रा ठीक न आकर स्वप्नावस्था में वीर्यपात हो जाता है।"

शयन का स्थान तथा बिस्तर

इस विषय में सभी विद्वानों का एकमत है कि सोने का बिस्तर और स्थान शुद्ध और पवित्र होना चाहिये। बिस्तर की दरी चद्दर इत्यादि को सप्ताह में एक दो बार अवश्य ही धो डालना चाहिये तथा धूप में भी कभी कभी अवश्य सुखा देना चाहिये। स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज इस विषय में लिखते हैं—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"शयन करने का स्थान सदैव शुद्ध वायु वाला होना चाहिये दिन में तो मनुष्य यत्न करके भी श्वास ले सकता है। किन्तु रात्रि को सोते समय श्वास का उचित रूप से चलना अभ्यास और उचित खुले स्थान पर ही निर्भर है। जल आदि से भी बढ़कर जीवन का आश्रय वायु है। अतः ग्रीष्म काल में खुले स्थान में आकाश की छत के नीचे ही सोना चाहिए।

वर्षा ऋतु में जब वर्षा वा ओस पड़ती है। बरामदे वा खुले छप्पर आदि में सोना चाहिये। शीतकाल में अन्दर ही सोना पड़ता है। वैसे तो शीतकाल स्वास्थ्य के लिए बहुत ही अच्छो ऋतु है किन्तु फिर भी उन दिनों सामान्यरूप से लोगों को और विशेष रूप से बालकों को रोगी देखते हैं इसका कारण यही है कि प्रथम तो मातायें बालकों को झूठे प्रेम के कारण उनके साथ ऐसा व्यवहार करती हैं। सोने के स्थान के सभी द्वार खिड़की रोशनदान सबको बन्द करके सोते हैं। इस प्रकार के बुरे व्यवहारों को दूर करना चाहिये। रजाई आदि में मुंह छिपा कर कभी नहीं सोना चाहिये। मुख को भयंकर से भयंकर शीत के समय में भी सिंह समान खुला रहने दें। द्वार बन्द कर लो परन्तु प्रकाशदान वातादान कुले ही रक्खो। वायु को खुले रूप में आने जाने दो।

फिर देखो प्रातःकाल आप का सारा परिवार कैसा आलस्य-हीन उठता है। वायु जितना मिले उतना थोड़ा है। शुद्ध वायु से बढ़कर आयु बढ़ानेवाला अन्य कोई अमृत नहीं है।" अतः ब्रह्मचारी को उपरिलिखित सभी नियमों का पालन करना चाहिए।

शयन-विधि

शयन विधि के विषय में पर्याप्त मतभेद दिखाई देता है। यद्यपि हमारे भारतवर्ष के प्राचीन शास्त्रकारों ने सामान्यावस्था में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बांई करवट सोना श्रेष्ठ माना है किन्तु आधुनिक वैद्य डाक्टर आदि स्वास्थ्यादि की दृष्टि से दांई करवट सोना हितकर मानते हैं उनका कथन है कि शरीर के सब अंगो में ठोस और भारी अंग यकृत् है और बांई करवट सोने से यकृत् का सब भार आमाशय पर पड़ता है और आमाशय हृदय को दबा लेता है । परिणाम यह होता कि आमाशय अपना कार्य सरलता तथा सुविधापूर्वक नहीं कर सकता और उनकी स्वतन्त्रता में भी बाधा पड़ती है । किन्तु एक लाभ अवश्य होता है कि पाचन क्रिया शीघ्र करता है और यह तो अच्छी बात है । क्योंकि जब भोजन आमशय में चला गया और हम उस समय बांई करवट न सोकर दांई करवट सो रहे हों उस समय आमाशय का भार यकृत् पर पड़ने से जो भोजन पाचन क्रिया के पश्चात् उधर यकृत् की ओर मणि से जिससे पचा हुआ भोजन (रस ठीक पकने पर) जाता है । आमाशय के दबाव से भोजन पचने से पूर्व भोजन का पतला कुछ भाग नीचे उतरने वाला समय से पूर्व आमाशय से निकल जावे तो हानि होगी, ऐसी अवस्था में वामपक्ष अर्थात् बांई करवट सोना उचित है । जब भोजन आमाशय में हो तो बांई करवट सोने से ही लाभ होगा, यह निष्कर्ष निकला । क्योंकि इस प्रकार बांई करवट लेटे रहने से पाचन शक्ति बढ़ती है क्योंकि उस समय यकृत् आमाशय के ऊपर होता है । और यकृत् की उष्णता (पित्त) पाचन क्रिया में सहायता करती है। अतः ऐसी अवस्था में बांई करवट सोना बुरा नहीं और जब तक भोजन पूर्णरूप से न पच जाये इसी बांई करवट रहना चाहिए। वैसे सबकी अवस्था समान नहीं होती । सम प्रकृति वालों के लिए सामान्यतया ऐसा ही उचित है । जब भोजन का पूर्णरूप से पचने का निश्चय हो जाये फिर वामपक्ष (बांई करवट) बदल लेवें ।

भावप्रकाश में लिखा है कि भोजन के पश्चात् सीधा लेट कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
आठ श्वास लेवे। फिर दाईं करवट लेटकर १६ (सोलह) श्वास लेवे। भोजन के पश्चात् इस प्रकार करने से नाभि के स्थान पर बांई ओर अग्नि (जाठर) रहती है। इस लिए भोजन ठीक पचाने के लिए बांई करवट लेटे रहें वा सो जावें। इस सब कुछ लिखने का निचोड़ यही है कि भोजन के पश्चात् वामपक्ष (बाईं करवट) लेटना वा शयन करना चाहिये। इससे भोजन ठीक पचेगा। जिनको अपचन का रोग रहता है, उन्हें बाईं करवट सोना चाहिए। किन्तु ब्रह्मचारियों को भोजन इतना पहले करना चाहिये कि शयन काल तक भोजन पच जाये। शयन के समय उनका भोजन पचा हुआ व पेट हल्का होना चाहिये और उन्हें दाईं करवट सोना चाहिए। जिस समय दाईं करवट सोता है तो वाम स्वर (चन्द्र स्वर) चलता है और इससे ब्रह्मचारी अथवा सोने वाले के मस्तिष्क तथा शरीर के सभी अंगों में शीतलता और शान्ति रहती है। निद्रा गहरी मीठी और निःस्वप्न वाली आती है। ब्रह्मचारी को सदैव स्वप्नरहित निद्रा ही आनी चाहिए और शयन काल में मस्तिष्क व शरीर में शीतलता होनी चाहिये जिससे किसी प्रकार से स्वप्न विकार द्वारा ब्रह्मचर्य की हानि न हो। इसलिए दाईं करवट सोने से यह बड़ा भारी लाभ है। इस के विपरीत वाम (बाईं) करवट सोने से दायां स्वर (सूर्य स्वर) चलता है। जिस से मस्तिष्क व शरीर के अंगों में शीतलता के स्थान पर उष्णता रहती है जिससे स्वप्नदोषादि विकार सोनेवाले को सताते हैं तथा ब्रह्मचर्य की हानि हो जाती है।

भोजन के पश्चात् तुरन्त निद्रा (तन्द्रा) सी आती है, उस समय सोना निषिद्ध और हानिकारक है। समय पर शयन और समय पर जागरण ही हितकर है, जिसको बहुत ही अजीर्ण (कब्ज) रहता हो उसे ही निद्रा के आरम्भ में कुछ समय तक बांई करवट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेटना (सोना नहीं) अच्छा रहता है। जिस से भोजन पचने में कुछ सहायता मिलती है। किन्तु ब्रह्मचारी को वामपक्ष में सोने से ब्रह्मचर्य नाश होने की आशंका बनी रहती है। वीर्यनाश से बड़ी हानि ब्रह्मचारी के लिए और क्या हो सकती है। अतः ब्रह्मचारी को दाईं करवट ही सोना चाहिए।

जिस प्रकार रोगी आदि के लिए दिन में सोने की आज्ञा दी है उसी प्रकार कोई रोगी ही बाईं करवट, सीधा वा उल्टा किसी वैद्य के परामर्श से कुछ काल के लिए सो सकता है। ब्रह्मचारी को सदैव दाईं करवट ही सोना चाहिए। उलटा सोना तो सब से अधिक हानिकारक है। पेट के बल सोने की आज्ञा तो किसी शास्त्र में नहीं दी, न किसी विशेष अवस्था में ही इस उलटे सोने का विधान है। सीधा सोने से निद्रा गहरी तथा निरन्तर नहीं आती। अपचन आदि रोग भी सीधा सोने से अधिक होते हैं। सीधा सोने से स्वप्न अधिक आते हैं। छाती पर हाथ आने से तो श्वास की गति भी रुकती वा भारी हो जाती है। श्वास खिचकर जोर के खर्राटे की आवाज करने लगता है। यहां तक कि इतने वेग से ऊंचा शब्द करता हुआ चलता है कि निकट सोनेवाले की नींद भी उसके शब्द से टूट जाती है। छाती पर हाथ आने में ही स्वप्न अधिक मात्रा में आते हैं तथा अर्धनिद्रा में व्यक्ति जोर से बोलने (बड़बड़ाने) लगता है। कितनी ही छिपाने वाली रहस्य की बातें बोलते बोलते बता डालता है। पुलिस कितने भेद इसी प्रकार निकाला करती है। अतः सीधा सोनेसे निद्रा विक्षिप्त अवस्था में रहती है, गाढ़ी मीठी और अटूट रूप में नहीं आती है ऐसी अवस्था में स्वप्न, जो कि ब्रह्मचारी को नहीं आने चाहियें, अधिक आते हैं। किसी भी कारण से स्वप्नदोष होने की संभावना रहती है। अतः सीधा नहीं सोना चाहिए।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेखला धारण

जहां मेखला धारण के अनेक और लाभ हैं, वहां यह भी लाभ है कि मेखला की ग्रन्थि (गांठ) पीठ पर मेरुदण्ड के ऊपर रहती है। जो सीधा सोने में बाधा डालती है, चुभती है और सामान्यावस्था में तो ब्रह्मचारी को सीधा नहीं सोने देती। इसी के कारण ही एक करवट सोने का स्वभाव बन जाता है।

अतः प्राचीन काल से अब तक मेखला धारण करने की पवित्र प्रथा चली आती है जिसको अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने एक धक्का लगाकर न्यून किया। जिसके फलस्वरूप शिक्षित समाज अन्त्रवृद्धि (आंत का बढ़ना) हिरणिया अण्डकोष की वृद्धि आदि रोगों के रूप में भुगत रहा है। ऋषियों की चलाई मेखला (तागड़ी) आदि के धारण करने से कितने ही रोगों से छुटकारा होता है तथा यह ब्रह्मचर्य के पालन में अत्यन्त सहायक है। इस विषय में विस्तार से फिर लिखूंगा। यहां तो पाठक इतना ही समझ लें कि मेखला धारण करके सीधा सोने से ब्रह्मचारी बचेंगे। स्वप्न आदि न आ कर गहरी नींद आयेगी और यथार्थ जो निद्रा का लाभ, पुनः शक्ति की प्राप्ति है, पूर्ण रूप से उन्हें ही होगा। पूर्ण सुखमय निद्रा स्वप्न-दोषादि रोगों से सुरक्षित रहने का शस्त्र रूप मेखला ही है, नहीं तो स्वप्नदोष, अन्त्रवृद्धि का आखेट होना, फिर उन से छुटकारा पाने के लिए चमड़े की पेटी बाँधना अथवा शल्य क्रिया (आप्रेशन) द्वारा डाक्टरों के पञ्जे में फंसकर धन और जन वा जीवन की आहुति देनी होगी। इसी विषय पर हमारे एक सौराष्ट्र के आर्य युवक के समाचार मिले कि उस ने आन्त्र वृद्धि के कारण आन्त का आप्रेशन करवाया किन्तु डाक्टर हजरत ने उस के उदर की छोटी आंत काट डाली। उस का एक बार ही नहीं चार बार आपरेशन हो चुका है;

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और पांच सात हजार रुपया व्यय हो चुका है, किन्तु दुर्दशा ऐसी हो रही है कि नाभि से खाया पीया निकल जाता है। शरीर से सुदृढ़ था मेखला लंगोट बांधे रहता और डाक्टरों के चक्कर में न आता तो यह दुर्गति क्यों होती। अतः मेखला, लंगोट को छोड़ कर युवामात्र कच्छा धारण करना आजकल के शिक्षितसमाज की बड़ी भारी मूर्खता है। पठित समाज में जितने दुर्गुण और दुर्व्यसन देखने में मिलते हैं उतने अशिक्षित समाज में नहीं। परमात्मा इन्हें सुबुद्धि दे कि यह मेखला, शिखा सूत्र और कौपीन जो वेद की आज्ञा अनुसार परोपकारी ऋषि महर्षियों ने हमारे कल्याणार्थ प्रचलित किये हैं, मेरा शिक्षित युवक वर्ग श्रद्धापूर्वक अपनाये जिससे हम इस ऋषि सन्तान को फलता फूलता देखें।



CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

दो शब्द

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राचीनकाल में गुरुकुलों में वेदों के विद्वान् देवसंज्ञक आचार्य यज्ञोपवीत संस्कार करवाते थे और फिर वे वेदारम्भ संस्कार के समय मेखला कौपीनादि वस्त्र दण्ड और कमण्डलु धारण कराते थे। मेखला (तागड़ी) ब्रह्मचर्य पालन के लिए दीक्षा के रूप में एक चिह्न के रूप में गुरुओं के द्वारा परिपाटी चली आती थी। महाभारत के पश्चात् जब गुरुकुल शिक्षाप्रणाली लुप्त हो गई तो मेखला धारण करने की रीति तो चलती रही किन्तु गुरु के स्थान पर घरों में माताओं ने यह कार्य अपने ऊपर ले लिया और आज तक माताएं ही इसको बांधकर इस श्रेष्ठ पद्धति को चलाती रही हैं। इसके महत्त्व को प्रायः सभी भूल गये। गुरुकुलों में भी इसका बांधना अनिवार्य नहीं समझा गया। इस कल्याणकारी ऋषियों की प्रिय मेखला, जो ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य की प्राणों के समान रक्षक है, की ओर ध्यान नहीं दिया। किसी किसी वेदभक्त अनुभवी आचार्य ने अपने ब्रह्मचारियों को मेखला बांधकर जनता का ध्यान इस ओर अवश्य खींचा। किसी वेद के विद्वान् ने मेखला सूक्त पर लिखकर इसकी महत्ता पर अच्छा प्रकाश नहीं डाला। महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि में इसे बांधने पर बल दिया है इसे सदैव धारण करने के लिये ब्रह्मचारी का नित्य धर्म कर्त्तव्य बताया है। श्रद्धावश अपनी बुद्धि तथा अनुभव के आधार पर जनकल्याण की भावना से मेखला सूक्त पर कुछ लिखने का यत्न किया है। इसे पढ़ें और मेखला धारण करके लाभ उठावें।

ओमानन्द सरस्वती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

क्र०	विषय	पृष्ठांक
१.	ब्रह्मचारी के तीन धार्मिक चिह्न	३१२
२.	मेखला सूक्त	३१४
३.	वेद में देव शब्द	३१४
४.	देवों द्वारा मेखला बन्धन	३१७
५.	मेखला धारण का मन्त्र	३२१
६.	मेखला के नाम	३२३
७.	शास्त्रों में मेखला	३२४
८.	मेखला के निर्माण में विकल्प	३२५
९.	मूंज के गुण	३२५
१०.	मूंज के नाम	३२५
११.	मेखला के अर्थ	३२७
१२.	मेखला वा कौपीन	३३०
१३.	मेखला और अन्त्रवृद्धि	३३१
१४.	लंगोट वा कौपीन कैसी हो	३३२
१५.	मेखला टूटने पर क्या करें	३३३
१६.	मेखला की गांठें	३३४
१७.	गांठों के लाभ	३३४
१८.	वीरों की मेखला	३३७
१९.	देवों और ऋषियों में भेद	३३८
२०.	सात प्रकार के विद्वान्	३३८
२१.	ऋषि और देवों का निर्माण	३४०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्र०	विषय	पृष्ठांक
२२.	देवों की उत्पत्ति	३४१
२३.	मृत्यु का ब्रह्मचारी	३४६
२४.	ऋषियों की स्वसा मेखला	३५१
२५.	श्रद्धा योगी की जननी के समान	३५७
२६.	शूरवीर क्षत्रिय	३५९
२७.	धीर के लक्षण	३६०
२८.	ऋषियों की मेखला	३६१
२९.	अट्ठासी सहस्र ऋषि	३६४
३०.	कवित्त	३६७
३१.	शूरवीर ब्रह्मचारी	३६८
३२.	महर्षि दयानन्द और वेद	३६९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ब्रह्मचर्य के साधन

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेखला

[एकादश भाग]

ब्रह्मचारी के तीन धार्मिक चिह्न

ब्रह्मचारी तीन धार्मिक चिह्नों को धारण करता है।

(१) शिखा

जिसको चोटी भी कहते हैं। जब बालक एक वर्ष का वा तीन वर्ष का हो जाता है उस समय उस का मुण्डन वा चूडाकर्म संस्कार होता है। इसमें बालक के शिर के सभी बाल वा केश कटवा दिये जाते हैं। केवल शिखा (चोटी) रक्खी जाती है। वैसे दूसरी बार बाल मुण्डवाते समय शिखा वा चोटी रखवाना अच्छा माना जाता है।

(२) सूत्र वा यज्ञोपवीतः—

विद्या का चिह्न है जिसे ब्रह्मचारी उपनयन संस्कार के समय धारण करता है। घर पर इसे माता पिता तथा गुरुकुल में आचार्य यज्ञोपवीत संस्कार कर सूत्र वा जनेऊ को धारण कराता है। वेद में आदेश भी हैः-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रिस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

अथर्व. ११। ७। ३॥

आचार्य ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कराके अपने पास लाता है अर्थात् यहां तक निकट लाता है उसे अपने गर्भ में धारण कर लेता है, उसका माता के समान धारण-पोषण करता है। आचार्य की छत्र-छाया में रहकर उसका विद्या का द्वितीय जन्म होता है, जिससे वह द्विज कहलाता है। जब तक उसका तीनों प्रकार का अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अज्ञान दूर नहीं कर देता तब तक अपनी देख रेख में रखता है। यही आचार्य के गर्भ की तीन रात्रियां हैं। प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा सम्बन्धी अज्ञान की ही तीन अन्धकारमय रात्रियां हैं, इनको दूर करके आचार्य ब्रह्मचारी को दर्शनीय विद्वान् बना देता है तब उस ब्रह्मचारी का सब देव विद्वान् लोग आदर सम्मान करते हैं और ब्रह्मचारी का ब्रह्मसूत्र=यज्ञोपवीत धारण करना, आचार्य के समीप आना (उपनयन धारण करना) सार्थक हो जाता है। वह ज्ञानी तेजस्वी ब्रह्मचारी विद्वान् होकर चतुर्थ प्रकाशमय अवस्था अर्थात् देवों के ऊंचे स्थान को प्राप्त करता है। जनेऊ धारण करने का समय ५ वर्ष की आयु से लेकर १२ वर्ष की आयु तक माना है। यह ब्रह्मचारी का द्वितिय धार्मिक चिह्न यज्ञोपवीत जनेऊ वा उपनयन कहलाता है। इसे विद्या पढ़ने में समर्थ सभी बालक-बालिकायें धारण करते हैं।

३ मेखलाः—

ब्रह्मचारी का तृतीय चिह्न मेखला है जिसे तगड़ी वा तागड़ी भी कहते हैं। इसे धारण करने का समय भी सामान्यावस्था में ५ वर्ष से लेकर १२ वर्ष की आयु तक ही है। वेदारम्भ संस्कार के समय ही विद्वान् आचार्य ब्रह्मचारी को मेखला धारण कराता है। आजकल घरों में मातायें ही बालकों के मेखला, तगड़ी बांध देती हैं। पहले कन्यायें भी मेखला तथा जनेऊ धारण करती थीं। आजकल केवल लड़के ही मेखला तगड़ी पहनते हैं। कन्यायें तगड़ी नहीं पहनतीं। विवाह होने पर आभूषण के रूप में चांदी की तगड़ी (मेखला) पहनती हैं। पुरानी मूर्तियों में देखने से तो यही प्रमाणित होता है कि स्त्री पुरुष दोनों ही मेखला धारण करते थे। देवसंज्ञक विद्वान् ही ब्रह्मचारी को मेखला प्रदान करता है। वेद में मेखला सूक्त में इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस सूक्त में पांच मन्त्र आते हैं। जिनकी व्याख्या नीचे की जाती है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेखला सूक्त

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः सन्ननाह य उ नो युयोज। यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो विमुञ्चात् ॥ अथर्व ६।१३३।१॥

अर्थः- (यः देवः) जिस देवसंज्ञक विद्वान् आचार्य, गुरु ने (नः)हमारे (इमां) यह (मेखलां) मेखला तगड़ी (आबबन्ध) अच्छी प्रकार बांधी है। (यः सन्ननाह) जिसने सजाई है (उ) और (यः युयोज) जिसने संयुक्त की है(यस्य)जिस(देवस्य)विद्वान्, आचार्य के(प्रशिषा) उत्तम शासन से (चरामः) हम (ब्रह्मचारी) विचरते वा चलते हैं (सः) वह (नः) हमें (पारम्) पार (इच्छात्) लगावे (सः उ) वह ही कष्टों से, दुःखों से, सर्व प्रकार के बन्धनों से (विमुञ्चात्) मुक्त करे, छुड़वाये।

महर्षि दयानन्द इस युग में आप्त पुरुष हुए हैं। "आप्तोपदेशः शब्दः" (न्यायदर्शन १।१।७)। आप्त पुरुष का उपदेश वा कथन सत्य होता है अतः वह शब्द प्रमाण की कोटि में आजाता है, इसीलिए वह सब को माननीय होता है। महर्षि देव दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं:—"विद्वांसो हि देवाः" (शतपथ-ब्राह्मण ३।७।३।१०) "जो विद्वान् हैं, उन्हीं को देव कहते हैं। जो सांगोपांग चार वेदों के जाननेवाले हैं उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून कहे हों, उनका नाम देव अर्थात् विद्वान् है।"

वेद में देव शब्द

महर्षि दयानन्द "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" ऐसा मानते हैं और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त सभी ऋषि-महर्षि इसी सिद्धान्त को मानते आये हैं। मनु जी महाराज ने:—

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

धर्म का यथार्थ रूप जानने के लिये परम प्रमाण वेद को

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
ही माना है। वेद में देव शब्द का बहुत ही प्रयोग हुआ है।

देव शब्द "दिवु" धातु से बना है, इसके बारह अर्थ हैं। खेलना जीतने की इच्छा, व्यवहार(आदान-प्रदान), प्रकाश, प्रशंसा, आनन्द, अहंकार, निद्रा, शोभा, गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) आदि। देवों का देव सबसे बड़ा विद्वान् होने से परमात्मा को भी देव कहते हैं।

(१) यह संसार परमात्मा और विद्वान् दोनों का क्रीडा क्षेत्र है। परमात्मा संसार का कर्त्ता-धर्त्ता और हर्त्ता है, वह सृष्टि की रचना करता है, सब प्राणियों का पालन-पोषण करता है और सब जीवों के कर्मों का, यथायोग्य कर्मों का फल देकर सुखी वा दुःखी रखता है, यही प्रभु का खेल है। विद्वान् भी विद्या के द्वारा अपनी क्रीडा करता है, अविद्या का नाश करके प्राणियों को अनेक प्रकार के सुख प्रदान करता है। देव कोटि का विद्वान् ईश्वर की आज्ञानुसार चलकर अपना खेल खेलता है। वह खूब आनन्द लेता है और अपनी विद्या के द्वारा अन्य प्राणियों को सुख प्रदान करता है। मूर्ख अपनी मूर्खता से ऐसे खेल खेलते हैं जो अनेक दुःख और बन्धन के कारण होते हैं।

(२) विद्वान् अपने सब कार्यों में सफल होते हैं, विजय उनके पैर चूमती है। मूर्खों की पग-पग हार होता है।

(३) देव व्यवहारकुशल होते हैं, मूर्ख इसके विपरीत व्यवहार शून्य होते हैं।

(४) देव ज्ञानी तथा दूसरों को ज्ञान देने वाले होते हैं, ज्ञान का प्रकाश ही तो उनको अनेक दिव्य गुणों से भर देता है, इसी प्रकाश से वे संसार के पथप्रदर्शक वा गुरु बनते हैं।

(५) अनेक विद्यादि दिव्य गुणों के कारण उनकी स्तुति वा प्रशंसा होती है, क्योंकि वे देव परोपकार में ही लगे रहते हैं।

(६) देवों के स्वप्न संसार को स्वर्ग बनाने के होते हैं। वे शरीर और मस्तिष्क स्वस्थ रखने के लिये उचित मात्रा में निद्रा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का सेवन करते हैं।

(७) परमात्मा की आज्ञानुसार आचरण करने से देव सदैव मुदित=प्रसन्नचित्त आनन्द में रहते हैं।

(८) देवों में स्वात्माभिमान होता है, मिथ्या अभिमान अहंकार नहीं होता।

(९) अपने दिव्य गुणों के कारण उनमें विशेष कान्ति=कमनीयता होती है। उनकी यह कान्ति वा तेज सब के आकर्षण का कारण बनता है।

(१०) सब विद्याओं के द्वारा देव संज्ञक विद्वान् संसार में अविद्या का नाश करके विद्या का प्रकाश फैलाते हैं।

(११) देव सदैव शुभ कर्मों के करने के लिये पुरुषार्थ करते हैं, जुटे रहते हैं, मूर्ख प्रमादी आलसी अथवा अधर्म पाप करने में अपने कर्त्तव्य की पूर्ति समझते हैं।

(१२) देव अपने जीवन में पृथ्वी से लेकर परमात्मा पर्यन्त का ज्ञान करते तथा अन्यों को कराते हैं। वे स्वयं जीवनमुक्त होते हैं और अन्यों को भी जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की ओर प्रवृत्त करते हैं। ये अर्थ विद्वान् और परमात्मा दोनों में घटते हैं इसलिये दोनों ही देव कहलाते हैं।

वेद के व्याकरण निरुक्त में महर्षि यास्क ने निम्न प्रकार से देव शब्द के अर्थ किये हैं :—

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा ॥

अ. ७ पा. ४ ख. १५

दान देने से देव नाम होता है, जो अपने विद्यादि सभी पदार्थों को संसार के हितार्थ देता है, वह विद्वान् देव नाम से संसार में प्रसिद्ध होता है। दीपन विद्या का प्रकाश करने से, द्योतन सत्योपदेश देने से विद्वान् को देव कहते हैं। सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करने से सूर्यादि लोकों को भी देव कहते हैं। माता, पिता,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

आचार्य और अतिथि, विद्वान् संन्यासी भी पालन, विद्या और सत्य उपदेश के करने से देव कहे जाते हैं। इन सब देवों का देव आदि गुरु ईश्वर भी अपने उपरोक्त गुणों के कारण सब से बड़ा देव महादेव कहलाता है।

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवों द्वारा मेखला बन्धन

इस मन्त्र में देव शब्द का प्रयोग विद्वान् आचार्य गुरु के लिये हुआ है वह ही अपने ब्रह्मचारियों के मेखला बांधता है। क्योंकि मेखला के समान पवित्र चिह्न के द्वारा व्रत में बांधने का अधिकार केवल वेद भगवान् ने देवसंज्ञक आचार्य को ही दिया है। क्योंकि :—

"सदा देवा अरेपसः"

देवसंज्ञक निष्काम ज्ञानी विद्वान् आचार्य सदा निर्दोष और निष्पाप होते हैं, क्योंकि वे पवित्र वेद के ज्ञान की गंगा बहा कर सारे संसार के पाप तथा दोषों को धो डालते हैं, सब को ज्ञानामृत पिलाकर निष्पाप करके इनका धारण पोषण करते हैं। ये देव स्वयं परिश्रमी होते हैं और

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः"

परिश्रम के बिना देव किसी के मित्र वा सखा नहीं बनते, वे पुरुषार्थियों के ही साथी होते हैं। क्योंकि देवों की मित्रता का लाभ परिश्रम से थके हुये मानवों को ही प्राप्त होता है। देवों का देव भगवान् भी :—

'इन्द्र इच्चरतः सखा"

पुरुषार्थी के ही सखा सहायक होते हैं और देव संज्ञक विद्वान् "प्रशिषं यस्य देवाः" परम देव भगवान् के प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन न्याय और उसकी एकमात्र आज्ञा को मानते हैं। इसलिये वे भी ईश्वर के समान पुरुषार्थी, विद्यार्थी से विशेष स्नेह करते हैं। इसीलिये नीतिकारों ने इस सत्य को इस प्रकार प्रकट किया है :-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुखार्थी चेत्त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत् सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ॥

(चाणक्यनीतिशास्त्र अ० १ श्लो-३)

प्राचीनकाल में विद्यालयों में इस प्रकार के श्लोक द्वारों पर लगे रहते थे। अर्थात् सुख चाहनेवाले को विद्या कहां एवं विद्या चाहनेवाले को सुख कहां, इसलिये सुख चाहनेवाला विद्या को छोड़ देवे एवं विद्यार्थी सुख को छोड़ देवे। यहां सुख से अभिप्राय सांसारिक भोग विलास है, जो परिणाम में विष के तुल्य होता है।

सांसारिक विषय भोग के मिथ्या क्षणिक सुख से देव लोग सदैव स्वयं दूर रहते हैं। तथा शिष्य ब्रह्मचारियों को भी दूर रखते हैं। किन्तु देव विद्वान् आचार्य ही आनन्दकन्द भगवान् की आनन्द मयी गोद में बैठने का अधिकार प्राप्त करते हैं और मोक्षरूपी आनन्दामृत पान करने का सौभाग्य देवों को ही मिलता है। "यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त" अर्थात् जिस सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्षरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्षरूप आनन्दामृत को प्राप्त होके देव संज्ञक विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक अपना अधिकार समझते हुये विचरते हैं, क्योंकि उसकी प्राप्ति के लिये संयम, ब्रह्मचर्यव्रत का सेवन देव बनने के लिये करते हैं। ब्रह्मचर्यरूपी तप से ही वे देव विद्वान् आचार्य पद "आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः" को प्राप्त करते हैं। सच्चा ब्रह्मचारी ही यथार्थ में आचार्य होता है और वह अपने शिष्य ब्रह्मचारियों को अपनी सन्तान मान उनका पालन पोषण करता है, इसीलिये आचार्य प्रजापति भी कहलाता है। ब्रह्मचारी ही "आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते" अपने शिष्य को ब्रह्मचारी बना सकता है, केवल शब्दों के उपदेश का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, प्रभाव तो आचरण का पड़ता है, इसीलिये "आचारं ग्राहयति इति आचार्यः" आचार की शिक्षा,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
अपने उच्च आचरण की शिक्षा देकर विद्यार्थी को आचारवान् बनाने से आचार्य संज्ञा को प्राप्त होता है। आचार्य तो यथानाम तथा गुण होता है। इसी ब्रह्मचर्य के पालन से देव बनकर महादेव प्रभु को प्राप्त करते हैं।

"यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" उस परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मचर्य की साधना वा पालन विद्वान् लोग करते हैं, क्योंकि "तेषामेष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यम्" ब्रह्मलोक उन्हीं का है, जो ब्रह्मचर्य के पालनार्थ तपस्या करते हैं, अर्थात् तपस्वी ब्रह्मचारी तप करके देव बनकर प्रभु की प्राप्ति करते हैं। क्योंकि देवों का देव परमात्मा स्वयं ब्रह्मचारी है और वह ब्रह्मचारी निष्काम देव विद्वानों का ही "तच्चक्षर्देवहितम्" हितैषी है, हित साधक है। इसीलिये अपने हितैषी पूर्ण ब्रह्मचारी प्रभु के प्रशासन "प्रशिषं यस्य देवाः" आज्ञा में देव लोग चलते हैं और उसकी छत्र-छाया वा आश्रय को "यस्य च्छायामृतम्" अमृत के तुल्य मानते हैं। और "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" (अथर्व वेद) ये ही निष्काम ज्ञानी देव लोग ब्रह्मचर्यरूपी तप से मृत्यु को दूर भगाते हैं, मृत्यु को जीत लेते हैं।

ऐसा देव विद्वान् आचार्य जिसने अपने आप को ब्रह्मचर्यरूपी तपस्या की भट्ठी में खूब तपाया है, वह अपने ब्रह्मचारियों को मेखला के व्रतबन्धन से अच्छी प्रकार बांधता है। वह उसे इस प्रकार बांधता है कि वह उन ब्रह्मचारियों के लिये बन्धन नहीं रहती, किन्तु वह आभूषण का रूप धारण कर लेती है, वह मेखला उन ब्रह्मचारियों को सजती है और वे उससे सजते हैं। इसीलिये ब्रह्मचारी मस्त होकर कहते हैं कि यह मेखला हमारे आचार्य ने हमारे (आबबन्ध) अच्छी प्रकार बांधी है। यही नहीं, किन्तु (यः संननाह) उस देव ने सुन्दर आभूषण के समान इस मेखला को सजाया है और यह मेखला हमारे साथ (यः युयोज) जिसने संयुक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
की है अर्थात् इस मेखला के साथ सदा के लिये हमारे अटूट सम्बन्ध जोड़ दिया है। हम ब्रह्मचारी इस के साथ जुड़ गये हैं, बन्ध गये हैं। और यह मेखला हम ब्रह्मचारियों के साथ जुड़ गई, बन्ध गई। अब इस के बन्धन को बन्धन नहीं, किन्तु हम ब्रह्मचारी आभूषण मानने लगे हैं क्योंकि इस के द्वारा हम महान् व्रत, ब्रह्मचर्य व्रत की साधना में सफलता प्राप्त करेंगे, जिससे हम अपने विद्वान् गुरु निष्काम देव की आज्ञा में रहकर वा चलकर इस भवसागर से पार हो जावेंगे। हमारे देव गुरु ने यह मेखला हमें संसार के बन्धनों से दुःखों से, कष्टों से छुड़ाने के लिये बांधी है। यह मेखला का बन्धन अन्य सब बन्धनों से छुड़ाकर हमें पार ले जायेगा। इसीलिये अपने देव गुरु के इस बन्धन को हम ब्रह्मचारी आभूषण मानते हैं क्योंकि इसी के द्वारा ब्रह्मचर्यामृत को पान करके हम देव बनेंगे, मृत्यु को जीतेंगे और अमरपद को प्राप्त करेंगे। पुनः ऐसे देवों के सुन्दर बन्धन को, मेखला को सर्वश्रेष्ठ आभूषण क्यों न मानें? क्योंकि इसी नौका के द्वारा हम सबको आचार्यदेव सब दुःखों से बचाकर भवसागर से पार उतारेंगे।

इस मन्त्र का सार तो यही है कि ब्रह्मचारी हर्षोल्लसित होकर श्रद्धापूर्वक गर्वपूर्ण भाषा में कह रहे हैं, उनकी वाणी ही नहीं हृदयस्थित आत्मा बोल रहा है, हमारे पूजनीय गुरु देवतास्वरूप आचार्य ने हम सबको यह मेखला बहुत ही अच्छी प्रकार से बांधी है, बांधी क्या आभूषण के रूप में सजाई है यह हमें इतनी प्रिय लगती है कि इससे हम सदैव के लिये संयुक्त होगये हैं, सम्बन्धित होगये हैं। मेखला का बन्धन हमारे लिये बन्धन नहीं. आभूषण है, सजावट है, क्योंकि यह सम्बन्ध हमारे परमहितैषी विद्या और आचार के शिक्षक आचार्य ने इस मेखला से कराया है फिर यही सम्बन्ध अटूट है। हम इसे कैसे छोड़ सकते हैं। यह हमारे सब प्रकार के बन्धनों को, दुखों को दूर करने के लिये, सफल जीवन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
करने के लिये और जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिये तथा इस भवसागर से पार उतर कर परमधाम को पहुँचने के लिये विधिपूर्वक दी हुई मेखला हमारे लिये आचार्यप्रवर का, देवताओं का वरदान है। हम ब्रह्मचारी तो आचार्य के अधीन रहके "आचार्याधीनो वेदमधीष्व" नित्य सांगोपांग वेद पढ़ने का व्रत ले चुके हैं, "आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात्" हमने सर्वथा सर्वदा के लिये आचार्य के अधीन रहते हुये उनकी आज्ञानुसार चलने का व्रत ले रखा है क्योंकि वे धर्मात्मा हैं, आचार के धनी हैं, आचार की साक्षात् आदर्श मूर्त्ति हैं, वे हमें अधर्म करने का उपदेश तो कभी स्वप्न में भी नहीं दे सकते। उन्होंने मेखला को धारण करना तो हमारा नित्य धर्म बताया है। फिर इस पवित्र कल्याणकारी मेखला का, जो हमारी ब्रह्मचर्य व्रत की साधिका है, हम कैसे त्याग कर सकते हैं। हमारी कटि पर मेखला बांधकर, सजाकर तो हमें ब्रह्मचर्य पालन की दीक्षा देकर सन्नद्ध कर दिया है, सज्जित कर दिया है। "कसली है कमर अब तो कुछ करके दिखा देंगे" अब कटिबद्ध होकर सच्चे ब्रह्मचारी बनेंगे। "ब्रह्मचारी असि असौ" आज से तू ब्रह्मचारी है, ये शब्द हमारे लिये आचार्य देव ने कहे हैं। क्या हम इसे अपने आचरण से सत्य सिद्ध कर नहीं दिखायेंगे? अवश्यमेव। मेखला धारण करते समय प्रत्येक ब्रह्मचारी ने आचार्य के सम्मुख यह मन्त्र बोला है:-

मेखला धारण का मन्त्र

इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥
(पारस्कर गृह्यसूत्र का २ क० २ सू० ८)

इसी मन्त्र का उच्चारण आचार्य ब्रह्मचारी से करवाकर मेखला धारण कराता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी इसी मन्त्र को बोल तथा बुलवा कर आचार्य के द्वारा पहले से बनाकर रक्खी हुई

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुन्दर चिकनी मेखला बालक के कटि पर बांधने का आदेश दिया है। यह मेखला ब्राह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुष संज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की धारण करनी चाहिये, ऐसा संस्कार विधि में लिखा है।

पारस्कर गृह्यसूत्र का जो ऊपर मन्त्र दिया है उससे मेखला के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

अर्थः-(इयं मेखला) यह मेखला मुञ्जादि की बनी हुई (स्वसा, सुभगा) भगिनी (बहन) के तुल्य सौभाग्यवती ऐश्वर्य प्रदान करने वाली (देवी) दिव्य गुणोंवाली है अथवा सुन्दर चमकनेवाली है और (दुरुक्तं) निन्दायुक्त वचन को (परिबाधमाना) सब ओर से हटाती हुई और (वर्णं पवित्रं पुनती) वर्ण भाव को पवित्र करती हुई और (प्राणापानाभ्याम्) प्राण और अपान वायु को ठीक रखने के कारण (बलमादधाना) बल को देनेवाली है। (इयम्) यह मेखला (मे) मुझे (आगात्) अच्छी प्रकार से प्राप्त हुई है।

इस मन्त्र में मेखला को बहन के समान हितकारिणी ऐश्वर्य देनेवाली और दिव्यगुणोंवाली माना है। यह सुन्दर और चमकने वाली चिकनी होनी चाहिये। चुभनेवाली कुरूप न हो। इसके धारण करने से प्राण और अपान दोनों की गति ठीक होती है। वीर्य-रक्षा में सहायक होनेवाली, बल देने वाली मेखला होती है। ब्रह्मचर्य-पालन से बलवान् होने पर ब्रह्मचारी की सर्वत्र प्रशंसा ही होती है। उसका वर्ण=रंग निखर आता है। मुख पर लाली वा तेज होने से ब्रह्मचारी सब को अच्छा लगता है। उसकी कोई निन्दा नहीं करता। सच्चे ब्रह्मचारी के तेज से निन्दक भी दब जाते हैं। फिर क्यों न ब्रह्मचारी मेखला के प्रति श्रद्धापूर्वक यह वचन कहेगा कि "यह मेखला मेरे देवतास्वरूप आचार्यप्रवर ने मुझे मेरे कल्याणार्थ विधिपूर्वक वेद-आरम्भ संस्कार में प्रदान की है। मैं इसको सदैव आभूषण के रूप में धारण करूंगा। क्योंकि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मेरे मुख्य व्रत ब्रह्मचर्य साधना में यह मेरी परम सहायिका है। यह भी यज्ञोपवीत के समान पवित्र है। मेखला बल का भण्डार है, मेरे जीवन का आधार है। इसीलिये मुझे यह प्रिय और मुझे इससे प्यार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी द्विज कहलानेवाले वर्णों को पवित्र करके शोभा बढ़ानेवाली है।"

मेखला के नाम

अमरकोष में इसके अनेक नाम दिये हैं :—

स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा ॥१०८॥
क्लीबे सारसनं चाथ पुंस्कट्यां शृंखलं त्रिषु ॥

स्त्रियां जो मेखला धारण करती थीं उसके मेखला, काञ्ची, सप्तकी, रशना (रसना) और सारसनम् पांच नाम हैं। इसको सिञ्जनी और करधनी भी कहते थे। पुरुषों की मेखला का नाम शृंखल या शृंखला भी कहलाता था। कुछ ग्रन्थकार इस भेद को इस प्रकार मानते हैं :—एक (१) लड़ीवाली करधनी को काञ्ची, आठ (८) लड़ीवाली को मेखला, सोलह (१६) लड़ीवाली मेखला को रशना और पच्चीस (२५) लड़ीवाली को कलाप कहते थे। किन्तु यह भेद तब बने होंगे जब स्त्रियां इसे सोने चांदी की मेखला बनवाकर आभूषण के रूप में धारण करने लगीं। पुरुषों की मेखला का नाम शृंखल या शृंखला, शास्त्र में तो कहीं प्रयोग नहीं हुआ है। वेद शास्त्रों में तो सर्वत्र मेखला का प्रयोग हुवा है। ये भेद तथा नाम सब पीछे के प्रतीत होते हैं, जब देवियों ने इसको आभूषण के रूप में धारण किया। तभी ये सोने चांदी की बनने लगी होंगी। देवियों में सोने चांदी की मेखला आभूषण के रूप में अब भी प्रचलित हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रों में मेखला

शास्त्रों में तो वर्ण भेद से मुञ्जादि की मेखला का वर्णन मिलता है। मनुस्मृति अ० २ में इस प्रकार लिखा है:—

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥४२॥

ब्राह्मण को मूञ्ज की तीन लड़ की मेखला बनानी चाहिये। यह मेखला समान, चिकनी और सुखस्पर्श वाली हो। चुभने वाली न हो, देखने में सुन्दर हो, इसके गुण=लड़ें एक समान हों और चिकनी हों।

कुल्लूकभट्ट ने लिखा है:—

मुञ्जमयी त्रिगुणा समगुणत्रयनिर्मिता सुखस्पर्शा ब्राह्मणस्य मेखला कर्त्तव्या। क्षत्रियस्य मूर्वामयी ज्या धनुर्गुणरूपा मेखला।

क्षत्रिय को मूर्वा की दो लड़ की मेखला पहननी चाहिए। मूर्वा नाम की एक लता होती है जिससे धनुष की डोरी बनती है इसे चिनार या चुरनहार भी कहते हैं।

वैश्य को शण की तीन लड़ की मेखला धारण करनी चाहिए।

"वैश्यस्य शणसूत्रमयो" अर्थात्

शण की डोरी बनाकर उसे त्रिवृत तीन लड़ का (भाग) बट लेना चाहिए।

सामान्य रूप से "त्रिगुणा प्रदक्षिणा मेखला" मेखला तीन गुणवाली होती है इसीलिए इसका एक नाम "त्रिगुणा" भी है। आज तक रीति भी यही चली आरही है कि तीन लड़ों की मेखला बांधी जाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेखला के निर्माण में विकल्प

मनुस्मृति में लिखा है:—

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः ।
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥४३॥

यदि उपर्युक्त मुञ्ज आदि न मिले तो मुञ्ज के अभाव में ब्राह्मण को कुशा और क्षत्रिय को मुञ्ज के अभाव में अश्मन्तक और वैश्य को शण के अभाव में बल्वज से मेखला बनानी चाहिए । मेखला त्रिवृता तीन लड़वाली होनी चाहिए । मेखला में एक तीन वा पांच ग्रन्थियां हो सकती हैं । कुछ का मत ऐसा है कि ब्राह्मण को एक क्षत्रिय को तीन और वैश्य को पांच ग्रन्थियां लगानी चाहिएं ।

जिन मूंजादि से मेखला बनती है उनके गुण निघण्टु में इस प्रकार लिखे हैं:—

मूंज के गुण

भद्रमुञ्जः शरो बाणस्तेजनश्चक्षुवेष्टनः ।
मुञ्जो मुञ्जातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः ॥१५०॥
मुञ्जद्वयं तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा ।
दाहतृष्णाविसर्पास्रमूत्रकृच्छ्राक्षिरोगहृत् ॥१५१॥
दोषत्रयहरं वृष्यं मेखलासूपयुज्यते ।

भद्रामुञ्ज को रामशर भी कहते हैं इसके संस्कृत में भद्रमुञ्ज शर बाण तेजन चक्षुवेष्टन आदि नाम है ।

मूंज के नाम

मुञ्ज, मुञ्जातक, बाण, स्थूलदर्भ, सुमेखलादि संस्कृत के नाम है । दोनों प्रकार की मुञ्ज मधुर, कषैली, शीतल, वीर्यवर्धक और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
दाह, तृषा, विसर्प, श्राम, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग तथा तीनों दोषों को नष्ट करती है। मूञ्ज को रस्सी से मेखला बनती है इसलिए इसे सुमेखल भी कहते हैं। यह स्तम्भक वीर्य को धारण करनेवाली वीर्य-वर्धक वीर्यरक्षा में सहायक और पुष्टिकारक होती है। जिस भूमि में यह लग जाती है, किसान उसे खेती के योग्य समझते हैं।

मूञ्ज के अभाव में ब्राह्मण को कुशा वा दर्भ की मेखला धारण करनी लिखी है।

दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम् !
मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णाबस्तिरुक्प्रदरास्रजित् ॥

दर्भ कुशा दो प्रकार की होती है जिसके लम्बे पत्ते होते हैं वह डाभ कहाती है इसको क्षुरपत्र कहते हैं। इसके गुण ये हैं:—कुश और डाभ त्रिदोष नाशक, मधुर कषैले, शीतल और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तृषा, वस्तिरोग, प्रदर (स्त्री का धातु रोग) तथा रुधिर विकार नाशक हैं। उपर्युक्त गुणों के अनुसार अनेक रोगों को मूञ्ज दर्भ कुशादि की मेखला दूर करके ब्रह्मचारी को निरोग बनाकर ब्रह्मचर्य पालन वा वीर्य-रक्षा में सहायता करती है। इसी प्रकार के गुण शण ऊर्णादि में होते हैं।

शण के गुण: यह खट्टा, कषैला, वात कफ के दोषों को दूर करनेवाला, अंग टूटने के रोगों को दूर करता है। आलस्य के दूर करने में शण की मेखला सहायक है।

ऊन की मेखला ऊनी वस्त्र के समान कटिस्थल की गर्मी को बाहर जाने नहीं देगी और बाहर के गर्म वायु के प्रकोप से कटि की रक्षा करेगी। जिस प्रकार मुञ्ज कुश शण की मेखलाओं के लाभ हैं उसी प्रकार ऊन की मेखला के भी लाभ हैं। तीनों वर्णों की पृथक् पृथक् पहिचान के लिए पृथक् पृथक् वस्तुओं के द्वारा मेखला का निर्माण करना लिखा है। लाभ तो सभी मेखलाओं से होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेखला के अर्थ

प्रथम अर्थ—मेखला का अर्थ कुछ कोशों में किया है। वाचस्पत्य कोश में "मि" धातु से खलच् प्रत्यय गुण और स्त्रीलिंग में टाप् करके मेखला शब्द सिद्ध किया है।

द्वितीय अर्थ—संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में मी, खल, गुण, टाप्, करके सिद्ध किया है—"मीयते प्रक्षिप्यते कायमध्यभागे"। काय=शरीर के मध्य भाग में (कटि में) जो बांधो जाती है, उसे मेखला कहते हैं। दोनों के अर्थ एक ही हैं।

तृतीय अर्थ—कुछ विद्वानों के मत में यह अशुद्ध है। श्री पूज्य स्वामी वेदानन्द जी (माम्+ईख्+ला) इस तरह सिद्ध करते हैं। इसमें ईख धातु गत्यर्थक है। आदान अर्थवाली ला धातु से घञ् प्रत्यय भाव में है। अर्थ इस प्रकार बनता है—माम् ईख=गति लाति=आददाति=प्रापयति "आतोऽनुपसर्गे कः" से क प्रत्यय हुआ, टाप् स्त्रीलिंग में—

मुझे गति, उत्साह, ज्ञान, जागरूकता, पराक्रम शक्ति अर्थात् ब्रह्मचर्य को प्राप्त कराती है।

चतुर्थार्थः—"मा इह स्खलति अनया इति मेखला"। अनया मेखलया (धारणेन) वीर्यस्खलनं न भवति।

जिसके धारण करने से वीर्यरक्षा होती है, ब्रह्मचर्य का पालन होता है उसे मेखला कहते हैं।

पञ्चमार्थः—मां खं ब्रह्म लाति प्राप्नोति या सा मेखला अर्थात् जो मुझे परमात्मा को, मोक्ष को, वेदज्ञान को अथवा ब्रह्मचर्य को प्राप्त करवाती है वह मेखला है।

षष्ठार्थः—मे=मम खानि=इन्द्रियों को लाति=वश में करती है, मुझे जितेन्द्रिय बनाती है, ब्रह्मचारी बनाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तमार्थः-मा=जीवात्मा, ख=परमात्मा, ला=प्रकृति रूपी साधन, इन तीनों का ज्ञान कराती है उसे मेखला कहते हैं।

जिसे धारण करके बालक ब्रह्मचारी विद्वान् बलवान् निरोग स्वस्थ जितेन्द्रिय बनता है और प्रकृति से लेकर परमात्मा पर्यन्त का ज्ञान करके महान् बह्म (बड़ा) बनता है उच्चपद को प्राप्त होता है। जीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। वह शक्ति मेखला प्रदान करती है।

यथार्थ में मेखला ब्रह्मचारी का ही एकमात्र चिह्न है। यह ब्रह्मचर्य व्रत का प्रतीक है। यज्ञोपवीत शिखा तो ब्रह्मचारी गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों ही धारण करते हैं किन्तु मेखला को केवल धारण करने का अधिकारी ब्रह्मचारी ही है। इसे धारण करके ही ऋषि और देवता बनता है। देवतास्वरूप आचार्य ही इसे ब्रह्मचारी को पहनाने प्रदान करने का अधिकारी है और यह योगी देवताओं की माता, श्रद्धा की दुहिता और ऋषियों की स्वसा है। तपस्वी ब्रह्मचारी का व्रत बन्धन आभूषण है। प्राणापान को वश में कराने वाली है। प्राणों के वश में आने से मनादि सभी इन्द्रियां वश में आ जाती हैं और ब्रह्मचारी पूर्ण जितेन्द्रिय योगी बनकर, वेदादि सभी शास्त्रों की विद्या में पारङ्गत हो जाता है, व्यास की पदवी को धारण करता है।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द के शब्दों में मेखला के द्वारा ब्रह्मचर्यव्रत में दीक्षित होकर ऐसे ब्रह्मचारी ही मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रहते हैं। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम पूर्णविद्या वाले जितेन्द्रिय और निर्दोष स्त्री और पुरुष का है। अतः मेखला धारी ब्रह्मचारी निष्काम देव संज्ञक ज्ञानी के चरणों में रहकर ही पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्णयोगी बनता है और निर्दोष जितेन्द्रिय बनकर पूर्णतया स्वस्थ होकर पूर्णायु अर्थात् चारसौ वर्ष की दीर्घायु को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्रतीक है। ब्रह्मचर्य का व्रत बन्धन है। सदैव जागरूक सावधान रहने के लिए मेखला से कटि बांधी जाती है। क्योंकि थोड़ीसी असावधानी से ही ब्रह्मचर्य व्रत टूट जाता है, वीर्य खण्डित हो जाता है। ब्रह्मचारी के लिए आलस्य प्रमाद उपेक्षा असावधानी मृत्यु है। सदैव जागरूक सावधान रहनेवाला ही ब्रह्मचर्य में सफलता प्राप्त करता है।

मेखला वा कौपीन

मेखला वा कौपीन लंगोटी धारण करना एक ही बात है। क्योंकि लंगोटी वा कौपीन मेखला में ही बांधी जाती है। मेखला का मुख्य प्रयोजन कौपीन धारण करना लंगोट वा लंगोटी पहनना ही है। क्योंकि "मरद का लंगोट और घोड़े का तंग २४ घण्टे कसा रहना चाहिए"। यह पूर्ण सत्य है, मरद वा पूर्ण पुरुष वही है जो ब्रह्मचारी हो। अतः ब्रह्मचारी को एक क्षण के लिए भी लंगोट वा कौपीन के बिना नहीं रहना चाहिए। क्योंकि उपस्थेन्द्रिय वा मूत्रेन्द्रिय का संयम ही तो ब्रह्मचर्य है और कौपीन लंगोट उपस्थेन्द्रिय के संयम में परम सहायक है। हरयाणे की लोकोक्ति जो मेखला वा तगड़ी टूट जाने पर बालक चिड़ाने के लिए अपने साथी को कहते हैं। वह इसी सत्य से ओतप्रोत है। "तग्गड़ तोड़ बाणिये की छोरी" अर्थात् जिसकी तगड़ी, मेखला टूट जाती है वह दुकानदार की छोरी (लड़की) के समान निर्बल होता है। दुकानदार परिश्रम का कार्य न करने से निर्बल होता है और उस की लड़की और भी अधिक निर्बल होती है। जो मेखला तगड़ी ब्रह्मचर्य व्रत को खण्डित कर देता है, तोड़ देता है वह बणिए की छोरी (लड़की) के समान निर्बल भीरू होता है। मेखला का नाम तागड़ी वा तगड़ी इसलिए है कि इसे धारण करने से ब्रह्मचारी रहनेसे तगड़ा सुदृढ़ बलवान् रहता है। 'कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कौपीनधारी ब्रह्मचारी ही निश्चय से भाग्यवान् होता है।

लंगोटी का सच्चा सच्चा और लंगोटी का कच्चा कच्चा कहलाता है। धनैश्वर्य विद्या बल सब की प्राप्ति ब्रह्मचर्य से ही होती है। मेखला कौपीन ब्रह्मचर्य पालन में मुख्य साधन के रूप में प्रयुक्त होती है। लंगोट (कौपीन) व्यर्थ की उत्तेजना से ब्रह्मचारी को बचाता है। मूत्रेन्द्रिय के संयम में अत्यन्त सहायक है।

वीर्यरक्षार्थ सदा कौपीन बांधना, लंगोट को सदैव कसे रहना अत्यन्त श्रेयस्कर और हितकारी है। क्योंकि मूत्रेन्द्रिय की उत्तेजना से वीर्यनाश होता है और कौपीन वा मेखला इसके दूर करने में सहायक हैं। जागरण तथा शयन के समय दोनों कालों में लंगोट उत्तेजना से बचाता है। मूत्रेन्द्रिय की उत्तेजना से शरीर तथा मन दोनों ही अशान्त हो जाते हैं। यह उत्तेजना सर्वनाश का कारण बनती है। जहां लंगोट से यह दूर होती है वहां मन भी शान्त रहता है और ब्रह्मचर्य की साधना में सिद्धि वा सफलता प्राप्त होती है।

मेखला और अन्त्रवृद्धि

लंगोट वा कौपीन बांधने से अण्डकोष नहीं बढ़ते। इस भयंकर रोग से तथा इसके कष्टों से व्यक्ति सर्वथा बचा रहता है। मेखला धारण करने तथा लंगोट बांधने से अन्त्रवृद्धि-आंत उतरना (हिरणिया) आदि भयंकर कष्टदायक रोग नहीं होते।

आजकल के पढ़े लिखे शिक्षित लोग मेखला नहीं धारण करते और न ही कौपीन लंगोट बांधते। इसीलिए ७५% शिक्षितों के अण्डकोष वृद्धि आंत-उतरना (हिरणिया) आदि रोग होते हैं। फिर इनकी शल्यक्रिया (आपरेशन) कराते हैं। एवं इनमें से अधिकतर आपरेशन सफल न होने से अल्पायु में ही मर जाते हैं। अतः

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके धारण करने से स्फूर्ति रहती है, आलस्य दूर भागता है, व्यक्ति जागरूक रहता है, कार्य करने के लिये सदैव कमर कसी रहती है, लंगोट के बांधने से चलने फिरने दोड़ने परिश्रम व व्यायाम करने में सुविधा तथा गुप्त व मर्म स्थान की विशेष सुरक्षा रहती है। दो कौपीन आचार्य इसलिए देता है कि ब्रह्मचारी प्रतिदिन स्नान करते समय एक कौपीन को धोकर सुखा देवे तथा दूसरी शुद्ध कौपीन को तुरन्त धारण कर लेवे।

मेखला की गांठें

त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा।

(मनुस्मृति २। ४३)

मेखला तीन लड़वाली होती है और इसमें एक तीन वा पांच गांठें होती हैं। यहां गांठों का विकल्प है चाहे एक गांठ हों या तीन अथवा पांच गांठें हों। यहां कोई स्पष्ट विधान नहीं कि किसको कितनी गांठें लगानी चाहियें। कुछ टीकाकारों का मत है कि एक ब्राह्मण को, तीन क्षत्रिय को और पांच गंठे वैश्य को मेखला में लगानी चाहिएं। अथवा एक तीन वा पांच यथेच्छ लगावें।

गांठों के लाभ

कुछ अनुभवी ब्रह्मचारियों का यह मत है कि गांठें पीठ के पीछे लगानी चाहिएं जिससे ब्रह्मचारी सीधा सोने को भूल न करे। क्योंकि सीधा सोने से स्वप्न आते हैं और हाथ छाती पर पड़ने से दबकर सोनेवाला अधिक स्वप्न देखता है तथा बड़बड़ाने भी लगता है। ब्रह्मचारी की निद्रा बिना स्वप्न की गहरी तथा गाढ होनी चाहिए। उस समय स्वप्न कदापि नहीं आने चाहिएं। मेखलाधारी ब्रह्मचारी की कमर में मेखला की लगी हुई गांठें उसे कदाचित्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
सीधा न सोने देगी, वे चुभेंगी और नींद टूट जायेगी। इस प्रकार ब्रह्मचारी स्वप्नों से बच जायेगा। निद्रा में स्वप्न आने से यदि स्वप्न गन्दे हों तो स्वप्नदोष से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। जहां जागृत अवस्था में मेखला प्राणापान की गति को ठीक करके वीर्य-गति को ऊर्ध्व करके ब्रह्मचारी को उर्ध्वरेता बनाती है वहां निद्रा में स्वप्नों से बचाकर स्वप्नदोष रोग के द्वारा वीर्यनाश से बचाती है। गांठे चुभने से ब्रह्मचारी सीधा सोना छोड़ देता है और दांयीं करवट पर होकर स्वप्नों तथा वीर्यनाश से बच जाता है। "ब्रह्मचारी की निद्रा" नामक मेरी पुस्तक में इस पर विस्तार से लिखा है, वहां देख लेवें।

इस प्रकार मेखला दोनों अवस्थाओं में स्वसा=बहन और दुहिता=पुत्री के समान ब्रह्मचारी को वीर्यनाश से बचाकर पवित्र करती है तथा उसका हित सोचती है। यह ब्रह्मचारी को वीर्यवान् बनाकर वीर और बलवान् भी बनाती है। "जो जागत है सो पावत है जो सोवत है सो खोवत है।" हरयाणे की लोकोक्ति "जागते की कटिया, सोवते का काटड़ा" के अनुसार जागनेवाला लाभ उठाता है और सोनेवाला हानि।

वेद भगवान् ने इस सत्य को इस प्रकार कहा है:—

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योका ॥
(ऋग्वेद ५। ४४। २४)

जो जागता है उसी को ऋक् ज्ञान चाहता है, उसे यजु कर्म-काण्ड और साम उपासना में सफलता की सिद्धि मिलती है। जो जागता है उसे स्वयं सुख की वर्षा करनेवाला सोम रूप प्रभु स्वयं कहता है कि मैं तुम्हारा सखा हूँ, मित्र हूँ, मैं तेरे साथ रहूँगा। मैं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनके धारण करने से स्फूर्ति रहती है, आलस्य दूर भागता है, व्यक्ति जागरूक रहता है, कार्य करने के लिये सदैव कमर कसी रहती है, लंगोट के बांधने से चलने फिरने दोड़ने परिश्रम व व्यायाम करने में सुविधा तथा गुप्त व मर्म स्थान की विशेष सुरक्षा रहती है। दो कौपीन आचार्य इसलिए देता है कि ब्रह्मचारी प्रति-दिन स्नान करते समय एक कौपीन को धोकर सुखा देवे तथा दूसरी शुद्ध कौपीन को तुरन्त धारण कर लेवे।

मेखला की गांठें

त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा।

(मनुस्मृति २। ४३)

मेखला तीन लड़वाली होती है और इसमें एक तीन वा पांच गांठें होती हैं। यहां गांठों का विकल्प है चाहे एक गांठ हों या तीन अथवा पांच गांठें हों। यहां कोई स्पष्ट विधान नहीं कि किसको कितनी गांठें लगानी चाहियें। कुछ टीकाकारों का मत है कि एक ब्राह्मण को, तीन क्षत्रिय को और पांच गांठे वैश्य को मेखला में लगानी चाहिएं। अथवा एक तीन वा पांच यथेच्छ लगावें।

गांठों के लाभ

कुछ अनुभवी ब्रह्मचारियों का यह मत है कि गांठें पीठ के पीछे लगानी चाहिएं जिससे ब्रह्मचारी सीधा सोने को भूल न करे। क्योंकि सीधा सोने से स्वप्न आते हैं और हाथ छाती पर पड़ने से दबकर सोनेवाला अधिक स्वप्न देखता है तथा बड़बड़ाने भी लगता है। ब्रह्मचारी की निद्रा बिना स्वप्न की गहरी तथा गाढ होनी चाहिए। उस समय स्वप्न कदापि नहीं आने चाहिएं। मेखलाधारी ब्रह्मचारी की कमर में मेखला की लगी हुई गांठें उसे कदाचित्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और देव इन सात प्रकार के विद्वानों का भेद माना है।

१ "उपनीतमात्रो व्रतानुचारी वेदान् किंचिदधीय ब्राह्मणः"

अर्थात् जिस का केवल यज्ञोपवीत हुआ है, जो ब्रह्मचर्यादि व्रत का पालन करता है तथा जिसने वेदों का कुछ भाग पढ़ा है, वह ब्राह्मण है। यह प्रथम प्रकार का विद्वान् होता है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। वेद पढ़ने से ब्राह्मण कहलाता है।

२ "एकां शाखामधीय श्रोत्रियः"

ऊपर लिखे अनुसार यज्ञोपवीतधारी ब्रह्मचारी वेद की एक शाखा पढ़ने से श्रोत्रिय कहलाता है।

३ "अङ्गाध्याय्यनूचानः"

उपरिलिखित नियमपालन करनेवाला ब्रह्मचारी अङ्गों सहित वेद पढ़ने से अनूचान कहाता है।

४ "कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः"

कल्पसहित वेद पढ़ने से विद्वान् की ऋषिकल्प संज्ञा हो जाती है।

५ "सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः"

सूत्रभाष्य के साथ वेद पढ़ने से भ्रूण संज्ञावाला विद्वान् होता है।

६ "अत ऊर्ध्वं देवाः"

चारो वेदों का अध्ययन करने से अथवा चारों वेदों का विद्वान् होने से विद्वान् ऋषि संज्ञा को प्राप्त होता है।

७ "अत ऊर्ध्वं देवाः"

ऋषियों से भी जो अधिक ऊंचा हो अर्थात् अधिक विद्वान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की ओर से ब्रह्मचारी को मेखला का दान होता था।

ब्रह्मचर्यव्रत की दीक्षा देने से पूर्व आचार्य मेखला को ब्रह्मचारी की कटि पर प्रतिज्ञापूर्वक बांधता था और उसे सावधान करता था कि तू आज से ब्रह्मचारी है। मेखला के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत के बन्धन में तुझे मैं आज बांधता हूँ। मेखला बन्धन ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेते समय सर्वप्रथम क्रिया होती थी। ब्रह्मचर्यव्रत में दीक्षित होने का मेखला पूर्वरूप थी। इस बन्धन से ही ब्रह्मचर्य व्रत का प्रारम्भ होता था। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का व्रत लेते समय सर्वप्रथम आचार्य मेखला का दान करके ब्रह्मचारी की संज्ञा देता था तथा अन्य नियमों का पीछे उपदेश करता था।

वेद भगवान् ने मेखला को ऋषियों का आयुध, शस्त्र, रक्षा का साधन बताया है।

मेखला को धारण करनेवाले वीर होते हैं अथवा इसे वीर पुरुष ही धारण कर सकते हैं वा धारण करते हैं। वीरों का यह भूषण है। कायर, भीरू इसे धारण नहीं कर सकते। इसीलिये वेद ने इसे वीरों को प्राप्त होनेवाली बताया है।

देवों और ऋषियों में भेद

पहले मन्त्र में देव संज्ञक विद्वान् आचार्य को मेखला का देने वाला बताया है और इस मन्त्र में धर्म का मार्ग बतानेवाले ऋषियों का मेखला को आयुध वा शस्त्र बताया है। देव तथा ऋषि में क्या अन्तर होता है इस पर बोधायन गृह्यसूत्र (प्र० १ अ० १) में अच्छा प्रकाश डाला है।

सात प्रकार के विद्वान्

(१) ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, ऋषिकल्प, भ्रूण, ऋषि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और देव इन सात प्रकार के विद्वानों का भेद माना है।

१ "उपनीतमात्रो व्रतानुचारी वेदान् किंचिदधीय ब्राह्मणः"

अर्थात् जिस का केवल यज्ञोपवीत हुआ है, जो ब्रह्मचर्यादि व्रत का पालन करता है तथा जिसने वेदों का कुछ भाग पढ़ा है, वह ब्राह्मण है। यह प्रथम प्रकार का विद्वान् होता है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। वेद पढ़ने से ब्राह्मण कहलाता है।

२ "एकां शाखामधीय श्रोत्रियः"

ऊपर लिखे अनुसार यज्ञोपवीतधारी ब्रह्मचारी वेद की एक शाखा पढ़ने से श्रोत्रिय कहलाता है।

३ "अङ्गाध्याय्यनूचानः"

उपरिलिखित नियमपालन करनेवाला ब्रह्मचारी अङ्गों सहित वेद पढ़ने से अनूचान कहाता है।

४ "कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः"

कल्पसहित वेद पढ़ने से विद्वान् की ऋषिकल्प संज्ञा हो जाती है।

५ "सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः"

सूत्रभाष्य के साथ वेद पढ़ने से भ्रूण संज्ञावाला विद्वान् होता है।

६ "अत ऊर्ध्वं देवाः"

चारो वेदों का अध्ययन करने से अथवा चारों वेदों का विद्वान् होने से विद्वान् ऋषि संज्ञा को प्राप्त होता है।

७ "अत ऊर्ध्वं देवाः"

ऋषियों से भी जो अधिक ऊंचा हो अर्थात् अधिक विद्वान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
की ओर से ब्रह्मचारी को मेखला का दान होता था।

ब्रह्मचर्यव्रत की दीक्षा देने से पूर्व आचार्य मेखला को ब्रह्मचारी की कटि पर प्रतिज्ञापूर्वक बांधता था और उसे सावधान करता था कि तू आज से ब्रह्मचारी है। मेखला के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत के बन्धन में तुझे मैं आज बांधता हूँ। मेखला बन्धन ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेते समय सर्वप्रथम क्रिया होती थी। ब्रह्मचर्यव्रत में दीक्षित होने का मेखला पूर्वरूप थी। इस बन्धन से ही ब्रह्मचर्य व्रत का प्रारम्भ होता था। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का व्रत लेते समय सर्वप्रथम आचार्य मेखला का दान करके ब्रह्मचारी की संज्ञा देता था तथा अन्य नियमों का पीछे उपदेश करता था।

वेद भगवान् ने मेखला को ऋषियों का आयुध, शस्त्र, रक्षा का साधन बताया है।

मेखला को धारण करनेवाले वीर होते हैं अथवा इसे वीर पुरुष ही धारण कर सकते हैं वा धारण करते हैं। वीरों का यह भूषण है। कायर, भीरू इसे धारण नहीं कर सकते। इसीलिये वेद ने इसे वीरों को प्राप्त होनेवाली बताया है।

देवों और ऋषियों में भेद

पहले मन्त्र में देव संज्ञक विद्वान् आचार्य को मेखला का देने वाला बताया है और इस मन्त्र में धर्म का मार्ग बतानेवाले ऋषियों का मेखला को आयुध वा शस्त्र बताया है। देव तथा ऋषि में क्या अन्तर होता है इस पर बोधायन गृह्यसूत्र (प्र० १ अ० १) में अच्छा प्रकाश डाला है।

सात प्रकार के विद्वान्

(१) ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, ऋषिकल्प, भ्रूण, ऋषि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसीलिये मेखला को ऋषियों का आयुध रक्षार्थ शस्त्र बताया है। शस्त्र शत्रुओं से युद्ध करने के लिये होता है। ऋषियों और देवताओं के शत्रु काम-क्रोधादि होते हैं। गीता में इन शत्रुओं की इस प्रकार चर्चा की है :—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥ १६।२१

आत्मा का नाश करनेवाला नरक का यह तीन प्रकार का द्वार है। काम क्रोध और लोभ। इसलिये इन तीनों को छोड़ देवे। क्योंकि :—

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयः ततो याति परां गतिम् ॥ १६।२२।

हे कुन्तिपुत्र! मनुष्य इन तीन तमोगुण के द्वारों से छूटा हुवा अपना कल्याण करता है फिर वह परमगति को प्राप्त होता है। इन्हीं शत्रुओं के साथ देवता और ऋषि लोग युद्ध करने के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि इस अष्टांग योग की साधना करते थे। इन शत्रुओं के दमन के लिए यही शस्त्र वा आयुध थे और मेखला इन शस्त्रों का प्रतीक मात्र है। इन से युद्ध करने के लिये सदैव जागरूक रहना पड़ता था। सदा सज्जा, सदैव सावधानी, सदैव कटिबद्ध रहने के लिये मेखला कटि पर बांधी जाती थी। सब शत्रुओं के महासेनापति काम से युद्ध करने के लिये ब्रह्मचर्यव्रत था। मेखला इस साधना की प्रतीक है इसीलिये ऋषियों का इसे आयुध कहा है। क्योंकि प्राण और अपान वायु की गति को ठीक करने, वश में करने में यह सहायक है। प्राणापान को जीतने से चञ्चल मन वश में आता है। मन के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
का उनके गृह में जन्म हुआ था। इसी प्रकार धर्मात्मा योगिराज श्रीकृष्ण ने अपने समान पुत्र की कामना से तपस्या की थी।

व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम्।
दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ॥

(महo अनु० अ० १३९१ श्लोक १०)

महादेवी रुक्मिणी से विवाह के पश्चात् महाराज योगिराज श्रीकृष्ण जी ने गृहस्थ में प्रवेश नहीं किया और विष्णु पर्वत पर उपमन्यु ऋषि के आश्रम में १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया। क्षार लवण रहित भोजन और भूमि पर शयन किया, उस समय उनको नारदादि अनेक ऋषि देखने आये थे। इस व्रतपालन के फलस्वरूप अपने अनुरूप प्रद्युम्न नाम का तेजस्वी पुत्र उन्हें प्राप्त हुवा था।

प्राचीन काल में ऋषि और देव आदि विद्वान् उत्पन्न करने के लिये गृहस्थ ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके घोर तपस्या करते थे। विद्वान् बनकर ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की समाज वा राज्य से आज्ञा मिलती थी। मनु की व्यवस्थानुसारः—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥

(मनु० ३।२)

जब यथावत् ब्रह्मचर्य आश्रम में आचार्य की आज्ञानुसार वर्तते थे और चारों तीन दो वा एक वेद को सांगोपांग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुवा हो वह पुरुष वा स्त्री गृहस्थ में प्रवेश करें। वेदों का विद्वान् और ब्रह्मचरी व्यक्ति चाहे स्त्री हो वा पुरुष वही गृहस्थ में प्रवेश का अधिकारी होता था। इसीलिये उनकी सन्तान ऋषि और महर्षि देव और महादेव बनती थी।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसीलिये मेखला को ऋषियों का आयुध रक्षार्थ शस्त्र बताया है। शस्त्र शत्रुओं से युद्ध करने के लिये होता है। ऋषियों और देवताओं के शत्रु काम-क्रोधादि होते हैं। गीता में इन शत्रुओं की इस प्रकार चर्चा की है :—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥ १६।२१

आत्मा का नाश करनेवाला नरक का यह तीन प्रकार का द्वार है। काम क्रोध और लोभ। इसलिये इन तीनों को छोड़ देवे। क्योंकि :—

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयः ततो याति परां गतिम् ॥ १६।२२।

हे कुन्तिपुत्र! मनुष्य इन तीन तमोगुण के द्वारों से छूटा हुवा अपना कल्याण करता है फिर वह परमगति को प्राप्त होता है। इन्हीं शत्रुओं के साथ देवता और ऋषि लोग युद्ध करने के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि इस अष्टांग योग की साधना करते थे। इन शत्रुओं के दमन के लिए यही शस्त्र वा आयुध थे और मेखला इन शस्त्रों का प्रतीक मात्र है। इन से युद्ध करने के लिये सदैव जागरूक रहना पड़ता था। सदा सज्जा, सदैव सावधानी, सदैव कटिबद्ध रहने के लिये मेखला कटि पर बांधी जाती थी। सब शत्रुओं के महासेनापति काम से युद्ध करने के लिये ब्रह्मचर्यव्रत था। मेखला इस साधना की प्रतीक है इसीलिये ऋषियों का इसे आयुध कहा है। क्योंकि प्राण और अपान वायु की गति को ठीक करने, वश में करने में यह सहायक है। प्राणापान को जीतने से चञ्चल मन वश में आता है। मन के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का उनके गृह में जन्म हुआ था। इसी प्रकार धर्मात्मा योगिराज श्रीकृष्ण ने अपने समान पुत्र की कामना से तपस्या की थी।

व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम् ।
दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ ॥

(महo अनु० अ० १३९१ श्लोक १०)

महादेवी रुक्मिणी से विवाह के पश्चात् महाराज योगिराज श्रीकृष्ण जी ने गृहस्थ में प्रवेश नहीं किया और विष्णु पर्वत पर उपमन्यु ऋषि के आश्रम में १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया। क्षार लवण रहित भोजन और भूमि पर शयन किया, उस समय उनको नारदादि अनेक ऋषि देखने आये थे। इस व्रतपालन के फलस्वरूप अपने अनुरूप प्रद्युम्न नाम का तेजस्वी पुत्र उन्हें प्राप्त हुवा था।

प्राचीन काल में ऋषि और देव आदि विद्वान् उत्पन्न करने के लिये गृहस्थ ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके घोर तपस्या करते थे। विद्वान् बनकर ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की समाज वा राज्य से आज्ञा मिलती थी। मनु की व्यवस्थानुसारः—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

(मनु० ३।२)

जब यथावत् ब्रह्मचर्य आश्रम में आचार्य की आज्ञानुसार वर्तते थे और चारों तीन दो वा एक वेद को सांगोपांग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुवा हो वह पुरुष वा स्त्री गृहस्थ में प्रवेश करें। वेदों का विद्वान् और ब्रह्मचरी व्यक्ति चाहे स्त्री हो वा पुरुष वही गृहस्थ में प्रवेश का अधिकारी होता था। इसीलिये उनकी सन्तान ऋषि और महर्षि देव और महादेव बनती थी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
लड़ना है। इसका आयुध (प्राणायामः परमं तपः) प्राणायामादि परम तप ही जिसकी साधना में तेरी बहन स्वसा देवी मेखला तुझे सौभाग्य प्रदान करेगी, उसी का सहारा ले, बहन से बढ़कर, भगिनी से अधिक तुझे कौन चाहेगा, तेरा हित कौन करेगा। इस स्वसा के प्रेम में सत्यता है, छल नहीं, कपट नहीं, स्वार्थ नहीं। यह तेरे लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देगी। तेरा बाल बांका नहीं होने देगी, कष्टों से छुड़ायेगी, भवसागर से पार ले जायेगी, घबराना नहीं। यह पवित्र देवी सब प्रकार का सौभाग्य तुझे देगी। इसे पवित्र रखना, इससे सदैव संयुक्त रहना, यह तेरे देवगुरु आचार्य का दिया हुआ उपहार है, इसे तोड़ना नहीं, फेंकना नहीं। इसी में तेरा कल्याण है, तेरी विजय है। गुरु महाराज ने यह मेखला तो मृत्यु से युद्ध करने के लिये बांधी है।

आग सेकना है सहज, सहज खड्ग की धार।
नेह निवाहण एक रस, महाकठिन व्यवहार॥

इसे बांधकर आचार्य ने तेरे अन्दर वीरता का मन्त्र फूंका है। जलती हुई आग में कूदना, खड्गों की खनखनाहट में घुस जाना तो वीर लोग हंसते-हंसते कर डालते हैं। इस कार्य को तो बहुत से वीर हैं जो बड़ा सरल और सहज कार्य ही समझते हैं। किन्तु सारी आयु काम क्रोधादि शत्रुओं के प्रहारों से विचलित न होकर इससे जूझते रहना, लड़ते रहना, अन्त में इस महाकठिन युद्ध में विजय को प्राप्त करना, यह विरले वीरों का ही कार्य है। इस महाकठिन संग्राम को ब्रह्मचारी ही लड़ते हैं। इसमें उनको दिया कवच वा अमोघास्त्र मेखला तो है ही किन्तु और भी कुछ शस्त्र हैं जिन्हें ब्रह्मचारी को आचार्य प्रवर प्रदान करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृत्यु का ब्रह्मचारी

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि।
(अथर्व०६-१३३-३)

(भूतात्) प्राप्त (मृत्योः) मृत्यु से (पुरुषं) इस पुरुष आत्मा को (निर्याचन्) बाहर निकालता हुआ (अहं) मैं (यमाय) नियम पालने के लिये (यत्) जो (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (अस्मि) हूं (तं) वैसे (एनं) इस आत्मा को (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान (तपसा) तप योगाभ्यास और (श्रमेण) परिश्रम के साथ (अनया मेखलया) इस मेखला से (अहं) मैं (सिनामि) बांधता हूं

दूसरा अर्थ इस प्रकार है—

(यत्) क्योंकि (अहम्) मैं (मृत्योः) आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् का अर्थात् अज्ञान के बन्धन से मुक्त करनेवाले आचार्य का ब्रह्मचारी हूं। इसलिए (भूतात्) इस पञ्चभूत के बने देह से (यमाय) उस ब्रह्म सर्वनियन्ता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (पुरुषम्) देहपुरी के निवासी आत्मा को (निर्याचन् अस्मि) मुक्त करने के यत्न में हूं। हे आचार्य! ऐसे (तम्) उसे (एनम्) इस आत्मा को (अहम्) मैं आपका शिष्य ब्रह्मचारी (ब्रह्मणा) ब्रह्म वेदोपदेश से (तपसा) तप योगाभ्यास से (श्रमेण) व्यायामादि के श्रम से (अनया मेखलया) इस मेखला से (सिनामि) बांधता हूं।

दोनों प्रकार के अर्थों में भावना एक ही है। यहां आचार्य का मृत्यु नाम से स्मरण किया है और ब्रह्मचारी कहता है मैं मृत्यु आचार्य का ब्रह्मचारी हूँ। उस आचार्य की शिक्षा से संयम का जीवन बिताकर अपनी आत्मा को उन्नत करके परमेश्वर को प्राप्त करूंगा अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करूंगा। इस के लिए ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
मैंने आचार्य से मेखला धारण की है, लंगोट कसा है, मैं कौपीन-धारी बना हूँ। ब्रह्मचर्यव्रत की पूर्ति के लिए मेखला धारण कर जहां दीक्षा ली है वहां वेदविद्या, ज्ञान अर्जन, योगाभ्यास, तपश्चर्या, व्यायाम, प्राणायाम, आदि ब्रह्मचर्य के मुख्य साधनों की साधना में आचार्यचरणों में रहकर जुटा हूँ। मेरे तो आचार्य साक्षात् स्वयं मृत्यु नाम के आचार्य हैं उन्होंने मुझे मृत्यु का रहस्य भलिभांति समझा दिया है। मुझे अब मृत्यु का भय है ही नहीं। क्योंकि जिस मृत्यु से सब डरते हैं मैं तो उस मृत्यु को दूर भगाने के लिए, उसे जीतने के लिए देव बन रहा हूँ। मेरे गुरुदेव साक्षात् देवता हैं। उन्होंने मुझे मेखला बांधकर संयम के जीवन से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी बनाकर मृत्यु को ठोकर मारने के लिए ब्रह्मचर्यरूपी तप की भट्ठी में तपाकर मृत्युञ्जय बना दिया है, मैं वेद भगवान् की इस आज्ञा को "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" पालन करने में मृत्यु आचार्य की कृपा से समर्थ हो गया हूँ।

मृत्यु नाम आचार्य का यहां इसलिये लिया है कि वह मृत्यु का यथार्थ ज्ञान कराकर मृत्यु के भय को भगानेवाला है। मृत्यु का भय तब तक ही लगता है, जब तक मनुष्य इनके सच्चे स्वरूप को समझ नहीं लेता है। गीता में इसका अच्छा चित्रण किया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥१३।२२॥

जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़कर और नये पहन लेता है, वैसे ही शरीरधारी पुराने शरीरों को छोड़कर और नये शरीरों को धारण कर लेता है। पुरानी वस्तु के स्थान पर नयी वस्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिलने पर हर्ष ही होता है पुनः दुःख और भय किसलिए ? यह भाव जब मनुष्य समझ लेता है तो दुःख और भय का कारण ही नहीं रहता। इस जीवन की चिन्ता छुड़ाकर नये जीवन में नई भोग-सामग्री प्राप्त कराना मृत्यु का कार्य है, यह सुख की धारणा है। इसी शिक्षा से शिक्षित व्यक्ति मस्त हो कहता है :—

जिस मरने से जग डरे मो को सो आनन्द।
कब मरिये कब पाईये पूरन परमानन्द॥

मृत्यु तो नये जीवन का नाम ही है और मोक्ष के परमानन्द की प्राप्ति भी इससे ही होती है। अतः मृत्यु नाम आचार्य का सुख-प्रद है, भयावह नहीं है।

उपनिषद् में नचिकेता (सन्देहशून्य) ब्रह्मचारी भी यम (मृत्यु) नाम के आचार्य के पास ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये गया था।

इस वेद मन्त्र में भी मृत्यु नाम का आचार्य अपने ब्रह्मचारी को सब प्रकार के कष्टों, दुःखों और बन्धनों से छुड़ानेवाला है तथा मोक्ष तक पहुंचानेवाला है। मेखला, वेदज्ञान, तप, योग और परिश्रम व्यायामादि ब्रह्मचर्य के मुख्य साधनों वा नियमों में बांध कर उनकी शिक्षा देकर ब्रह्मचारी को मृत्युञ्जय बनाना ही आचार्य का मुख्योद्देश्य है।

एक अन्य मन्त्र में ब्रह्मचर्यसूक्त में भी आचार्य के अनेक नामों में मृत्यु भी उसका नाम आया है—

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।

मृत्यु वरुण और सोम ये सभी आचार्य के गुणों के अनुसार नाम हैं।

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्यसूक्त में एक मन्त्र मेखला सम्बन्धी इसी प्रकार का आया है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इयं समित् पृथिवी द्यौद्वितीयान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्त्ति ॥
(अथर्व० ब्रह्मचर्यसूक्त)

यह पृथिवी ब्रह्मचारी की प्रथम समिधा है। यह द्यौ दूसरी समिधा है और तीसरी समित् अन्तरिक्ष है। इन तीनों समिधाओं द्वारा अर्थात् इन तीन समिधाओं का अपनी आत्माग्नि में आधान कर ब्रह्मचारी सबका पालन करता और पूर्ण करता है। ब्रह्मज्ञान में दीक्षित ब्रह्मचारी समित् आधान द्वारा और मेखला द्वारा, श्रम और तप द्वारा समस्त मनुष्यों का पालन करता है और इन्हीं साधनों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस मन्त्र में समिधा शब्द है, मेखलासूक्त के मन्त्र में ब्रह्मणा शब्द है, अर्थ दोनों का एक ही है। ज्ञान का प्रकाश, वेद ज्ञान की दीप्ति वा पवित्र ज्योति द्वारा वह अपने आपको तथा सारे संसार को प्रकाशित करता है। पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीनों लोकों का ज्ञान करके संसार में ज्ञान का प्रकाश फैलाता है। जहां वह इन तीन बाह्य लोकों का अध्ययन करता है, जानने का यत्न करता है वहां अपने तीनों लोकों शरीर, अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) और आत्मा का भी साक्षात्कार करता है। वह वेद ज्ञान के द्वारा अपने अन्दर तथा बाहर के अविद्या अन्धकार को दूर भगाता है। भूत, भविष्य और वर्तमान के रहस्यों को भी समझने का यत्न करता है। मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ, मुझे यहां क्या करना है, आगे कहां जाना है, इस सारे कालचक्र को जानने का यत्न वह अपने मृत्यु नाम के आचार्य के चरणों में बैठकर करता है। कीड़ी से कुञ्जर तक, मूर्ख से विद्वान् तक, जिस मृत्यु के नाम से सभी कांपते हैं वह उसी रहस्य को समझता है, उसी मौत के साथ टकराता है, खेल करता है, उसे गींडो (फुटबाल) समझकर ठोकर मारता है। अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन को सारे संसार की सेवा में लगाकर जनता जनार्दन का सेवक बनकर अपने जीवन के एक-एक श्वास का सदुपयोग करता है। इस प्रकार अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर संसार को तथा अपने आपको पूर्ण करता है। अपना सर्वस्व लोक सेवा में न्यौछावर कर अमर हो जाता है।

ब्रह्मचारी अच्छे पुष्टिकारक भोजन से, व्यायाम से, प्राणायामादि योगाभ्यास तथा घोर परिश्रम से अपने शरीर को इसीलिये सुदृढ़, सुन्दर, स्वस्थ और सुगठित बनाता है कि संसार के सभी प्राणियों का मित्र बनकर दीर्घकाल तक अधिक सेवा कर सके। उसके शरीर का वीर्य इस तपस्या के कारण उसके शरीर में शारीरिक बल का रूप धारण करता है तथा उसकी विचाराग्नि का इन्धन बनकर उसके मस्तिष्क को ज्ञान की ज्योति से प्रज्वलित करता है अर्थात् शारीरिक और आत्मिक बल के रूप में उसी के अन्दर रहता है। उस अमूल्य वीर्य के एक बिन्दु को वह नष्ट नहीं करता, वह अखण्ड ब्रह्मचारी बनता है, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बनता है, मृत्यु को जीतता है, अपने यज्ञमय वा परोपकारमय जीवन के कारण वह अमर हो जाता है। न उसे जीवन की इच्छा, न मरने का भय होता है। वह जीवनमुक्त हो जाता है और वह मोक्षपद परमपद की प्राप्ति का अधिकारी बनता है। यह सब कुछ वह अपने देवस्वरूप आचार्य, मृत्यु आचार्य की कृपा से उनकी छत्र-छाया में रहकर, घोर तपस्या करके वेदज्ञान के द्वारा, मेखला, कटिबद्धता, जागरूकता, व्यायाम, प्राणायामादि योग के द्वारा प्राप्त करता है अर्थात् अपने श्रद्धेय आचार्यचरणों की कृपा से पूर्ण विद्वान्, पूर्ण योगी, पूर्ण जितेन्द्रिय और ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बनकर संसार में आदित्य के समान अविद्यान्धकार को मिटाता हुआ विचरता है। जिधर भी जाता है उधर ही हलचल मच जाती है। जिस प्रकार भूगर्भाग्नि इस पृथिवी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
को सदैव गति में रखता है उसी प्रकार वीर्य को अग्नि ब्रह्मचारी को टिकने नहीं देती, खाली नहीं बैठने देती। वह संसार की सेवा में रत रहता है, दुःखियों के दुखों को मिटाता है औरों के लिये जीता है तथा औरों के लिये मरता है। उसका जीवन मरण पर-सेवा और परोपकार के लिये होता है। इस प्रकार वह अपने जीवन को सफल करके अमर हो जाता है। मेखला, श्रम, तप और वेदज्ञान प्राप्ति जो संसार के सामान्य लोगों को कष्ट वा बन्धन लगते हैं, ये साधन ब्रह्मचारी के बन्धनों को काटनेवाले बनते हैं। क्योंकि वह इनकी महत्ता को श्रद्धापूर्वक आचार्य की पवित्र शिक्षा से हृदयङ्गम कर चुका होता है। वह इन्हें अमृततुल्य समझकर इनका सेवन करता है।

ऋषियों की स्वसा मेखला

श्रद्धाया दुहिता तपसोधि जाता,
स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि,
मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च॥

(अथर्ववेद. ६।१३३।४)

यह मेखला (श्रद्धायाः) श्रद्धा श्रत् अर्थात् सत्य को धारण करनेवाली बुद्धि (आस्तिक बुद्धि विश्वास की) (दुहिता) पुत्री के समान प्रिय अथवा पूर्ण करनेवाली वा दुहनेवाली (तपसः) तप-योगाभ्यास से, वेदरूप ब्रह्मज्ञान से सत्यज्ञान से (अधि) अच्छे प्रकार (जाता) उत्पन्न हुई है। (भूतकृताम्) समस्त सत्यपदार्थों का उपदेश करनेवाले (ऋषीणाम्) ऋषियों=मन्त्रद्रष्टाओं की स्वसा (भगिनी) के समान हितकारिणी वा उपकार करनेवाली अथवा अच्छे प्रकार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
प्रकाश करनेवाली (बभूव) हुई है। (सा) वह तू (मेखले) मेखला (नः) हमें (मतिम्) मननशक्ति और (मेधाम्) निश्चयात्मिका बुद्धि (आ) सब ओर से (धेहि) प्रदान कर (अथो) और भी (नः) हमें (तपः) योगाभ्यास (च) और (इन्द्रियम्) इन्द्र का चिह्न वा इन्द्रियों में बल=पराक्रम वा ऐश्वर्य भी (धेहि) प्रदान कर।

सत्य को धारण करनेवाली बुद्धि वा विश्वास को श्रद्धा कहते हैं। जिसके मन में सत्य है, वाणी से भी सत्य ही बोलता है और जिसके व्यवहार में सत्य है वह यथार्थ में सत्पुरुष सच्चा आदमी होता है। उसी को श्रद्धा कहते हैं, महात्मा वा देवता के नाम से पुकारते हैं। शतपथ में लिखा है—

सत्यं वै देवा अनृतं मनुष्याः।

देव सत्यस्वरूप होते हैं। उनके आचरण में झूठ-अनृत-असत्य का लवलेश भी नहीं होता। उनका जीवन व्यवहार सत्य से ओत-प्रोत होता है। वे असत्य को त्यागने और सत्य को ग्रहण करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। सत्य के लिये उन्होंने कमर कसी होती है। वे "न सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्" सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं मानते और न ही अनृत (झूठ) से बढ़कर कोई पाप मानते हैं। देवों और मनुष्यों में यही तो भेद होता है कि देव सत्य के पुजारी वा भक्त होते हैं और सामान्य मनुष्य सत्य का परित्याग कर मिथ्याचरण अधर्म में प्रवृत्त होते हैं। वे असत्य से स्वार्थ सिद्धि मान कर अन्धे हो जाते हैं किन्तु सत्सङ्ग से लाभ उठाकर मननशील मनुष्य "इदमहमनृतात्सत्य-मुपैमि" अनृत (असत्य) व्यवहार को छोड़कर सत्य धारण करने की प्रतिज्ञा करता है, सत्य व्रत को धारण करता है और "मनुष्येभ्यो देवानुपैति" मनुष्य से देव बनने के लिये जुट जाता है। सत्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
उसे देवत्व को प्राप्त कराता है जिसे देव बनना होता है, वह सत्य को धारण कर लेता है अर्थात् श्रद्धालु बन जाता है। इससे यही सिद्ध होता है श्रद्धालु कहो, देवता कहो एक ही बात है। श्रद्धा माता की कृपा से मनुष्य सत्य को प्राप्त कर देव बन जाता है। श्रद्धा माता की एकमात्र दुहिता प्रियपुत्री मेखला है। इस मेखला को धारण करनेवाला उसकी माता श्रद्धा से कैसे दूर रह सकता है ? वह उसका अत्यन्त प्रिय वा प्रेमी बन जाता है। वह श्रद्धा के बिना जीवित ही नहीं रह सकता है। "श्रद्धया सत्यमाप्यते" श्रद्धा माता की कृपा से सत्य को प्राप्त कर देवता बन जाता है। गीता में लिखा है :—

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
(४।३९)

श्रद्धा से युक्त इन्द्रियों का संयम करनेवाला ज्ञानमार्ग का पथिक ज्ञान को प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त करके शीघ्र ही श्रेष्ठ शान्ति को प्राप्त होता है।

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥
(गीता ४-४०)

अज्ञानी और श्रद्धा न रखनेवाला, सन्देह की मूर्ति (मनुष्य) नष्ट हो जाता है। जिसकी आत्मा में संशय है, उस मनुष्य का न यह लोक बनता है, न परलोक, और न ही वह सुखी होता है। श्रद्धा से ज्ञान और ज्ञान से श्रेष्ठ शान्ति मोक्ष को प्राप्त होता है। क्योंकि—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

ज्ञान के समान शुद्ध पवित्र इस लोक में कुछ भी नहीं है। उसे स्वयं (ज्ञान) योग से सिद्ध हुआ पुरुष आप ही आप समय पाकर आत्मा में प्राप्त कर लेता है। आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। श्रद्धा से ज्ञानप्राप्ति, शान्ति और आत्मा के दर्शन होते हैं।

वेद में श्रद्धा के विषय में अच्छा प्रकाश डाला है।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्ध्नि वचसा वेदयामसि ॥

(ऋग्वेद १०-१५१-१)

श्रद्धा भक्ति से अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। श्रद्धा से ही हवन सामग्री से हवन किया जाता है। ऐश्वर्य के शिर पर हम सब श्रद्धा को प्रशंसा के साथ मानते हैं।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वी स्वदं म उदितं कृधि ॥२॥

हे श्रद्धा देवी ! श्रद्धा से दान देनेवाले का कल्याण कर, श्रद्धा से देने की इच्छा करनेवाले का प्रिय कर, श्रद्धा से भोग और यज्ञ करनेवाले का कल्याण कर, यह मेरा सब उदय से पूर्ण कर। श्रद्धा-भक्ति से पुरुषार्थ, दान और कर्म करनेवालों को यश प्राप्त होता है और उनका सब परिश्रम सफल होता है।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३

जिस प्रकार देवों ने भी असुरों अर्थात् अपना जीवन अर्पण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
करनेवालों में श्रद्धा रक्खी थी। उसी प्रकार भोग देनेवाले और यज्ञ करनेवालों में हम सब का उदय करे।

विद्वानों को=देवों को चाहिये कि वे शूरवीरों पर श्रद्धा रखें और शूरों को विद्वानों पर श्रद्धा रखनी चाहिये। देव विद्वान् ज्ञानी तो यज्ञ परोपकार के कार्य करनेवाले होते हैं। शूरवीर क्षत्रिय राष्ट्र-रक्षा तथा राजैश्वर्य के भोगनेवाले होते हैं। उनमें परस्पर श्रद्धा चाहिये। जिससे सबका भला हो सकता है ब्राह्मण-क्षत्रियों में इस प्रकार श्रद्धा से परस्पर संगठन हो तो राष्ट्र में विलक्षण बल और समृद्धि की प्राप्ति हो सकती है। श्रद्धा से सारे राष्ट्र और जाति की उन्नति हो सकती है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४॥

देवसंज्ञक विद्वान् यजमान श्रद्धा को प्राप्त होते हैं। प्राण से सुरक्षित होनेवाले प्राणायाम करनेवाले योगी श्रद्धा से ही उपासना करते हैं। हृदय के उच्च भाव से श्रद्धा प्राप्त होती है और श्रद्धा से ही धन प्राप्त होता है।

सब व्यक्ति श्रद्धा के होने से ही सत्कर्म करते हैं। धन की प्राप्ति योग में सफलता (प्रणायाम सिद्धि) अथवा ईश-उपासनादि श्रद्धा से होते हैं। सर्वप्रकार की उन्नति चाहे वैयक्तिक हो, चाहे राष्ट्रीय हो, श्रद्धा से ही होती है। श्रद्धा यों ही किसी दुकान से नहीं खरीदी जाया करती, वह तो मानव के हृदय की एक विशेष भावना से उत्पन्न होती है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रातःकाल में श्रद्धा से कर्म करते हैं और उसी प्रकार मध्य-दिन में और सूर्य के अस्त होने पर भी श्रद्धा से भक्ति करते हैं। हे श्रद्धे ! हम सब को श्रद्धा से युक्त करो। श्रद्धा की प्रत्येक क्षण में आवश्यकता है।

इस श्रद्धा सूक्त का सार यह है:—

श्रद्धा, विश्वास; मन का निश्चय, दिल का अटल भरोसा ही मानव के द्वारा महान् से महान् पुरुषार्थ कराता है। श्रद्धा के बिना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। श्रद्धा के अन्दर अद्भुत बल है, शक्ति है। श्रद्धावान् मनुष्य अपनी श्रद्धा के बल पर अद्भुत कार्य कर डालता है। मनुष्य में कितनी भी शक्ति हो, बल हो, धन हो, बुद्धि हो और अन्य कई प्रकार का सामर्थ्य हो, किन्तु यदि उसमें श्रद्धा न हो तो उसके सब अन्य सद्गुण यों ही धरे के धरे रह जाते हैं। वह कोई भी कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकता। श्रद्धा के अभाव में सब सद्गुण बलहीन हो जाते हैं, थोथे खोखले हो जाते हैं। जैसे दीपक बत्ती के होते हुये भी तैल के अभाव में जल नहीं सकता, प्रकाश नहीं कर सकता।

श्रद्धा से मनुष्य के हृदय में बल आजाता है, उसके कारण सभी गुण प्रकाशमान हो उठते हैं। श्रद्धा के बिना सभी शक्तियां कुण्ठित हो जाती हैं। श्रद्धा हृदय में स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न करके मानव को कठिन से कठिन कार्य करने के लिए तैयार कर देती है। क्या धार्मिक, क्या सांसारिक सभी कार्य, श्रद्धा से ही सफल और सुफल होते हैं। जिस की श्रद्धा देश वा धर्म पर होती है वह उन की रक्षार्थ फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते चढ़ जाता है। इतिहास साक्षी है, हजारों नहीं लाखों धर्म और देश के श्रद्धालु भक्त दीवाने बनकर अपने उद्देश्य के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये, वह अपने अन्तःकरण में श्रद्धा भक्ति का विकास होने दे। सूखे तर्क वा शुष्क बुद्धिवाद से अपने को तथा लोगों को भ्रम में तो डाला जा सकता है, किन्तु श्रद्धा के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए जो भी उत्तम काम करें, उसे श्रद्धापूर्वक उत्तम प्रकार से करने का अभ्यास करें। जिसके अन्तःकरण में श्रद्धा नहीं, उसकी बञ्जर भूमि में कोई भी सद्गुण का बीज फूल-फल नहीं सकता। इसलिये प्रयत्न से प्रत्येक को अपने अन्दर अपने तथा सबके कल्याणार्थ श्रद्धा के बीजों का वपन करना चाहिये। तभी शुभकर्मों की फुलवाड़ी फूले-फलेगी और सारे संसार को मालामाल कर डालेगी।

श्रद्धा योगी की जननी के समान

महर्षि व्यास ने योग दर्शन की टीका करते हुये श्रद्धा के विषय में इस प्रकार लिखा है:—

श्रद्धा चेतसः संप्रसादः। सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति। तस्य हि श्रद्दधानस्य विवेकार्थिनो वीर्य-मुपजायते।

अर्थात् श्रद्धा चित्त को प्रसन्न करनेवाली है। वह श्रद्धा ही कल्याण करनेवाली माता के समान योगी की रक्षा करती है। उस विवेकार्थी श्रद्धालु को उत्साह उत्पन्न होता है। उत्साह से स्मृति और स्मृति से चित्त दुःखरहित होकर एकाग्रता के साथ ध्यान करता है। उस समाधिस्थित चित्त में विवेकवाली बुद्धि उत्पन्न होती है। जिससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान होता है। उस विवेकज्ञान के अभ्यास और उस का बार-बार अनुभव करने से और वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि होती है। इसलिये महर्षि व्यास

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने ठीक ही कहा है कि श्रद्धा योगी का कल्याण करनेवाली माता वा जननी के समान है। इस श्रद्धा माता की कृपा से योगी असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच जाता है। अर्थात् श्रद्धा माता अपने श्रद्धालु योगाभ्यासी को पूर्णयोगी बना देती है।

मेखला को श्रद्धा की दुहिता कहा है। मेखला को धारण करनेवाला ब्रह्मचारी देव तथा ऋषि बनने के लिये साधना कर रहा है। उसी तप से यह उत्पन्न हो प्रसिद्ध होती है। ऋषियों की यह भगिनी है। हित चाहनेवाली बहन के समान है। यही ऋषि तथा ब्रह्मचारी जो देव बनने के लिए तप करते हैं—

"तपो द्वन्द्वसहनम्" तप द्वन्द्वसहन को कहते हैं। क्षुधा (भूख) तृषा (प्यास), जाड़ा, गरमी आदि को सहन करते हुये अपने धर्म कार्य में नित्यकर्म को योगाभ्यास को निरन्तर श्रद्धापूर्वक करते रहने का नाम तप है। ऐसे धार्मिक तपस्वी ब्रह्मचारियों और ऋषियों की यह दुहिता तथा स्वसा के समान प्रिय और कल्याण करनेवाली है। अर्थात् ब्रह्मचारी तथा ऋषि लोग इसे अपनी तपस्या के द्वारा प्रसिद्ध करते हैं। वे ही मेखला वा कौपीन को धारण करके ब्रह्मचर्य तथा योग की साधना करते हैं। मेखला के ये ही लंगोटबन्द कौपीनधारी पुत्र वा भाई हैं। ये अपनी तपस्या द्वारा इसे प्रसिद्ध करते हैं और मेखला के कारण जागरूक रहते हैं। सच्चे ब्रह्मचारी बनकर अपने जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचते हैं। मेखला धारण कर अपने ब्रह्मचर्यव्रत को पूर्ण करते हैं। इससे देवपदवी प्राप्त कर ये भी संसार को सन्मार्ग पर चलाते हैं और श्रद्धापूर्वक मेखला से ये भिक्षा मांगते हैं, प्रार्थना करते हैं—हमें सुमति प्रदान कर, मेधा बुद्धि देकर तपस्वी बना, हमारी इन्द्रियों में तथा इन्द्रियों के राजा इन्द्र आत्मा में बल और शक्ति का आधान कर। पराक्रम और विद्यादि ऐश्वर्य को पाकर हम

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचारी, मेधावी, बलवान्, जितेन्द्रिय, पूर्ण विद्वान् और पूर्ण योगी बनें। यथार्थ में ब्रह्मचर्यव्रत का प्रतीक ही मेखला अर्थात् कौपीन वा लंगोट है। इसे धारण करके जब पूर्ण ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता बन जाता है उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता, सुमति और सुमेधा पाकर वीर और धीर बन जाता है, जिसका वीर रस के कवि चौ० तेजसिंह ने अपने भजन में अच्छा चित्रण किया है। इसको हमारे भजनोपदेशक म० प्यारेलाल जी तथा स्वामी नित्यानन्द जी महाराज गाया करते हैं। यदि कोई ब्रह्मचारी क्षत्रिय का रुद्ररूप धारण करे तो उस वीर का चित्र इस प्रकार है:—

शूर वीर क्षत्रिय

सबसे बड़ी बात धीर वीर और शूर होवे।
इन तीनों नामों के इन सब गुणों से भरपूर होवे॥
जो खड्गहस्त यानी कर में खड्ग लिये हुये।
अङ्गारों के तुल्य रण में रक्त नेत्र किये हुये॥
जिसके सब शरीर के रोमाञ्च खड़े हो रहे हों।
और शत्रु के रक्तपान करने का ढंग टोह रहे हों।
क्रोध से संयुक्त हुआ शत्रुओं को कसता है जो।
शत्रुओं को देख करके रणभूमि में हंसता है जो।
है वो ही शूर महान्॥५॥
दान और तप से भी परोपकार को ही बड़ा जाने।
बल्कि मुक्ति पाने को भी इसके आगे हेय माने।
जहां तक हो युद्ध में ही मर जाने का यत्न करे।
घर के अन्दर रोगी होकर खाट में कभी न मरे।
ललाट से बहता हुआ रणभूमि में रुधिर पान।
युद्धरूपी यज्ञ का ले सोमरस उसी को जान॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होठों को चबाता हुआ दीखे रुद्र रूप धारे।
जिसकी शकल देख करके शत्रु डर जायें सारे॥
है यह वीर की शान ॥६॥

धीर के लक्षण

महाप्रलय के वायु से पहाड़ों को हिलते देखा।
बिना चलने वाले सब सितारों को भी चलते देखा॥
लेकिन घोर विपदा में भी जिसका दिल न डगमगाये।
स्त्री के कटाक्षरूपी बाणों से जो न छेदा जाये॥
दुनियां का कोई भी विषय, खींच नहीं पाये कभी।
क्रोध का महान् ताप जिसको न जलाये कभी॥
धीर उसी को जान ॥७॥

जो श्रद्धापूर्वक आचार्यप्रवर से ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर मेखला को धारण करता है तथा मेखला को दुहिता स्वसा (बेटी-बहन) के समान प्रिय और हितकारी समझता है और अपने विचारों को सदैव पवित्र रखता है, जैसी पुत्री और बहन को देखकर तथा उनके साथ रहकर भी पिता और भाई सदैव पवित्र भावना रखते हैं। इसी प्रकार जो शुद्ध विचार रखते हुये अपनी मेखला, लंगोट वा कौपीन को पवित्र रखते हैं अर्थात् मूत्रेन्द्रिय पर पूर्ण संयम रखते हैं, उन ऐसे तपस्वी ब्रह्मचारियों को भगवान् सुमेधा तथा सुमति प्रदान करता है। वे जितेन्द्रिय बनकर सच्चे शूरवीर और धीर क्षत्रिय अथवा मेधावी ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और देवर्षि बनते हैं। क्योंकि यह मेखला ब्रह्मचारी को ऋषि और देव बनाने के लिये ही देवस्वरूप आचार्य ने धारण करायी है जो सर्व प्रकार के कष्टों और बन्धनों से छुड़ाकर इन्हें भवसागर से पार ले जाना चाहता है। इसीलिये मेखला के व्रत बन्धन में बांध कर ऋषियों के मार्ग पर चलाना ही उसका उद्देश्य है।

CC-0, Mahini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषियों की मेखला

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥
(अथर्ववेद ६. १३३. ५)

(यां त्वा) जिस तुझ को (पूर्वे) पहिले (भूतकृतः) सत्यकर्मी (ऋषयः) ऋषियों ने (परिबेधिरे) चारों ओर बांधा था, (सा त्वं) वह तू (मेखले) हे मेखला ! (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिये (मां) मुझे (परि ष्वजस्व) आलिंगन कर, चिपट जा ।

ब्रह्मचारी मेखला को सम्बोधित करके कह रहा है:- हे मेखला तुझे सदैव सत्यकर्म करनेवाले अर्थात् सदाचारी ऋषि लोग अपनी कटि के चारों ओर बांधते आये हैं। वे ही अपने शरीर पर तुझे प्रिय आभूषण के समान धारण करते रहे हैं । उनके साथ तेरा सभी सृष्टियों में सम्बन्ध रहा है। जो भी ऋषि पहले हुये हैं और जो अब वर्तमान में हैं तथा जो भविष्य में होंगे वे तुझे अपनी स्वसा समझते रहे हैं, तथा समझते रहेंगे, फिर वे तुझे कैसे छोड़ेंगे ? कोई भ्राता स्वसा से अपने प्रिय अटूट स्नेह के सम्बन्ध को कैसे तोड़ सकता है ? ऋषि सारी आयु पवित्र ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं, फिर वे इस व्रत की रक्षा करनेवाली एकमात्र प्रतीक मेखला का परित्याग कैसे कर सकते हैं। ऋषियों का मेखला के साथ अटूट सम्बन्ध है, वे इसे सदा धारण करते आये और सदैव धारण करते रहेंगे । क्योंकि "कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः" कौपीनधारी (लंगोटधारी) ही यथार्थ में भाग्यवान् होते हैं और कौपीन का आधार ही मेखला है। मेखला में कौपीन को पहनते हैं। फिर मेखला ऋषियों की स्वसा है, प्रकाश देनेवाली है। बहन के समान उन्हें प्यारी है और मेखला के प्रिय भ्रातृगण सत्य के लिये

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राण देनेवाले ऋषि लोग ही हैं। इसीलिये मेखला को आगे पीछे दायें-बायें चारों ओर से बाँध रक्खा है अर्थात् सारे शरीर को मेखला के बन्धन से ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी गई है। सारी कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां भी इसी मेखला के व्रत बन्धन से संयम में, अनुशासन में रहती हुई ब्रह्मचर्य की साधना में लगी हुई हैं। मन, वचन, कर्म, से ऋषिगण ब्रह्मचारी हैं। बाहर, भीतर आगे पीछे दायें-बायें, ऊपर-नीचे सभी ओर ब्रह्मचर्य का वातावरण बना रखा है। उन्हें संसार में सब कुछ ब्रह्मचारी ही दिखाई देता है। वे इस ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके मेखला वा लंगोटी लगाकर भूमि माता के सच्चे लंगोटीबन्द सपूत बन गये हैं। मानो वे अथर्व वेद के ब्रह्मचर्य सूक्त की भाषा में कह रहे हैं—

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१

अर्थ-ओषधियां भूतकाल, भविष्यत्काल, दिन और रात्रि, ऋतुओं सहित संवत्सर वे सभी ब्रह्मचारी हैं, ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं।

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षा पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२२

पृथिवी के द्युलोक के समस्त लोक (मनुष्य), पशु जो जंगली हैं और जो गांव के हैं और बिना पंख के प्राणी और जो पंखवाले भी हैं वे सब ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य पालन की धुन में इतना मस्त होगया है कि उसे संसार के प्राणी-अप्राणी, जड़-चेतन, सभी ब्रह्मचारी ही दीख पड़ते हैं। संसार का यह नियम है, चोर को सब चोर ही दिखाई देते हैं। सच्चे को सब सच्चे दीखते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मचारी को सब कुछ ब्रह्मचारी ही दीख पड़ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। वह मस्त होकर कह रहा है—आदिकाल से ऋषि लोग, हे मेखला! तुझे बांधते आरहे हैं। जन्म से कोई ऋषि नहीं होता। आरम्भ में तो वे भी मेरे समान मेखला धारण करके ब्रह्मचारी ही बने थे। फिर तपस्या करके सत्कर्मी ऋषि बन गये। मैं भी ऋषि बनूंगा। मेखला को अपनी प्रिय बहन स्वसा बनाऊंगा, फिर मेरी भगिनी मेखला मुझे कैसे छोड़ेगी। मैं इस बहन के अटूट सम्बन्ध सच्चे स्नेह को भूल, मेखला को कैसे छोड़ूंगा। मेरे प्राणों के रहते यह मेरी कटि पर बंधी रहेगी, चिपटी रहेगी। दीर्घायु तक, पूर्ण आयु तक, पूरे चार सौ वर्ष की आयु तक मेरी कटि को यह चारों ओर से सजायेगी। न मैं इसे छोड़ूंगा, न यह ही मुझे छोड़कर मुझ से अलग होगी। दोनों बहन-भाई परस्पर एक-दूसरे की सहायतार्थ साथ रहेंगे। यदि मैं इसे छोड़ने की निर्बलता दिखाऊंगा, तो यह मुझे शिक्षा देकर फटकारेगी, तुम कैसे भाई हो, जो मुझे पहनकर धारण करके ढीले हो रहे हो। तुम तो ऋषि बनने लगे थे, आज अपनी स्वसा तगड़ी मेखला को छोड़कर वणिक् की छोरी (लड़की) के समान निर्बल हो रहे हो। तगड़ी धारण करके तगड़े बनो, दृढ़ बनो, दृढ़ संकल्पवाले बनो, ऋषि बनो, देव बनो, चार सौ वर्ष की दीर्घायु भोगनेवाले पूर्ण योगी, पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय बनकर राजर्षि बनो, ब्रह्मर्षि बनो अथवा देवर्षि बनो। ऋषियों की सन्तान होकर ऋषि से न्यून रहे तो मुझ ऋषियों की स्वसा मेखला को बांधकर लजाओगे। सावधान! मैंने तेरी कमर कसी थी, तुझे कटिबद्ध किया था, जागरूक किया था। मत घबराओ, मैं श्रद्धा की दुहिता हूँ, अभी हृदय में उत्साह भरती हूँ। तुझे ऋषि बनाकर छोड़ूंगी। मुझे श्रद्धापूर्वक धारण करनेवाला कभी ऋषियों की पंक्ति से कैसे बाहर जा सकता है?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya, Collection.

इस प्रकार की उच्च शिक्षा और भावना मेखलाधारी ब्रह्मचारी

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में रहनी चाहिये। तभी वह ऋषि बनकर अपने जीवन को सफल और सुफल बनाकर दीर्घ आयु (चार सौ वर्ष की आयु) भोगकर अपना तथा संसार का उपकार करने में समर्थ हो सकता है। लाखों ऋषि इसी प्रकार के इस प्रभु की पवित्र सृष्टि में पहले हो चुके हैं। इस बात के लिये इतिहास साक्षी है।

अट्ठासी सहस्र ऋषि

अष्टाशीतिसहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुस्तत्र- अगस्त्याष्टमैर्ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः। तत्रभवतां यदपत्यं तानि गोत्राणि, अतोऽन्ये गोत्रावयवाः।

(महाभाष्य ४-१-७९)

ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त अर्थात् आदि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त ८८ सहस्र ऊर्ध्वरेता अखण्ड ब्रह्मचारी ऋषि-महर्षि (राजर्षि और देवर्षि) हुये हैं। ये सभी निर्दोष, निष्पाप, निष्कामसेवी, देवतुल्य, आप्त पुरुष थे। सारी आयु ब्रह्मचर्यरूपी तपस्या के आभूषण से ही विभूषित रहे। ये तापस, तेजस्वी विद्वान् देवतागण वेद के पवित्र ज्ञान का प्रचार करते रहे। इन्हीं महात्माओं की कृपा से आर्यावर्त देश सारे संसार का गुरु रहा और इसका सारे भूमण्डल पर महाभारत पर्यन्त एकच्छत्र चक्रवर्ती राज्य रहा।

उपर्युक्त ८८ सहस्र ऋषियों में से केवल अगस्त्यादि आठ ऋषियों ने प्रजा (सन्तान) उत्पन्न की अर्थात् आठ ऋषि ही विवाह करके गृहस्थी बने। इसीलिये ये आठ ऋषि ही गोत्र प्रवर्त्तक हुये अर्थात् इन्हीं की सन्तान से आठ गोत्र चले। पहले प्रारम्भ में इन्हीं के नाम से आठ गोत्र थे। पीछे अनेक उपगोत्र इन्हीं की सन्तान वा शिष्यों से चल पड़े। गृहस्थ होते हुये भी ये ऋषि महर्षि लोग बड़े संयम वा ब्रह्मचर्य से रहते थे, केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha
वीर्यदान देते थे।

महाभारत का काल पतन का काल माना जाता है किन्तु उस समय गृहस्थ में भी योगिराज श्रीकृष्ण जैसे महात्मा थे जो विवाह करने के पश्चात् भी पति पत्नी १२ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे। इसी-लिये महर्षि दयानन्द उनकी प्रशंसा में लिखते हैं—

"देखो ! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उसके गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।"

यह ठीक है कि महाभारत से एक सहस्र वर्ष पूर्व देश पतन की ओर चल पड़ा था, फिर भी महाभारत के समय तक महर्षि व्यास, जैमिनि आदि अनेक ऋषि-महर्षि विद्यमान थे, उनके प्रभाव से ब्रह्मचर्य पूर्वक पठन पाठन की प्रणाली चल रही थी। इसलिये उस समय तक १०० वर्ष की आयु तक तो प्रायः सभी जीवित रहते थे तथा युवा और बलवान् योद्धा होते थे। महर्षि व्यास की आयु तीन सौ वर्ष से अधिक थी। राजर्षि ब्रह्मचारी भीष्मपितामह १७६ वर्ष की आयु में कौरव दल की ११ अक्षौहिणी सेना के महासेनापति थे। इस आयु में ही अकेले उन्होंने नव दिन तक घोर युद्ध किया। लाखों योद्धाओं को मौत के घाट उतार दिया। अपनी इच्छा से शरीर छोड़ा, मृत्युञ्जय कहलाये। यह सब मेखलाव्रत (ब्रह्मचर्य) का ही प्रताप था। उस समय ब्रह्मचर्य पालन के कारण अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आदि सबकी आयु १०० वर्ष से न्यून नहीं थी। वे इस आयु में युद्ध कर रहे थे। कितने आश्चर्य की बात है, उस समय चार पीढ़ियां युद्ध में भाग ले रही थीं और वे सभी युवा थे तथा बड़े-बड़े महारथी थे।

जैसे महाराज शान्तनु का सगा भाई बाह्लीक युद्ध में लड़
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
रहा था, वह भीष्म पितामह का चाचा था। वाह्लीक का पुत्र सोमदत्त युद्ध में रत था। सोमदत्त का पुत्र महारथी भूरिश्रवा उस काल का प्रसिद्ध योद्धा था। भूरिश्रवा के पुत्र भी युद्ध में लड़ रहे थे। उस समय सौ वर्ष तक युवा रहते जीना और युद्ध में भाग लेना साधारण बात थी।

सभी ऋषि महर्षि इसी मेखला स्वसा के पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत के कारण दीर्घायु को प्राप्त हुये। ब्रह्मचारी भी यही प्रतिज्ञा करता है कि मेरे पूर्वज ऋषि लोग मेखला को अपनी कल्याणकारिणी हितैषिणी भगिनी समझकर धारण करते रहे हैं, शरीर के चारों ओर प्रेम से बांधे रहे हैं। मैं भी उनका अनुकरण करूंगा, दीर्घायु की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य धारण करूंगा, ब्रह्मचर्य की साधनार्थ मेखला को शरीर से बहुत स्नेहपूर्वक संयुक्त रखूंगा, चिपटाये रखूंगा, बांधे रखूंगा, क्योंकि यही मेरी ब्रह्मचर्य साधना को सफल करके मुझे दीर्घायु प्रदान करेगी, यह मुझे दृढ़ निश्चय है। मेखला में मेरी अटूट श्रद्धा है, क्योंकि श्रद्धा की यह स्वयं दुहिता है संसार की सम्पूर्ण शक्तियों को दुहकर यह मेरे अन्दर भर देगी। इसको धारण करके मैं सच्चा ब्रह्मचारी, सफल ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बना हूं। ब्रह्मचर्य ही जीवन है, इसका अपार आनन्द मैं स्वयं लेकर अनुभव कर देख चुका हूँ। फिर इस मेखला, अपनी प्रिय भगिनी से पृथक् कैसे हो सकता हूं, इसी के धारण करने में मेरा कल्याण है। मेरे अन्दर इसने दृढ़ विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न कर दी है। मनुष्य अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके ऋषियों के समान ४०० वर्ष तक आयु को प्राप्त कर सकता है। और जो मेखलाधारी ब्रह्मचारी इस ब्रह्मचर्य का लोप वा नाश नहीं करते वे ही सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महर्षि दयानन्द जी ने सामान्य मनुष्यों के लिये यह उपदेश दिया है—

"जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रमयुक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ (सोलहवें) वर्ष से पूर्व कन्या और २५ (पच्चीसवें) वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधारों का सुधार सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करनेवाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवे।"

ब्रह्मचर्य के प्रताप से महर्षि दयानन्द ने इस युग में हलचल मचा दी थी। एक कवि ने एक कवित्त में इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस कवित्त को आर्योपदेशक पं० बेगराज जी खूब झूम झूम कर गाते हैं।

कवित्त

महर्षि दयानन्द का आगमन

छाया घनघोर अन्धकार मिथ्या पन्थन को,
शुद्ध बुद्ध ईश्वरीय ज्ञान बिसराया था।
वैदिक सभ्यता को अस्त व्यस्त करने के काज,
पश्चिमी कुसभ्यता ने रंग बिठलाया था।
गौ विधवा अनाथ त्राहि त्राहि करते थे,
धर्म और कर्म चौके चूल्हे में समाया था।
रक्षक नहीं था कोई भक्षक बने थे सभी,
ऐसे घोर संकट में दयानन्द आया था॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह कविता हरयाणे के वीर रस के प्रसिद्ध कवि चौधरी तेजसिंह का है जिसे पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी मस्ती से गाते हैं। कौपीनधारी मेखला के एकमात्र प्रचारक लंगोटी के धनी बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के विषय में है।

शूरवीर ब्रह्मचारी

विद्या में ही नहीं बल्कि स्वामी जैसे शूरवीर।
न मान्धाता चक्रवर्ती बलधारी थे॥
राम नहीं रावण नहीं न वीर बानासुर।
न अङ्गद न हनुमान न बाली अहङ्कारी थे॥
भीष्म नहीं, भीम नहीं, न युधिष्ठिर सत्यवादी।
न अर्जुन से बलवान् जिनके बाण लक्ष्यधारी थे।
कहे तेजसिंह एक ओर दुनियां सारी।
एक ओर ऋषि दयानन्द ब्रह्मचारी थे॥

चन्द्र कवि ने ठीक कहा है :-

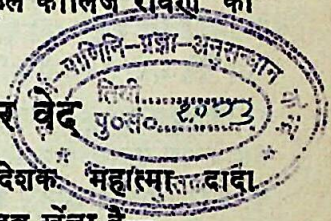
डेढ़ अरब के मुकाबले पर इकला ही वीर दहाड़ा था।
जो कोई उनके सन्मुख आया पल में उसे पछाड़ा था,
जिसका शोर मचा दुनियां में ऋषि दयानन्द आला॥

महर्षि दयानन्द के आने से पूर्व तो सारे संसार में घोर अन्धकार छाया हुवा था। ब्रह्मचर्य का नाम भी संसार के लोग नहीं जानते थे। बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि अनर्थों की भरमार थी। भारत में योरुप की दूषित अनार्ष शिक्षा प्रणाली के कारण, चोरी जारी, मांस मदिरा, हत्या कतल सभी पापों की खूब भरमार थी। इन सब रोगों की एकमात्र चिकित्सा अमोघौषध महर्षि दयानन्द ने आर्षशिक्षा वेदशिक्षाप्रणाली बतायी। इस का पुनः प्रचार महर्षि वेदव्यास के पीछे ५ सहस्र वर्ष पश्चात् आचार्यप्रवर देव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्द ने किया। शिखा सूत्र मेखला को पुनः याद दिलायी। इन वैदिक संस्कृति के प्रतीक मेखलादि का महत्त्व पुनः ऋषियों की सन्तान को समझाया। यथार्थ में कोई माने चाहे न माने, वर्तमान युग में महर्षि दयानन्द ही एकमात्र वेदप्राण पुरुष और आर्ष ज्ञान के अद्वितीय प्रचारक हुये हैं। आर्ष ज्ञान के विस्तार और प्रचार से मानव समाज में सुख और शान्ति के सूर्य का उदय होगा। आर्ष शिक्षा के केन्द्र हैं केवल गुरुकुल। इसलिये संसार कल्याणार्थ और सुख शान्ति की प्राप्ति के लिये अपने बालक बालिकाओं को केवल गुरुकुल में ही शिक्षा दिलावें। स्कूल कालिज रावण की लंका हैं इन से सर्वथा दूर रहें।



महर्षि दयानन्द और वेद

हरयाणा के प्रसिद्ध आर्य भजनोपदेशक महात्मा दादा बस्तीराम जी ने भजन में इस का अच्छा चित्र खेंचा है—

टेक—स्वामी हमारे को वेद प्यारे थे।
वेद के कारण घर छोड़ा सब संसार का सुख छोड़ दिया।
वेद के कारण राख रमाई वेद के कारण योग लिया॥
वेद के कारण बन-बन डोले वेद के कारण दुःख सहन किया।
वेद के कारण यौवन जग ढूंढा जैसे राम ने ढूंडी सिया॥
वेद के कारण फिरे पहाड़ों शीत उष्ण जल सिर पे लिया।
वेद के कारण खाई बरफ कोई सुने तो थर थर कांपे हिया॥
वेद के कारण धूणी तपे तन सुन्दर अग्नि में होम दिया।
वेद के कारण दुष्ट जनों के हाथ से जाकर जहर पिया जी॥
स्वामी को विष प्यावनहारे ब्रह्महत्यारे थे। स्वामी हमारे॥
वैदिक बूटा अधिक अनूठा सब मिल उसको सींचो सही।
इसका थामनेवाला है गुरुकुल जब यह बिगड़ा तब नईया बही॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्या बिन मत जाया पुत्र या हाथ हृदय पर लाके कही।
गऊ रक्षा करो तन मन धन से इन बिना कहां दूध दही॥
अनाथ रक्षा करने की तुम्हें दयानन्द ने शिक्षा दई।
चलती बेर क्या कह गये तुम को वचन याद वह हैं या नहीं॥
उठो खोलदो किवाड़ कहकर पारब्रह्म की शरण लई।
रस्सी जहाज की दे तुमको फिर ऋषि दुनियां छोड़ दई जी॥
'हरीसिंह' हम उस योगी के ऋण चढ़ सारे थे॥ स्वामी हमारे॥

महर्षि दयानन्द का हम सब पर इतना ऋण है कि जिसे लेखनी लिख नहीं सकती और वाणी बखान नहीं सकती। जितने रोम मेरे शरीर पर हैं यदि मैं इतने जन्म लेकर सारी आयु ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदधर्म और आर्ष शिक्षा का प्रचार करूं तब भी उस देवर्षि दयानन्द के उपकार वा ऋण से अनृण नहीं हो सकता। ऋषिवर आपने जीवन में १६ वार विष पीकर भी हमें ब्रह्मचर्यामृत का पान कराया। शिखा सूत्र और मेखला पहनाकर पुनः ब्रह्मचर्य की लुप्त हुई प्रणाली का उद्धार किया। एक सच्चे आचार्य का कर्त्तव्य निभाया। आर्य जाति को मृत्यु शय्या से उठा कर पुनः जीवनामृत का पान कराया। मुन्शीराम से पतित को महात्मा और नास्तिक गुरुदत्त को मुनिवरों की पदवी तक पहुँचाया। स्वयं ब्रह्मचर्य के तप से परमपद को प्राप्त कर मृत्युञ्जय कहलाये।

देश के बालको और युवको ऋषिवर के पदचिह्नों पर चलो। वीर्यरक्षार्थ मेखला धारण कर सच्चे ब्रह्मचारी बनो, सच्चे मानव बनकर देवता बनने का यत्न करो, इसी में सबका हित और कल्याण है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

भारत के प्राचीन मुद्रांक

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेखक—स्वामी ओमानन्द सरस्वती। मू० ५०१ रु०

पुरातत्त्वीय शोध के आधार पर लिखे गये इस मौलिक ग्रन्थ में भारत के प्राचीन प्रसिद्ध नगर कौशाम्बी, अहिच्छत्रा, घ्रुघ्न, सुनेत, प्रकृतानाकनगर, रोहीतक आदि से उपलब्ध प्राचीन सैकड़ों मुद्रांक (मोहरों) का सचित्र विवरण प्रकाशित किया है। हिन्दी भाषा में इस विषय का प्रथम और स्तुत्य प्रयास किया गया है। श्री स्वामी जी ने पन्द्रह वर्ष और लाखों रुपये लगाकर यौधेय, वृष्णि, पाञ्चाल आदि गणराज्यों के सेनापति, महासेनापति आदि राज्याधिकारियों के मुद्रांक एकत्र किये हैं। प्राचीन भारत के लुप्त इतिहास के पुनर्लेखन में यह सामग्री अपना बेजोड़ स्थान रखती है। पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है।

भारत के प्राचीन टकसाल

लेखक—स्वामी ओमानन्द सरस्वती। मूल्य २०० रुपये

पुरातत्त्व की विशुद्ध सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किये गये इस ऐतिहासिक शोध ग्रन्थ में प्राचीन भारत की मुद्रा निर्माण पद्धति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में कार्षापण यौधेय, भारतीय यवन राजा, कुषाण, सामन्तदेव, आदिवाराह मिहिरभोज, गदिया और भारतसासानी आदि विविध प्रकार की स्वर्ण, रजत और ताम्र मूद्राओं के सांचों का सचित्र और विशद वर्णन किया गया है। यह १८ वर्षों के परिश्रम का अद्भुत और मौलिक प्रयास है। ग्रन्थ वस्तुतः पठनीय और संग्रहणीय है।

निर्देशक :

हरयाणा प्रान्तीय पुरातव संग्रहालय

(गुरुकुल झज्जर, रोहतक हरियाणा) दूरभाष ६८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ओ३म्

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

हरयाणा प्रान्तीय प्राचीन इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थों का

प्रकाशन

जिस प्रकार प्राचीन मुद्रांङ्कों (मोहरों) और लक्षणस्थान (टकसाल) का इतिहास छपा है; उसी प्रकार हम इतिहास के अनेक अमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं, जिनकी सूची निम्न प्रकार है:—

१. हरयाणा के प्राचीन अस्त्रशस्त्र।
२. हरयाणा की प्राचीन मुद्रायें (सिक्के) १० भागों में।
३. यौधेय मुद्रायें
४. हरयाणा की प्राचीन मृन्मूर्तियां।
५. हरयाणा की प्राचीन प्रस्तरमूर्तियां।
६. हरयाणा में रामायण का प्राचीन मन्दिर।
७. हरयाणा के प्राचीन दस दुर्ग।
८. हरयाणा के प्राचीन क्षत्रियकुल।
९. हरयाणा की प्राचीन शिल्पकला।
१०. हरयाणा के प्राचीन नगर।

ये सभी ग्रन्थ सचित्र, सुन्दर और बढ़िया कागज पर सजिल्द छपेंगे। जो सज्जन ११११) वा अधिक धन देकर सहायता करेंगे, उन दानियों का नाम ग्रन्थों में सचित्र प्रकाशित किया जायेगा।५०००) तथा इससे अधिक राशि दान देने वाले महानुभावों का चित्र और परिचय सधन्यवाद प्रकाशित किया जायेगा। अतः इस महत्वपूर्ण योजना को तन मन और धन से पूर्ण सहयोग देकर सफल बनायें।

इस प्रकार ये इतिहास के प्रामाणिक बड़े-बड़े ग्रन्थ शीघ्रातिशीघ्र पाठकों को भेंट करना चाहते हैं। मेरा मुख्य कार्य शेष जीवन में यही रहेगा, किन्तु इतिहास प्रेमियों के पूर्ण सहयोग के बिना यह कठिन कार्य पूर्ण नहीं हो सकेगा।

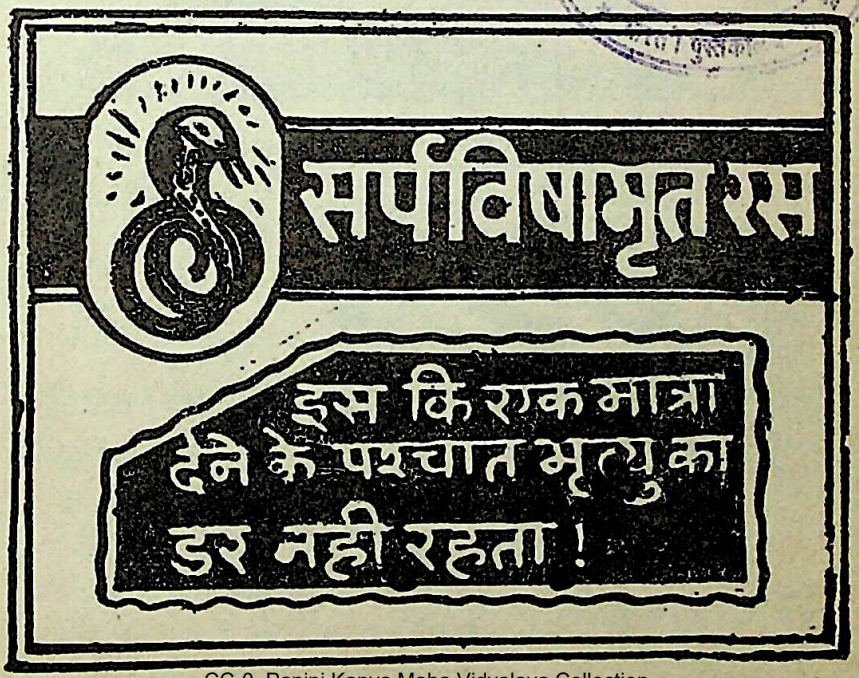
CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला

गुरुकुल झज्जर की

पेटेंट औषधियां



CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संजीवनी तेल

संजीवनी तेल-इतिहास प्रसिद्ध संजीवनी बूटी से बड़े परिश्रम से तैयार किया गया है यह यथा नाम तथा गुण है। कटे-फटे एवं जले हुए पर अत्यन्त गुणकारी है। बहते हुए खून को लगाते ही बन्द करता है। अन्दर की चोट की भी उत्तम औषधि है। जादू भरा प्रभाव करती है।

मलने विधि- घाव आदि पर बार बार लगायें। जल में न डालें रखें

प्रयोग करें

नेत्रज्योति सुर्मा

नेत्रज्योति सुर्मा-सुर्मे तो बाजार में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं परन्तु इतना लाभप्रद और सस्ता सुर्मा मिलना कठिन ही नहीं असम्भव है। इस के लगाने से आँखों के सब रोग जैसे आँखों में पानी बहना, खुजली, लाली, जाला फोला नजर की कमजोरी आदि विकार दूर होते हैं तथा बुढ़ापे तक आँखों की रक्षा करता है। लगातार इस का प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.